

श्रीः ।



ज्योतिषतत्त्वसुधारणव

भाषाटीकयाऽलंकृतः ।



बौसबरेलीनिवासिबुधवरबोकेलालतनयेन श्यामसु-
दरलालशर्मणा सम्पादितः ।



मोऽयम्

गंगाविष्णु-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

स्वकीये “ लक्ष्मीवैकटेश्वर ” स्टीम्-मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

सन्त १९८३, शके १८४८.

कल्याण-मुम्बई.

अस्य ग्रन्थस्य सर्वोपेक्षारा प्रज्ञाशर्मागता सन्ति ।

समर्पणम् ।

“विफलान्यन्यशास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम् ।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं साक्षिणीं चन्द्रभास्करो ॥”

सन्मिश्रविद्वद्वरपंडितश्रीज्वालाप्रसादानुमतोऽहमद्य ।
श्रीकृष्णदासात्मजवैश्यवंशसुधाकरोद्भूतसुधाकराय ॥ १ ॥
श्रीखेमराजाय वसुन्धराविख्यातामलजानयशस्वते च ।
सुन्वापुराधिष्ठितवेङ्कटेशमुद्रालयाध्यक्षवराय चेमम् ॥ २ ॥
ग्रन्थं सुधीभिर्बहुभावितार्थं भाषामयं व्याकृतिशालिनं च ।
कृत्वार्यपेऽहं बहुतोपहेतोर्विद्वद्गुणस्वर्णकपायजोषम् ॥ ३ ॥
दिष्ट्याऽहं सुबहुश्रमेण विषयानालोच्य सारं भृशं
रत्नैरप्यमितं सुधापदमितं तत्त्वं-पुराविन्मतम् ।
संगृह्यार्यसुभाषया व्यसप्तमयं किञ्चिज्ज्ञहेतोरलं
ज्योतिस्तत्त्वसुधारणवेति पदवीमस्माद्रतम्पत्कृतम् ॥ ४ ॥
आशासे चायमस्मच्छममखिलमवेक्ष्यात्तपूर्णानुरागः
स्वस्थाने मुद्रयित्वा सकलजनमनस्तोषकं संविधाता ।
तावन्मात्रेण तुष्टो निजनिखिलमहाश्रान्तिमेतां त्यजेहं
देवो नस्तेन तुष्टो भवतु कुलपतिः श्रीगणेशो दिनेशः ॥ ५ ॥

पंडित श्यामसुन्दरलालशर्मा-

गुलाबनगर-बॉम्बेरेली,

M. W. P.

भूमिका ।

प्रिय पाठक गण ।

चिरकालमे मेरा यह विचार था कि, कोई ज्योतिषकी पुस्तकको सम्पादन करके ज्योतिषविद्याभिलाषियोंके प्रति प्रकाशितकरूं परन्तु शांतिरक अस्वस्थतामे परिश्रम न कर सका संवत् १९५३ की, आदिमे जब इस ग्रन्थके लिखनेका प्रारम्भ किया तब समय पाय इस ग्रन्थके प्रबन्धको अवलोकन करके मुरादाबाद निवानी श्रीमान् जगद्विरूपात विठ्ठलशिरामणि पाण्डित ज्वालाप्रसाद-मिश्रजीने अपनी इच्छा प्रकट की कि, आप हमारे सेठजी श्रीकृष्णदामात्मज खेमराजजीके अर्थ इस " ज्योतिषतत्त्वमुधान्व " नामकग्रन्थको समर्पण करना, क्योंकि, यह ग्रन्थ हमारे सेठजीकेही योग्य है, उक्त पं० जीके कथनानुसार मैं इस ग्रन्थके पूर्ण करनेको उद्यत हुआ किन्तु कार्यमें प्रवृत्त होनेके उपरान्त अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित हुए कि, जिनसे ग्रन्थ पूर्णहोनेकी सम्भावना थी। परन्तु श्रीगुरुदेवके चरणरुमलोंकी कृपामे निर्विघ्नतापूर्वक ग्रन्थ पूर्ण हुआ ।

इस ग्रन्थमें अनेक ज्योतिषकी पुस्तकोंका और विविधाचार्योंके मतोंका सार भाग ग्रहणकरके लिखा है और ज्योतिषसिद्ध जनोंके मुगमार्थ मापाटीका करा दिया है तथा गूढ़ स्थलमें संस्कृत टिप्पणीभी साक्षिगणित की हैं ।

ज्योतिषे तंत्रशास्त्रे च विवादे वैद्यशास्त्रके ।

अर्थमात्रन्तु गृहीयान्नापशब्दं विचारयेत् ॥ १ ॥

ज्योतिषशास्त्र व तंत्रशास्त्र और विवाद तथा वैद्यक शास्त्रमें अर्थमात्रको ग्रहण करना उचित है यहाँ अपशब्दका विचार न करना चाहिये । इस प्राचीन श्लोकसे प्रगट होता है कि, कोई २ वचन व्याकरणानुसार अशुद्ध होनेसेभी परित्याग करनेके उचित नहीं है—पाठकगणभी उक्तश्लोकके आशयको ग्रहण करेंगे ।

एक बात यहाँपर लिखना परमावश्यक है कि, जैसे आजकल प्रायः अभिमानी पाण्डितमानी नाममात्रके ज्योतिषी ऐसे हैं कि, जो अपनेही मुखसे अपनी प्रशंसा करते और अपनेको देवज्ञराज ज्योतिषी आदिनामसे शशिद्ध करते हैं—जिससे अपना हास्य कर रहे हैं—और धूर्तता करके अपनी प्रतिष्ठा चाहते हैं—यहाँ पर एक श्लोक स्मरण आता है कि,—

(६)

“न गुणो न च सौभाग्यं स्वयं स्वगुणवर्णने ।

यथैव च पुरन्ध्रीणां स्वहस्तकुचमर्दने ॥ ”

जैसे स्त्रीगण अपने हाथ अपने कुच मर्दें तो कुछ आनन्द नहीं होता किन्तु पीड़ा होती है—इसी प्रकार अपने मुख अपनी प्रशंसा करनेवालेकी प्रतिष्ठा नहीं होती किन्तु हास्यही होता है, इस लिखनेसे हमारा यह प्रयोजन है कि, मैं अपने मुख अपनी तथा अपने ग्रन्थकी प्रशंसा नहीं करता—जसा कुछ यह ग्रन्थ है आपके सम्मुखही है देख लीजिये कि, इसमें ज्योतिषके सबही विषय आगये हैं जैसे—मुहूर्त, प्रश्न, जातक, ताजक, स्वर आदि निश्चय है कि; इस एकही ग्रन्थके आधारसे पाण्डितोंका ज्योतिष विषयमें सबही प्रयोजन सिद्ध होवैगा—किमधिकम् ।

रामवाणाङ्कचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले ।

नवम्यां चन्द्रवारे च ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥

आप सज्जनोंका सद्गुणहीत—

पंडित श्यामसुन्दरलाल शर्मा,

मुहल्ला गुलाबनगर—वाँसवरेली.

म. म. प.



जिनने बृहद्ग्रन्थोंका नाम तथा जिन आचार्योंका मत ग्रहण करके
इस ज्योतिषतत्त्वसुधारणव नामक ग्रन्थका लिपिबद्ध किया है-
तिन ग्रन्थों तथा आचार्योंके नाम निम्नलिखित प्रकार जानना ।

॥ ग्रन्थगणना ॥

ज्योतिषशास्त्रकी शुद्धि दीपिका.

ज्योतिषतत्त्व.

ज्योतिषमार.

ज्योतिषनागमप्रह.

धृत्यचिन्तामणि.

ज्योतिषरत्नमाला.

राजमार्त्तण्ड.

बृहद्राजमार्त्तण्ड.

भीमपराक्रम.

रत्नावली.

बाराही संहिता.

भुजबलभीम.

मुहूर्त्तचिन्तामणि.

विष्णुधर्मोत्तर.

जातकामरण.

जातकचान्द्रिका.

श्रीपतिव्यवहारनिर्णय.

संवत्सर प्रदीप.

श्रीपतिव्यवहारमनुष्य.

श्राद्धतत्त्व.

तिथितत्त्व.

दीक्षातत्त्व.

स्मृति.

मृतिसार.

नवीन वर्द्धमानधृत स्मृति-

नारायणपद्धति.

कोष.

रत्नमाला.

ज्ञानमाला.

पाश्चात्त्यनिर्णयामृत.

शुद्धिप्रकाश.

पराशरभाष्य.

तत्त्वसागर.

मत्स्यसूक्त महातंत्र.

रुद्रयामलतंत्र.

गनत्रुभातंत्र.

योगिनीतंत्र.

फालोत्तरतंत्र.

विश्वसारतंत्र.

समयातंत्र.

आगमार्णवतंत्र.

बागहीतंत्र.

योगतंत्र.

मुण्डमालातंत्र.

निरुत्तरतंत्र.

गीतमीपतंत्र.

नारदतंत्र.

तंत्रसार.

वैशम्पायन संहिता.

रामार्चनचान्द्रिका.

यामल.

विष्णुयामल.

महामारत.

देवीपुराण.

विष्णु „

मत्स्य „

स्कन्द. ब्रह्म, पुराण.

ब्रह्मवैवर्त्त „

भविष्यपुराण.

गङ्गामृतग्रन्थधृत भविष्य पुराण.

नारदीय, गरुड, कूर्म, पञ्च, बाराह, पुराण.

नन्दिकेश्वरपुराण-इत्यादि.

आचार्यगणना ।

बलभद्र
 भोजगंज
 वगहमिहिराचार्य
 भैरवाचार्य
 शङ्ख
 वृद्धमनु
 गर्ग
 मनु
 भागुरि
 हारीत
 याज्ञवल्क्य
 वृद्धवाशिष्ठ
 वाशिष्ठ
 शातातप
 जाबालि
 देवल
 गौतम
 वृद्धगौतम
 गोमिल

मार्कण्डेय
 पद्मशर
 यम
 यवनेश्वर
 पारस्कर
 माण्डूक्य
 शृगु
 कौशिक
 वृद्धस्पति
 प्रचता
 दक्ष
 वृद्ध भार्गवाचार्य
 काश्यप
 प्रभाकरभट्ट
 श्रीपातिभट्ट
 हृदयानन्द
 विद्याधरी
 स्मार्तमहामहोपाध्यायव्यास
 इत्यादि०



अथ ज्योतिषतत्त्वसुधारणवविषयानुक्रमणिका



| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ |
|---------------------------------|--------|---------------------------------|-------|
| ग्रन्थारम्भः । | | अन्यच्च | १२ |
| (१) तत्रादौमङ्गलाचरणम् | १ | ग्रहाणांघातवः | ११ |
| ख्याद्युत्पत्तिः | १ | ग्रहाणांस्तत्त्वादिगुणाः | १३ |
| मेपादिराशयः | २ | सामाह्यपायाधिकारिणः | १४ |
| राशिपर्यायः | १ | ग्रहेषुनृपाद्यः | ११ |
| मेपादीनांविशेषसंज्ञा | ३ | पुरुषाद्यधिपा ग्रहाः | ११ |
| हूरसौम्यादिविवेकः | १ | वेदाधिपाः | ११ |
| पुण्यादिसंज्ञामेपादीनाम् | १ | रसाधिपाः | १५ |
| हिचतुष्पदादिराशयः | ४ | दिग्धिपतयः | ११ |
| कीटसरसृपराशयः | १ | ग्रहाणामित्रभावः | ११ |
| ग्राम्यारण्यराशयः | १ | ग्रहाणांसमभावः | १६ |
| जलजराशयः | १ | तात्कालिकमित्रभावः | ११ |
| राशीनां बलज्ञानम् | ५ | तात्कालिकशत्रुभावः | १७ |
| अन्यच्च | १ | अधिमित्रभावः | ११ |
| राशीनांस्थानबलम् | ६ | राहुकेत्वोर्मित्रभावादिकम् | १८ |
| बलाबलविभागः | १ | ग्रहाणांपापसौम्यभावः | १९ |
| पत्यादियोगादिनाराशिवलाबलम् | ७ | ग्रहाणामृतबलम् | ११ |
| वेश्यादिस्थानकथनम् | १ | चन्द्रबलम् | ११ |
| पट्वर्गकथनम् | ८ | ग्रहाणांबलविशेषः | २० |
| क्षेत्राधिपतयः | १ | मूलत्रिकोणानि | २१ |
| राशीनांहस्ततादिसंज्ञाः | १ | अन्यच्च | २२ |
| राशीनामधिष्ठातृदेवताः | ९ | मूलत्रिकोणांशाः | ११ |
| अन्यच्च | १ | तुङ्गादिकथनम् | २३ |
| राशीना वश्यावश्यत्वे | १० | अन्यच्च | २४ |
| राशीनांजातयः | ११ | अपरच्च | ११ |
| मेपादीनां वर्णाः | ११ | ग्रहाणांदृष्टयः | २५ |
| नवग्रहसंज्ञाः | ११ | ग्रहाणामदृष्टिस्थानानि | २७ |
| ग्रहाणांसंज्ञान्तराणि | ११ | राहोर्दृष्टयः | ११ |
| ग्रहाणांजातयः | १२ | नक्षत्राणि | ११ |
| ग्रहाणां वर्णाः | ११ | नक्षत्राधिपाः | २८ |
| | | गणकथनम् | २९ |

| विषय | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|----------------------------------|---------|----------------------------|---------|
| उग्रनक्षत्रगणः | २९ | साधिपशकुन्यादयः | ४४ |
| धुवनक्षत्रगणः | ३१ | विष्टिभद्रा | ४५ |
| चरनक्षत्रगणः | ३० | अन्यच्च | ४६ |
| लघुनक्षत्रगणः | ३१ | अपरञ्च | ३१ |
| मृदुनक्षत्रगणः | ३१ | प्रकारान्तरञ्च | ३१ |
| तीक्ष्णनक्षत्रगणः | ३१ | विष्टिभद्रोत्पत्तिः | ३१ |
| मृदुतीक्ष्ण (भिन्न) नक्षत्रगणः | ३१ | विष्टिभद्राया अङ्गविभागः | ४७ |
| अधोमुखनक्षत्रगणः | ३१ | अङ्गविभागफलम् | ३१ |
| ऊर्ध्वमुखनक्षत्रगणः | ३१ | भद्रास्थितिनिर्णयः | ३१ |
| पार्श्वमुखनक्षत्रगणः | ३२ | विष्टिभद्राफलम् | ४८ |
| ताराशुद्धिः | ३१ | अन्यच्च | ३१ |
| पञ्चमादितारानिर्णयः | ३३ | विष्टिभद्रायाः प्रतिप्रसवः | ३१ |
| जन्मतागफलम् | ३१ | नवग्रहसंज्ञा | ३१ |
| ताराप्रतीकारः | ३४ | वारसंज्ञाः | ३१ |
| दिवसस्य पञ्चदश नक्षत्रमुहूर्ताः | ३१ | वारगुणाः | ३१ |
| रात्रेः पञ्चदश नक्षत्रमुहूर्ताः | ३५ | इति प्रथमस्तरंगः । | |
| नक्षत्रमुहूर्तफलम् | ३१ | (२) विवाहः | ५१ |
| नाडीनक्षत्राणि | ३१ | कन्यालक्षणम् | ३१ |
| नाडीनक्षत्रफलम् | ३६ | कन्यायाः प्रतिप्रसवः | ५२ |
| नाडीनक्षत्रपीडाशान्तिकथनम् | ३७ | वैवाहिकनक्षत्रादयः | ५७ |
| अशुभनक्षत्राणि | ३१ | विवाहेनोपेक्षमासाः | ५९ |
| पुनक्षत्राणि | ३८ | प्रशस्तमासाः | ३१ |
| राशिनक्षत्रविभागः | ३१ | अन्यप्रकारमाह | ३१ |
| तीर्थनिरूपणम् | ३९ | प्रशस्ताप्रशस्तवारविभागः | ३१ |
| तियिसंज्ञाः | ४० | अपरञ्च | ६० |
| तियोनां नन्दादिसंज्ञाः | ३१ | अन्यच्च | ३१ |
| अन्यच्च | ३१ | तत्र तिथयः | ३१ |
| सप्तविंशतिनित्ययोगाः | ३१ | तत्र नक्षत्राणि | ६१ |
| योगानां त्याज्यकालः | ४२ | गण्डपादवर्जनम् | ६२ |
| अन्यच्च | ३१ | त्याज्ययोगः | ३१ |
| अपरञ्च | ३१ | अन्यच्च | ६३ |
| प्रकारान्तरञ्च | ४३ | तत्र लग्नाणि | ३१ |
| एकादशकरणानि | ३१ | अपरञ्च | ३१ |
| करणपतयः | ४४ | अन्यच्च | ६४ |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|------------------------------|--------|-------------------------------------|--------|
| युतियामित्रवेधादिवर्जनम् | ६४ | प्रकारान्तरञ्च | ७३ |
| यामित्रवेधः | ॥ | गणफलम् | ७८ |
| यामित्रवेधप्रतिप्रसवः | ६५ | नाडीवेधः | ॥ |
| यामित्रयुतिवेधः | ॥ | नाडीवेधफलम् | ७९ |
| अन्यञ्च | ६६ | सप्तसप्तमादिफलम् | ॥ |
| फलम् | ॥ | विषमसप्तमादिफलम् | ८० |
| युतियामित्रादीना प्रतिप्रसवः | ॥ | राजयोत्कप्रशंसा | ॥ |
| सप्तशलाकावेधः | ६७ | अरिपडष्टकम् | ॥ |
| सप्तशलाकाचक्रम् | ॥ | मित्रपडष्टकम् | ८१ |
| अन्यप्रकारमाह | ६८ | पडष्टकादिफलम् | ॥ |
| अभिजिन्नक्षत्रम् | ६९ | नवपञ्चकादौविशेषफलम् | ॥ |
| सप्तशलाकावेधफलम् | ॥ | वर्णकथनम् | ८२ |
| अन्यञ्च | ॥ | वर्णफलम् | ॥ |
| इन्द्रपद्मगताः पापाः | ॥ | योत्कापवादः | ॥ |
| अन्यञ्च | ७० | अन्यञ्च | ॥ |
| इन्द्रपद्मगतफलम् | ॥ | अपरञ्च | ८३ |
| तत्प्रतिप्रसवमाह | ७१ | द्वादशशदी विशेषः | ॥ |
| खर्जूरवेधः | ॥ | भ्रमप्रमादोत्पन्नपडष्टकादिप्रतीकारः | ८४ |
| खर्जूरचक्रम् | ७२ | कन्यायाः ग्रहादिशुद्धिकथनम् | ८५ |
| खर्जूरवेधप्रतिप्रसवः | ७३ | विवाहे अयनादिशुद्धिः | ८६ |
| स्पष्टमाह | ॥ | कालाशुद्धिः | ८७ |
| सुतहिबुकयोगः | ॥ | अनादिदेवदर्शननिषेधः | ९४ |
| अन्यञ्च | ७४ | गयायां प्रतिप्रसवः | ९५ |
| अपरञ्च | ॥ | अकालवृष्टिः | ॥ |
| प्रकारान्तरञ्च | ॥ | विशेषमाह | ९७ |
| गोक्षुल्लियोगः | ॥ | जन्ममासादौ विवाहादिनिषेधः | ९८ |
| गोक्षुल्लिव्यवस्था | ७५ | अपिच भोजदेवः | ॥ |
| गोक्षुल्लियोगस्त्रिविधः | ॥ | जन्ममासादौ विवाहादिप्रतिप्रसवः | ॥ |
| गोक्षुल्लिप्रशंसा | ॥ | अपिच | ॥ |
| गोक्षुल्लिनिन्दा | ७६ | अन्यञ्च | ९९ |
| अन्यञ्च | ॥ | अपरञ्च | ॥ |
| योत्कविचारः | ७७ | प्रकारान्तरञ्च | ॥ |
| अन्यञ्च | ॥ | अपिच | ॥ |
| अपरञ्च | १३ | अन्यञ्च | ॥ |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|---------------------------------------|--------|---|--------|
| विवाहादौ ग्रहशुद्धिः | १०० | चन्द्रताराचतुष्टयप्रतीकारः | ११४ |
| अष्टवर्गस्तत्रादौखरैष्टवर्गः— | १०१ | अन्यच्च | ११५ |
| चन्द्रस्याष्टवर्गः | १०१ | चन्द्रस्य विशेषः | ११ |
| कुजस्याष्टवर्गः | १०२ | चन्द्रदोषोपशान्तिस्नानम् | ११ |
| बुधस्याष्टवर्गः | १०३ | गोचरे चन्द्रशुद्धिफलम् | ११ |
| बृहस्पतेरष्टवर्गः | १०३ | ग्रहाणां गोचरापवादफलम् | ११६ |
| शुक्रस्याष्टवर्गः | १०४ | ग्रहाणां दक्षिणवेषवामवेषो | ११ |
| शनेरष्टवर्गः | १०४ | तत्रादौ खेः | ११ |
| रहस्याष्टवर्गः | १०५ | चन्द्रस्य | ११७ |
| अष्टवर्गगणनक्रमः | १०५ | प्रकारान्तरेण वामवेषे चन्द्रशुद्धिः.... | ११८ |
| स्पष्टमाह | १०६ | कुजशान्त्योः | ११९ |
| तत्ररेखाविन्दादीनां फलम् | १०६ | बुधस्य | १२० |
| अन्यच्च | १०७ | गुरोः | १२० |
| अपरञ्च | १०७ | शुक्रस्य | १२१ |
| अविशुद्धाष्टवर्गस्य फलम् | १०७ | दक्षिणवेषवामवेषयोः फलम् | १२१ |
| माण्डव्योक्तग्रहाणां गोचरशुद्धिः | १०८ | दिवात्रिवाहनिषेधः | १२२ |
| वराहोक्तग्रहाणां गोचरशुद्धिः | १०८ | कुलिकारूपयोगः | १२२ |
| रविशुद्धिः | १०९ | दग्धतिथयः | १२३ |
| तत्फलम् | ११० | अन्यच्च | १२३ |
| अन्यच्चशुद्धिमाह | ११० | रात्रिषु चन्द्रस्थित्या दग्धतिथयः.... | १२४ |
| अपरञ्च | १११ | अवमग्रहस्पर्शो | १२४ |
| निषिद्धरविफलम् | १११ | अपिच | १२५ |
| अन्यच्च | ११२ | अन्यच्च | १२५ |
| बृहस्पतिशुद्धिः | ११२ | अपरञ्च | १२६ |
| चन्द्रशुद्धिः | ११२ | ब्रह्मस्पर्शनिन्दा | १२६ |
| अपिच | ११३ | एकीदने सोदराणां विवाहनिषेधः | १२७ |
| अन्यच्च | ११३ | अपिच | १२७ |
| चन्द्रताराशुद्धिप्रशसा | ११३ | गुणवाहुलेपस्त्याज्यः | १२७ |
| अपिच | ११४ | बहुगुणसत्त्वोपेगुरुतरएकदोषःस्तीकार्थः” | १२७ |
| अन्यच्च | ११४ | इति द्वितीयस्तरंगः | |
| अपरञ्च | ११४ | (३) नवध्वामगमनम् | १२८ |
| प्रकारान्तरञ्च | ११४ | अन्यच्च | १२८ |
| अपिच | ११५ | अपरञ्च | १२८ |
| अन्यच्च | ११५ | प्रकारान्तरञ्च | १२८ |
| प्रकारान्तरञ्च | ११५ | विवाहे जादौ स्त्रियाः बालवन्धः | १२९ |

| विषय. | पृष्ठ. / विषय | पृष्ठ. |
|--|---------------|--------------------------------------|
| द्विरागमनम् | १२९ | अन्यञ्च १४३ |
| अपिच | II | अपरञ्च ११ |
| अपरञ्च | १३० | प्रकारान्तरञ्च ११ |
| अन्यञ्च | ११ | प्रशस्ताप्रशस्तनक्षत्राणि १४४ |
| प्रकारान्तरञ्च | ११ | अपिच ११ |
| अपरञ्च | ११ | अन्यञ्च १४५ |
| अपिच | १३१ | अपरञ्च ११ |
| पुनरापिच | ११ | प्रकारान्तरञ्च ११ |
| अन्यञ्च | ११ | प्रशस्ताप्रशस्ततिथ्यादिकथनम् ११ |
| अपरञ्च | १३२ | गण्डपादवर्जनम् १४७ |
| प्रकारान्तरञ्च | ११ | अशक्ती तु भुजबलम् ११ |
| अन्यञ्च | ११ | फलबन्धनम् ११ |
| अपरञ्च | १३३ | षोडशवर्षायागभिर्णिधिन्ता १४८ |
| प्रकारान्तरञ्च | ११ | पुसवनम् ११ |
| द्विरागमने प्रशस्ततिथिकथनम् | ११ | पञ्चामृतम् १४९ |
| तत्र निषिद्धातिथयः | १३४ | अन्यञ्च ११ |
| पितृगृहे भोजनानंतर पतिगृहे भोजन निषेधः | ११ | घटी (श्रीरव्छ) दानम् ११ |
| आद्यरजोदर्शने शुभाशुभवारादयः | ११ | सीमन्तोन्नयनम् १५० |
| तत्रमासाः | ११ | अन्यञ्च ११ |
| तत्र तिथयः | १३५ | अपरञ्च ११ |
| अन्यञ्च | १३६ | जातकप्रकरणम् १५१ |
| तत्रयोगादयः | ११ | तत्रादौ लग्नमानम् ११ |
| अन्यञ्च | ११ | प्रसूतिज्ञानम् १५२ |
| तत्र नक्षत्राणि | १३७ | लग्नज्ञानम् ११ |
| दिक्चक्रम् | १३८ | अन्यञ्च ११ |
| गर्भाधानम् | ११ | अपरञ्च १५३ |
| तत्रादौ पञ्चपर्वसु वर्ज्यानि | ११ | प्रकारान्तरञ्च ११ |
| अन्यञ्च | १३९ | अपिच ११ |
| निषेधकालः | ११ | गृहस्वरूपम् ११ |
| गर्भाधाने युग्मायुग्मदिनव्यवस्था | १४२ | अन्यञ्च १५४ |
| अन्यञ्च | ११ | अपरञ्च ११ |
| अपरञ्च | ११ | दीपस्थितिज्ञानम् १५५ |
| प्रकारान्तरञ्च | II | वर्तिकाज्ञानम् ११ |
| अपिच | १४३ | तेलज्ञानम् १५६ |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|------------------------------------|--------|---------------------------------|--------|
| पद्वर्गनिर्णयः ग्रहाणां क्षेत्राणि | १५६ | गण्टारिष्टशान्तिः | १६८ |
| होराविभागः | १५७ | मात्ररिष्टम् | १७० |
| अपिच | १५७ | अन्यच्च | १७१ |
| होराफलम् | १५७ | अपरश्च | १७१ |
| त्रेक्षणाविभागः | १५७ | प्रकारान्तरश्च | १७१ |
| अपिच | १५७ | अरिष्टमङ्गयोगः | १७२ |
| अन्यच्च | १५७ | पित्ररिष्टम् | १७२ |
| नवांशाः | १५८ | अन्यच्च | १७२ |
| वर्गोत्तमांशाः | १५८ | अपरश्च | १७३ |
| अपिच | १५८ | प्रकारान्तरश्च | १७३ |
| द्वादशांशाः | १५९ | अपिच | १७३ |
| अन्यच्च | १५९ | अन्यच्च | १७३ |
| त्रिंशांशाः | १५९ | अपरश्च | १७३ |
| यामाङ्कविभागः | १६० | प्रकारान्तरश्च | १७४ |
| अपिच | १६० | पितृमातृहायोगः | १७४ |
| अन्यच्च | १६० | अपिच | १७४ |
| दण्डाः | १६१ | शिशोरिष्टम् | १७५ |
| विशेषः | १६२ | तत्रादौ सूर्यारिष्टम् | १७५ |
| सूतिकाख्येण शिशोर्दिवादंडज्ञानम् | १६२ | चन्द्रारिष्टम् | १७५ |
| रोहिदण्डज्ञानम् | १६३ | चन्द्रारिष्टमङ्गः | १७६ |
| अन्यच्च | १६३ | पापयुक्तचन्द्रारिष्टम् | १७६ |
| अपिच | १६३ | अन्यच्च | १७६ |
| जन्मसमये पितुः परोक्षादिस्थिति | १६४ | लग्नस्थक्षणेन्द्रारिष्टम् | १७७ |
| ज्ञानम् | १६४ | त्रिंशांशविशेषस्थचन्द्रारिष्टम् | १७७ |
| जारज (अन्यपुरुषजातसन्तान) | १६५ | विविधभौमारिष्टम् | १७८ |
| योगः | १६५ | बुधारिष्टम् | १७८ |
| अन्यच्च | १६५ | गुर्वरिष्टम् | १७८ |
| अपरश्च | १६५ | शुक्रारिष्टम् | १७८ |
| जारजयोगमङ्गः | १६६ | शन्यरिष्टम् | १७९ |
| अन्यच्च | १६६ | शन्यरिष्टमङ्गः | १८० |
| बालस्य पितृमातृसादृश्यज्ञानम् | १६७ | अपरश्च | १८० |
| गण्टयोगः | १६७ | राह्यरिष्टम् | १८० |
| गण्टयोगकालः | १६७ | राह्यरिष्टमङ्गः | १८० |
| गण्टारिष्टकथनम् | १६७ | | |
| अन्यच्च | १६७ | | |
| गण्टापवादः | १६८ | | |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|----------------------------|----------|--------------------------|----------|
| जन्ममरणयोर्मोक्षज्ञानम् | २१० | अपरञ्च | २२६ |
| स्त्रीणां रूपादिनिरूपणम् | " | प्रकारान्तरञ्च | २२७ |
| सप्तमस्थपापग्रहफलम् | २११ | अपिच | " |
| वैषम्यादियोगः | " | ग्रहदोषे मूलादिधारणविधिः | " |
| अपिच | २१२ | अन्यच्च | २२८ |
| ग्रहाणां गोचरभोगकालः | २१३ | ग्रहदोषे स्त्रानविधिः | " |
| ग्रहाणां गोचरफलम् | २१४ | इति तृतीयस्तरङ्गः । | |
| तत्रादौ रवेः | " | (४) जातकर्म | २२९ |
| चन्द्रस्य | " | अपिच | " |
| मङ्गलस्य | २१५ | अन्यच्च | " |
| बुधस्य | २१६ | नामकरणम् | २३० |
| बृहस्पतेः | " | अपिच | २३१ |
| अन्यच्च | २१७ | अन्यच्च | " |
| शुक्रस्य | " | अपरञ्च | " |
| शनेः | २१८ | प्रकारान्तरञ्च | २३२ |
| राहोगोचरफलम् | २१९ | निक्रामणम् | " |
| केतुगोचरफलम् | " | अपिच | २३३ |
| गोचरफलकालः | " | ताम्बूलभक्षणम् | " |
| अन्यच्च | २२० | भूस्पृशपवेशनम् | " |
| चन्द्रचारवशाद्ग्रहशुद्धिः | " | अन्नप्राशनम् | २३४ |
| तागादिशुद्ध्या ग्रहशुद्धिः | २२१ | अपिच | " |
| नाक्षत्रिकदिशाफलम् | " | पञ्चपर्वाणि | २३५ |
| दशानिरूपणम् | २२२ | अन्यच्च | " |
| दशाफलकयनम् | " | अपरञ्च | " |
| दशाफलनिर्णयः | २२३ | प्रकारान्तरञ्च | " |
| अष्टमचन्द्रादिदशाफलम् | " | अन्यच्च | २३६ |
| शिरश्छेदादिकारकदशा | " | अपरञ्च | " |
| दशारिष्टम् | २२४ | प्रकारान्तरञ्च | " |
| पापग्रहान्तर्दशाकयनम् | " | चूडाकरणम् | २३७ |
| अपिच | " | अन्यच्च | २४० |
| दशान्तर्दशपोरुषवादः | २२५ | निर्यस्योस्म | २४१ |
| निरिष्टप्रतीकारः | २२६ | अन्यच्च | २४३ |
| ग्रहदोषे द्रव्यधारणविधिः | २२६ | कर्णवेपः | २४४ |
| अन्यच्च | " | अन्यच्च | २४६ |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|------------------------------------|--------|--------------------------------------|--------|
| विद्यारम्भः | २४६ | अन्यच्च | २७१ |
| उपनयनम् | २५० | अपरञ्च | २७२ |
| अन्यच्च | २५१ | प्रकारान्तरञ्च | " |
| प्रशस्तामासाः | " | गजाधारोहणम् | " |
| प्रशस्ताप्रशस्तातिथ्यादयः | २५२ | अन्यच्च | २७३ |
| अपिच | " | अपरञ्च | " |
| अन्यच्च | " | गजवाजिक्रियादन्तकल्पनक्रियानिषेधः | " |
| अपरञ्च | २६३ | नवदोलधारोहणम् | २७४ |
| प्रकारान्तरञ्च | " | खड्गादिधारणम् | " |
| अन्यच्च | " | क्रयविक्रयनक्षत्राणि | " |
| अपिच | २६४ | ऋणप्रयोगनिषेधः | २७५ |
| अपरञ्च | " | नृपदर्शनम् | " |
| जन्मलग्नादिप्रशस्ता | " | नाट्यारम्भः | " |
| शुक्रास्तादिसमये उपनयनादिनिषेधः | २६५ | करग्रहणम् | २७६ |
| ग्रहणे विशेषः | २६८ | वास्तुलक्षणम् | " |
| तथाच | २६९ | वास्तुभूमिर्गवः | २७७ |
| अनध्यायकथनम् | २६० | वास्तुभूमेः पूर्वादिदिक्षुजलाशयकथनम् | " |
| उप नयनकालः | २६२ | पुष्करिण्याारम्भः | २७८ |
| समावर्तनम् | २६४ | पुष्करिण्यादिप्रतिष्ठा | " |
| अग्निग्रहणम् | २६५ | अपिच | २७९ |
| घनुविद्यारम्भः | " | अपरञ्च | " |
| मोक्षदीक्षा (सन्यासग्रहणम्) | २६६ | वृक्षादितोषणम् | " |
| नृपाभिषेकः | २६७ | गृहप्रशस्तवृक्षारोपणम् | २८० |
| नववस्त्रपरिधानम् | " | अपिच | " |
| अन्यच्च | २६८ | अन्यच्च | " |
| प्रकारान्तरञ्च | " | अपरञ्च | २८१ |
| अपरञ्च | " | वास्तुभूम्यनारोपणवृक्षकथनम् | " |
| नववस्त्रक्षारसयोगनिषेधः | २६९ | गृहारम्भः | " |
| अन्यच्च | " | गृहारम्भेनिषिद्धानिषिद्धमासादिभ्यः | २८२ |
| रत्नशंखादिधारणम् | " | नक्षत्रशुद्धजावासगृहनिर्णयः | २८५ |
| अन्यच्च | २७० | नागशुद्धचागृहस्थाननिर्णयः | २८६ |
| अपरञ्च | " | अपिच | " |
| प्रकारान्तरञ्च | " | अन्यच्च | २८७ |
| अपिच | २७१ | नागशीर्षादीगृहकरणफलम् | " |
| नवशय्याद्यपभोगः | " | अपिच | " |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|---|--------|---------------------------------------|--------|
| एकशालादिव्यवस्था | २८८ | गृहारम्भे सूत्रादीनामारोपणस्थानम् ३०० | |
| अपिच | २९ | गृहस्य वामस्य द्वारकरणव्यवस्था.... | २९ |
| अन्यच्च | २९ | गृहारम्भे सूत्रच्छेदादौ दोषः | ३०१ |
| अपरञ्च | २८९ | गृहार्घ्यदानोपस्थापितकुम्भभङ्गेदोषः | २९ |
| प्रकारान्तरञ्च | २९ | सूत्रदाने कुब्जादिदर्शननिषेधः | २९ |
| अपिच | २९ | सूत्रदानकाले हुलहुलादिश्रवणफलम् ३०२ | |
| देवगृहारम्भोविशेषः | २९० | गृहप्रवेशः | २९ |
| अपिच | २९ | अपिच | २९ |
| अन्यच्च | २९ | अन्यच्च | ३०२ |
| अपरञ्च | २९ | अपरञ्च | २९ |
| तृणकाष्ठादिसञ्चयनिषेधः | २९१ | प्रकारान्तरञ्च | २९ |
| अपिच | २९ | गृहप्रवेशविधिः | ३०४ |
| वास्तुग्रहकरणकथनम् | २९ | पाशवतादिपोषणकथनम् | २९ |
| अपिच | २९२ | गृहपार्थेनिषिद्धवृक्षाः | २९ |
| अन्यच्च | २९ | तत्फलम् | ३०६ |
| अपरञ्च | २९ | इति चतुर्थतरङ्गः । | |
| प्रकारान्तरञ्च | २९ | (९) देवताघटनम् | ३०६ |
| अपिच | २९३ | सामान्यदेवताप्रातिष्ठा | ३०६ |
| जायतादिलक्षणम् | २९ | अपिच | २९ |
| वास्तुनक्षत्राणि | २९ | अन्यच्च | २९ |
| वास्तुशाश्वः | २९ | वासुदेवप्रातिष्ठा | ३०७ |
| गृहारम्भे लोकपालादिपूजा | २९४ | हरेःप्रातिष्ठायातिथिविशेषकथनम्.... | २९ |
| गृहारम्भे ब्रह्मादिपूजा | २९ | महेशादिप्रातिष्ठा | ३०८ |
| पूर्वादिचतुर्दिक्षु गृहगन्धध्रुवाः | २९५ | परीक्षाकरणम् | २९ |
| वायव्यादिचतुष्कोणे गृहगन्धध्रुवाः | २९ | अपिच | २९ |
| गृहाणामायकथनम् | २९ | दीक्षाग्रहणम् | ३०९ |
| गृहाणा सामान्यनक्षत्राणि | २९६ | दीक्षायामासकथनम् | २९ |
| गृहाणामायज्ञानमायव्ययफलं च | २९ | दीक्षायाः वारादिकथनम् | ३१० |
| गृहाणा नक्षत्रव्यवस्था.... | २९७ | अपिच | ३१ |
| शुल्कोद्गारादिकथनम् | २९ | तत्रसारोक्तदीक्षाफलकथनम् | ३१३ |
| दिग्विशेषे शुल्यस्थितिनिर्णयः | २९९ | तत्रमासनिर्णयः | २९ |
| अपिच | २९ | अपिच | २९ |
| अन्यच्च | २९ | दीक्षायास्तिथिनिर्णयः | ३१४ |
| गृहारम्भे हस्तप्रमाणम्.... | ३०० | अपिच | ३१५ |
| | | अन्यच्च | २९ |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|---------------------------------|--------|----------------------------------|--------|
| अपरश्च ३१५ | | अन्यञ्च ३२६ | |
| प्रकारान्तरश्च ३१६ | | महाविद्याविषयेविशेषफलकथनम्.... ॥ | |
| दीक्षायाःवारनिर्णयः ॥ | | दशमहाविद्याकथनम् ॥ | |
| दीक्षायाःनक्षत्रनिर्णयः ॥ | | अष्टादशमहाविद्यामाह ३२७ | |
| अपिच ३१७ | | गुरुकृपायादीक्षाकालः ॥ | |
| अपरश्च ॥ | | अपिच ३२८ | |
| दीक्षायाःयोगकथनम् ३१८ | | पुरश्चरणकालः ॥ | |
| दीक्षायाःकरणनिर्णयः ॥ | | अन्यञ्च ३२९ | |
| दीक्षायाःलग्ननिर्णयः ॥ | | अपरश्च ॥ | |
| अपिच ॥ | | प्रकारान्तरश्च ॥ | |
| अपरश्च ३१९ | | अन्यञ्च ३३० | |
| दीक्षायाःपक्षनिर्णयः ॥ | | शान्तिपुष्टिकथनम् ॥ | |
| निपिद्धमासादौतिथिविशेषाणां | | हलप्रवाहः ॥ | |
| प्राशस्त्यमाह ॥ | | अपिच ३३१ | |
| अन्यञ्च ३२० | | अन्यञ्च ॥ | |
| अपिच ॥ | | अपरश्च ॥ | |
| अपरश्च ३२१ | | प्रकारान्तरश्च..... ३३२ | |
| अपिच ॥ | | बीजवपनम् ॥ | |
| अन्यञ्च ३२२ | | अपिच ॥ | |
| अपरश्च ॥ | | अन्यञ्च ३३३ | |
| प्रकारान्तरश्च ॥ | | अपरश्च ॥ | |
| अन्यञ्च ॥ | | प्रकारान्तरश्च ३३४ | |
| अपरश्च ३२३ | | अन्यञ्च ॥ | |
| सूर्यग्रहणेविशेषमाह ॥ | | अपिच ॥ | |
| तारादिविद्याविशेषः ॥ | | अपरश्च ३३५ | |
| अन्यञ्च ३२४ | | प्रकारान्तरश्च ॥ | |
| सूर्यग्रहणसमकालकथनम् ॥ | | अन्यञ्च ॥ | |
| अशोकाष्टम्याविशेषमाह ॥ | | धान्यच्छेदनम् ३३६ | |
| अन्यञ्च ॥ | | अपिच ॥ | |
| अपिच ॥ | | धान्यादिसंस्थापनम् ३३७ | |
| युगाद्यायाविशेषः ३२५ | | धान्यादिविवर्द्धनज्ञानम् ॥ | |
| अकालादौदीक्षानिषेधः ॥ | | धान्यमहाध्याादिकथनम् ॥ | |
| अन्यञ्च ॥ | | अपिच ३३८ | |
| अकालेप्रतिप्रसवमाह ॥ | | अन्यञ्च ॥ | |

| विषय | पृष्ठ. | विषय | पृष्ठ |
|------------------------------|----------|-------------------------------|----------|
| वार्षिकधान्यमूल्यज्ञानम् | ३३८ | तत्रवारफलम् | ३५२ |
| अपिच | ३ | शनिमगलवारयुक्तजन्मनक्षत्रफलम् | .. ३ |
| अन्यञ्च | ३ | दोषशान्तिः | ३५३ |
| गोशालाप्रवेशः | ३३९ | सर्वोपध्यः | ३ |
| गोवाजादिनिषेध. | ३ | इति पञ्चमस्तरङ्गः । | |
| गरामानयनादि | ३४० | (६) यात्राप्रकरणम् | ३५४ |
| वृष्टिज्ञानम् | ३ | भिषिद्धलग्नकथनम् | ३ |
| अहमस्थानेनसद्योवृष्टिज्ञानम् | ३४१ | निषिद्धतिथिकथनम् | ३ |
| नराक्षम् | ३ | अपिच | ३५५ |
| अपिच | ३४२ | शुभाशुमतिथिकथनम् | ३ |
| अन्यञ्च | ३४३ | अपिच | ३ |
| अपरञ्च | ३ | वारादिकथनम् | ३५६ |
| प्रकारान्तरञ्च | ३ | अपिच | ३ |
| अपिच | ३४४ | अन्यञ्च | ३५७ |
| अन्यञ्च | ३ | अपरञ्च | ३ |
| अपरञ्च | ३ | प्रकारान्तरञ्च | ३ |
| पनाप्यनश्राद्धकालकथनम् | ३४६ | दिग्धिपतिरथनम् | ३५८ |
| अपिच | ३ | अपिच | ३ |
| अन्यञ्च | ३ | अन्यञ्च | ३ |
| नवाग्रवारणेनिन्दारथनम् | ३४७ | दिशाशूलकथनम् | ३ |
| अपिच | ३ | प्रकारान्तरञ्च | ३५९ |
| नवाग्रभोजनविधिः | ३४८ | वारवेलाकथनम् | ३ |
| अपिच | ३ | कालादिकथनम् | ३६० |
| अन्यञ्च | ३ | अपिच | ३ |
| अपरञ्च | ३४९ | कालरात्र्यादिकथनम् | ३६१ |
| जन्मदिनकृत्यम् | ३ | अपिच | ३ |
| अपिच | ३६० | तत्फलम् | ३ |
| अन्यञ्च | ३ | वृष्टिज्ञानः | ३६२ |
| अपरञ्च | ३ | यामादौ माहेन्द्रादिदिष्टः | ३ |
| प्रकारान्तरञ्च | ३ | तत्फलम् | ३६३ |
| अन्यञ्च | ३६१ | योगिनीश्यातिकथनम् | ३ |
| जन्मभियोगमदिनेलाभेव्यवस्था | ३ | न्याय्यकालकथनम् | ३ |
| अपिच | ३ | अपिच | ३६४ |
| गणनपथेजन्मतिथिवरम् | ३६२ | अन्यञ्च | ३ |

| विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ |
|-----------------------------|---------|--------------------------------------|-------|
| दक्षिणायनेनिशि सौम्यायने च | | यमघण्टयोगादीनां त्याज्यकाल | ३८१ |
| दिवायात्रा कथनम् | ... ३६४ | विष्टादीनां प्रतिप्रसव | " |
| राहुभ्रमणचक्रम् | ... ३६५ | त्रिपुष्करयोगः | " |
| यात्रिकनक्षत्राणि | ... ३६६ | तत्फलम् | ३८२ |
| अन्यज्ञ | ... " | कालघण्टयोगः | " |
| अपरञ्च | ... " | महादग्धाकथनम् | " |
| निन्दनक्षत्राणि | ... " | दग्धादिकथनम् | ३८३ |
| अपिच | ... ३६७ | अपिच | " |
| नक्षत्राणां दिग्व्यवस्था | ... " | अन्यज्ञ | " |
| नक्षत्रशूलकथनम् | ... ३६८ | अपरञ्च | " |
| अपिच | ... " | देशविशेषे रोगव्यवस्था | ३८४ |
| यात्रायां निषिद्धनक्षत्राणि | ... " | यात्रादिपुक्करणव्यवस्था | " |
| निषिद्धनक्षत्राणां विशेषः | ... ३७० | यात्रायां नक्षत्रत्वरणव्यवस्था | ३८५ |
| अपिच | ... " | निषिद्धलग्नकथनम् | " |
| नक्षत्रामृतयोगकथनम् | ... ३७१ | शुभाशुभलग्नकथनम् | ३८६ |
| अपिच | ... ३७२ | अपिच | ३८७ |
| अमृतयोगप्रशंसा | ... " | अन्यज्ञ | " |
| उत्पातादियोगः | ... ३७३ | अपरञ्च | " |
| क्रकचयोग | ... " | प्रकारान्तरञ्च | ३८८ |
| अन्यज्ञ | ... " | यात्रायां लग्नस्य निषिद्धग्रहनिर्णयः | ३८९ |
| क्रक्यादिप्रतिप्रसवमाह | ... ३७४ | यात्रायां लग्नस्य होराज्ञानम् | ३९० |
| तिथिनक्षत्रयोगे मृत्युयोग | ... " | यात्रायां द्वेष्टाणफलम् | " |
| वारनक्षत्रयोगे मृत्युयोग | ... ३७५ | धरित्रीयोगः | ३९१ |
| आनन्दयोग | ... " | क्षिप्तयोग | ३९२ |
| अमृतसिद्धियोग | ... " | विनासमरणयोग | " |
| प्रशस्तयोगः | ३७६ | विनारणयोग | " |
| यमघण्टयोगः | " | अरिप्रध्वसयोग | ३९३ |
| अमृतयोगः | " | शशिनरेन्द्रयोग | " |
| तिथ्यमृतयोगः | ३७७ | जिगम्रतरणयोग | " |
| अन्यज्ञ | ३७८ | अरिशूलयोग | ३९४ |
| सिद्धियोगः | " | अस्त्रिनतेययोग | " |
| रत्नांशुरयोग | " | अरिषोपाभरणयोग | " |
| पापयोगः | ३७९ | यात्रायां राजयोग | ३९५ |
| विषयोगः | " | यात्रायां राजयोगफलम् | " |
| अपिच | " | घनवृद्धियोग | " |
| क्षिद्धिदग्धापयमघण्टयोगः | " | फलाप्तियोगः | ३९६ |
| | | यात्राजनिर्णययोग | " |
| | | योगोऽतियोगो योगातियोगश्च | " |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|----------------------------------|----------|---------------------------------|----------|
| योगयात्रादीनामवस्था . | ३९७ | स्वप्रदर्शनफलम् | ४१० |
| उपादियोगेयात्रा | " | यात्रासमये वायोः शुभाशुभलक्षणम् | ४११ |
| दिग्विशेषे उपादिनिन्दा . | " | अपिच | " |
| अपिच, उपाकालः, | ३९८ | इति षष्ठस्तरङ्कः । | |
| अभिजित्कथनम्, अन्यज्ञ | ३९९ | (७) नौकाघटनम्, अन्यज्ञ | ४१२ |
| अभिजिह्वनम् | " | घटनस्थानात्रोक्ताचालनम् | ४१३ |
| एकाङ्गीयोगः | " | नौकायात्रा | " |
| सर्वाङ्गीयोगः, तत्फलम् | ४०० | वाणिज्यकरणम् | " |
| घातचन्द्रवर्णनम्, फलम् | ४०१ | कुसीदकरणम् | " |
| अकालवृष्ट्यादीयात्रानिषेधः | " | नक्षत्रविशेषेरोगकथनम् | ४१४ |
| यात्रादिगमनविधिः | " | अपिच | ४१५ |
| अपिच, यात्राविधिः | ४०२ | प्रतीकाराभीमपराक्रमे | ४१६ |
| यात्रानन्तरं निषिद्धानि | " | विरुद्धनक्षत्रादी रोगकथनम् | ४१७ |
| वृष्ट्यात्रायाम् | ४०३ | अन्यज्ञ | " |
| अपिच | " | अपरश्च, अपिच, अन्यज्ञ | ४१८ |
| अन्यज्ञ | ४०४ | अपरश्च | ४१९ |
| यात्रायां मनःशुद्धिप्रशंसा | " | प्रकारान्तरश्च | " |
| अपिच | " | सर्पदंशे नक्षत्रवशेन मरणम् | " |
| यात्रासमयेऽशुभदर्शनम् | ४०५ | अपिच | " |
| अपिच | " | मरणप्रदरोगकथनम्, अपिच | ४२० |
| क्षुत्तनिषेधः | १०६ | रोगस्य शुभाशुभप्रश्नः | " |
| क्षुत्तादिफलम् | " | रोगोपशमनयोगकथनम् | ४२१ |
| अपिच .. | " | प्रश्नेमरणसूचकयोगो | " |
| विष्णोरिषधिकृत्याह | ४०७ | परदेशस्थरोगादिज्ञानम् | " |
| यात्रासमयेपरकीयस्थीयस्त्रीपुरु- | | मनुष्यादीनांपरमायुःप्रमाणम् | ४२२ |
| पयोग्नादनादिनिषेधः | " | अन्यज्ञ | " |
| अपिच | " | अपरश्च, प्रकारान्तरश्च | ४२३ |
| अन्यज्ञ | " | गतायुःपरीक्षा | " |
| अपरश्च | " | औषधकरणम् | ४२४ |
| प्रकारान्तरश्च | ४०८ | औषधमक्षणम् | " |
| अपिच | " | अन्यज्ञ | ४२५ |
| यात्रासमयेऽशुभदर्शनादि | " | अपरश्च | " |
| यात्रासमयेमाहृत्यव्यदर्शनप्रश्न- | | प्रकारान्तरश्च | " |
| मादि शुभफलानि | ४०९ | अपिच | ४२६ |

| विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ |
|--------------------------------------|-------|--------------------------------------|-------|
| वस्तिविरेचनवेध | ४२६ | तत्फलम् | ४४२ |
| आरोग्यस्नानम् | " | नाडीनक्षत्रेषामग्रहसंक्रमणफलम् | ४४३ |
| अन्यञ्च, अपरञ्च | ४२७ | नाडीनक्षत्रेषामग्रहसंक्रमणस्नानम् | " |
| आरोग्यस्नाननिषेध | " | जन्मनक्षत्रेण रविसंक्रान्तिफलम् | ४४४ |
| तैलाभ्यङ्गनिषेध, प्रतिप्रसन | ४२८ | जन्मनक्षत्रेण रविसंक्रान्तिस्नानम् | " |
| अन्यञ्च | " | गोचरेऽशुभखीम्नानम् अपिच, | " |
| साधारणकार्येभ्योरादिव्यवस्था | ४२९ | दिवाभेदसंक्रान्तौ तथा रात्रौ तुल्यसं | |
| अपिच | " | क्रान्तौ फलम् | ४४५ |
| अन्यञ्च | " | शनिभगलधारेमहासंक्रमणफलम् | " |
| अपरञ्च | " | ग्रहणम् चन्द्रग्रहणम् | " |
| रविसंक्रान्तिकथनम्, अन्यञ्च | ४३० | सूर्यग्रहणम् | ४४६ |
| अपरञ्च | " | नवांशविशेषे वर्षणादित्थनम् | " |
| संक्रान्तिक्रम | ४३१ | ग्रहणसमये राहुवर्णफलम् | ४४७ |
| संक्रान्तीनां नक्षत्रघटितमन्दादि | " | ग्रहणदर्शननिषेध, अपिच | ४४८ |
| संज्ञाकथनम् | " | अन्यञ्च, अपरञ्च | ४४९ |
| संक्रान्तीनां पुण्यकाल | ४३२ | प्रकारान्तरञ्च | ४५० |
| तत्रादौ दिनासंक्रमणव्यवस्था | ४३३ | अपिच अन्यञ्च | " |
| रात्रिसंक्रमणे पुण्यकाल-व्यवस्था | ४३४ | अपरञ्च | ४५१ |
| अन्यञ्च | " | ग्रहणगतनाडीनक्षत्रफलम् | " |
| मृगशर्कटयोरर्द्धरात्रिसंक्रमणम् | ४३५ | ग्रहणगतनाडीनक्षत्रदोषोपे | |
| मन्दादिभेदेनैतत्क्रान्तीनां पुण्यकाल | " | शमनस्नानम् | " |
| महाजयाकथनम् | ४३७ | सूर्यग्रहणे विशेष | ४५२ |
| संक्रान्त्यादिपुण्यसंस्कारणफल | " | चन्द्रग्रहणे विशेष | " |
| कथनम् | ४३८ | स्वरास्यादौ ग्रहे रियते ग्रहणफलम् | " |
| विपुत्रादिसंस्कारगणनम् | ४३९ | ग्रहणफलम् | ४५३ |
| तत्रादौ महाविपुत्रव्य | " | ग्रहणदोषप्रतिप्रसनकथनम् | ४५४ |
| तत्फलम् | " | ग्रहणे भोजनव्यवस्था | " |
| जलविपुत्रगणनम्, तत्फलम् | ४४० | अपिच | ४५५ |
| उत्तरायणसंक्रमणगणनम् | " | अन्यञ्च | " |
| तत्फलम् | ४४१ | ग्रहणात्पूर्वभोजननिषेधमाह | " |
| दक्षिणायनसंक्रान्तिगणनम् | " | चन्द्रस्य ग्रस्तोदये विशेषमाह | " |
| तत्फलम् | " | बालवृद्धादुराविषये | ४५६ |
| विष्णुपदीसंस्कारगणनम् | " | ग्रहणादौ स्नानमाह अपरञ्च | " |
| तत्फलम् | ४४२ | राहुदर्शनेन तत्र कथनम् | " |
| पदशतिसंस्कारगणनम् | " | | |

| विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ |
|-----------------------------------|-------|--------------------------------|-------|
| ग्रहणसुस्तिरानम् | ४५७ | चूटामणियोग | ४६९ |
| ग्रहणादीपर्युपितान्ननर्जनम् | " | नारायणीयोग | " |
| वेधग्रहणदर्शनफलम् | " | नारायणीयोगेकृत्य तथा फलम् | " |
| वेधेतरग्रहणदर्शननिषेध | " | अपिच | " |
| हूर्मादिचलनम् | ४५८ | वारुणीकथनम् | ४७० |
| तस्यफलम् | " | महावारुणी | " |
| अन्यच्च | " | ब्रह्मपुत्रस्तानेविशेषयोगकथनम् | ४७१ |
| अपरञ्च | ४५९ | बुधाष्टमीयोग दशहरा | " |
| तत्फलम् | " | अपिच | ४७२ |
| हेमतादीभूकपफलम् | " | अन्यच्च अपरञ्च | " |
| वारफलम् | ४६० | प्रकारान्तरञ्च | ४७३ |
| अम्बुवाचीकाल | ४६१ | महाज्येष्ठयोगकथनम् अन्यच्च | " |
| अपिच | " | अपरञ्च | " |
| अपरञ्च | " | प्रकारान्तरञ्च | ४७४ |
| अन्यच्च | " | अपिच | " |
| अपरञ्च | ४६२ | प्रश्ने धातुमूलजीवज्ञानम् | ४७५ |
| प्रकारान्तरञ्च | " | शुभाशुभप्रश्न | ४७६ |
| अम्बुवाच्यानिपिद्धानिपिद्भवर्माणि | " | लाभालाभप्रश्न | ४७७ |
| अन्यच्च | " | नष्टलमादिप्रश्न | ४७८ |
| अपरञ्च | ४६३ | प्रवासादिज्ञानप्रश्न | ४७९ |
| प्रकारान्तरञ्च | " | अथाशकदिनाहृतद्रव्यादीनाज्ञानम् | ४८० |
| वचनान्तरञ्च | " | पुत्रजन्मादिप्रश्न | ४८१ |
| अम्बुवाचीमाधिवृत्त्याह | ४६४ | त्रिवाहज्ञानप्रश्न | " |
| अथ अपरञ्च | " | प्रश्नेवालादिचिन्ताकथनम् | " |
| प्रकारान्तरञ्च | " | प्रश्नेआत्मसमादिचिन्ताकथनम् | ४८३ |
| शुभाशुभकथनम् | ४६५ | वर्षासमये वृष्टिज्ञानम् | ४८४ |
| अपिच अपरञ्च | " | मरणे त्रिपुष्करदोष | " |
| अक्षया | ४६६ | ग्रन्थान्तरञ्च | ४८५ |
| पुण्यतरा | " | अथफलम् | " |
| मन्त्रन्तरा | " | अन्यच्च | ४८६ |
| सद्वैद्ययोग | ४६७ | तत्फलम् | " |
| वचनान्तरञ्च | " | त्रिपुष्करप्रतिप्रसन्न | " |
| व्यतीपातयोग | ४६८ | त्रिपुष्करदोषशान्ति | " |
| अपिच वचनात्तरेच | " | इति सप्तमस्तरः । | |

नमः श्रीजगदीश्वराय ।

अथ ज्योतिषतत्त्वसुधारणिवः ।

भाषार्थसहितः ।

ग्रन्थारम्भः ।.

तत्रादौ वस्तुनिर्देशात्मकमंगलम् ।

इयामसुन्दरेणाशु गुरोः पदकमलयुगं प्रणतेन मया ।

बौसबरेलीमधिवसता बुधबौकेलालशर्मतनयेन ॥

‘ज्योतिषतत्त्वसुधारणवमेतत्प्रकाटितमल्पधियः सुमुदे ।

नैकज्योतिषाचार्यमतं सुविमृश्य लिखितमिदमस्तु शिवम् ॥

तत्र रघ्याद्युत्पत्तिकथनम् ।

तमस्तोमावृते विश्वे जगदेतच्चराचरम् ।

राशिग्रहोडुसंचातं सृजन्सूर्योभवत्तदा ॥ १ ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—यह विश्व संसार सृष्टिके पूर्वमें घोर अन्धकारमय था, उस समय परम पुरुष भगवान् स्यावरजङ्गमात्मक जगत्में, मेघ, वृष, प्रभृति द्वादश राशि, नव ग्रह

(क) सूर्यात्सृष्टिमाह—तमस्तोमावृतइति । सृष्टे पूर्व विश्वे ससारे तम समूहेनाच्छादिते सति एतच्चराचर स्यात्परजगमात्मक जगत् मेपादिराशीन् नवग्रहान् नक्षत्रसमूहांश्च सृजन् परमपुरुषः सूर्यसंज्ञोऽभवत् । सर्वान् सस्तीति सूर्य इति निपातः । सुवतीति वा पाठः । तथाच सूर्यसिद्धान्ते । “वासुदेवः पर ब्रह्म तन्मूर्तिः पुरुषः परः । स रूपोऽयः सृष्टादौ तासु बीजमवाप्तवान् । तदण्डमभ्यर्द्धेन सर्वमन्तस्तमोवृतम् । तत्रानिरुद्धं प्रथमं व्यक्तीभूतः सनातनः । हिरण्यगर्भो भगवानेव च्छन्दसि पठ्यते । आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते । पर ज्योतिस्तमः पारे सूर्योऽयं सवितेति च । पर्येति भवनान्येष भावधन्यतमावन । सोऽहकारो जगत्सृष्टौ ब्रह्माणमसृजत्प्रभु । ततो देवान् च दत्त्वा सैनैः लोकापितामहः । प्रतिष्ठाप्याशु मध्येऽयं स्वयं पर्येति भावयन् ॥ ” इत्यादि सौरसृष्टिरुक्ता । अत्र च सर्वनामत्वात् विश्व इति पदं कथमिति विरोधे कश्चिद् विश्वे विश्वाभावे प्रलये इति सिद्धान्तयाति तदुक्तम् । नच तत्पुरुषस्योत्तरपदवादेति न्यायेन अविश्वस्मिन्नित्येव भवति । अव्ययीभावसमासेऽपि विश्वाभावस्य तमस्तोमावृतत्वविशेषण न सधत्ते सर्वेषां नाम सर्व-

और ममस्त नक्षत्रोंकी मृष्टि करके 'सूर्यनामसे प्रकाशित होते हुए ॥ १ ॥

अथ मेपादिगणिकथनम् ।

सप्तविंशतिभैर्योतिश्चक्रं स्तिमितवायुगम् ।

तदकांशो भवेद्राशिर्नवर्क्षचरणान्वितः ॥ २ ॥ (ख)

अर्थ—तप्तविंशति (२७) नक्षत्रयुक्त ज्योतिषचक्र निश्चलवायुके ऊपर स्थित है, इस चक्रके द्वादशभागके एक भागमें अर्थात् सवा दो नक्षत्रमें एक एक राशि होती है ॥ २ ॥

मेपवृषमिथुनकर्कटसिंहाः कन्या तुलाथ वृश्चिकभम् ।

धनुरथ मकरः कुम्भो मीन इति चराशयः कथिताः ॥ ३ ॥ (ग)

अर्थ—मेपादि द्वादशराशिके नाम कहते हैं—मेप, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन इन्हींका द्वादशराशिके नाम जानो ॥

अथ राशिपर्यायः ।

राशिनामानि च क्षेत्रं भमृक्षं गृहनाम च ।

मेपादीनाञ्च पर्यायं लोकादेव विचिन्तयेत् ॥ ४ ॥ (घ)

अर्थ—अब राशिके पर्याय कहते हैं—क्षेत्र, ऋक्ष और गृहनाम अर्थात् गृह-पर्याय शब्द मेपादि द्वादशराशिवाचक (क्षेत्र, भ, प्रभृति प्रत्येक शब्दमें ही राशिको जानो) अन्यान्य पर्याय लोकपरम्परासे जाने जाते हैं ॥ ४ ॥

—नाम इति व्युत्पत्त्या प्रत्येकं यदा विश्वशब्देन सर्वशब्दवत्सकलमभिधीयते तदेव सर्वनाम त्वम् । अथ पुनर्विश्वशब्दोऽखण्डेकरूपस्य जगतो वाचकः संज्ञाशब्दत्वात् सर्वनाम इति वदन्ति । तथाच सारावल्याम् “तमसावृते समन्ताज्ज्वलमूते मृतले ततोऽकस्मात् । उदितो भगवान्मानुः प्रकाशयन्प्रभवेन ॥” वृद्धास्तु न विद्यते विश्वं यस्मिन् काल इति कालपद-मवाध्याहार्यमित्याहुः । इति ॥

(रा)—ज्योतिश्चक्रे राशिविभागमाह—सप्तविंशतित्यादि । सप्तविंशतनक्षत्रैर्युक्तं ज्योतिश्चक्रं स्थातुं स्तिमितवायुगं स्तब्धवायोरुपस्थितम् । तथाच सूर्यसिद्धान्ते । “मचक्रं घुवयो-रुर्ध्वमाक्षितं प्रवहानिलेः” इति । तस्य चक्रस्य द्वादशांशो राशिर्भवेत् । किम्भूतः नवमि-नक्षत्रपादेतिहिनं सपादनक्षत्रद्वयात्मकमित्यर्थः । इति ॥

(ग)—राशिनामान्याह—मेपोति । सुगमम् । इति ।

(घ) राशिसंज्ञामाह—राशीति । क्षेत्रादीनि राशीनां मेपादीनां नामानि संज्ञाः स्युः गृह-नाम गृहेश्वरमसपादीनित्यर्थः । मेपादीनान्तु पृथक् पृथक् पर्यायं लोकाज्ज्ञात्वा विचि-न्तयेत् । यथा “मेपस्य आविरादिसादस्याच्छागपर्योपोऽपि” तथाच बहज्जातये—“छाग-तिहरेषेष्ठम्” इति वृषस्य ५ गवादि मिथुनस्य च सुगमादि । इति ॥

अथ मेपाद्रीनां विशेषमंज्ञाः ।

क्रियतावुरिजितुमकुलीरलेयपाथेयूककौर्पाख्याः ।

तौक्षिकआकोकेरोहद्रोगश्चान्त्यभश्चेत्यम् ॥ ५ ॥ (ङ)

अर्थ—अब राशिगणकी विशेषसंज्ञा कही जाती है, यथा—मेपका दूसरा नाम क्रिय, वृषका दूसरा नाम तावुरि, मिथुनका जितुम, कर्कका कुलीर, मिहका लेय, कन्याका पाथेय, तुलाका यूक, वृश्चिकका कौर्प, धनका तौक्षिक, मकरका आकोकेर, कुम्भका हद्रोग और मीनका दूसरा नाम अन्त्यभ है ॥ ५ ॥

अथ कृमौम्यादिविवेकः ।

क्रोऽथ सौम्यः पुरुषोऽङ्गना च ओजोऽथ युग्मं विपमः समश्च ।

चरस्थिरव्यात्मकनामधेया मेपादयोऽमी क्रमशःप्रदिष्टाः ६ (च)

अर्थ—मेप, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ इन छः राशियोंको क्रूर पुरुष ओज और विपम राशि कहते हैं । वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन इन छः राशियोंको सौम्य, अङ्गना युग्म और सम जानो, मेप, कर्क, तुला और मकर इन चारोंको चर राशि कहते हैं वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ इन चारोंको स्थिर राशि कहते हैं और मिथुन, कन्या, धन और मीनको व्यात्मक द्विस्वभाव राशि कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ पुण्यादिविवेकः ।

पुण्यश्च पुष्करश्चैव आधानाख्यस्तथैव च ॥

श्रुत्या वृत्त्या भवन्त्येते नित्यं द्वादशराशयः ॥ ७ ॥

अर्थ—अब मेपादि राशिकी पुण्यादिसंज्ञा कही जाती है, यथा—मेप, कर्क, तुला, और मकर इनकी पुण्य संज्ञा है । वृष, मिह, वृश्चिक और कुम्भ इन कई एक राशियोंकी पुष्करसंज्ञा है । मिथुन, कन्या, धन और मीन इन राशियोंकी आधानसंज्ञा है ॥ ७ ॥

(ङ) व्यवहाराय यथाक्रम विशेषद्वादशसंज्ञा आह—क्रियेति । आकोकेर इति मकरस्य संज्ञा हद्रोगः कुम्भस्य संज्ञा इत्यर्थः । इति ॥

(च) राशीनां क्रूरदिसंज्ञा आह—क्रूर इति । मेपादयो राशयः यथाक्रम क्रूरसौम्यादि-संज्ञकाः प्रथमः क्रूरः द्वितीयः सौम्यः ततस्तृतीयः क्रूरश्चतुर्थः सौम्य इत्यादि । तथा प्रथमः पुरुषः द्वितीया स्त्रीत्यादि । तथा प्रथम ओजः द्वितीयो युग्मः इत्यादि ओजश्चन्द्रोऽथ-मदन्तः । तथाच बृहज्जातके “ओजोर्ध्वं पुरुषांशकेषु बलिभिः” इत्यादि । तत्रैव “युग्मे चन्द्रमासि तयोजमवने” इति । तथा । प्रथमो नियमः द्वितीयः सम इत्यादि । तथा प्रथमश्चरः द्वितीयः स्थिरः तृतीयो व्यात्मक इति । एव कर्कटश्चरः सिंहः स्थिरः कन्या व्यात्मक इत्यादि । द्विच्यत्मकश्चरस्वभावः स्थिरस्वभावश्च तत्र चरसमीपादौ चरः स्थिरसमीपादौ स्थिरमिति । तथाच देवज्ञवज्रभाख्यायाम् “द्वितनौ लग्नोपगते चरस्थिरौजं फलं ददतः” इति ॥

अथ द्विपदचतुष्पदादिराशिकथनम् ।

मिथुनतुलाघटकन्या द्विपदाख्याश्चापपूर्वभागश्च ।

मृगधनुराद्यन्तार्द्धे वृषाजसिंहाश्चतुश्चरणाः ॥ ८ ॥ (छ)

अर्थ—मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनका पूर्वार्द्ध भागको द्विपदराशि कहते हैं मकरका पूर्वार्द्ध, धनका शेषार्द्ध, वृष, मेष और सिंह इनको चतुष्पद राशि कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ कीटसरीसृपराशिकथनम् ।

कर्कटवृश्चिकमीना मकरान्त्यार्द्धश्च कीटसंज्ञाः स्युः ।

वृश्चिकराशिमुनिभिः सरीसृपत्वेन निर्दिष्टः ॥ ९ ॥ (ज)

अर्थ—कर्क, वृश्चिक, मीन और मकरके शेषार्द्धको कीटराशि कहते हैं अधिकतर वृश्चिकराशिको सरीसृप कहा है ॥ ९ ॥

अथ ग्राम्यारण्यराशिकथनम् ।

ग्राम्या मिथुनतुलास्त्रीचापालिपटा निशासु वृषमेषौ ।

मकरादिमार्द्धसिंहौ वन्यौ दिवसेऽजवृषभौ च ॥ १० ॥ (झ)

अर्थ—मिथुन, तुला, कन्या, धन, वृश्चिक और कुम्भ इन छः राशियोंको ग्राम्यराशि कहते हैं और रात्रिमं वृष और मेषको ग्राम्य राशि कहा है मकरके प्रथमार्द्ध और सिंहको वन्यराशि कहते हैं और दिनमं मेष और वृषको वन्य राशि कहा है ॥ १० ॥

अथ जलजराशिकथनम् ।

जलजौ कर्कटमीनौ मकरान्त्यार्द्धश्च शिवमते कुम्भः ।

राशेः स्वरूपमेतन्मार्कण्डेयादिभिः कथितम् ॥ ११ ॥ (भ)

अर्थ—कर्क, मीन और मकरके शेषार्द्धको जलज राशि कहते हैं और शिवके

(छ) राशीनां द्विपदादिविभागमाह—मिथुनेति । मकरस्याद्यार्द्धं धनुषोऽन्त्यार्द्धं वृषाजसिंहाश्चतुष्पदा इत्यर्थः । इति ॥

(ज) कीटसरीसृपसंज्ञामाह—वर्कयेति । मृगमम् । इति ॥

(झ) ग्राम्यारण्यसंज्ञामाह—ग्राम्येति । स्त्री वन्येत्यर्थः । मिथुनतुलाकन्याधनुर्गृश्चिककुम्भा एते ग्राम्याः । निशासु रात्रिषु वृषमेषौ मकरस्याद्यार्द्धं सिंहश्च वन्याः दिवसे तु वृषमेषावारण्यावित्यर्थः । इति ॥

(भ) जलजराशेमाह—जलजराशिति । शिवमत इत्यनेनेकस्य सम्मत्यान्वेषां सर्वेषामसम्मतत्वं प्रतिपादितम् । इति ॥

मतसे कुम्भकोभी जलज राशि कहा है । मार्कण्डेयप्रभृति ऋषियोंने कर्तृक-
राशिके स्वरूपको इस प्रकारसे कीर्त्तन किया ॥ ११ ॥

अथ बलज्ञानम् ।

• दिवा स्याद्विपदो राशिर्बली नक्तं चतुष्पदः ।

सन्ध्यायां कीटसंयुक्ता बलवन्तो जलोद्भवाः ॥ १२ ॥ (ट)

अर्थ-दिनमें द्विपद अर्थात् मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनका पूर्वाह्न
यह सब राशि बलवान् होती हैं, रात्रिमें चतुष्पद अर्थात् मकरका पूर्वाह्न, धनका
शेषार्द्ध, वृष, मेष और सिंह यह बलवान् होती हैं, सायंकालमें कीट अर्थात् कर्क,
वृश्चिक, मीन और मकरका शेषार्द्ध बलवान् होती हैं ॥ १२ ॥

अन्यत्र ।

गोजाश्विकर्कमिथुनाः समृगा निशाख्याः

पृष्ठोदयाविमिथुनाः कथितास्त एव ।

शीघ्रोदया दिनवलाश्च भवन्ति शेषा

लग्ने समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्मम् ॥ १३ ॥ (ठ)

इति पृष्ठोदयादिविवेकः ।

अर्थ-वृष, मेष, धन, कर्क, मिथुन और मकर यह छः राशि रात्रिमें बलवान्

(ट) राशीनां कालबलमाह-दीपिकायाम् । “ दिनभागे मनुष्यास्तु निशायास्तु
चतुष्पदाः । सन्ध्याद्वेदेऽथशेषास्तु बलिनः परिकीर्त्तिताः ” ॥ अस्य व्याख्या । राशीनां
कालबलमाह-दिनभाग इति । दिनभागे दिवाभागे इत्यर्थः । अत्राविषादमात्रं बलमिति ।
एतान्युक्तानि सर्वबलानि राशीनां लग्नस्य च कर्तव्यानि इति ।

(ठ) राशीनां दिग्बलमाह-दीपिकायाम् “ नरास्तु बलिनो लग्ने चतुर्थे जलराशयः ।
सप्तमे वृश्चिकश्चैव दशमे पशवस्त्वया ॥ ” अस्य व्याख्या । राशीनां दिग्बलमाह-
नरास्त्विति । लग्नगता मिथुनतुलाघटकन्याधनुःपूर्वाह्णा नराशयः पूर्वदिग्बलिनः यतो
राशीनामुदयो लग्नमुदयश्च पूर्व एव भवति । लग्नाच्चतुर्थस्या मीनकर्कटमकरपगाह्णा
जलराशयः उत्तरदिग्बलिनः यस्माच्चलग्नमणक्रमेण लग्नाच्चतुर्थराशिरेव उत्तरे तिष्ठति
सप्तमस्यो वृश्चिकराशिः पश्चिमदिग्बली यतो लग्नात् सप्तमराशिरस्त्वमेति अस्त्येवश्च पश्चि-
मदिग्बलेति लग्नाद्दशमस्याः पशुराशयो मेषपशुसिंहधनुःपराहर्मकरपूर्वाह्णा दक्षिणदिग्बलिनः
यतो लग्नाद्दशमराशिरेव दक्षिणदिशि तिष्ठति एतेन स्वराशेयस्वकीयसप्तमस्या नरजलादि-
राशयोऽबला नरा लग्नसप्तमे बलहीनाः जलजा लग्नदशमे बलहीनाः चतुष्पदा लग्नाच्चतुर्थे
बलहीनाः लग्नगतश्च वृश्चिको बलहीन इति । एतेषां नरादीनामन्यत्र गतानामनुपातविधिना
बलान्यानेनव्यानीति । तेनचलग्नगतानां जलजपशुराशीनामर्द्धबलमिति प्रथेजनम् । तथाच-

होती हैं और मिथुनको छोड़कर इन समस्त राशियोंकी पृष्ठादयसंज्ञा है । उक्त-
राशिभिन्न और समस्तराशियोंकी त्रीर्षादयसंज्ञा है और दिनमें बलशाली होती
है । किन्तु मीनराशि दिन क्या रात्रि सब समयमेंही समबलशाली है ॥ १३ ॥

अथ राशीनां स्थानबलम् ।

केन्द्रस्थानप्रबलात्राशीन्मध्यान्पणफराश्रितान् ।

आपोऽहिमगतान्गार्गिः सर्वाह्नीनबलान्वदेत् ॥ १४ ॥ (ङ)

अर्थ—अथ स्थानबल कीर्तन करते हैं । केन्द्रस्थानमें स्थित समस्त राशि बल-
वान् होती हैं, इसी प्रकार पणफरस्थानमें स्थित राशिगण मध्यबली होती हैं
और आपोऽहिम स्थानमें स्थित समस्त राशि हीनबल होजाती हैं, इस प्रकार
गर्गमुनिने कहा है ॥ १४ ॥

अथ बलाबलविभागः ।

यस्तु यस्यांशो राशेस्तद्गलादंशको बली ।

अवलस्तस्य दौर्बल्ये मध्यमे मध्यमः स्मृतः ॥ १५ ॥ (ङ)

अर्थ—जिस राशिके जो ग्रह नवांशाधिपति हों उनके बलानुसारही नवांश-

—श्रीपतिमट्टः । “नृमे क्षिपेच्चरूपक चतुष्पदादयोर्दल न कीलमे तु किञ्चन स्फुट भवेत्तनो-
र्बलम्” जलजचतुष्पदकीटभसंज्ञाः सुखदशमास्तगता बलवन्तः निजनिजसप्तमगा विबलास्ते
तवितरगैस्तुपाताविधिः स्यात् । यथा यात्राचूडादिमङ्गलकर्मणि बलवत्तया एते राशयः प्रशस्ताः ।
तथा एतेषां बलवत्तया भागफलाधिकत्वञ्च तथा राशिशीलाध्याये यस्मोक्त द्वादश राशि-
स्यग्रहाणां फल तदेतेषां बलवत्तया संपूर्ण स्यात् । तथाच बृहज्जातके “ बलवति राशौ
तदधिपती स्वचलमुतः स्यादादि तु हिमांशुः । कथितफलानामविकलदाता शशिवदतोऽन्येऽ-
प्यनुपरिकल्प्याः ” इत्यादिप्रयोजनमूह्यम् । कश्चित्तु एतेषां बलवत्तया लग्नमात्रस्य बल-
वत्त्वमिति वदति । तत्र । नह्यन्यस्य बलेनान्यस्य बलवत्त्व स्यात् अन्यकर्तुर्नभिप्रायाच्च ।
एव वक्ष्यमाणेष्वपि राशिबलानां प्रयोजनं ज्ञातव्यम् । इति ॥

(ङ) राशीनां स्थानबलमाह—केन्द्रस्थानिति । केन्द्रस्थानाशीन् प्रबलान् प्रकृष्टबलान्
वदेत् । पणफराश्रितान् मध्यबलान् आपोऽहिमस्थान् हीनबलान् वदेत् । अत्र चार्थ-
विभागः केन्द्रेषु सम्पूर्णबलमेव ग्राह्य पणफरेष्वर्द्धबलम् आपोऽहिमेषु पादेकमित्यर्थः । तथा
च श्रीपतिमट्टः । “ वण्टकाद्युपगतेषु नियोच्या रूपकार्द्धधरणा निजवीर्ये ” इति ।
एतत्प्रयोजनन्तु यात्रादिमङ्गलकर्मणि बलवत्तया एते राशयः प्रशस्ताः एषां भागफलस्य
आधिक्यमिति ॥

(ट) अंशबलमाह—यस्त्विति । यस्य रांशेषां नवांशाधिपतिग्रहस्तस्योशपतेर्बलात् सोऽ-
शरोनवांशराशिर्बली तस्याधिपस्य दौर्बल्येऽवलस्तस्य मध्यबले मध्यबलेनवांशराशीः इति ।
प्रयोजनत्वस्य प्रश्नलग्ननवांशयोर्बलबलवशेन नवांशादपि फल वक्तव्यमात्रतयाच बृहज्जातके

राशिभी बलवान् होती है और नवांशपतिके दुर्बल होनेसे राशिभी दुर्बल होती है और नवांशाधिपति ग्रहके मध्यबल होनेसे राशिभी मध्यबलशाली होती है ॥ १५ ॥

अथ पत्यादियोगादिना राशिबलावलकथनम् ।

पतितन्प्रियबुधसौम्योच्चस्थैर्युतर्वाक्षितो बली राशिः ।

स्वल्पबलोऽन्यैर्मित्रैर्मध्यःसर्वायुतेक्षितस्त्वबलः ॥ १६ ॥ (ण)

अर्थ-मेपादि द्वादशराशि अपने २ मालिक हों अपने २ मालिकके मित्र हों अथवा बुध ग्रह वा शुभग्रहगण अथवा किसी उच्चग्रहकी दृष्टि होवे वा युक्त होनेसे राशि बलवान् होती है। इसी प्रकार अपने मालिकके शत्रुग्रह वा नीच ग्रहकी दृष्टि हो अथवा युक्त होनेसे राशि बलहीन होती है, पत्यादियुक्त वा दृष्टि न होनेसे प्रत्येकमें पाद (चौथाई) बल होता है, पत्यादिग्रह और अन्यान्य ग्रहकी दृष्टि हो अथवा युक्त होनेसे मध्यबल होता है शुभग्रहकी दृष्टि होनेसे चतुर्थांशबल होता है । और समस्तग्रहोंकी अदृष्टि हो अथवा अयुक्त होनेसे राशि बलहीन होजाती है ॥ १६ ॥

अथ वेद्यादिस्थानकथनम् ।

वोशिः सूर्याद्वितीयर्क्ष स्वामिदिक्सांज्ञितः प्लवः ।

राशीनामदयो लग्नं होरा राश्यर्द्धलग्नयोः ॥ १७ ॥ (त)

उस राशिके अधिपति ग्रहगणका नाम पुत्र है, मेपादि द्वादश राशिके उदयका नाम लग्न है, राशिका अर्द्ध और लग्नार्द्धको होरा कहते हैं ॥ १७ ॥

अथ पट्टवर्गकथनम् ।

क्षेत्रं होराथ द्रेक्काणो नवांशो द्वादशांशकाः ।

त्रिंशांशकश्च वर्गोऽयं त्र्याद्यैर्यो यस्य तस्य सः ॥ १८ ॥ (थ)

अर्थ—अब पट्टवर्गको कहते हैं—क्षेत्र, होरा, द्रेक्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांशको पट्टवर्ग कहते हैं और वर्गशब्दसे उक्त छःको और इन छःके मध्यमें एक एकको पट्टवर्ग कहते हैं अपने क्षेत्रमें स्थित या अपने होरादिस्थानमें स्थित ग्रहवर्गमें स्थित कहे हैं यदि कोई ग्रह त्रिआदिवर्गमें स्थित होवै तो जीवगणको आत्मसदृश आकृति प्रदानकरता है ॥ १८ ॥

अथ क्षेत्राधिपकथनम् ।

कुजशुक्रबुधेन्द्रर्कसौम्यशुक्रावनीभुवाम् ।

जीवाकिंभानुजेज्यानां क्षेत्राणि स्युरजादयः ॥ १९ ॥ (द)

अर्थ—अब क्षेत्राधिपति कीर्त्तन करते हैं—मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्र, सूर्य, बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, शनि और बृहस्पति इन समस्त ग्रहोंके क्षेत्र (गृह) क्रमानुसार द्वादश राशि हैं, अर्थात् मेपका मालिक मङ्गल, वृषका शुक्र मिथुनका मालिक बुध इत्यादि ॥ १९ ॥

अथ राशीनां ह्रस्वतादिसंज्ञा ।

ह्रस्वास्तिमिगोऽविषटामिथुनधनुःकर्कीमृगमुखाश्च समाः ।

वृश्चिककन्यामृगपतिवाणिजो दीर्घाः समाख्याताः ॥ २० ॥

अर्थ—अब समस्तराशियोंकी ह्रस्वतादिसंज्ञा कही जाती है । मीन, वृष, मेष और कुम्भकी ह्रस्व संज्ञा है, मिथुन, धन, कर्क और मकर इन राशियोंकी सम संज्ञा है वृश्चिक, कन्या, मिठ और तुला इनकी दीर्घसंज्ञा है ॥ २० ॥

प्रयत्नः कथितः । तत्प्लवगो विनिहन्त्यादधिरेण महीपतिः शत्रुन् ॥” कश्चित् प्लवो जल-निर्गमवर्त्तते प्रलपति । लग्नं राश्यादयः । होराशब्दो राश्यर्द्धे लग्ने च वर्त्तत इति ।

(ग) पट्टवर्गमाह—क्षेत्रमिति । क्षेत्रादयः पट्टवर्गसंज्ञकाः । अत्र वर्गशब्देन समुदायः प्रत्येकश्रोण्यते । यस्य ग्रहस्य त्र्याद्यैर्वर्गेषां जातः तस्य ग्रहस्य स पुरुषस्तदाकार इत्यर्थः । ग्रहाकारस्तु बृहज्जातके उक्तः यथा—“मधुपिङ्गलदहू चतुस्त्रतनुः पित्तप्रकृतिः ” इत्यादि । इति ॥

(द) ग्रहाणां गृहाण्याह—ज्ञात ! इज्यो बृहस्पतिः । अन्यत्सुगममिति ॥



अथ राशीनामाधिष्ठातृदेवताकथनम् ।

मत्स्यौ घटौ नृमिथुनं सगदं सर्पिणं
चापी नरोऽश्वजघनो मकरो मृगास्यः ।
तौली शशस्यदहना पुवगा च कन्या

शेषाः (ध) स्वनामसदृशाः सचराश्च (न) सर्वे ॥ २१ ॥ (प)

अर्थ-अब राशिगणके आधिष्ठातृदेवताओंको वर्णन करते हैं-अन्यान्य पुच्छा-
भिपक्त परस्पर गात्र निरीक्षक और रक्तमुख मत्स्यद्वय (श्रेमछलियोंकी) मीन-
राशि है, स्कन्धमें घट धारण किये मनुष्यकी कुम्भराशि है, स्त्री और पुरुषकी
मिथुनराशि है, तिनके बीचमें पुरुष गदाधारी और स्त्री वीणाधारिणी है, अश्व-
कृति जंघा और धनुर्धारी पुरुषकी धनराशि है, मृगके समान मुख होनेसे मकर
राशि है, तुलाधारी मनुष्यकी तुला राशि है, नौकारूढ़ा शस्याग्निहस्ता कुमारीकी
कन्या राशि है, एतद्भिन्न मेपादि जो समस्तराशि हैं उनको स्वनामसदृश जानो
अर्थात् मेप मेपाकृति, घृष घृषाकार, सिंह सिंहाकृति, कर्क कर्कटके समान और
वृश्चिकको वृश्चिकाकृति (विच्छूके समान) जानो ॥ २१ ॥

अन्यथा ।

स्वनामरूपा मेपाद्या मिथुनन्तु नृदम्पती ।
कन्या च पुवगा तौली शस्यामानशिलायुतः ॥ २२ ॥
घटहस्तः पुमान्कुम्भो मीनो मत्स्ययुगः स्मृतः ।
जघनेऽश्वाकृतिर्धन्वी मकरश्च मृगाननः ॥ २३ ॥

पूर्वश्लोकके अनुमादही इसका अर्थ है अतएव पृथक् अनुवाद नहीं करते २२ ॥ २३ ॥

(ध) मेपघृषकर्कटसिंहवृश्चिकाः स्वनामसदृशा इत्यर्थः ।

(न) सचरा इत्यपि पाठः ।

(प) राशीनां देवतारूपरूपमाह-मत्स्यावेति । मीनराशिर्मत्स्यद्वयम् अन्योऽन्यपुच्छा-
भिपक्त रक्तमुखम् अन्योऽन्यसर्पगात्रनिरीक्षकम् । कुम्भः स्कन्धासक्तघटो नरः । नृमिथुनं
स्त्रीपुंसी तत्र पुमान् गदाहस्तः स्त्री वीणाधारिणी धनुः धनधरो नरः अश्वजघनः अघाकृति
जघनः न तु अश्वारूढो जघनः । मकरो मृगमुखः । तुलाराशिः तुलाहस्तः पुरुषः । कन्या
कुमारी शस्याग्निहस्ता प्लवगा नौरा शेषाः मेपघृषसिंहकर्कटवृश्चिकाः नामानुरूपाकाराः ।
सर्वे द्वादशराशयः सचरा यथायोग्यस्थाननिवासीनः अन्योऽन्यपुच्छाभिमुखमिति । मेप-
घृषो दिक्से वारण्यचरो रात्रौ ग्राम्यो मिथुन ग्राम्य कर्कटमीनो जलचरो सिंह वारण्यः कन्या
नौरा तुला पण्यवीथीम्या वृश्चिकः श्वभ्रवासी धनुःकुम्भो ग्राम्यो मकरस्य पृथमागो जल-
चरः प्रयोजनन्तु हननप्रद्रव्यस्य स्थाननिर्णयादि । इति ॥

अथ राशीनां वश्यावश्यकथनम् ।

द्विपदवशगाः सर्वे सिंहं विहाय चतुष्पदाः
सलिलनिलया भक्ष्या वश्याः सरीसृपजातयः ।
मृगपतिवशे तिष्ठन्त्येते विहाय सरीसृपान्
अकथितगृहेषूह्यं वश्यं जनव्यवहारतः ॥ २४ ॥ (फ)

अर्थ—अब राशिगणके वश्यावश्यको कीर्तन करते हैं, यथा—सिंहराशिके भिन्न समस्त चतुष्पदराशि द्विपदराशिके वशमें हैं, अर्थात् मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धन राशिके पूर्वार्द्धके वशीभूत हैं, समस्त जलजराशि द्विपदराशिके भक्ष्य हैं और सरीसृपसंज्ञक राशिको छोड़कर द्विपद और चतुष्पद समस्त राशि सिंहराशिके वशीभूत हैं । अन्यान्य जो समस्तराशियोंका वश्यावश्य नहीं कहा है उनका लोकाचारके अनुसार वश्यावश्य जानना, जैसे वृषके वशीभूत मेष राशि है । इत्यादि ॥ २४ ॥

अथ राशीनां जातिकथनम् ।

मीनकर्कटवृश्चिकविप्राः सिंहमेपधनुःक्षत्रिय उक्तः ।

कुम्भनरद्वययूकविशः स्युः स्त्रीवृषमकराःकथिताः शूद्राः ॥ २५ ॥

अर्थ—अब राशिगणकी जाति वर्णन करते हैं । यथा—मीन कर्क और वृश्चिक ब्राह्मणजाति हैं; सिंह, मेष और धन इनकी क्षत्रियजाति है, कुम्भ, मिथुन और तुला इनकी वैश्यजाति है, कन्या, वृष और मकर इनकी शूद्रजाति है ॥ २५ ॥

अथ मेपादीनां वर्णकथनम् ।

अरुणसितहरितपाटलपाण्डुविचित्राः सितेतरपिशङ्गैः ।

पिङ्गलकर्बुरवभुकमालिना रुचयो यथासंख्यम् ॥ २६ ॥ (ब)

अर्थ—अब मेपादि द्वादशराशिका वर्ण कीर्तन करते हैं । मेषका रक्तवर्ण है

(फ) राशीनां वश्यावश्यमाह—द्विपदेति । द्विपदोऽत्र मनुष्यः सिंहं त्यक्त्वा चतुष्पदा मनुष्यवशगा जलराशयो मनुष्यस्य भक्ष्याः जातिशब्देनात्र प्रकार उच्यते । सरीसृपजातयः सरीसृपप्रकाराः वृश्चिकजलजा वश्याः एतेन जलजानां भक्ष्यत्वं वश्यत्वञ्च दर्शितम् । एते सर्वे द्विपदचतुष्पदाश्च राशयः सरीसृपान् त्यक्त्वा सिंहस्य वशगाः । अत्रापि बहुवचनात् सरीसृपसदृशानां जलजानां ग्रहण एव अकथितग्रहेऽपि लोकाचाराद्वश्यावश्यत्वमुक्तम् । यथा वृषस्य मेषो वश्यः । तथा गृह्यात्रायाम् अस्य श्लोकान्तरमन्यदपि वश्यत्व उक्तं यथा “ ह्यलजसरीसृपाः स्वकानां बलमभिधीत्य विधेयतां भजन्ते । विपमगृहवशे समाप्यसंस्था निशि विपमा वशवाचिनः समानाः ॥ ” इति ।

(ब) राशीनां वर्णमाह—अरुणेति । मेपादिद्वादशराशीनां यथाक्रममरुणादयो वर्णा भवन्ति । अन्यस्तरागस्वरुणः सितः शुकः हरितः शुकवर्णः श्वेतरक्तस्तु पाटलः । पाण्डु-

वृषका शुक्रवर्ण, मिथुनका हरितवर्ण, कर्कका पाटलवर्ण, सिंहका पाण्डुवर्ण, कन्याका विचित्रवर्ण, तुलाका कृष्णवर्ण, वृश्चिकका पिङ्गलवर्ण, धनका पिङ्गलवर्ण, मकरका कर्पूरवर्ण, कुम्भका बभ्रुकवर्ण और मीनका मलिनवर्ण है ॥ २६ ॥

अथ नवग्रहसंज्ञाकथनम् ।

रविः सोमो मङ्गलश्च बुधो जीवः सितः शनिः ।

राहुः केतुश्च कथितो मार्कण्डेयादिभिः पुरा ॥ २७ ॥

अर्थ-सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु यही नौ ग्रह संज्ञक हैं, इस प्रकार मार्कण्डेय प्रभृति मुनिगणने कहा है ॥ २७ ॥

अथ ग्रहाणां विशेषसंज्ञाकथनम् ।

हेलिः सूर्यश्चन्द्रमाः शीतरश्मिः

हेमा विज्ञो बोधनश्चेन्दुपुत्रः ।

आरो वक्रः क्रूरहक्चावनेयः

कालो मन्दः सूर्यपुत्रोऽसितश्च ॥ २८ ॥

जीवोऽङ्गिराः सुरगुरुर्वचसांपतिर्ज्यौ

शुक्रो भृगुर्भृगुसुतः सित आस्फुजिच्च ॥

राहुस्तमोऽगुरसुरश्च शिखी च केतुः

पर्यायमन्यदुपलभ्य वदेच्च लोकात् ॥ २९ ॥ (भ)

अर्थ- अब ग्रहोंकी विशेषसंज्ञा कहते हैं, यथा, सूर्यका दूसरा नाम हेलि है चन्द्रका नाम शीतरश्मि है. बुधके नाम हेमन्, वित्, ज और इन्दुपुत्र है मंगलका नाम आर, वक्र, क्रूरहक् और आवनेय है, शनिका नाम काल, मन्द, सूर्यपुत्र, और असित है, बृहस्पतिका नामान्तर जीव, आङ्गिरा, मुरुगुरु, वचसांपति, और इज्य है. शुक्रके नाम भृगु, भृगुसुत, सित और आस्फुजित् है, राहुका

—श्राल्पशुक्रः विचित्रो नानावर्णः सिनेतरः कृष्णवर्णः बभ्रुपिङ्गलो पिशङ्गी । पिङ्गलश्चाग्निवर्णः स्वर्णवर्णश्चेति केचित् कर्पूरः शबलवर्णः बभ्रुकः कपिलवर्णः 'बभ्रुर्ना कपिले त्रिषु' इत्यमरः । मलिनः कृष्णवर्णः प्रयोजनन्तु हतनष्टद्रव्यस्य वर्णज्ञानादि । इति ॥

(भ) श्लोकद्वयेन ग्रहसंज्ञामाह-हेलिरिति । हेलिः सूर्यस्य संज्ञा हेमन्शब्दो बुधस्य संज्ञा वचसांपतिरित्यथ लोकादन्यदपि पर्याय ज्ञात्वा वदेदिति ॥

नामान्तर तमः, अगु और असुर है और केतुका नाम शिखी है, इनके सिवाय और जो ग्रहगणके नाम हैं, उनको लोकपरम्पराके अनुसार जानो ॥२८॥२९॥

अथ ग्रहाणां जातिकथनम् ।

ब्राह्मणौ शुक्रवागीशौ क्षत्रियौ भौमभास्करो ।

वैश्यश्चन्द्रो बुधः शूद्रो म्लेच्छौ राहुशनैश्वरौ ॥ ३० ॥ (म)

अर्थ—अब ग्रहोंकी जाति वर्णन करते हैं । शुक्र और बृहस्पतिकी ब्राह्मण-जाति है, मंगल और रविकी क्षत्रियजानि है, चन्द्रकी वैश्यजाति है, बुधकी शूद्रजाति है और राहु जनैश्वरकी म्लेच्छजाति है ॥ ३० ॥

अथ ग्रहाणां वर्णकथनम् ।

गौरवर्णो दिनाधीशो गौराश्वन्द्रेज्यभूमिजाः ।

श्यामलौ बुधशुक्रौ च कृष्णौ राहुशनैश्वरौ ॥ ३१ ॥

अर्थ—अब ग्रहोंके वर्ण कीर्तन करते हैं—सूर्यग्रहका गौर वर्ण है, चन्द्र, शुक्र और मंगल इनका भी गौर वर्ण है, इसी प्रकार बुध और शुक्रका श्यामल वर्ण है, राहु और जनैश्वरका कृष्ण वर्ण है और केतुका धूम्रवर्ण है ॥ ३१ ॥

अन्यच्च ।

रक्तश्यामो भास्करो गौर इन्दु-

र्नात्युच्चाद्गो रक्तगौरश्च वक्रः ।

दूर्वाश्यामो ज्ञो गुरुगौरमात्रः

श्यामः शुक्रो भास्करिः कृष्णदेहः ॥ ३२ ॥ (य)

कृष्णवर्णो भवेद्राहुः केतुश्च धूम्रवर्णकः ॥

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, सूर्यका रक्त श्याम वर्ण है, चन्द्रका वर्ण गौर है, मंगलका अनुच्चाद्गौर और रक्त गौर वर्ण है, बुधका दूर्वाश्याम वर्ण है, बृहस्पतिका गौर वर्ण है, शुक्रका श्याम वर्ण है, राहु और जनैश्वरका कृष्ण वर्ण है ॥ ३२ ॥ और केतुका धूम्रवर्ण है ॥

अथ ग्रहाणां धातुकथनम् ।

पित्ते प्रभाकरक्षमाजौ स्लेष्माणौ चन्द्रभार्गवौ ।

(म) “चन्द्रो वैश्ये बुधः शूद्रे पतिर्मन्दोऽन्त्यजेजने ” इतिदीपिकायां । पण्डितस्य पाठः ।

(य) ग्रहाणां वर्णमाह—रक्तश्याम इति । प्रयोजनान्तु धननष्टव्यस्य रूपज्ञानादि इति ।

ज्ञगुरु समधातु च पवनौ राहुमन्दगौ ॥ ३३ ॥

अर्थ-रवि और मङ्गलकी पित्तप्रकृति है, चन्द्र और शुक्रकी श्लेष्मा प्रकृति है बुध और बृहस्पतिकी समधातु प्रकृति है, शनि और राहुकी वायु प्रकृति है ॥ ३३ ॥

मधुपिङ्गलद्वचतुरस्रतनुः पित्तप्रकृतिः सविताल्पकचः ।

तनुभृत्सुतनुर्वहुवातकफः प्राज्ञःशशी मृदुवाक्छुभद्वह् ॥ ३४ ॥

भूमिजस्तरुणमूर्तिरुदारः पैत्तिकः सुचपलः कृशमध्यः ।

श्लिष्टवाक्सततहास्यरुचिर्ज्ञः पित्तमारुतकफप्रकृतिः ॥ ३५ ॥

बृहत्तनुः पिङ्गलमूर्द्धजेषणो बृहस्पतिःश्रेष्ठमतिः कफात्मकः

भृगुस्सुखीकान्तनुःसुलोचनःकफानिलात्सा मितवक्रमूर्द्धजः ३६ ॥

मन्दोऽलसः कपिलद्वक्कृशदीर्घगात्रः

स्थूलद्विजः पुरुषलोमकचोऽनिलात्मा ॥ ३७ ॥

अर्थ-सूर्यग्रहके पिङ्गल नेत्र हैं, चतुष्कोण है पित्तप्रकृति है और अल्पकेशों द्वारा युक्त है । चन्द्रग्रह स्त्रीसंज्ञक है, मृदुभापी, प्राज्ञ है, वातकफाधिक्यप्रकृति है और सुन्दर नेत्र हैं, मंगलग्रहका नवीन अंग है, उदार चित्त है, पित्ताधिक्य शरीर है, चपल है, मध्यक्षीण है, श्लिष्टभापी है और हास्यरस उनके लिये प्रिय है । बुधकी पित्त वायु और श्लेष्मा प्रकृति है, बृहत् शरीर है, पिंगल वर्ण नेत्र हैं और पिंगलवर्ण केशोंको धारण किये हैं । बृहस्पतिकी कफ प्रकृति है, और सुबुद्धिमान् है । शुक्र सुखी है, मनोरम कान्तिविशिष्ट हैं, उनके सुन्दर नेत्र हैं कफवायुप्रकृति है और ईषत् वक्र केशोंको धारण कियेहुए है । शनैश्चर अलसहै, उनके कपिल वर्णके समान नेत्र हैं, कपिलवर्ण केशोंको धारण किएहैं, कृश है, उनका दीर्घ शरीर है, बड़े २ दांत हैं, वायुप्रकृति है, और वह रोम और केशों करके युक्त पुरुष हैं ॥ ३४-३७ ॥

इति धात्वाधिपाः ।

अथ ग्रहाणां सत्त्वादिज्ञानम् ।

चन्द्रार्कजविा ज्ञसितौ कुजार्कौ

यथाक्रमं सत्त्वरजस्तमांसि ॥ ३८ ॥

अर्थ-चन्द्र, रवि और बृहस्पति यह सत्त्वगुणयुक्त हैं, बुध और शुक्र रजो-गुणविशिष्ट हैं मंगल और शनि तमोगुणयुक्त हैं ॥ ३८ ॥

अथ सामादिज्ञानम् ।

साम्नो जीवः सभृगुतनयो दण्डनाथौ कुजाकौ
दानेशेन्दुः शिखियमबुधाः सासुराभेदनाथाः ।
वीयोपेतैरुपचयकरैर्लग्नैः केन्द्रगैर्वा

तद्वत्सिद्धिर्भवति तदहस्पांशुकैर्वापि तेषाम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—कौन ग्रह किस नीतिका मालिक है अब उसको कहते हैं । बृहस्पति और शुक्र सामनीतिके मालिक हैं, मंगल और रवि दण्डनीतिके मालिक हैं, चन्द्र दाननीतिका मालिक है, केतु, शनि, बुध और राहु भेदनीतिके मालिक हैं । बलवान् यह समस्त ग्रह जिस बालकके लग्नमें स्थित उपचयमें स्थित (१) या केन्द्रमें स्थित अथवा नवांशमें स्थित हों तो उसके शरीरमें यह समस्त गुण अधिक होते हैं अर्थात् बृहस्पति या शुक्र लग्नादिमें रहनेसे जातबालक सामगुणविशिष्ट होता है, मंगल और रवि लग्नादि रहनेसे दण्डगुणविशिष्ट होता है ॥ ३९ ॥

अथ नृपादिज्ञानम् ।

रविचन्द्रौ च राजानौ कुजो नेता बुधः शिशुः ।

सचिवौ गुरुशुक्रौ च प्रेय्यौ शनिभुजङ्गमौ ॥ ४० ॥

अर्थ—रवि और चन्द्र राजा हैं, मंगल सेनापति है, बुध राजकुमार है, बृहस्पति और शुक्र गजमन्त्री है, शनि राहु और केतु प्रेय्य हैं ॥ ४० ॥

अथ पुरुषाधिपकथनम् ।

पुंसां सूर्यास्वागीशा योपितां चन्द्रभार्गवौ ।

ह्रीवानां बुधमन्दौ च पतयः परिकीर्त्तिताः ॥ ४१ ॥ (ल)

अर्थ—रवि, मंगल और बृहस्पति पुरुषग्रह हैं, चन्द्र और शुक्र स्त्रीग्रह हैं, बुध और शनिश्चर नपुंसकग्रह हैं ॥ ४१ ॥

अथ वेदाधिपकथनम् ।

ऋग्वेदाधिपतिर्जीवो यजुर्वेदाधिपः सितः ।

सामवेदाधिपो भीमः शशिशोऽथर्ववेदराट् ॥ ४२ ॥ (व)

अर्थ—अब वेदाधिपतिकी कीर्त्तन करते हैं । बृहस्पति ऋग्वेदका अधिपति है,

(१) उपचयसंज्ञा और केन्द्रसंज्ञा यथोचित स्थानमें लिखी गई हैं ।

(२) पुरुषाधिपिषानाह—पुंसांमिति । स्पष्टार्थमिति ।

(५) वेदाधिपानाह—ऋग्वेदेति । स्पष्टार्थमिति ।

शुक्र यजुर्वेदका, मङ्गल सामवेदका और बुध अथर्ववेदका अधिपति (मालिक) है ॥ ४२ ॥

अथ रसाधिपज्ञानम् ।

कटुलवणतिक्तमिश्रो मधुराम्लौ च कपायकोऽर्कतः ।

एते रसाः प्रिया भवन्ति मुखेऽर्काद्या वर्तमानाः सन्तः ॥ ४३ ॥

अर्थ—रविग्रह कटुरसका अधिपति (मालिक) है, इसी प्रकार चन्द्र लवण रसका, मङ्गल तिक्तरसका, बुध मिश्ररसका, बृहस्पति मधुर रसका, शुक्र अम्ल रसका और शनि कषेले रसका मालिक है. इन समस्त ग्रहोंके मध्यमें अङ्ग (श) विभाग करनेसे बालकके जिस स्थानमें जो ग्रह पतित होवै और उस ग्रहको जो रसका प्रिय है, जात बालककेभी वह रस अधिक प्रिय होता है; यथा—रवि मुख स्थानमें रहनेसे कटु वस्तु प्रिय होती है और चन्द्र मुख स्थानमें रहनेसे लवणरस आहारमें अधिक प्रिय होता है ॥ ४३ ॥

अथ दिग्धिपतिकथनम् ।

सूर्यः शुक्रः क्षमापुत्रः सैहिकेयः शनिः शशी ।

सौम्यस्त्रिदशमन्त्री च प्राच्यादिदिग्धीश्वराः ॥ ४४ ॥ (ष)

अर्थ—अब दिशाओंके अधिपतियोंका वर्णन करते हैं—रवि पूर्वदिशाका मालिक है, इसी प्रकार शुक्र अग्निकोणका, मङ्गल दक्षिणका, राहु नैऋत कोणका, शनि पश्चिमका, चन्द्र वायुकोणका, बुध उत्तरका और बृहस्पति ईशानकोणका मालिक है ॥ ४४ ॥

अथ ग्रहाणां मित्रादिकथनम् ।

मित्राणि सूर्याच्छशिभौमजीवाः

सूर्येन्दुजौ सूर्यशशाङ्कजीवाः ।

आदित्यशुक्रौ रविचन्द्रभौमा

बुधार्कजौ चन्द्रजभार्गवौ च ॥ ४५ ॥ (स)

अर्थ—अब ग्रहोंके मित्रगणको वर्णन करते हैं । यथा—रविके मित्र चन्द्र, मंगल और बृहस्पति है. इसी प्रकार चन्द्रका मित्र रवि और बुध है, मंगलका मित्र

(श) मेपादिद्वारा अङ्गविभाग लग्नप्रकरणमें वर्णित है ।

(ष) पूर्वाषाढदिशा पत्नीनाह—सूर्य इति । स्पष्टार्थोभेति ।

(स) ग्रहाणां मित्राण्याह—मित्राणीति । सूर्यात्सूर्यादितः प्रथमाविभक्तिकथितानि यथाक्रमेण मित्राणि स्युः । यथा शशिभौमजीवाः रवेर्मित्रं सूर्यबुधौ चन्द्रस्य सूर्यचन्द्रजीवाः कुजस्य रविशुक्रौ बुधस्य रविचन्द्रकुजाः गुरोः बुधशनी भृशोः बुधशुक्रौ शनिरिति । इति ॥

रवि, चन्द्र और बृहस्पति हैं। बुधका मित्र रवि और शुक्र है । बृहस्पतिके मित्र रवि, चन्द्र और मंगल हैं, शुक्रके मित्र बुध और शनि हैं । शनिके मित्र बुध और शुक्र हैं ॥ ४५ ॥

सितासितौ चन्द्रमसो न कश्चित्

बुधः शशी सौम्यसितौ रवीन्दू ।

रवीन्दुभौमा रवितस्त्वमित्रा

मित्रारिशेषश्च समः प्रदिष्टः ॥ ४६ ॥ (ह)

इति शत्रुसमकथनम् ।

अर्थ—अब ग्रहोंके शत्रु और सम कहे जाते हैं—रविके शत्रु शुक्र और शनैश्चर हैं, चन्द्रका शत्रु कोई नहीं, मंगलका शत्रु बुध है, बुधका शत्रु चन्द्रमा है, बृहस्पतिके शत्रु बुध और शुक्र हैं शुक्रके शत्रु रवि और चन्द्र हैं और शनिके शत्रु रवि चन्द्र और मंगल हैं । मित्र और शत्रुके सिवाय और समस्त ग्रह ग्रहणके सम कहलाते हैं ॥ ४६ ॥

अथ ग्रहाणां समकथनम् ।

सौम्योऽङ्गिराभौमसितासिताश्च

सितासितौ भूसुतसौरिजीवाः ।

सौरिः कुजेज्यौ वचसांपतिश्च

रव्यादितोऽमी समसंज्ञकाः स्युः ॥ ४७ ॥

अर्थ—रविके सम बुध है इसी प्रकार चन्द्रके सम बृहस्पति मंगल, शुक्र और शनि है मंगलके सम शुक्र और शनि हैं, बुधके सम मंगल शनि और बृहस्पति हैं, बृहस्पतिके सम शनि है, शुक्रके सम मङ्गल और बृहस्पति है और शनिके सम बृहस्पति हैं ॥ ४७ ॥

(ह) शत्रूनाह—सितासितावेति । रवितौ रव्यादितः प्रथमाविभक्त्युदिता यथास्वरूपेन अभिजाः शत्रवः स्युः । शत्रुर्षर्पायोऽमित्रशब्दः पुल्लिङ्ग इति । रवेः शुक्रशनी शत्रू चन्द्रस्य न कश्चित् शत्रुः कुजस्य बुधः बुधस्य चन्द्रः शत्रुर्बुधशुक्रौ भूगोस्वीन्दू शने रवीन्दुभौमा इत्यर्थः । मित्रारिणां शेषः समः प्रदिष्टः कथितः । यथा रवेर्बुधः समः इत्यादि । तथाच लघुजातके “शत्रूमन्दासितौ समश्च शशिशो मित्राणि शेषा रवेस्त्रिदशोऽर्द्धिभरश्मिजश्च सुददौ शेषाः समाः शीतगोः । नीवेन्दूमकराः कुजस्य सुददौ शोऽरिः सितार्कौ समौ मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे । शूरोः सौम्यसितावरी राधेसुनो मध्योऽपरे वन्यपा सौम्यार्कौ सुददौ समौ पुन्यगुः शुक्रस्य शेषावरी । शुक्रार्कौ सुददौ समः सुरगुरुर्भन्दस्य चान्येऽरयः तत्काले च दशायवन्धुसहजत्वान्धेषु मित्र स्थितः ॥” इति ॥

अथ तात्कालिकमित्रादिकथनम् ।

चतुर्थदशवित्तान्त्यात्रिलाभस्थाः परस्परम् ।

तत्कालमित्राण्युच्चस्थः कैश्चिदुक्तोऽन्यथा रिपुः ॥ ४८ ॥ (क्ष)

अर्थ—अब ग्रहगणके तात्कालिकमित्र निरूपण करते हैं—यथा रविप्रभृति ग्रह-गणके मध्यमें इनके चतुर्थ, दशम, द्वितीय, द्वादश, तृतीय और एकादश जो ग्रह होवें तो परस्पर उनकी तात्कालिक मित्रता होती है । जैसे कर्कराशिमें यदि रवि होवै तो उसके चतुर्थ तुला, दशम मेष, द्वितीय सिंह, द्वादश मिथुन, तृतीय कन्या और एकादश वृष इन सब राशियोंमें स्थित ग्रहगणकी कर्कस्थानमें स्थित रविके साथ तात्कालिक मित्रता होती है और तुंगस्थानमें स्थित ग्रहकीभी तात्कालिक मित्रता होती है इन सब ग्रहोंके सिवाय अपरापर समस्त ग्रह तात्कालिक शत्रु होते हैं ॥ ४८ ॥

अथ तात्कालिकशत्रुकथनम् ।

जन्मपञ्चाङ्गसप्ताष्टनवमस्थाः परस्परम् ।

तत्कालशत्रवो ज्ञेयास्त्विति ज्योतिर्विदां मतम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—अब ग्रहगणके तात्कालिक शत्रु कर्त्तन करते हैं, यथा—जो ग्रह जिनके प्रथम (एक घरमें) अथवा पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, वा नवम घरमें स्थित हों, उनकी परस्पर तात्कालिक शत्रुता होती है, जैसे कर्कराशिमें स्थित सूर्य प्रथम घर कर्क, पञ्चम घर वृश्चिक, षष्ठ घर धन, सप्तम घर मकर, अष्टम घर कुम्भ और नवम घर मीन इन सब राशियोंमें स्थित ग्रहोंकी कर्कराशिमें स्थित सूर्यके साथ तात्कालिक शत्रुता होती है ज्योतिषशास्त्रके जाननेवाले विद्वानोंने इस प्रकारसे कहा है ४९ ॥

अथाधिमित्रादिकथनम् ।

हितसमरिपुसेज्ञा ये निसर्गे विरुक्ता

अधिहितहितमध्यास्तेऽपि तत्कालमित्रैः ।

(क्ष) तत् कालमित्रमाह—चतुर्थेति । चतुर्थदशमस्थौ द्वितीयद्वादशस्थौ तृतीयैकादश-स्थौ अन्येऽन्यं तत्कालमित्रैः भवतः । कैश्चिदिति बहुवचनेन बहुसम्मतत्वं दर्शितम् । उच्च-स्थः सुतुङ्गस्थो ग्रहः सदैवं मित्रशुक्लम् एतद्-अन्यकारस्य समतम् । अन्यथा अनिमित्तत्वादि-श्लोके उच्चस्थस्य भृगास्तात्कालिकशत्रुगृहस्थत्वेन विभागहानौ सत्यां सम्पूर्ण परमाणुर्न स्यादित्यर्थः । अन्यथा चतुर्थदशमादिव्यतिरिक्तस्थानस्यः शत्रुत्वित्यर्थः । इति ॥

रिपुसमसुहृदाख्या ये निसर्गोपादिष्टा

अधिरिपुरिपुमध्याः शत्रुभिश्चिन्तनीयाः ॥ ५० ॥ (३)

अर्थ—अब अधिमित्रादि कीर्तन करते हैं—ग्रहोंके मध्यमें जो जिसका स्वाभाविक मित्र मम और शत्रु है; वह तात्कालिक मित्र होनेसे क्रमानुसार अधिमित्र, मित्र और सम होजाता है अर्थात् स्वाभाविक मित्र तात्कालिक मित्र होनेसे अधिमित्र स्वाभाविक सम तात्कालिक मित्र होनेसे मित्र, और स्वाभाविक शत्रु तात्कालिक मित्र होनेसे सम होता है और जिनको स्वाभाविक शत्रु सम और मित्र कहा है उनके तात्कालिक शत्रु होनेसे क्रमानुसार अधिशत्रु, शत्रु और सम जाने जाते हैं अर्थात् स्वाभाविक शत्रु तात्कालिक शत्रु होनेसे अधिशत्रु, स्वाभाविक सम तात्कालिक शत्रु होनेसे शत्रु और स्वाभाविक मित्र तात्कालिक शत्रु होनेसे सम होजाते हैं ॥ ५० ॥

अब राहुकेत्वोर्मित्रादि ।

उच्चं नृयुगं घटभं त्रिकोणं कन्यागृहं शुक्रशनी च मित्रे ।

सूर्यः शशाङ्को धरणीसुतश्च राहो रिपुर्विशतिकः परांशः ॥ ५१ ॥

अर्थ—अब राहु और केतुके मित्रादि वर्णन करते हैं यथा—राहुके उच्चस्थानकी मिथुन राशि है, मूलत्रिकोणकी कुम्भ राशि है, क्षेत्रकी कन्या राशि है, शुक्र और शनैश्चर मित्र हैं, सूर्य, चन्द्र और मंगल शत्रु हैं मिथुनके बीसभागका उच्चांश और कुम्भके बीस भागमें त्रिकोणांश होता है ॥ ५१ ॥

सिंहद्विकोणं धनुरुच्चसंज्ञं मीनो गृहं शुक्रशनी विपक्षौ ॥

सूर्यारचन्द्राः सुहृदः समानौ जीवेन्दुजो पट्टशिखिनः परांशाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—केतुका मूलत्रिकोण सिंहराशि है, उच्चस्थानकी धनुराशि है, क्षेत्रकी मीन राशि है, शुक्र और शनि शत्रु हैं, सूर्य, मंगल और चन्द्र मित्र हैं बृहस्पति और बुध समर्हें सिंहका षष्ठभाग त्रिकोणांश और धनुका षष्ठ भाग उच्चांश है ॥ ५२ ॥

(३) अधिमित्रादिव्यवस्थामाह—हितोति । निसर्गे स्वभावे मित्रसमशत्रवो ये उक्तास्ते तत्कालमित्रैर्यथास्वरूपम् अधिमित्रमित्रसमाः स्युः । यो निसर्गसुहृत् तत्कालमित्रत्वे सोऽधिमित्र यः समः स मित्रं यः शत्रुः स समः । एवञ्च निसर्गे ये रिपुसमसुहृद् उक्तास्ते तत्कालशत्रुभिश्चतुर्दशान्द्रिव्यतिरिक्तस्थानस्यैर्यथासंस्थम् अधिशत्रुशत्रुसमाः स्युः । यो निसर्गमित्रः शत्रुः स तत्कालशत्रुत्वे अधिशत्रुः यः समः स शत्रुः यः सुहृत् स सम इत्यर्थः । इति ॥

अथ ग्रहाणां पापसौम्यकथनम् ।

अर्द्धोनेन्द्रकसौराराः पापा ज्ञस्तैर्युतोऽपरे ।

शुभाः पापौ तमःकेतू विष्णुधर्मोत्तरोदितौ ॥ ५३ ॥ (ज)

अर्थ-अर्द्धचन्द्र, सूर्य, शनि, मंगल, पापयुक्त बुध, राहु और केतुको पापग्रह कहते हैं, पूर्णचन्द्र, पापरहित बुध, बृहस्पति और शुक्रको शुभग्रह कहते हैं, विष्णु-धर्मोत्तरग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है ॥ ५३ ॥

अथ ग्रहाणामृतुबलमाह ।

शनिशुक्रकुजेन्दुजगुरवः शिशिरादिषु ।

भवन्ति कालबालिनो ग्रीष्मे सूर्यस्तथैव च ॥ ५४ ॥ (क)

अर्थ-अब ग्रहोंके ऋतुबल कीर्तन करते हैं यथा-शनि, शुक्र, मंगल, चन्द्र, बुध और बृहस्पति यह ग्रह क्रमानुसार शिशिरादि छहों ऋतुओंमें बलवान् होते हैं, अर्थात् शनि शिशिरमें, शुक्र वसन्तमें, मंगल ग्रीष्ममें, चन्द्र वर्षामें, बुध शरत्कालमें और बृहस्पति हेमन्तमें बलवान् होते हैं और सूर्यभी ग्रीष्मकालमें बलवान् होता है किन्तु इन ममस्त ग्रहोंका बल पाद (चौथाई) मात्र होता है ॥ ५४ ॥

अथ चन्द्रबलकथनम् ।

(ख) मासे तु शुक्ला प्रतिपत्प्रवृत्ते पूर्वे शशी मध्यबली दशाह ।

श्रेष्ठा द्वितीयेऽल्पबलस्तृतीये सौम्येस्तु दृष्टो बलवान्सदैव ॥ यवनेश्वरः ॥

इति यवनेश्वरः ॥

अर्थ-शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे शुक्ला दशमीपर्यन्त चन्द्र मध्यबली होता है, शुक्ल पक्षकी एकादशीसे कृष्णपक्षकी पञ्चमतिक चन्द्र पूर्णबली होता है और कृष्ण पक्षकी पष्ठीसे अमावस्यातक अल्पबली होता है; किन्तु शुभग्रहकी दृष्टि होनेसे सर्वदा बलवान् रहता है ॥ ५५ ॥ इति चन्द्रबलकथनम् ।

(ज) ग्रहाणां पापशुभव्यवस्थामाह-अर्द्धोनेन्द्रिति । अर्द्धोनेन्द्रो रविः शनिः कुजश्च पापाः तेः पापैर्युतो शो बुधः पाप इत्यर्थः । एतादितरेऽर्द्धाधिकश्चन्द्रो जीवशुक्रो शुभयुक्तः केवलो वा बुधः शुभः तमःकेतू विष्णुधर्मोत्तरे पापायुक्तौ । अन्येषां मतेन च पापत्वं न च शुभत्वमनयोरित्यर्थः । इति ॥

(क) ऋतुबलमाह-शनीति । शिशिरादिषु षट्सु ऋतुषु यथासंख्यं शन्यादयो बलिनः सूर्यस्तु ग्रीष्मबली एतद्वलं तु एकपादमित्यर्थः । इति ॥

(ख) पक्षबले चन्द्रस्य विशेषमाह-मासे त्विति । शुक्लप्रतिपत्प्रवृत्ते चान्द्रे मासे पूर्व-दशाह शुक्लप्रतिपदादितः शुक्लदशमीपर्यन्त चन्द्रो मध्यबलः । द्वितीये दशाह शुक्लदशम्याः कृष्णपञ्चमापर्यन्त सम्पूर्णबलः । तृतीये दशाह कृष्णपष्ठ्या अमावस्यापर्यन्तमल्पबलः । एतेन शुभवदनुपातविधिः पूर्वोक्तप्रकारेणैवेति चन्द्रस्य तु पक्षबलं यदुच्यते तद्वादिगुणं कार्यम् । तथाच “ द्विप्र मानोरयनजबलं पक्षतीर्थं तयेन्द्रोः ” इति ॥ अत्र च शुभग्रहे दृष्टश्चन्द्रः सर्वदैव बलवानिति ॥

अथ ग्रहाणां बलविशेषकथनम् ।

स्वोच्चे स्थिताः श्रेष्ठबला भवन्ति मूलत्रिकोणे स्वगृहे च मध्याः ।
इष्टेक्षिता मित्रगृहाश्रिता वा वीर्यं कनीयः समुपावहन्ति ॥५६॥ (ग)

अर्थ—ग्रहगण उच्चस्थानमें स्थित होनेसे पूर्णबली होते हैं, मूलत्रिकोणमें रहनेसे त्रिपादबली और अपने गृह (घर) में रहनेसे अर्द्धबली होता है, और स्वग्रहकी दृष्टिसे वा मित्रगृहमें स्थित होनेसे पादबली होजाता है ॥ ५६ ॥

स्वक्षेत्रे च बलं पूर्णं पादोनं मित्रमन्दरे ।

अर्द्धं समगृहे ज्ञेयं पादं शत्रुगृहे स्थिते ॥ ५७ ॥

अर्थ—ग्रहगण अपने घरमें रहनेसे पूर्णबली होते हैं, मित्रगृहमें स्थित होनेसे त्रिपादबली, समगृहमें रहनेसे अर्द्धबली और शत्रुके गृहमें स्थित होनेसे पादबली रहजाते हैं ॥ ५७ ॥

परिपूर्णबलः सूत्रे सुनीचे त्वबलो ग्रहः ।

सूत्रसुनीचयोरन्तर्भागहोरात्फलं वदेत् ॥ ५८ ॥

अर्थ—ग्रह उच्चस्थानमें रहनेसे पूर्णबली होते हैं और नीचस्थानमें रहनेसे बलहीन होजातेहैं, उच्च और नीचस्थानमें स्थित ग्रहोंका बलभाग होरासे जानाजाताहै ५८

स्वक्षेत्रतुङ्गांशसुहृद्गृहस्थः स्वोच्चे विलासी सुहृदा समेतः ॥

जीवेन्दुजौ शत्रुनिरीक्षितौ वा ग्रहः स्वकाले शुभमातनोति ५९ ॥

अर्थ—ग्रहगण अपने स्थानमें स्थित होवे, तुंगस्थानमें स्थित हों मित्रके घरमें

(ग) सामान्येनोक्तानां बलानां विशेषविभागमाह—स्वोच्चे स्थिता इति । उच्चस्या ग्रहाः श्रेष्ठबलिनः सम्पूर्णबलिन इत्यर्थः । किन्तु स्वोच्चपक्षेः सकाशात्प्रतिराशी दशदशपलैर्हानिः । तथा सुनीचराशेः सकाशात्तु दृष्टिश्चानुपतेन ज्ञातव्या मूलत्रिकोणस्थाः स्वगृह इत्युपलक्षणं स्वगृहादिवर्गस्याश्च बलिन इत्यर्थः । सामान्येनोक्तं विशेषस्तव्यं मूलत्रिकोणे पादोनं बलं स्वगृहादिवर्गेष्वर्द्धबलम् । तथाच “ पादोनेत्र बलं त्रिकोणगृहमे स्वर्धे बलश्च त्रयो वस्वंशा द्यधिमित्रमे च चरणौ मित्रे समर्धेऽष्टमः । शत्रुमे भवति पोटशांशकश्चाधिमित्रमवने रदांशकः ” इति । इष्टेक्षिताः शुभदृष्टाः मित्रगृहादिवर्गस्याश्च कनीयोऽल्पबलं वहन्ति । तत्रार्थं विशेषः । यावती शुभदृष्टिस्तस्याश्चतुर्गोशं बलम् । एवञ्च यावती पापदृष्टिश्चतुर्गोशदानिवलं कार्या । तथा च “ सौम्यैर्दृष्टे दृष्टितुर्यांशयुक्तं वीर्यं पापालोभिते ताद्विहीनम् ” इति । तथा मित्रगृहादिवर्गे पादमात्रं बलम् एतदुपलक्षणं समगृहे विषमगृहे च पादः पुद्गलपुंसं गृहेषु मनुस्नान्यमध्यस्थितेषु पादमात्रं बलं शुभयोगेऽपि पादमात्रं बलम् । तथाच “ शुभमाशङ्कमनो राशिशुक्लौ यत्कृतो हि वटपादमृगौ । भृशके रभिरुजेन्द्रकृतिः शतावधेय विररन्ति हि सत्यम् ॥ भान्तमध्यपुराणेषु च पादः स्त्रीपुंसकनरेषु विधेयः । दण्डराष्ट्रपतये नियोप्यारूपार्द्धपरणा निजवीर्यम् ” इति ॥

स्थित हों, या उच्चस्थानमें स्थित हों अथवा मित्रयुक्त हों तो शुभफल प्रदान करते हैं, बृहस्पति और बुध शत्रुकी दृष्टि होनेसेभी शुभफल प्रदान करते हैं ॥ ५९ ॥

गुरुशुक्रौ पूर्णचन्द्रः सुखदाः परिकीर्त्तिताः ।

बुधचन्द्रौ समौ साध्यो शेषाः शत्रव ईरिताः ॥ ६० ॥

अर्थ—बृहस्पति, शुक्र और चन्द्र अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, बुध और चन्द्र सम हैं और मय ग्रह हीनभावापन्न हैं ॥ ६० ॥

मूलत्रिकोणे बाणाब्धी तदर्द्धमाधिमित्रके ।

स्वगृहे स्याद्बलं त्रिंशत्तदर्द्ध मित्रमन्दिरे ॥ ६१ ॥

तदर्द्धं समराशौ स्यात्तदर्द्धं शत्रुमन्दिरे ।

तदर्द्धमधिशत्रौ स्याद्बाह्यं तत्सप्तवर्गजम् ॥ ६२ ॥

अर्थ—मूलत्रिकोणमें ग्रहोंके स्थित होनेसे त्रिपाद बली होतेहैं, अधिमित्रगृहमें स्थित होनेसे त्रिपादका अर्द्धबल रहताहै । अपने गृहमें रहनेसे अर्द्धबल होताहै और मित्रके गृहमें स्थित होनेसे तदर्द्ध (पाद) बल रहताहै समगृहमें रहनेसे पादार्द्ध बल होताहै, शत्रुके घरमें स्थित होनेसे पादपाद बल होताहै और अधिशत्रुके घरमें रहनेसे उसके अर्द्ध बलकी समान बल गृहा जाताहै इसी प्रकार सप्तवर्गज बलको विचारना चाहिये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

युग्मभांशगतौ चन्द्रशुक्रौ बाणेन्दुवर्यिदौ ।

अयुग्मभांशगा अन्ये तावन्त एव वीर्यदाः ॥ ६३ ॥

अर्थ—सम राशिमें स्थित चन्द्र और शुक्र पाद बली होते हैं और विषमराशिमें स्थित अन्य समस्तग्रह भी पादबली होजाते हैं ॥ ६३ ॥

आदिमध्यान्तरामांशैः पुंषण्ढघ्नीग्रहा अपि ।

केन्द्रादिस्थग्रहस्यौजः पण्डित्तिथिक्रमात् ॥ ६४ ॥

अर्थ—राशिको तीन भाग करके प्रथम द्वादशभागमें पुंषण्ढ (सूर्य, मङ्गल और बृहस्पति) पूर्णबली होतेहैं, मध्यद्वादशभागमें पण्डग्रह (बुध और शनि) अर्द्धबली और शेष द्वादशभागमें स्त्रीग्रह (चन्द्र और शुक्र) पादबली होतेहैं, केन्द्रादिस्थानमें स्थित ग्रहोंकोभी इसी प्रकारसे जानो ॥ ६४ ॥

अथ मूलत्रिकोणकथनम् ।

सिंहो वृषश्च मेषश्च कन्या घन्वी घटो घटः ।

अर्कादीनां त्रिकोणानि मूलानि राशयः क्रमात् ॥ ६५ ॥ (घ)

अर्थ—अब सूर्यप्रभृतिके मूलत्रिकोणको कहते हैं । सूर्यकी सिंहराशि, चन्द्रकी वृषराशि, मङ्गलकी मेषराशि, बुधकी कन्याराशि, वृहस्पतिकी धनराशि, शुक्रकी तुलाराशि और अनैश्वरकी कुम्भराशिको मूलत्रिकोण कहा है ॥ ६५ ॥

अन्यच्च ।

सिंहवृषाजप्रमदाकार्मुकभृत्तौलिकुम्भधराः ।

सूर्यादीनां मूलत्रिकोणभवानन्यतुक्रमशः ॥ ६६ ॥

अर्थ—सिंह, वृष, मेष, कन्या, धन, तुला और कुम्भराशिको क्रमानुसार सूर्यादिसप्तग्रहोंके मूलत्रिकोण कहते हैं ॥ ६६ ॥

अथ मूलत्रिकोणांशकथनम् ।

रविभौमजीवभार्गवशनैश्वराणां त्रिकोणभागाः स्युः ।

नखरविदित्तिथिनखरा ज्येष्ठोर्दिग्भांशकाः सूचात् ॥ ६७ ॥ (ङ)

अर्थ—सूर्यादि सप्तग्रहके सिंहदि सप्तराशि मूलत्रिकोण होनेसेभी सिंहराशिके बीस अंश सूर्यके, मेष राशिके १९ अंश मंगलके, धन राशिके दश अंश वृहस्पतिके, तुलाराशिके पन्द्रह अंश शुक्रके, और कुम्भराशिके बीस अंश अनैश्वरके मूलत्रिकोणाग्र हैं, बुध और चन्द्रके मूलत्रिकोणांगमें इतनाही विशेष है कि बुधके स्योबांशके बाद दश अंश और चन्द्रके सूत्रांगके बाद सत्ताईस अंश मूलत्रिकोणाग्र है ॥ ६७ ॥

(घ) यथाक्रम सूर्यादीनां मूलत्रिकोणस्थानान्याह—सिंहेति । स्पष्टार्थमिति ।

(ङ) अश्विभागमाह—रवीति । यथाक्रम रव्यादीनां नखादयो मूलत्रिकोणांशः स्युः । बुधचन्द्रयोः पुनः सूचात् परमोच्चात् यथासंख्य दशांशः सप्तार्धशतिरशश्च मूलत्रिकोणभागाः यथा स्वेः सिंहे विशत्यंशः मूलत्रिकोणभागाः चन्द्रस्य वृषे प्रथमभागत्रयाद्ध्वं सप्तविंशतिभागपर्यन्तं कुजस्य मेषे द्वादशांशः बुधस्य कन्यायां पञ्चदशांशाद्ध्वं पञ्चविंशत्यंशपर्यन्तम् । गुरोर्धनुषि दशांशः शुक्रस्य तुलायां पञ्चदशांशः शनैः कुम्भे विंशत्यंश इति । अत्र च सौमरिः सिंहे विशत्यंश मूलत्रिकोण ततः परदशांश एव स्पष्टहाणि एवमन्येषामपि प्रलपति तद्वेयम् । नहि सत्रायां सत्रान्तरं व्यध्यते अन्यथा सिंहे विशत्यंशाभ्यन्तरे स्थितस्य रवेः परमायुषो द्विगुणत्वं न स्यात् स्वग्रहत्वाभावात् यदा राश्याधिपत्यमेव ग्रहाणां मुक्तं न तु तदशाधिपत्यं तथा च सर्वत्रैवमेवेन प्रयोगो दृश्यते । यथा बृहज्जातके राशिशीलनिरूपणे ‘ विज्ञान्तः स्थिराः सुगर्वितमना मातुर्विधियोऽर्भकः ’ इत्यनेनार्भकत्वं प्रतिपाद्य समस्तम्यैव सिंहराशेः शीलत्वमुक्तं यथा मूलत्रिकोणांशानां स्वग्रहत्वाभावे साति तेषां पञ्चगंगा न स्यात् । अधिप्राभावेन क्षेत्रगर्भाभावादिति ॥

अथ तुंगादिकथनम् ।

सूर्यादुच्चात्क्रियवृषमृगस्त्रीकुलिरान्त्ययूके
दिग्बह्नीन्द्रयतिथिशरान्सप्तविंशान्श्च विंशान् ।

अंशानेतान्वदाति यवनश्चान्त्यतुङ्गान्सुतुङ्गान्

तानेवांशान्मदनभवनेष्वाह नीचान्मुनीचान् ॥ ६८ ॥ (च)

अर्थ—सूर्यादिग्रहोंके तुंगस्थान कहते हैं, मेपादि सप्त राशिके दशमादि अंशको सूर्यादि सप्तग्रहोंके उच्च और परमोच्च स्थान यवनमुनिने कहा है । दशमादिअंशके शेषांशकोही सुतुंग कहते हैं उसको अब क्रमानुसार कहते हैं. यथा; मेपराशिके दशांशको सूर्यका उच्चस्थान और दशांशके शेषांश (दशमांश) को परमोच्चस्थान कहते हैं, वृषराशिके तनि अंशको चन्द्रका उच्चस्थान और तृतीयांश अर्थात् परमांशको परमोच्चस्थान सूचस्थान कहते हैं । मकरराशिके अठारह अंशको मंगलका उच्चस्थान और अठारह अंशके शेषांशको परमोच्च स्थान कहते हैं । कन्याराशिके पन्द्रह अंशको बुधका उच्चस्थान और पन्द्रह अंशके शेषांशको परमोच्चस्थान कहते हैं कर्कराशिके पांच अंशको बृहस्पतिका उच्चस्थान और पांच अंशके शेषांशको सूचस्थान कहते हैं । मीनराशिके सत्ताईस अंशको शुक्रका उच्चस्थान और सत्ताईस अंशके शेषांशको परमोच्चस्थान कहते हैं, तुलाराशिके बीस अंशको शनिश्चरका उच्चस्थान और बीस अंशके अपरशेषांशको परमोच्चस्थान कहते हैं । मेपादि सप्त राशियोंकी जो सप्तम राशि है उसके दशमादि अंशको सूर्यादि सप्त ग्रहके नीच और मुनीचस्थान कहते हैं अर्थात् मेपकी सप्तम तुला राशि है उसके दश अंशको सूर्यका नीचस्थान और दश अंशके अपर शेषांशको मुनीच वा परमनीच स्थान कहते हैं वृषराशिके सप्तम वृश्चिक राशि है उसके तीन अंशको चन्द्रका नीचस्थान और तीन अंशके अपर शेषांशको मुनीचस्थान कहते हैं

(च) उच्चनीचानाह—सूर्यादिति । क्रियादिराशिषु यथासंख्यं दिग्व्यशान् । यवनान्-
व्यार्थः सूर्यादीनामुच्चान् उच्चसप्तमन् वदति अन्त्यतुङ्गाश्च सुतुङ्गान् वदति । तुङ्गाशानां
मध्ये योऽन्त्योऽंशः स तुङ्ग इत्यर्थः । एतदुक्तं भवति रेमेपराशौ दशांशा उच्चाः दश-
मांशाः परमोच्चः चन्द्रस्य त्रये त्रयोऽंशाः उच्चाः तृतीयोऽंशः सूचः मङ्गलस्य मकरे इन्द्रिय-
मष्टाविंशतिरंशा उच्चाः अष्टाविंशतिपूर्वोऽंशः सूचः । एवं बुधस्य कन्यायां पञ्चदशांशाः
गुरोः कर्कटे पञ्चांशाः शुक्रस्य मीने सप्तविंशतिरंशाः शनेस्तुलायां विंशत्यंशाः—सर्वेषाम-
न्त्योऽंशः सुतुङ्ग इत्यर्थः । मेपादीनां तुङ्गानां मदनभवने सप्तमस्थाने यथाक्रमं तानेव दिगा-
द्यंशान् सूर्यादीनां नीचान् मुनीचानाह—यथा तुलायां दशांशा रेवतीचा दशमोऽंशः पर-
मनीच इत्यादि । अश्विभागस्तु विंशतिशस्फुटादेव ज्ञातव्य इति ।

हैं मकरराशिके सप्तम कर्क राशि है उसके अट्ठाईस अंशको मंगलका नीचस्थान और अट्ठाईस अंशके अपर शेषांशको परमनीच स्थान कहते हैं कन्याराशिके सप्तम मीन राशि है उसके पन्द्रह अंशको बुधका नीचस्थान और पन्द्रह अंशके अपर शेषांशको सुनीचस्थान कहते हैं कर्कराशिके सप्तम मकर राशि है उसके पांच अंशको बृहस्पतिका नीचस्थान और पांच अंशके अपर शेषांशको सुनीचस्थान कहते हैं । मीनराशिके सप्तम कन्या राशि है उसके सत्ताईस अंशको शुक्रका नीचस्थान और सत्ताईस अंशके अपर शेषांशको सुनीचस्थान कहते हैं तुलाराशिके सप्तम मेषराशि है उसके बीस अंशको शनैश्वरका नीचस्थान और बीस अंशके अपर शेषांशको परमनीच स्थान कहते हैं इस समस्त अंशभागको त्रिंशांश कहलेना चाहिये ॥ ६८ ॥

अन्यच्च ।

मेपो वृपो मृगः कन्या कर्किमीनतुलाधराः ।

भास्करादेर्भवन्युच्चा राशयः क्रमशास्त्वमे ॥ ६९ ॥

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें उच्चसंज्ञा इस प्रकारसे वर्णित है । मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन और तुलाराशिको क्रमानुसार सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्वर आदिका उच्चस्थान कहते हैं ॥ ६९ ॥

त्रिंशद्भागे दिशो रामा अष्टाविंशस्तिथिस्तथा ।

पञ्च वै सप्तविंशच्च विंशतिः सूचसंज्ञकाः ॥ ७० ॥

अर्थ—राशिके तीस अंश करके दशम अंश, तृतीय अंश, अट्ठाईस अंश, पन्द्रह अंश, पांच अंश, सत्ताईस अंश और बीस अंशको सूर्यादि सप्त ग्रहोंके सूच स्थान जानो ॥ ७० ॥

सूचाच्च सप्तमं नीचं प्राग्धद्भागेर्धनिर्दिशेत् ।

उच्चान्तः सूचसंज्ञः स्यान्नीचान्तस्तु सुनीचकः ॥ ७१ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त दशमादि अंशको क्रमानुसार उच्चस्थान और उसके सप्तम राशिको नीच स्थान जानो, और उच्चांशके शेषांशका नाम सूचस्थान और नीचांशके शेषांशको सुनीच स्थान कहते हैं ॥ ७१ ॥

अपरञ्च ।

दशांशके रविर्मेघे त्र्यंशे च चन्द्रमा वृषे ।

अष्टाविंशत्यंशके तु मकरे भूमिनन्दनः ॥ ७२ ॥

बुधः स्त्रियां त्रिंशत्तमि पञ्चांशे कर्कटे गुरुः ।

सप्तविंशत्यंशके तु भृगुर्मनि उदाहृतः ॥ ७३ ॥

विंशत्यंशे शनिर्युके सुतुङ्गस्तुङ्गसंज्ञकः ।

सप्तमे तु पुनः सर्वे सुनीचनीचसंज्ञकाः ॥ ७४ ॥

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें ग्रहोंकी सुतुङ्ग, तुंग, सुनीच और नीचसंज्ञा इस प्रकारसे कही है यथा, सूर्य भेषके दश अंशमें, चन्द्र वृषके तीन अंशमें, मंगल मकरके अट्ठाईस अंशमें, बुध कन्याके पन्द्रह अंशमें, वृहस्पति कर्कके पांच अंशमें, शुक्र मीनके सत्ताईस अंशमें और ज्ञेश्वर तुलाके बीस अंशमें सुतुंग और तुंगसंज्ञक होते हैं और इन समस्त राशियोंके सप्तमस्थानमें कहेहुए अंशोंमें सूर्यादि सप्त ग्रहोंकी सुनीच और नीचसंज्ञा होती है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

अथ ग्रहदृष्टिकथनम् ।

त्रिदशे च त्रिकोणे च चतुरस्रे च सप्तमे ।

पादवृद्ध्या हि सर्वेषां ग्रहाणां दृष्टिरुच्यते ॥ ७५ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—अथ ग्रहोंकी दृष्टि कीर्तन करते हैं । जिस स्थानमें ग्रह स्थित हों उसके तृतीयस्थानमें, दशमस्थानमें, नवमस्थानमें पञ्चमस्थानमें, चतुर्थ स्थानमें, अष्टम स्थानमें और सप्तम स्थानमें क्रमानुसार एक २ पादवृद्धिसे दृष्टि होती है ॥ ७५ ॥

पादद्विष्टिदशके अर्द्धद्विष्टिकोणके ।

पादोना चतुरस्रे स्यात्पूर्णद्विष्टिश्च सप्तमे ॥ ७६ ॥

इति ज्योतिषसारे ।

अर्थ—ज्योतिषसारमें लिखा है कि, तृतीय और दशम स्थानमें ग्रहोंकी पाद (चौथाई) द्विष्टि होती है । पञ्चम और नवम स्थानमें अर्द्धद्विष्टि, चतुर्थ और अष्टम स्थानमें त्रिपादद्विष्टि और मप्रमस्थानमें ग्रहोंकी पूर्ण द्विष्टि होती है ॥ ७६ ॥

तृतीये दशमे चैव पादद्विष्टिरुदाहृता ।

अर्द्धद्विष्टिश्च नवमे पञ्चमे परिकीर्तिता ॥ ७७ ॥

चतुर्थे चाष्टमे चैव पादोना परिकीर्तिता ।

सप्तमे परिपूर्णा च फटमेव प्रकल्पयेत् ॥ ७८ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—साधारणग्रहोंकी तृतीय और दशम स्थानमें एकपादद्विष्टि होती है, नवम और पञ्चम स्थानमें अर्द्धद्विष्टि होती है, चतुर्थ और अष्टम स्थानमें त्रिपाद द्विष्टि होती है और सप्तम स्थानमें ग्रहोंकी पूर्ण द्विष्टि होती है, फलाफल इमी प्रकारसे देखना चाहिये ऐसा जातकचन्द्रिकामें लिखा है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

त्रिदशत्रिकोणचतुरस्रसप्तमा-
नवलोकयन्ति चरणाभिवर्द्धिताः ।

रविजामरेज्यरुधिराः परे च ये
क्रमशो भवन्ति किल वीक्षणेऽधिकाः ॥ ७९ ॥ (छ)

इति दार्ष्टिकायाम् ।

अर्थ-तृतीय और दशम स्थानमें नवम और पञ्चम स्थानमें, चतुर्थ और अष्टम स्थानमें और सप्तम स्थानमें एक एक पाद क्रमानुसार वृद्धिमें ग्रहोंकी दृष्टि होती है, किन्तु तृतीय और दशमस्थानमें अनेकशरी पूर्ण दृष्टि होती है, नवम और पञ्चमस्थानमें बृहस्पतिकी पूर्ण दृष्टि होती है, चतुर्थ और अष्टमस्थानमें मंगलकी पूर्ण दृष्टि होती है और सप्तमस्थानमें सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक, शनि, बृहस्पति और मंगलकी भी पूर्ण दृष्टि होती है ॥ ७९ ॥

पादं पश्यति खेचरस्त्रिदशभे पञ्चाङ्गभे तु द्वयं

पादोनं चतुरस्रभे मदगृहे पूर्णं विशेषस्त्वयम् ।

पादे पादचतुष्टयं रविमुतः पादद्वये गीष्पतिः

पादानेऽवनिजः परन्तु परवन्नान्यत्र दृष्टिः क्वचित् ॥ ८० ॥ (ज)

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ-जातकचन्द्रिकामें लिखा है कि, ग्रहोंकी तृतीय और दशमस्थानमें एक पाद दृष्टि होती है इसी प्रकार पञ्चम और नवमस्थानमें अर्द्धदृष्टि चतुर्थ और अष्टमस्थानमें त्रिपाद दृष्टि और सप्तमस्थानमें पूर्ण दृष्टि होती है, किन्तु इनके मध्यमें विशेष यही है कि, तृतीय और दशमस्थानमें शनिकी पूर्ण दृष्टि होती है, पाददृष्टि नहीं होती, पञ्चम और नवमस्थानमें बृहस्पतिकी पूर्ण दृष्टि होती है, अर्द्धदृष्टि नहीं होती । चतुर्थ और अष्टम स्थानमें मंगलकी पूर्णदृष्टि होती है

(छ) ग्रहाणा दृष्टिमाह-त्रिदशेति । अधिष्ठितराशिसंज्ञाशात् त्रिदशो तृतीयदशमौ सर्वे ग्रहाः पादेन चतुर्थमागेनावलोकयन्ति । त्रिकोण नवपञ्चम पादद्वयेन चतुरस्र चतुर्थोऽष्टमौ पादत्रयेन सप्तम राशौ चतुर्भिः पादैस्वलोकयन्ति सर्वे ग्रहाः नान्यानि स्थानानि । तत्रैव विशेषमाह-रविजेति । अमेरुन्यो देवपू-न्यो गुरुस्त्वयः । किल निश्चिन शनिगुरुभोमाः एतदन्ये ग्रहाश्च यथासत्त्रिदशत्रिकोणचतुरस्रसप्तमेषु दर्शनेऽधिकाः अधिकदर्शिनः संपूर्णदर्शिन इत्ययम् । शनिखेदशे सम्पूर्णं पश्यति जीवत्रिकोणे भोमश्चतुरस्रेऽपरे रवि-चन्द्रबुधशुक्राश्चराशत् शनिजीवभोमाः सप्तमे सम्पूर्णं पश्यन्तित्यर्थः । तथाच साराव-स्याम्-“पूर्णं पश्यति रविजस्तृतीयदशम त्रिकोणमपि जीवः । चतुरस्र भूमिस्ततो भृग्वर्क-उपहिमकराः वलत्रञ्च” इति ॥

(ज) “ नवम पञ्चमश्चैव त्रिकोण परिभाषितम् । चतुर्थमष्टमश्चैव चतुरस्र विद्वत्तथाः ॥ ”

त्रिपाद दृष्टि नहीं होती, अन्यान्यस्थानोंमें अपर ग्रहोंकी समान दृष्टि होती है किन्तु उपरोक्त स्थानोंके सिवाय और स्थानोंमें ग्रहोंकी दृष्टि नहीं होती है ॥८०॥

तृतीयदशमावर्कैः पश्यन्पूर्णफलप्रदः ।

त्रिकोणकान्गुरुश्चैव चतुर्थाष्टमगान्कुजः ॥ ८१ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि, शनिश्चरकी तृतीय और दशमस्थानमें दृष्टि होनेसे पूर्ण फल होता है, इसी प्रकार बृहस्पतिकी पञ्चम और नवमस्थानमें दृष्टि होनेसे पूर्ण फल होता है और मंगलकी चतुर्थ और अष्टमस्थानमें दृष्टि होनेसे पूर्णफल होता है ॥ ८१ ॥

अथ ग्रहाणामदृष्टिकथनम् ।

स्वस्थानञ्च द्वितीयञ्च षष्ठमेकादशं तथा ।

द्वादशञ्च न पश्यन्ति शेषान्पश्यन्ति ते ग्रहाः ॥ ८२ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ-जातकचन्द्रिकामें लिखा है कि, जिस २ स्थानमें ग्रहोंकी दृष्टि नहीं होती है उसको कीर्त्तन करते हैं, जिस स्थानमें ग्रह स्थित हों उस स्थानमें और द्वितीय स्थानमें छठे स्थानमें, एकादश स्थानमें और द्वादश स्थानमें ग्रहोंकी कभी भी दृष्टि नहीं होती और अन्य स्थानोंमें पूर्वोक्तके समान दृष्टि होती है ॥८२॥

अथ राहोर्दृष्टिकथनम् ।

सुतमदननवान्त्ये पूर्णदृष्टिः सुरारे-

र्युगलदशमराशौ दृष्टिमात्रत्रयार्हः ।

सहजरिपुचतुर्थेष्वष्टमे चार्द्धदृष्टिः

स्थितिभवनमुपान्त्यं नैव दृश्यं हि राहोः ॥ ८३ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावलीमें राहुकी दृष्टि इस प्रकारसे कही है कि, राहु जिस स्थानमें स्थित हो उसके वामदिक्से पञ्चम, सप्तम, नवम और द्वादश स्थानमें पूर्णदृष्टि होती है, द्वितीय और दशम स्थानमें त्रिपाददृष्टि होती है और तृतीय, षष्ठ चतुर्थ और अष्टम स्थानमें अर्द्धदृष्टि होती है, किन्तु यह जिस स्थानमें होके उस स्थानमें और एकादशस्थानमें राहुकी दृष्टि नहीं होती है ॥ ८३ ॥

अथ नक्षत्रकथनम् ।

अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा ।

मृगशिरास्तथा चार्द्रा पुनर्वसुकपुण्यकौ ॥ ८४ ॥

आश्लेषा च मघा चैव पूर्वाफाल्गुन्युत्तरफाल्गुनी ।

हस्ता चित्रा तथा स्वाती विशाखा चानुराधिका ॥ ८५ ॥

ज्येष्ठा मूला पूर्वाषाढोत्तरा च श्रवणा तथा ।

धनिष्ठा शतभिषा चैव पूर्वाभाद्रपदा तथा ॥ ८६ ॥

उत्तरादिभाद्रपदा रेवती भानि च क्रमात् ॥ ८७ ॥

अर्थ—अब सत्ताईस नक्षत्रोंको कीर्तन करते हैं यथा—आश्विनी, भरणी, कृत्तिका, मोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, (झ) श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा और रेवती इन्हींको सत्ताईस नक्षत्र कहते हैं ॥ ८४-८७ ॥

अथ नक्षत्राधिपकथनम् ।

अश्विपदह्नकमलजशशिशूलभृददितिजीवफाणिपितरः ।

योन्यर्धमदिनकृत्त्वृषपवनशक्राग्निमित्राश्च ॥ ८८ ॥

शक्रो निम्नतिस्तोयंविश्वविरिञ्ची हरिर्वसुर्वरुणः ।

अजपादोऽहिर्बुध्न्यः पूषा चेतीश्वरा भानाम् ॥ ८९ ॥ (अ)

अर्थ—अब नक्षत्रोंके अधिष्ठातृदेवताओंको वर्णन करते हैं यथा—आश्विनीनक्षत्रके स्वामी अश्वि हैं. इसी प्रकार भरणीके यम, कृत्तिकाके अग्नि, मोहिणीके ब्रह्मा, मृगशिराके चन्द्र, आर्द्राके शिव, पुनर्वसुके अदिति, पुष्यके बृहस्पति, आश्लेषाके सर्प, मघाके पितृगण, पूर्वाफाल्गुनीके योनि, उत्तराफाल्गुनीके अर्यमा, हस्तके सूर्य, चित्राके त्वष्ठा, स्वातीके पवन, विशाखाके शक्राग्नि, अनुराधाके मित्र,

(झ) उत्तराषाढाका चतुर्थ चरण और श्रवणके पूर्व चरणकोही अभिजित् कहते हैं

(अ) यथाक्रममग्राविंशतिनक्षत्राणां देवता आह—अस्तीति । अत्र या या यस्य यस्य नक्षत्रस्य देवता उक्ता तस्य तस्य नक्षत्रस्य तत्प्रयोगशब्दो वाचक इत्यर्थः । आश्विन्य आश्विनीकुमारो देवता आश्विनीकुमारपर्यायोऽस्वपर्यायश्च बोद्धव्यः योनिर्भगसंज्ञकदेवता पूर्वाफाल्गुन्या उत्तरफाल्गुन्याः अर्धमेति स्वरूपमात्रं न तु पर्यायःहस्तायास्तु दिनकृत्देवता रविपर्याय, त्वष्टा चित्रायाः, स्वात्याः पवन देवता, शक्राग्निसंज्ञकदेवता विशाखायाः जलदेवता, पूर्वाषाढायाः उत्तराषाढाभिजितोविश्वविरिञ्ची देवते उत्तराषाढाया विश्वदेवसंज्ञक-देवता, अभिजित्नक्षत्रस्य विरिञ्चदेवता विरिञ्चिरिति स्वरूपमात्रं न तु पर्यायः । अजपादोऽ-जेकपाद इत्यर्थः । पूषादेवता ऐश्वर्याः पूषेति स्वरूपमात्रं पूषा देवता अरयोति पौष्णशब्दो रेवतीसप्तकः । एतच्चार्यादयं पितर इत्यन्तमर्द्धं मित्राश्वेत्यन्तमेकार्ष्या अन्यस्याश्च वरुण इत्यन्तमर्द्धमिति ॥

ज्येष्ठाके इन्द्र, मूलके निर्ऋति, पूर्वाषाढके जल, उत्तराषाढके विष्णु, श्रवणके हरि, धनिष्ठाके वसु, शतभिषाके वरुण, पूर्वभाद्रपदाके अजपाद, उत्तरभाद्रपदाके अहिर्बुध्न्य और रेवतीके पूषा हैं ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अथ गणकथनम् ।

उग्रः पूर्वमघान्तका ध्रुवगणस्त्रीण्युत्तराणि स्वभू-
र्वातादित्यहरित्रयं चरगणः पुष्याश्विहस्ता लघुः ।

चित्रामित्रमृगान्त्यभं मृदुगणस्तीक्ष्णोऽहिरुद्रेन्द्रपुरु

मिश्रोऽग्निःसविशाखभःशुभकराःसर्वे स्वकृत्ये गणाः ॥ ९० ॥ ❀

अर्थ-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा और भरणी इन कईएक नक्षत्रोंकी उग्रगणसंज्ञा है । उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपदा और रोहिणी इन नक्षत्रोंकी ध्रुवगणसंज्ञा है । स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा इन समस्त नक्षत्रोंकी चरगण संज्ञा है, पुष्य आश्विनी और हस्त इन नक्षत्रोंकी लघुगण संज्ञा है, । चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती इन नक्षत्रोंकी मृदुगण संज्ञा है । आश्लेषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा और मूल इन नक्षत्रोंकी तीक्ष्ण गणसंज्ञा है कृत्तिका और विशाखा नक्षत्रकी मिश्रगणसंज्ञा है । उक्त समस्त नक्षत्र अपने २ कार्यमें शुभकारक होते हैं ॥ ९० ॥

अथ उग्रनक्षत्रगणकथनम् ।

उग्राणि पूर्वभरणीपित्र्याण्युत्सादनादिसाध्येषु योज्यानि ।

बन्धनविषदहनशस्त्रसंघातादिषु च संसिद्धौ ॥ ९१ ॥ (अ)

अर्थ-अब उग्रगण कीर्त्तन करते हैं-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी और मघा यह कईएक उग्रगण नक्षत्र हैं, इनमें शत्रुउघाटन, बन्धन, विष प्रयोग दहन और अस्त्रघातादि कार्य करनेसे सिद्ध होते हैं ॥ ९१ ॥

अथ ध्रुवनक्षत्रगणकथनम् ।

त्रीण्युत्तरातेभ्यो रोहिण्यश्च ध्रुवाणिभैः कुर्यात् ।

अभिपेकशान्तितरुनगरबीजवापधुवारम्भान् ॥ ९२ ॥ (आ)

अर्थ-उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपदा और रोहिणी इन ध्रुवगण

• सक्षोगादी सान् गणान् कथयानि-उग्र इति । इन्द्रयुगिति इन्द्रद्वयं ज्येष्ठा मूलं चेत्यर्थः । एते सर्वे गणाः वक्ष्यमाणोक्तस्त्रकीयकर्माणि शुभा इत्यर्थः ।

(अ) उग्रनक्षत्राण्याह-उग्राणीति । पूर्वं पूर्वात्रयम् उत्सादनं शस्त्राण्युच्चाटनमिति ।

(आ) ध्रुवनक्षत्राण्याह-त्रीणीति । त्रीण्युत्तराणि रोहिणी च ध्रुवसंज्ञकानितेभ्यः वक्ष्य-

नक्षत्रोंमें अभिषेक, शान्ति, तरु, ध्रुव और बीजवपन कर्म करना चाहिये। कोई २ मनुष्य कहते हैं कि, अधोमुखनक्षत्रविहित विद्यारम्भ, अर्घ्यदान और भूमि-खननादिकर्मभी इसमें करना चाहिये ॥ ९२ ॥

अथ चरनक्षत्रगणकथनम् ।

श्रवणात्रयमादित्यानिलौ च चरकर्मणि हितानि ।

आरामोद्यानानि कर्माणि भवन्ति चरवर्गे ॥ ९३ ॥ (इ)

अर्थ—श्रवण- धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु और स्वाति इन चरगण नक्षत्रोंमें चरकर्म, आराम (उपवन) उद्यान (फलान्वित वन) का आरम्भ करना शुभ है ॥ ९३ ॥

अथ लघुगणकथनम् ।

लघुहस्ताश्विनीपुण्याःपुण्यरतिज्ञानभूषणकलासु ।

शिल्पोपधिपण्येषु च सिद्धिकराणि प्रदिष्टानि ॥ ९४ ॥ (ई)

अर्थ—हस्त अश्विनी और पुष्य इन लघुगण नक्षत्रोंमें पुण्यकर्म, रतिज्ञान, भूषण कला, शिल्पकर्म औपधिक्रिया और पुण्यकर्म, करनेसे शुभफल प्राप्त होता है ॥ ९४ ॥

अथ मृदुगणकथनम् ।

मृदुवर्गस्त्वनुराधाचित्रापौष्णेन्दवानि मित्रार्थे ।

सुरतविधिवस्त्रभूषणमङ्गलगीतेषु च हितानि ॥ ९५ ॥ (उ)

अर्थ—अनुराधा, चित्रा, रेवती और मृगशिर इन मृदुगण नक्षत्रोंमें मित्र, अर्थ सुरतविधि, वस्त्र भूषण और गीतादिकर्म प्रशस्त हैं ॥ ९५ ॥

अथ तीक्ष्णगणकथनम् ।

मूलशुक्रशिवभुजगाधिपानि तीक्ष्णानि तेषु सिध्यन्ति ।

—माणश्लोकोक्तविद्यार्थप्रमिसननकर्मभ्यः शस्तानीत्यर्थः । तेश्चाभिषेकादीनि कुर्यादिति केचित् । केचित्तु तेभ्यः सप्तविंशतिनक्षत्रेभ्यः सकाशात् त्रीण्युत्तराणि रोहिणी च नक्षत्राणि ध्रुवसंज्ञकानीति रोहिण्य इति बहुवचनं ताराबाहुल्यादिति ॥

(इ) चरनक्षत्राण्याह—श्रवणोति । श्रवणादीनि चराणि एतानि चरकर्मण्यास्थिरकर्मणि विहितानि अत्र चरवर्गे आरामोद्यानानां कर्माणि शुभानि भवन्तीत्यर्थः । आरामः पुष्प-प्रधानं वनम् उद्यानन्तु फलप्रधानमिति ॥

(ई) लघुनक्षत्राण्याह—लघ्विति । लघुसंज्ञकहस्ताश्विपुण्याः पुण्यादिषु विहिताः तानि च नक्षत्राणि शिल्पोपधिपण्येष्वपि सिद्धिकराणीत्यर्थः । अश्विनीति कथिदीपित्यापि ह्रस्वः ।

(उ) मृदुनक्षत्राण्याह—मृद्विति । मृगमिति ।

अभिघातमन्त्रवेतालभेदवधबन्धनादिकार्याणि ॥ ९६ ॥ (ऊ)

अर्थ—मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा और आश्लेषा इन तीक्ष्णगण नक्षत्रोंमें अभिघात, मन्त्रकर्म, भूतदानवादिसाधन और वधबन्धनादि कार्यका अनुष्ठान करनेसे सिद्ध होते हैं ॥ ९६ ॥

अथ मृदुतीक्ष्ण (मिश्र) गणकथनम् ।

हौतभुजं सविशाखं मृदुतीक्ष्णं तद्धि मिश्रफलकारि ।

वृषभकुञ्जराणां वाहनदमनानि सेतुश्च ॥ ९७ ॥ (ऋ)

अर्थ—कृत्तिका और विशाखा इन मृदुतीक्ष्ण (मिश्र) गण नक्षत्रोंमें विहित कर्मका मिश्र फल होता है और अश्व, वृष और हस्त्यादिक वाहन दमन और सेतुकर्म प्रशस्त हैं ॥ ९७ ॥

अथाधोमुखगणकथनम् ।

आश्लेषवाह्नियमपिष्यविशाखयुक्तं

पूर्वात्रयं शतभिषा च नवाप्युद्धनि ।

एतान्यधोमुखगणानि शिवानि नित्यं

विद्यार्घ्यभूमिखननेषु च भूषितानि ॥ ९८ ॥ (ऋ)

अर्थ—आश्लेषा, कृत्तिका, मरणी, मघा, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वामाद्रपदा और शतभिषा इन कई एक नक्षत्रोंको अधोमुखगण कहते हैं । विद्यारम्भमें, अर्घ्यदानमें और भूमिखननादि कार्यमें शुभकारक हैं ॥ ९८ ॥

अथोर्ध्वमुखगणकथनम् ।

रोहिण्यार्द्रसतिष्यमूलवसवो ऽप्युत्तरा

एतान्यूर्ध्वमुखानि तानि च नव ज्योतिर्विदो मेनिरे ।

एभिश्चित्रसितातपत्रभवनप्रासादहर्म्यांश्च त्रिष-

(ऊ) तीक्ष्णगणमाह—मूलेति । वेतालो भूतदानवादिसाधनमिति ।

(ऋ) मृदुतीक्ष्णनक्षत्राण्यह—हौतभुजमिति । मृदुतीक्ष्णगणः तत्र मृदुगणविहित-कर्मणि तीक्ष्णगणविहितकर्माणि च मिश्रफलं मध्यफलं करोति तत्र च हयादीनां वाहनदमनानि कार्याणि सेतुश्च कार्यद्रव्यार्थः ।

(ऋ) अधोमुखनक्षत्राण्यह—आश्लेषेति । अधोमुखगणानिति अधोमुखो गणः समुदायो येषां नक्षत्राणाम् इत्यर्थः ।

प्राकाराद्विहारतोरणपुरःप्रारम्भणं शस्यते ॥ ९९ ॥ (लृ)

अर्थ—रोहिणी आर्द्रा, पुष्य, मूल, धनिष्ठा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरा-
षाढा और उत्तरामाद्रपदा इन समस्त नक्षत्रोंको ऊर्ध्वमुखगण ज्योतिर्विद् कहते
हैं। चित्रकर्ममें, श्वेतच्छप्रधारणमें, गृहारम्भमें, राजपुरगमनमें और अष्टालिकार-
म्भमें यह समस्तग्रह प्रशस्त हैं और वृक्षारोपणमें, प्राचीरगठनमें, वणिक् गृहा-
रम्भमें, विहारकर्ममें और विदेशयात्रामें और पुरोगठनमेंभी उक्त नक्षत्रगण
प्रशस्त हैं ॥ ९९ ॥

अथ पार्श्वमुखगणकथनम् ।

मन्त्राखण्डलचन्द्रपाणितुरगाश्वित्रास्तथा स्वातयो
रेवत्योऽथ पुनर्वसुश्च कथितः पार्श्वस्यनामा गणः ॥

एभिर्व्यन्त्ररथादिपोतकरणं वेष्टमप्रवेशोऽपि वा

शस्तोऽयं गजवाजिगर्दभगवां दामे तथा यन्त्रणे ॥ १०० ॥ (लृ)

अर्थ—अनुगधा, ज्येष्ठा, मृगशिर, हस्त, आश्विनी, चित्रा, स्वाति, रेवती और
पुनर्वसु इन समस्त नक्षत्रोंको पार्श्वमुखगण कहते हैं, उक्त नक्षत्रोंमें यन्त्रादि-
करण, रथनिर्माण, नौकागठन और गृहप्रवेश प्रशस्त है और हस्ती, अश्व, गर्दभ,
गोदमन और इलशकटादि योजनकर्म प्रशस्त हैं ॥ १०० ॥

अथ ताराशुद्धिकथनम् ।

तारास्तु जन्मसम्पद्धिपक्षेमपापशुभकष्टाः ।

मित्रांतिमित्रसंज्ञाश्चैताः संज्ञानुरूपफलाः ॥ १०१ ॥ (ए)

अर्थ—अथ ताराशुद्धि कीर्तन करते हैं । जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, पाप,

(लृ) ऊर्ध्वमुखनक्षत्राणाह—रोहिणीति । विप्यः पुष्याः प्रसादो राजगृहं हर्म्यं सौध-
गृहम् अष्टं वणिक्पण्यगृहमिति ।

(लृ) पार्श्वमुखनक्षत्राणाह—भ्रमेति । एभिर्नक्षत्रैर्व्यन्त्ररथादिनौकाकरणं स्यात्सम्प-
प्रवेशः स्यात् अयं पार्श्वमुखगणः गजादीनां दामे प्रथमदमने यन्त्रणे प्रथमशकटादियोजने
च शस्त इत्यर्थः ।

(ए) ताराशुद्धिमाह—तारास्त्विति । जन्मनक्षत्रतद्विराट्पुत्तिपत्रिमाजन्मादयस्ताराः स्युः ।
एतास्तारा नामरूपफलदा इत्यर्थः । अतिमित्रः अत्यन्तमित्रवित्यर्थः । तथाच स्वरोदये ॥
जन्मसम्पद्धिपक्षेमः प्रत्ययिः साधको वधः । मित्रं परममित्रश्च जन्मादीनि पुनः पुनः ॥
अत्र च केचिदतिमित्रतारा न शुभेति प्रलपन्ति तदशुद्धं दृश्यमाणमतीकारकधनाभावात् ।
तथाच । यानाप्रकरणे । “ यात्रायां शोभनास्ताराः समाः कर्मान्ययंयुवाः ” इति लिखित-
स्वगोदपत्रधनात् । तथाच राजमार्तपेठे । “ परमे भ्रमे शुभः प्रतिद्विषिता घृष्टारोगविपुक्षः ”
इति । तथाच तत्रैव ताराफल्ययनम् “ रोगो जन्मस्तु तारकास्तु कथितः कार्यप्रणशोऽन्वि-

शुभ, कष्ट, मित्र और अतिमित्र इन नौ (९) की तारासंज्ञा है. जन्मनक्षत्रसे गणना करके तीनवार सत्ताईस नक्षत्रोंको देखना चाहिये । प्रत्येक मनुष्यकेही जन्म ३ सम्पत् ३ विपत् ३ क्षेम ३ पाप ३ शुभ ३ कष्ट ३ मित्र ३ और अति-मित्र ३ तारा होता है और यह समस्त तारा नामानुरूप फल प्रदान करते हैं अर्थात् जन्म, विपत्, पाप और कष्ट तारा अशुभ फलके देनेवाले हैं और सम्प-दादि तारा शुभ फलके देनेवाले हैं ॥ १०१ ॥

जन्मसम्पद्विपत्क्षेमप्रत्यारिः साधको वधः ।

मित्रं परमामित्रञ्च नवताराः प्रकीर्तिताः ॥ १०२ ॥

ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—ग्रन्थान्तरमेंभी कहाहै कि जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यारि, साधक-वध, मित्र और परमामित्र यह नौ तारासंज्ञक हैं ॥ १०२ ॥

अथ पञ्चमादितारानिर्णयः ।

पापाख्यास्त्रिविधाः पञ्च चतुर्दशविंशतिस्त्रियुताः ।

सिद्धिफला वृद्धिकरी विनाशसंज्ञा क्रमात्कथिताः ॥ १०३ ॥ (ऐ)

अर्थ—पापतारा तीन हैं अर्थात् जन्मनक्षत्रसे पांचों नक्षत्रतक प्रथम, चौदहवाँ नक्षत्र दूसरा और तेईसवें नक्षत्रको तीसरा जानो, इन तीनों ताराके मध्यमें प्रथम पापतारा जन्मनक्षत्रसे पञ्चमतारा सिद्धिफलप्रदान करता है द्वितीय पापतारा वृद्धिप्रदान करता है और तृतीय पापतारा विनाशसाधन करता है ॥ १०३ ॥

अथ जन्मताराफलम् ।

यात्रायां पथि बन्धनं कूपिविधौ सर्वार्थनाशो भवे-

ज्वैपज्ये मरणं तथा सुनियतं दाहो गृहारम्भणे ।

क्षौरे रोगसमागमो बहुविधः श्राद्धेऽर्थनाशस्तथा

वादे बुद्धिविनाशनं त्वरिभयं प्राप्नोत्यसौ जन्मभे ॥ १०४ ॥

अर्थ—अथ जन्मताराका फल कहते हैं जन्मतारामें यात्रा करनेसे मार्गमें बन्धन

—रादारोग्यं द्रविणञ्च वाञ्छितफलावाप्तिः सदा सम्पदि । तारायां विपदो भवन्ति विपदि प्रारब्धकार्ष्ण्यः क्षेमरोग्यधनप्रमोदमुदित क्षेमाभिधानेष्वपि । पञ्चम्यामाचिरान्मनोऽति-तरलं कार्यप्रसिद्धिं प्रति सद्बद्धद्रविणप्रमोदमतुलं प्राप्नोति पष्ठ्याभाति । सप्तम्यामपि कोश-नाशमशुभं नानागदव्याहतिश्चाष्टम्यां धनमानसीख्यविजयान्येव नवम्यामपि ॥ ” इति ।

(ऐ) पापतारायां विशेषमाह—पापाख्या इति । त्रियुता विंशतिस्त्रयोविंशतिरित्यर्थः । तथा च “ सिद्धिदा क्राद्धिदा चैव मृत्युदा च विशेषतः । प्रत्यारिर्नाम तस्तारात्रिप्रकाराः प्रकीर्तिताः ॥ ” इति ॥

होता है इसी प्रकार कृषिकार्य करनेसे अस्यादिका विनाश होता है, औषधिके सेवन करनेसे मृत्यु होती है, गृहारम्भके करनेसे गृहमें दाह होता है, क्षौरकर्म करनेसे रोग होता है श्राद्ध करनेसे अर्थनाश होता है, विवाद करनेसे बुद्धिका नाश होता है और अनुद्वारा भय उपस्थित होता है ॥ १०४ ॥

सर्वमङ्गलकार्याणि त्रिषु जन्मसु कारयेत् ।

विवादश्राद्धभैषज्ययात्राक्षौराणि वर्जयेत् ॥ १०५ ॥

अर्थ—त्रिजन्मतारामें समस्त शुभ कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये केवल विवाद श्राद्ध, औषधसेवन, यात्रा और क्षौरकर्मको वर्जित करै ॥ १०५ ॥

अथ ताराप्रतीकारः ।

विपत्तारे गुडं दद्यान्निधने तिलकाञ्चनम् ।

प्रत्यरौ लवणं दद्याच्छाकं दद्यान्निजन्मनि ॥ १०६ ॥ (ओ)

अर्थ—अब तारादोषके प्रतीकारको कहते हैं। विपत्तारामें गुड दान करना चाहिये। इसी प्रकार वधतारामें तिलोंके साथ काञ्चनदान करै, प्रत्यरि (पाप) तारामें लवणदान करै और जन्मतारामें शाकदान करनेसे अशुभतारा शुभ फल मदान करते हैं ॥ १०६ ॥

अथ दिवसस्य पञ्चदशनक्षत्रमुहूर्त्तकथनम् ।

शिवभुजगमित्रपितृवसुजलविश्वविरिञ्चिपङ्कजप्रभवाः ।

इन्द्राग्नीन्द्रनिशाचरवरुणार्यमयोनयश्चाहि ॥ १०७ ॥ (औ)

अर्थ—अब दिनके पन्द्रह मुहूर्त्तोंके स्वामी नक्षत्र कीर्त्तन करते हैं, दिनमानको पञ्चदश भागमें विभक्त करै उसके एक २ भागका नाम मुहूर्त्त है। प्रथम मुहूर्त्तका स्वामी आर्द्रा नक्षत्र है, इसी प्रकार द्वितीय मुहूर्त्तका स्वामी आश्लेषा नक्षत्र है, तीसरे मुहूर्त्तका अनुराधा, चौथेका मघा, पाँचवेंका धनिष्ठा, छठेका पूर्वाषाढा, सातवेंका उत्तराषाढा, आठवेंका अभिजित्, नववेंका रोहिणी, दशवेंका विशाखा, ग्यारहवेंका ज्येष्ठा, बारहवेंका मूल, तेरहवेंका शतभिषा, चौदहवेंका उत्तराफाल्गुनी और पन्द्रहवें मुहूर्त्तका स्वामी पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र है ॥ १०७ ॥

(ओ) तारादोषप्रतीकारमाह—विपदिति । प्रत्यरिः पापतारा निधन कष्टा तारा तिलकाञ्चनं तिलसहितकाञ्चनमित्यर्थः ।

(औ) दिवसस्य पञ्चदशमुहूर्त्ताधिपनक्षत्राण्यह—शिवेति । पञ्चदशमागीकृतस्य दिवामानस्य यथाक्रमं शिवादीनि नक्षत्राणि अधिपानि विरिञ्चिः अभिजिदिति ।

अथ रात्रेः पञ्चदशनक्षत्रमुहूर्त्तकथनम् ।

रुद्राजाहिर्बुध्न्यपूपाश्विसौरिवाह्निब्रह्मगलौसुराम्बाश्च विष्णुः । (अं)
पुष्या हस्ता त्वष्टाया तथैते रात्रेरुक्ता वै मुहूर्त्ताधिनाथाः ॥ १०८ (अः)

अर्थ-अथ रात्रिके पन्द्रह मुहूर्त्तोंके स्वामी नक्षत्र कहे जाते हैं । रात्रिमानको पन्द्रह भागमें विभक्त करनेसे एक २ भागका नाम मुहूर्त्त होता है । रात्रिके प्रथम (पहिले) मुहूर्त्तका स्वामी आर्द्रा नक्षत्र है इसी प्रकार दूसरे मुहूर्त्तका स्वामी पूर्वाभाद्रपद है, तीसरे मुहूर्त्तका स्वामी उत्तराभाद्रपद, चौथेका रेवती, पाचवेंका अश्विनी, छठेका सौरि कहिये यमदेवताका भरणी, सातवेंका कृत्तिका, आठवेंका रोहिणी, नववेंका मृगशिर, दशवेंका सुराम्बा कहिये अदिति देवताका पुनर्वसु नक्षत्र, ग्यारहवेंका श्रवण, बारहवेंका पुष्य, तेरहवेंका हस्त, चौदहवेंका चित्रा और पन्द्रहवें मुहूर्त्तका स्वामी स्वातिनक्षत्र है ॥ १०८ ॥

अथ नक्षत्रमुहूर्त्तफलम् ।

अह्नः पञ्चदशांशे रात्रेश्चैवं मुहूर्त्त इति संज्ञा ।

नक्षत्रे यद्विहितं तत्कार्यं तन्मुहूर्त्तंऽपि ॥ १०९ ॥ (१)

अर्थ-दिनमानको पन्द्रह भागमें विभक्त करनेसे एक २ भागका नाम मुहूर्त्त है रात्रिमानको भी पन्द्रह भागमें विभक्त करनेसे एक २ भागका नाम मुहूर्त्त होता है । जिस नक्षत्रमें जो कार्य विहित है उस नक्षत्रमें उसी कार्यको करे ॥ १०९ ॥

अथ नाडीनक्षत्राणि ।

जन्माद्यं कर्म ततोपि दशमं सांघातिकं षोडशभम् ।

समुदयमष्टादशभं विना संज्ञं त्रयोविंशम् ॥ ११० ॥

आद्यानु पञ्चविंशं मानसमेवं नरः पट्टशः स्यात् ।

(अं) गुरुहरीति पुस्तकान्तरे पाठः । (अः) रात्रेः पञ्चदशमुहूर्त्ताधिपनक्षत्राण्यह्न-
रुद्र इति । पञ्चदशभागीकृतस्य रात्रिमानस्य रुद्रादिनक्षत्रसंज्ञकाः क्षणा मुहूर्त्ताः स्युस्त-
दधिपत्वेन तत्रक्षत्रसंज्ञाभाजः क्षणाः ॥ इति ।

(१) मुहूर्त्तसंज्ञाफलमाह-अह्न इति । रात्रिमानं दिवामानं यावद् भवति तावदेव
पञ्चदशांशे मुहूर्त्तसंज्ञक इत्यर्थः । अत्र च दण्डद्वयं मुहूर्त्त इति निगदतः सौभरेरिन्द्रा-
ज्ञनाभ्यसनमेव कारणमिति । अत्र च यत्रक्षत्रे यत्कर्म विहितं तत्रक्षत्रमुहूर्त्तंऽपि तत्कर्म
कर्त्तव्यमित्यर्थः । इति ॥

नवनक्षत्रो नृपतिः स्वजातिदेशाभिषेकक्षेत्रः ॥ १११ ॥ (२)

अर्थ—अब नाडीनक्षत्र कहते हैं । जिस नक्षत्रमें मनुष्यका जन्म हो उस नक्षत्रको उसकी जन्मनाडी कहते हैं, जन्मनाडीसे गिनकर दशवें नक्षत्रको कर्मनाडी कहते हैं, इसी प्रकार सोलहवें नक्षत्रको सांघातिकनाडी, अठारहवें नक्षत्रको समुदयनाडी, वेईसवें नक्षत्रको विनाशनाडी और पच्चीसवें नक्षत्रको मानसनाडी कहते हैं, इन्हीं छः नक्षत्रोंको मनुष्यके पण्नाडी नक्षत्र कहते हैं । राजाओंकी तीन नाडी और होती है यथा—स्वजातिनाडी देशनाडी और अभिषेकनाडी—उपरोक्त छः नाडियोंकी और इन तीन नाडियोंको मिलाकर राजाओंकी नौ नाडी होती हैं । स्वयंजातिनिरूपित नक्षत्रका नाम स्वजातिनाडी, देशनामानुसार जो नक्षत्र उसका नाम देशनाडी और जिस नक्षत्रमें राजा अभिषिक्त हो उसका नाम अभिषेकनाडी है ॥ ११० ॥ १११ ॥

अथ नाडीनक्षत्रफलम् ।

ईहादेहार्थहानिः स्याज्जन्मक्षेत्रं चोपतापिते ।

कर्मक्षेत्रकर्मणां हानिः पीडा मनसि मानसे ॥ ११२ ॥

मूर्त्तिद्विषणवन्धूनां हानिः सांघातिके तथा ॥ ११३ ॥

सन्तप्ते सामुदायिके मित्रभृत्यार्थसंक्षयः ।

वैनाशिके विनाशः स्याद्देहद्विषणसम्पदान् ॥ ११४ ॥

अर्थ—अब नाडीनक्षत्रका फल वर्णन करते हैं । मनुष्यकी जन्मनाडी (जन्म-

(२) ताराणां सज्ञान्तरेण फलमार्थाद्वयेनाह—जन्माद्यामीति । आद्य यत्र पुमाञ्ज्ञातं तज्जन्ममज्ञानं नक्षत्रमित्यर्थः । तस्माद्दशमं कर्मनाडीं षोडशमं सांघातिकम् अष्टादशमं सामुदायिकं त्रयोविंशं वैनाशिकं तथा आद्याज्जन्मनक्षत्रात् पञ्चविंशतक्षेत्रं मानससंज्ञमित्यर्थः । एवप्रकारेण नरः पट्टक्षः स्यात् पट्टनक्षत्राणि यस्योति विग्रहः । नृपतिर्नवनक्षत्रं पूर्वप्रोक्तानि पट्टनक्षत्रातिदेशाभिषेकक्षेत्रैः सह नवनक्षत्राणीत्यर्थः । जातिदेशनक्षत्राणि च योगयात्रायामुक्तानि यथा—“ पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राजान्तं पुष्पेण सहोत्तराणि । सपीप्पमेतं पिट्टेयतश्च प्रजापतेर्भक्षं कृषीन्लानाम् ॥ आदित्यहस्ताभिजिदाश्विनानि वणिग्जनानां प्रयदन्ति भानि । मूलाश्लेषातिराजराणानि भान्यन्त्यजातेः प्रभविष्णुतायाः ॥ मीमेन्मृगशिरासुदेनतानि सेवाजने साम्यमुपागतानि । सपौ विशारदाश्रवणाभरणपश्चाण्डालजातेरपि निर्दिशन्ति । नक्षत्रत्रयवर्गराशेयाद्येव्यस्यितनेयथा । भारतवर्षमध्ये प्रागादिनिभाजिता देशाः ॥ ” तथा “ मिमेक्षिभिरपि वृत्तिराद्येन पीडिते भूपतयोऽभिषेक्याः । पश्चादनायो मगधाधिपश्च कलिङ्गराजुजयिनीपतिश्च । आनन्तराष्ट्रमेवमहाराहोरी मद्रेश्वरोद्दिशं कुरुतनायः । एते हि कर्माद्गसमाश्रितानां भानां भग्नान्ति क्षितिपातु नायाः ” । तथा—“ कर्मादिदृष्टानि हि देशभाने राजोऽभिषेकाहनि आभिषेकः ॥ ” इति ॥

उपतापित होनेसे चेष्टा, देह और अर्थकी हानि होती है इसी प्रकार कर्मनाडी अर्थात् जन्मनक्षत्रसे दशवाँ नक्षत्र उपतापित होनेसे कर्मकी हानि होती है, मानसनाडी उपतापित होनेसे मानसिकपीडा होती है, सांवातिक नाडीके उपतापित होनेसे देह, धन और बान्धवोंकी हानि होती है, मासुदियक नाडी उपतापित होनेसे मित्र, भृत्य और अर्थका नाश होता है और वैनाशिक नाडी उपतापित होनेसे शरीर, धन और नम्पत्का नाश होजाता है ॥ ११-१४ ॥

अथ नाडीनक्षत्रपीडाशान्तिकथनम् ।

सर्वेषामेव पीडायां दिनमेकमुपोपितोऽनलं जुहुयात् । (३)

सावित्र्या क्षीरतरोः समिद्धिरमरद्विजानुरतः ॥ ११५ ॥

अर्थ—अथ नाडीके नक्षत्रोंका प्रतीकार कहते हैं । जन्मप्रभृति छः नाडियोंके मध्यमें मनुष्यकी कोई एक नाडी अथवा ममस्त नाडियें यदि दूषित हों तो उन दोषोंके शान्तिके अर्थ देवब्राह्मणानुरक्त मनुष्य एक दिन उपवास करके गायत्रीपाठपूर्वक अग्निमें क्षीरवृक्षकी समिधद्वाग अष्टोत्तरसहस्र होम करे ॥ ११५ ॥

अथाशुभनक्षत्रनिर्णयः ।

नक्षत्रपटुकिरणं पश्चात्सन्व्यागतं ग्रहैर्भिन्नम् ।

क्रूरनिपीडितमुत्पातदूषितञ्चाशुभं सर्वम् ॥ ११६ ॥ (४)

अर्थ—अथ अशुभ नक्षत्रोंका निर्णय करने हैं । अश्विन्यादि सत्ताईम नक्षत्रोंके

(३) नाडीनक्षत्रदोषप्रतीकारमाह—सर्वेषामिति । सर्वेषां नाडीनक्षत्राणां क्रमेण समुदायेन वा पीडायां गायत्र्या हौम कुर्यादित्यर्थः । देवद्विजानुरक्तपुरुषः देवब्राह्मणपूजापि कर्त्तव्येति तात्पर्यम् । अनुक्तपश्यरहोमेऽष्टोत्तरसहस्रमावाधेयानाद्वाप्यष्टोत्तरसहस्रहौम इति । यथा पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—“येषां जपे च होमे च संप्रिया मोक्षा मनीषिभिः । तेषामष्टसहस्रन्तु संप्रिया स्याज्जपहोमयोः ॥ ” अत्र च नाडीदोषशान्तिक्रान्तमुक्तं योगयात्रायाम् । यथा—“गोक्षीरसिनवृषभशङ्खमूत्रैः पत्रैश्च पूर्णकोषायाः । भ्रान्तं जन्मदिने दृष्टे स्वाचार्यतां हगतिं पापम् ॥ कर्मणि घृतमधुहोमो दशाहमक्षरमद्यमासादः । दूर्वाभिषेगुलाजशतपुष्पशतावगच्छानम् । सांघानिके तु दृष्टे मांसमधुक्रौंथमन्मयां स्तयत्वा । स्नानञ्च तत्र कुर्यात्प्रियं शुमिद्धार्थं विन्दतेः । ममिध्रितेन पयसा सुगह्वयचन्दनद्वितीयमुत्तैः । दान्तो दूर्वा जुहुयादानं दद्याद्यथाशक्तिः । सामुदायिके तु दद्यात्काञ्चनरजताक्षत हतेपीष्टे । वैनाशिकेऽन्नपानं वमुषाञ्च गुणान्विते दद्यात् । मानसनापे होमः सरोरुहैः पायसैर्द्विजा भोज्याः । गजमदक्षिरिषचन्दनवलातिचलवारिणा स्नानम् । सितसिद्धार्थकमिश्रेर्दूर्वादधिचन्दनोशीरः । आयात्तद्दीशमन्त्रेन्नागदोषप्रशमनाय ॥ ” इति ॥

(४) अशुभनक्षत्रमाह—नक्षत्राभिनि । अपटुः कर्णम् अम्फटुः गरिमामोहानक्षत्रस्य पूर्वोपर्यन्तं नक्षत्रद्वयम् अल्पश्रीत्यर्थः । पश्चात्सन्व्यागतम् अन्तगतं सूर्यभोग्यनक्षत्र-

मध्यम पटुकिरण (सूर्यभोग्य) नक्षत्रोंके पूर्व और परनक्षत्र, पश्चात् सन्ध्यागत (सूर्यभोग्य) नक्षत्र और शुभाशुभ ग्रहयोगद्वारा मिश्र नक्षत्र, अशुभ नक्षत्र, पापग्रह भोग्य नक्षत्र और उत्कापातादि त्रिविधोत्पातदूषित नक्षत्रोंको अशुभ नक्षत्र कहते हैं उक्त समस्त शुभ नक्षत्रोंमें कोई कार्य न करना चाहिये ॥ ११६ ॥

अथ पुनक्षत्रकथनम् ।

हस्तो मूलः श्रवणः पुनर्वसुर्मृगशिरास्तथा पुष्यः ।

पुंसंज्ञिते च कार्ये पुंनामाऽयं गणः स्मृतः ॥ ११७ ॥ (५)

अर्थ—हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिर और पुष्य इन समस्त नक्षत्रोंको पुनक्षत्र कहते हैं, पुंकार्यमें उक्त नक्षत्र प्रशस्त हैं ॥ ११७ ॥

अथ राशिनक्षत्रविभागः ।

अश्विनीमृगमूलादौ मेपासिंहहयादयः ।

विषमक्षान्निवर्तन्ते पादवृद्ध्या यथोत्तरम् ॥ ११८ ॥ (६)

अर्थ—अब राशियोंके नक्षत्रोंका विभाग वर्णन करते हैं । अश्विनी मघा और मूल नक्षत्रसे विषम (अयुग्म) नक्षत्रके एक एक पाद वृद्धिसे क्रमानुसार चथा संख्य करके सिंहादि और धनुगादि राशिको जानो ॥ ११८ ॥

अथ स्पष्टमाह ।

अश्विन्या सह भरणी कृत्तिका पादश्च कथितो मेपः ।

वृषभः कृत्तिकाशेषं रोहिण्यर्द्धश्च मृगशिरसः ॥ ११९ ॥

—मित्यर्थः । ग्रहेः शुभाशुभग्रहेः सर्वग्रहयोगतारोयोगेन शक्यते देन वा मिश्रमित्यर्थः । इरानिपीडित पापग्रहभोग्यनक्षत्रमित्यर्थः । उत्पातदूषितम् उत्कादित्रिविधोत्पातदूषितमित्यर्थः । एतत्सर्वं नक्षत्र सर्वकर्मण्यशुभमित्यर्थः । इति ॥

(५) पुंनामगणमाह—हस्त इति । पुंसंज्ञिते पुंस्तानादौ तु कार्ये इत्यर्थः ॥

(६) राशिनक्षत्रविभागमाह—अश्विनीति । अश्विन्याद्राशेपान्त मघादिज्येष्ठान्त यथासरप मेपादयश्चत्वारः सिंहादयश्चत्वारो धनुषादयश्चत्वारो राशयः स्युः । ते च मेपादयः सिंहादयो हयादयश्चत्वारो राशयः विषमनक्षत्रादयोत्तर पादेक वृद्ध्या निवर्तन्ते । एतदुक्तं भवति प्रथमराशिमेपः तृतीयकृत्तिकानक्षत्रस्थमपादाद्द्वितीयराशिर्वृषः पञ्चममृगशिरोनक्षत्रस्य षाट्पद्यात्, तृतीयराशिमिथुनः सप्तमपुनर्वसुनक्षत्रस्य पादत्रयात्, चतुर्थराशिः कर्कटः नवमाऽऽश्वेपानक्षत्रस्य पादचतुष्टयात् । एव सिंहादयो हयादयश्च मघादितो मूलादितश्च बोद्धव्याः । सीमन्ति विषमगणशोदित्यस्य सम्बन्धं प्रदधाति ॥

मृगशिरोऽर्द्धआर्द्रा पुनर्वसोस्त्रिपादं मिथुनः ।

पादः पुनर्वसोरम्भः पुष्याश्लेषा च कर्कटः ॥ १२० ॥

सिंहोऽथ मघापूर्वाफाल्गुनीपाद उत्तरायाः ।

तच्छेषं हस्तचित्रार्द्धश्चकन्याख्या ॥ १२१ ॥

तौलिनि चित्रार्द्धश्चस्वातिविशाखायाः पादत्रयम् ।

अलिनि विशाखापादस्तथानुराधान्विता ज्येष्ठा ॥ १२२ ॥

मूलं पूर्वापादा प्रथमश्चाप्युत्तरांशको धन्वी ।

मकरस्तत्परिशेषं श्रवणार्द्धं धनिष्ठायाः ॥ १२३ ॥

धनिष्ठार्द्धं शतभिषा पूर्वभाद्रपदत्रयं कुम्भः ।

भाद्रपदा शेषस्तथोत्तरारवेती मीनः ॥ १२४ ॥

अर्थ—अश्विनीप्रभृति सत्ताईस नक्षत्रोंके द्वारा द्वादश राशिका विभाग स्पष्ट-
रूपसे कीर्तन करते हैं यथा—अश्विनी, भरणी और कृत्तिकाके प्रथमपादतक मेष
राशि होती है इसी प्रकार कृत्तिकाके शेष तीनपाद, रोहिणी और मृगशिरके प्रथ-
मार्द्धतक वृषराशि, मृगशिरका शेषार्द्ध आर्द्रा और पुनर्वसुके तीन पादतक मिथुन
राशि, पुनर्वसुका शेष पाद, पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रतक कर्क राशि । मघा, पूर्वा-
फाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीके प्रथमपादतक सिंहराशि, उत्तराफाल्गुनीके शेष
तीन पाद हस्त और चित्राके पूर्वार्द्धतक कन्या राशि । चित्राका उत्तरार्द्ध, स्वाति
और विशाखाके तीन पादतक तुला राशि विशाखाका शेष पाद, अनुराधा और
ज्येष्ठा नक्षत्रतक वृश्चिकराशि । मूल, पूर्वापादा और उत्तरापादाके प्रथमपादतक-
धनराशि । उत्तरापादाके शेष तीन पाद, श्रवण और धनिष्ठाके दो पादतक मकर
राशि । धनिष्ठाका शेषार्द्ध, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपदके तीनपादतक कुम्भ-
राशि । पूर्वाभाद्रपदका शेष पाद, उत्तराभाद्रपद और रेवतीनक्षत्रतक मीन राशि
होती है ॥ ११९-१२४ ॥

अथ तिथिनिरूपणम् ।

अर्काद्विनिःसृतः प्रार्चा यद्यात्यहरहः शशी ।

भागैर्द्वादशभिस्तत्स्यात्तिथिश्चान्द्रमसं दिनम् ॥ १२५ ॥

इति सूर्यसिद्धान्तः ।

अर्थ—अब तिथिनिरूपण करते हैं—सूर्यमण्डलसे विनिर्गत होकर पूर्व दिशामें
चन्द्रके द्वादशभागगमनका नाम तिथि वा चान्द्रदिन है ॥ १२५ ॥

त्रिंशांशकस्तथा राशेर्भाग इत्यभिधीयते ।

आदित्याद्विप्रकृष्टस्तु भागं द्वादशकं यदा ।

चन्द्रमाः स्यात्तदा राम तिथिरित्यभिधीयते ॥ १२६ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ—रात्रिको त्रिंशंश करनेसे उसके एक एक अंशका नाम भाग है चन्द्र सूर्यमण्डलसे विनिर्गत होकर इसी प्रकार द्वादशभाग गमन करनेसे उसका नाम एक तिथि होता है ॥ १२६ ॥

तत्र पक्षावुभौ मासे शुल्ककृष्णौ क्रमेण हि ।

चन्द्रवृद्धिकरः शुक्लः कृष्णश्चन्द्रक्षयात्मकः ॥ १२७ ॥

इति पट्विंशन्मतम् ।

अर्थ—चान्द्रके तीस तिथियोंका एक चान्द्रमास होता है, उस चान्द्रमासके मध्यमें शुक्ल और कृष्णनामक दो पक्ष होते हैं । शुक्लपक्षमें चन्द्रकी कला क्रमानुसार बढ़ती है और कृष्णपक्षमें चन्द्रकी कला क्रमसे घटती है ॥ १२७ ॥

पक्षत्याद्यास्तु तिथयः क्रमात्पञ्चदश स्मृताः ।

दर्शान्ताः कृष्णपक्षे ताः पूर्णिमान्ताश्च शुक्ले ॥ १२८ ॥

अर्थ—प्रतिपदासे आदि लेकर अमावस्यातक १५ पन्द्रह तिथि कृष्णपक्षमें और इसी प्रकार प्रतिपदासे पूर्णमासीतक पन्द्रह तिथि शुक्लपक्षमें होती हैं ॥ १२८ ॥

अथ तिथिसंज्ञाकथनम् ।

प्रतिपद्वितीया तृतीया चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी सप्तम्यष्टमी ।

नवमी दशम्येकादशी द्वादशी त्रयोदशी चतुर्दशी पूर्णिमा-

मावस्या इति तिथयः ॥ १२९ ॥ (७)

अर्थ—अब तिथियोंके नाम कहते हैं । यथा—प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा यह पन्द्रह तिथि शुक्लपक्षमें और प्रतिपदासे अमावस्यातक पन्द्रह तिथि कृष्णपक्षमें होती हैं ॥ १२९ ॥

अथ तिथीनां विशेषमंज्ञाकथनम् ।

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णाः प्रतिपदः क्रमात् ॥ १३० ॥

अर्थ—प्रतिपदादितिथिके क्रमानुसार नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा यह पांच प्रकारके नाम हैं ॥ १३० ॥

(७) अथ तिथ्यभिदेयतामाह—“अग्निः प्रजापतिर्गौरी गणेशोऽहिर्बुध्न रविः । शिवो दुर्गान्तको विश्वो हरिः कामो हरः शशी । पितरः प्रतिपदादीनां तिथीनामभिप्राः क्रमात् ॥ ” इति ॥

अन्यच्च ।

प्रतिपदेकादशी पष्ठी नन्दा ज्ञेया मनीषिभिः ।

द्वितीया द्वादशी चैव भद्रा प्रोक्ता च सप्तमी ॥ १३१ ॥

त्रयोदश्यष्टमी चैव तृतीया च तथा जया ।

चतुर्थी नवमी चैव रिक्ता चतुर्दशी तथा ॥ १३२ ॥

पञ्चमी दशमी चैव ह्यमावस्या च पूर्णिमा ।

पूर्येति तिथयो ज्ञेयाः सर्वदा च मनीषिभिः ॥ १३३ ॥ (८)

अर्थ-प्रतिपदादि तिथियोंकी नन्दादेसंज्ञा विस्तारसहित वर्णन करते हैं । प्रतिपदा, एकादशी और पष्ठी तिथिकी नन्दासंज्ञा है । इसी प्रकार द्वितीया द्वादशी और सप्तमीकी भद्रासंज्ञा है । त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीयाकी जयासंज्ञा है । चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशीकी रिक्तासंज्ञा है और पञ्चमी अमावस्या और पूर्णिमाकी पूर्णासंज्ञा है ॥ १३१-१३३ ॥

अथ नित्ययोगकथनम् ।

विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यः शोभनस्तथा ।

अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलस्तथैव च ॥ १३४ ॥

गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा ।

वज्रसिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान्परिधः शिवः ।

साध्यः सिद्धः शुभः शुक्रो ब्रह्मेन्द्रौ वैधृतिस्तथा ॥ १३५ (९)

अर्थ-विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिध, शिव, साध्य, सिद्ध, शुभ, शुक्र, ब्रह्म, इन्द्र और वैधृति इन सत्ता-ईसको नित्ययोग करते हैं ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

(८) अथ तिथिविशेषे कर्मविशेषादिः । “ नन्दासु चित्रोत्सववास्तुयज्ञशेवादि कुर्वीत तथैव नित्यम् । विवाहमूपाशकटाध्वयान भद्रासु कार्याण्यपि पोष्टिकानि । जयासु सग्रामबलोपयोगी कार्याणि सिध्यन्ति हि निर्भितानि । रिक्तासु विद्विष्यथबन्धनादि विषाग्रेषुसादि च याति सिद्धिम् । पूर्णासु मांगल्यविवाहयात्रासौष्टिकं शान्तिकर्म कार्यम् । सदैव दर्शे पितृकर्म युक्तं नान्यादिदध्यान्नुभममङ्गलादि ” । इति ज्योतिः सारे ।

(९) नित्ययोगानाह-विष्कम्भेति । सुगममिति ।

अथ योगानां त्याज्यकालकथनम् ।

परिघस्य त्यजेदूर्ध्वं शुभकर्म ततः परम् ।

त्यजादौ पञ्च विष्कम्भे सप्त शूले च नाडिकाः ॥ १३६ ॥

गण्डव्याघातयोः पट्टकं नव हर्षणवज्रयोः ।

वैधृतिं च व्यतीपातं समस्तं परिवर्जयेत् ।

शेषा यथार्थनामानः शुभकार्येषु शोभनाः ॥ १३७ ॥ (१०)

अर्थ—अब विष्कम्भादियोगका त्याज्यकाल कहते हैं । यथा—परिघ योगका अर्द्ध परित्याग करके शुभ कर्म करे । इसी प्रकार विष्कम्भयोगके प्रथम पांच दण्ड, शूलयोगके प्रथम सात दण्ड, गण्ड और व्याघातयोगके छः दण्ड, हर्षण और वज्र योगके नौ दण्ड, और वैधृति और व्यतीपात योगके समस्त परित्याग करके शुभ कार्य करना चाहिये । उक्त समस्त योग भिन्न जो योग हैं उनमें शुभकर्मका अनुष्ठान करनेसे शुभ फल प्राप्त होता है ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

अन्यच्च ।

विरुद्धसंज्ञा इह ये च योगास्तेषामनिष्टः खलु पाद आद्यः ।

सवैधृतिस्तु व्यतीपातनामा सर्वेऽप्यनिष्टाः परिघस्य चार्द्धम् ॥ १३८ ॥

तिस्रस्तु योगे प्रथमे सवज्रे व्याघातसंज्ञं नवपञ्च शूले ।

गण्डेऽतिगण्डे च पडेव नाड्यः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः ॥ १३९ ॥

अर्थ—चक्रान्तरमें योगका त्याज्यकाल इस प्रकारसे कहा है । यथा—विरुद्ध जो समस्त योग हैं उनके आद्यपाद दूषणीय होते हैं, वैधृति और व्यतीपात योग समस्त दूषित हैं, परिघ योगका अर्द्ध दूषित होता है । किन्तु विष्कम्भ योगके प्रथम तीन दण्ड, वज्र और व्याघात योगके नौ दण्ड, शूल योगके पांच दण्ड, गण्ड और अतिगण्ड योगके छः दण्ड परित्याग करके शुभ कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

अपरच्च ।

विष्कम्भे घटिकास्तिष्ठः शूले पञ्च तथैव च ।

गण्डातिगण्डयोः सप्त नव व्याघातवज्रयोः ॥ १४० ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, विष्कम्भके तीन दण्ड, शूलके पांच दण्ड,

(१०) एतेषां शुभाशुभत्वमाह—परिघस्येत्यादि । विष्कम्भयोगे आदौ पञ्चनाडिका दंडांत्यस्या तत्परं शुभकर्म कुर्यादित्यन्वयः । अतिगण्डे गण्डे च पडित्यन्वयः । एतच्छेषा नामानुरूपफलाः सर्वकार्येषु शुभा इत्यर्थः ।

गण्ड और अतिगण्डके सात दण्ड, व्याघात और वज्रयोगके नौ दण्ड परित्याग करके शुभकर्मको करे ॥ १४० ॥

प्रकारान्तरश्च ।

दण्डमेकं त्यजेत्साध्ये व्याघाते घटिकाद्वयम् ।

सप्तशूले षट् च वज्रे नव गण्डातिगण्डयोः ॥ १४१ ॥

वैधृतौ परिषे चार्द्धे विष्कम्भे घटिकाद्वयम् ।

व्यतीपाते च निःशेषं दण्डात्मकञ्च हर्षणे ॥ १४२ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणि ग्रंथमें लिखाहै कि, शुभकर्ममें साध्य योगका एक दण्ड, व्याघातयोगके दो दण्ड, शूलयोगके सात दण्ड, वज्रयोगके छः दण्ड, गण्ड और अतिगण्ड योगके नौ दण्डोंको परित्याग करे । इसी प्रकार वैधृति-योगका अर्द्धभाग, विष्कम्भके दो दण्ड, व्यतीपातके समस्त और हर्षणयोगका एक दण्ड परित्याग करके शुभकर्म करे ॥ १४१ ॥ १४२

सर्वेषु देशेष्वविशेषतोऽमी

विष्कम्भकाद्या मुनिभिस्तु योगाः ।

वार्षयोगास्तित्थिवारयोगा

वङ्गेषु योज्या न तु तेऽन्यदेशे ॥ १४३ ॥ (क)

अर्थ—विष्कम्भादि सत्ताईस नित्य योगोंका शुभाशुभ फल सब देशोंमेंही समान होताहै, किन्तु वक्ष्यमाण अमृत और पाप योगादि, वार नक्षत्रानिमित्तक योग सिद्धियोग और दग्धादि और तिथिवारनिमित्तक योगोंका शुभाशुभ फल वङ्गदेशमेंही होताहै । और देशोंमें इन समस्त योगोंका व्यवहार और फल नहीं देखाजाताहै, मुनिगणकाभी इसी प्रकार मत है ॥ १४३ ॥

अथ करणकथनम् ।

बवबालवकौलवतैतिलगरवाणिजाविष्टयः सप्त ।

शकुनिचतुष्पदनागार्किस्तुघ्नानिधुवाणि करणानि ॥ १४४ ॥

अर्थ—बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वाणिज, विष्टि, शकुनि, चतुष्पाद, नाग और किस्तुघ्न यही ग्यारह करण हैं ॥ १४४ ॥

(क) सर्वेषां शुभाशुभयोगानां देशविशेष एव फलमाह—सर्वेष्विति । वार्षयोगा वक्ष्यमाणा अमृतपापादयः तिथिवारयोगाः सिद्धिदग्धादयः वङ्गेषु योज्याश्चान्यदेशे युज्योपा न सन्तीत्यर्थः ।

अथ साधिपववादिकथनम् ।

वववालवकौलवतैतिलगरवणिजविष्टिसंज्ञानाम् ।

पतयःस्युरिन्द्रकमलजमित्रार्यमभूश्रियः सयमाः ॥ १४५ ॥ (x)

अर्थ—अब साधिप करण कहते हैं । वव, बालव; कौलव, तैतिल, गर, वणिज, और विष्टि इन सात करणोंके क्रमानुसार इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, अर्यमा, पृथ्वी, लक्ष्मी और यमको स्वामी जानो ॥ १४५ ॥

अथ साधिपशकुन्यादिकथनम् ।

कृष्णचतुर्दश्यन्तार्द्धाद्भुवाणि शकुनिचतुष्पदनागाः ।

किंस्तुघ्नमथ च तेषां कलिवृषफणिमारुताःपतयः ॥ १४६ ॥ (१)

अर्थ—अब शकुन्यादि करणचतुष्टय कहते हैं । कृष्णाचतुर्दशीके शेषार्द्धसे औगम्य होकर शुक्रप्रतिपदाके पूर्वार्द्धपर्यन्त तिथ्यर्द्धभोगक्रमसे शकुनि चतुष्पद नाग, और किंस्तुघ्न यह चार करण होते हैं इनको ध्रुव (निश्चल) कहते हैं उक्त चारों करणोंके स्वामी कालि, वृष, फणी और मारुतको यथासंख्यक्रमसे जानो ॥ १४६ ॥

शुक्लादितिथिशेषार्द्धे पञ्चमे तचुरीयके ।

आद्यान्तर्द्धात्क्रमेण स्युरष्टावृत्त्या ववादयः ॥ १४७ ॥

अर्थ—किस तिथिमें कौन करण होताहै, अब उसको वर्णन करतेहैं । शुक्रप्रति, पदाके शेषार्द्धमें शुक्रपञ्चमीके पूर्वार्द्धमें, शुक्लाष्टमीके शेषार्द्धमें, शुक्लाद्वादशीके पूर्वार्द्धमें, पूर्णिमाके शेषार्द्धमें; कृष्णाचतुर्थीके पूर्वार्द्धमें, कृष्णासप्तमीके शेषार्द्धमें, और कृष्णा एकादशीके पूर्वार्द्धमें बवकरण होताहै । शुक्लाद्वितीयाके पूर्वार्द्धमें, शुक्लापञ्चमीके शेषार्द्धमें, शुक्ला नवमीके पूर्वार्द्धमें, शुक्ला द्वादशीके शेषार्द्धमें, कृष्णा प्रतिपदाके पूर्वार्द्धमें, कृष्णा चतुर्थीके शेषार्द्धमें कृष्णाष्टमीके पूर्वार्द्धमें, और कृष्णा एकादशीके शेषार्द्धमें बालवकरण होताहै शुक्ला द्वितीयाके शेषार्द्धमें, शुक्ला पष्ठीके पूर्वार्द्धमें, शुक्ला नवमीके शेषार्द्धमें, शुक्ला त्रयोदशीके पूर्वार्द्धमें कृष्णा प्रतिपदाके शेषार्द्धमें, कृष्णापञ्चमीके पूर्वार्द्धमें कृष्णापष्ठीके शेषार्द्धमें, और कृष्णाद्वादशीके पूर्वार्द्धमें कौलवकरण होताहै । शुक्लवृत्तीयाके पूर्वार्द्धमें, शुक्ला पष्ठीके शेषार्द्धमें, शुक्ला दशमीके पूर्वार्द्धमें, शुक्ला त्रयोदशीके शेषार्द्धमें कृष्णाद्वितीयाके पूर्वार्द्धमें, कृष्णापञ्चमीके शेषार्द्धमें, कृष्णानवमीके पूर्वार्द्धमें और कृष्णा

(x) करणानि तदधिपान्याह—बनेति । सुगममिति ।

(१) शकुन्यादिकरणचतुष्टयमाह—कृष्णोति । कृष्णचतुर्दश्या अन्तादन्तार्द्धं शुक्रप्रतिपदाद्यर्द्धपर्यन्तं तिथ्यर्द्धभोगक्रमेण यथाक्रमे शकुन्यादयः स्युः । एनानि ध्रुवाणि निश्चलानि एकतिथाधेरस्थितत्वात् नवरादीनि अधुराणि चलनानि अष्टवृत्त्या अनेकतिथिभ्रमणात् अपे सुगममिति ।

द्वादशीके शेषार्द्धमें तैलिकरण होता है । शुक्ल तृतीयाके शेषार्द्धमें, शुक्ल सप्तमीके पूर्वार्द्धमें, शुक्ल दशमीके शेषार्द्धमें, शुक्ल चतुर्दशीके पूर्वार्द्धमें, कृष्ण द्वितीयाके शेषार्द्धमें, कृष्ण पष्ठीके पूर्वार्द्धमें, कृष्णानवमीके शेषार्द्धमें, और कृष्ण त्रयोदशीके पूर्वार्द्धमें गरकरण होता है । शुक्ल चतुर्थीके पूर्वार्द्धमें, शुक्ल सप्तमीके शेषार्द्धमें, शुक्ल एकादशीके पूर्वार्द्धमें, शुक्ल चतुर्दशीके शेषार्द्धमें, कृष्ण तृतीयाके पूर्वार्द्धमें, कृष्ण पष्ठीके शेषार्द्धमें कृष्ण दशमीके पूर्वार्द्धमें और कृष्ण त्रयोदशीके शेषार्द्धमें, बाणज करण होता है । शुक्ल चतुर्थीके शेषार्द्धमें, शुक्ल अष्टमीके पूर्वार्द्धमें, शुक्ल एकादशीके शेषार्द्धमें पूर्णिमाके पूर्वार्द्धमें कृष्ण तृतीयाके शेषार्द्धमें, कृष्ण सप्तमीके पूर्वार्द्धमें, कृष्ण दशमीके शेषार्द्धमें और कृष्ण चतुर्दशीके पूर्वार्द्धमें विष्टि करण होता है ॥ १४७ ॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्याः शेषार्द्धे शकुनिर्भवेत् ।

चतुष्पादश्च पूर्वार्द्धे नागः शेषार्द्धे संस्थितः ।

शुक्लप्रतिपदाद्यर्द्धे किंस्तुघ्नः शेषतो ववः ॥ १४८ ॥

अर्थ-कृष्णचतुर्दशीके शेषार्द्धमें शकुनि करण होता है, अमावास्याके पूर्वार्द्धमें चतुष्पादकरण, शेषार्द्धमें नागकरण, शुक्लप्रतिपदाके पूर्वार्द्धमें किंस्तुघ्न करण और शेषार्द्धमें ववकरण होता है । शकुनि, चतुष्पाद, नाग और किंस्तुघ्न करणका अङ्ग व्यवहारमें नहीं आता; शकुनिका “ श ” चतुष्पादका “ च ” नागका “ ना ” किंस्तुघ्नका “ कि ” अङ्गके पारिवर्त्तनमें लिखा जाता है ॥ १४८ ॥

इति करणानिरूपणम् ।

अथ विष्टिमद्राकथनम् ।

तृतीयादशमीशेषे तत्पञ्चम्यास्तु पूर्वतः ।

कृष्णे विष्टिः सिते तद्वत्तासां परतिथिष्वपि ॥ १४९ ॥

अर्थ-विष्टि मद्रा (विष्टिकरण) विशेष प्रकारसे वर्णन कहते हैं । कृष्णपक्षमें तृतीया और दशमीके शेषार्द्धमें विष्टिकरण होता है इस प्रकार उक्त दोनों तिथियोंके पञ्चम कृष्ण सप्तमी और कृष्ण चतुर्दशी तिथिके पूर्वार्द्धमें विष्टिकरण होता है । शुक्ल पक्षमें तृतीया और दशमीके परतिथि चतुर्थी और एकादशीके परार्द्धमें और अष्टमी और पूर्णिमासीके पूर्वार्द्धमें विष्टिमद्रा होती है ॥ १४९ ॥

(•) सुरचोधार्य विष्टिनिर्णयमाह-तत्तयिति । कृष्णपक्षे तृतीयादशम्योः शेषार्द्धे विष्टिः स्यात्तत्पञ्चम्योः तृतीयादशमीपञ्चमतिथ्योः सप्तमीचतुर्दश्योः पूर्वतः पूर्वार्द्धे विष्टिरित्यर्थः । सिते शुक्लपक्षे तासां तृतीयादीनां परतिथिषु चतुर्थ्येकादश्यास्तद्वत्तत्पञ्चम्योः अष्टमिपूर्णिमास्योः तद्वत्पूर्वार्द्धे विष्टिरित्यर्थः ।

अन्यत्र ।

एकादशीश्चतुर्थ्याश्च शेषार्द्धे शुक्लपक्षके ।

अष्टमीपूर्णिमास्योस्तु पूर्वार्द्धे विष्टिसम्भवः ॥ १५० ॥

अर्थ—शुक्लपक्षमें एकादशी और चतुर्थीके शेषार्द्धमें और अष्टमी और पूर्णिमाके पूर्वार्द्धमें विष्टि भद्रा होती है ॥ १५० ॥

कृष्णपक्षे तृतीयाया दशम्यास्तु परार्द्धतः ।

सप्तम्याश्च चतुर्दश्याः पूर्वार्द्धे विष्टिरीरिता ॥ १५१ ॥

अर्थ—कृष्णपक्षमें तृतीया और दशमीके शेषार्द्धमें और सप्तमी और चतुर्दशीके पूर्वार्द्धमें विष्टि भद्रा होती है ॥ १५१ ॥

अपरश्च ।

कृष्णे तृतीयादशमीपरार्द्धे पूर्वार्द्धभागे मुनिभूततिथ्योः ।

सिते चतुर्थीशिवयोः परस्तात्पूर्वऽष्टमीपूर्णिमयोश्च विष्टिः ॥ १५२ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—सारसंग्रहनामक ग्रन्थमें लिखा है कि, कृष्णपक्षमें तृतीया और दशमी तिथिके परार्द्धमें, सप्तमी और चतुर्दशीतिथिके पूर्वार्द्धमें विष्टिभद्रा होती है, और शुक्लपक्षमें चतुर्थी और एकादशीतिथिके परार्द्धमें अष्टमी और पूर्णिमा तिथिके पूर्वार्द्धमें विष्टिभद्रा होती है ॥ १५२ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

तृतीयादशमीशेषे पूर्वं सप्त चतुर्दशी ।

पूर्वं पूर्णाष्टमी शुक्ले चतुर्थ्येकादशी परे ॥ १५३ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—प्रकारान्तरसे सारसंग्रह नामकग्रन्थमें लिखा है कि, तृतीया और दशमीके शेषार्द्धमें भद्रा होती है, शुक्लपक्षमें पूर्णिमा और अष्टमीके पूर्वार्द्धमें, चतुर्थी और एकादशीके परार्द्धमें भद्रा होती है ॥ १५३ ॥

अथ विष्टिमद्रोत्पात्तिः ।

दैत्येन्द्रैः समरेऽमरेषु विजितेष्वीशः क्रुधा दृष्ट्वा—

स्तत्कायात्किञ्च निर्गता सखमुखा लांगूलिनी च त्रिपात् ।

विष्टिः सप्तभुजा मृगेन्द्रगडका स्थूळोदरी प्रेतगा

दैत्यघ्नी मुदिता सुरैस्तु करणप्रान्ते निधुक्ता सदा ॥ १५४ ॥

अर्थ—अथ विष्टिमद्राकी उत्पात्ति वर्णन करते हैं। पूर्व समय देवासुरसंग्राममें जब

देवगण असुरोंसे पराजित होकर शिवके निकट आकर समस्त वृत्तान्त सुनाया तब महादेवजी अत्यन्त क्रोधयुक्त हुए उसी समय महादेवजीके शरीरसे गर्दभके समान मुखवाली पुच्छधारिणी (पूँछको धारण कियेहुए) त्रिपादविशिष्टा (तीन पाओंवाली) सप्तभुजा (सात भुजाओंको धारणकिये) सिंहके समान जिसका गलेदेश है, स्थूलोदरी, (बड़े पेटवाली) भेत्तके समान शरीरको धारणकिये विष्टि भद्रा नाम्नी एक मूर्त्तिने निकलकर असुरगणको विनाशकरके देवताओंसे स्थानकी प्रार्थना करी, तो देवतागण प्रसन्न होकर विष्टिभद्राको करणके प्रान्तभागमें सड़ोक लिये नियुक्त करदेतेहुए ॥ १५४ ॥

अथ विष्टिभद्राया अङ्गविभागः ।

नाड्यस्तु पञ्च वदनं गलकस्तथैका ।

वक्षो दशैकसहिता त्रियतं चतस्रः ॥

नाभिः कटिः पडथ पुच्छतलं च तिस्रो ।

विष्टेभ्रुवं निगदितोऽङ्गविभाग एषः ॥ १५५ ॥

अर्थ-अथ विष्टिभद्राका अंगविभाग वर्णन करते हैं । जिस २ त्रियिके पूर्वाद्ध वा पराद्ध विष्टिसंज्ञामें कहेगये हैं उनको त्रिंशंश करनेसे प्रथमके पांच अंशोंका विष्टिभद्राका मुख है- इसी प्रकार एक अंशका गलेदेश (गला) है- ग्यारह अंशक वक्षःस्थान है, चार अंशकी नाभि है, छः अंशकी कटि है और तीन अंशकी पूँछ है । इन समस्त स्थानोंका फलाफल नीचे लिखा है ॥ १५५ ॥

अथांगविभागफलम् ।

मुखे कार्यध्वस्तिर्भवति मरणञ्चाथ गलके

धनगलानिर्वक्षस्यथ कटितटे बुद्धिविलयः ॥

कलिर्नाभिर्देशे विजयमथ पुच्छे च जगदुः ।

शरीरे भद्रायाः पृथगिति फलं सर्वमुनयः ॥ १५६ ॥

अर्थ-अथ विष्टि भद्राके अंगविभागका फल कहा जानाहै । विष्टिभद्राके मुखमें अर्थात् (प्रथम पांच दण्डके मध्यमें) कार्यकी हानि होती है, इसी प्रकार गलेदेशमें मृत्यु, वक्षदेशमें धनकी हानि, कटिदेशमें बुद्धिनाश, नाभिदेशमें कलह और पुच्छदेशमें (शेष तीन दण्डके बीचमें) काये करनेसे विजय अर्थात् वह सिद्ध होताहै ॥ १५६ ॥

अथ भद्रास्थितिनिर्णयः ।

मेपोक्षकौर्पमिथुने घटसिंहमीन-

कर्केषु चापमृगतौलिमुतासु सूर्ये ।

स्वर्मर्त्यनागनगरीः क्रमशः प्रयार्ति ॥

विधिः फलान्यपि ददाति हि तत्र देशे ॥ १५७ ॥

अर्थ-अब विष्टिभद्राकी स्थिति निर्णय कहते हैं । सौर वेशाख, ज्येष्ठ, मार्ग-शीर्ष और आपादमें विष्टिभद्राका स्वर्गलोकमें वास होता है, फालगुन भाद्रपद चैत्र और श्रावण मासमें भद्राकावास मृत्युलोकमें होता है और पौष, माघ, कार्तिक आश्विनमासमें भद्राका नागलोकमें वास होता है । विष्टिभद्राके किस स्थानमें वास करनेसे क्या फल होता है उसको लिखते हैं ॥ १५७ ॥

अथ विष्टिभद्राफलम् ।

स्वर्गे भद्रा शुभं कुर्यात्पाताले च धनागमम् ।

मर्त्यलोके यदा भद्रा सर्वकार्यविनाशिनी ॥ १५८ ॥

अर्थ-भद्रा स्वर्गमें रहनेसे शुभफल प्रदान करती है, पाताल (नागलोक) में रहनेसे धनका सञ्चय होता है और मृत्युलोकमें रहनेसे समस्त कार्यका विनाश होता है ॥ १५८ ॥

केषु केष्वपि कार्येषु सर्वाण्येव तु योजयेत् ।

विहाय विपरोद्वाणि विधिं सर्वत्र वर्जयेत् ॥ १५९ ॥ (ख)

अर्थ-अब करणका फल कहते हैं, किस २ कार्यविशेषमें बधादि समस्त करण प्रशस्त हैं अब उनको कीर्तन करते हैं, यात्रादिकार्यमें गर, वणिज और विष्टिकरण (विष्टिभद्रा) विप्रप्रदान और युद्धादि कार्यमें प्रशस्त हैं, किन्तु और किसी कार्यमें शुभकारक नहीं, केवल पुच्छके तीन दण्ड समस्त शुभकार्यमें शुभ होते हैं ॥ १५९ ॥

(ख) करणानां फलमाह-काष्वाति । केषु केषु कर्मसु सर्वाण्येव करणानि योजयेत् । केचित्पत्यनेन यात्रादिषु गरवणिजविप्रयस्त्याज्या इत्यर्थः । तथाच वक्ष्याति “ गरवणिज-विष्टिपग्वार्ज्जतानि करणानि यातुरग्यानि ” इति विपरोद्गमार्णि त्यक्त्वा विधिं सर्वत्र वर्जयेत् विप्रप्रदाने तु युद्धादिरोद्गमार्णि च विधिर्विहितेत्यर्थः । तथाच व्यतीपातविधिं येषुतिपापय हलग्रदिवसेषु चौयावस्कन्दानृतसयामाः सिद्धिमायान्ति तत्र च विष्टेः शेष-दण्डत्रये पुच्छभागे शुभकर्म कर्तव्यमात्रथाच राजमासपण्डे “ विधिं भुजङ्गमाकारं केचि-दिच्छन्ति दारुणम् । भुजङ्गस्य मुखे ज्योतिर्न तु पुच्छे कदाचन । आद्यं तस्या भवति पटिकाः पञ्च कण्ठस्तथैका वक्षश्चक्रादश निगदिता नाभिदेशश्चतस्रः । पुच्छास्तिस्रः काटिरपि तथा पट् च पूर्वं मुनीन्द्रिगरयातेषां न शुभफलदा वर्ज्येदुत्तमस्ताम् ॥ ” पुच्छस्य पूर्वं पट् पटिका कटिः तत्परं दण्डत्रयं पुच्छमित्यर्थः । तथाच तत्रैव-“ कार्यं न सिध्यति शुभे मरणं गलस्यादर्यक्षयो हादि कदापि बुद्धिनाशः । नाभौ भयं विजयलम्बिप्रतीतिं पुच्छे विप्रिमात्रफलने तदृशान्ति सन्तः ॥ ”

अन्यच्च ।

विहाय विपरोद्गाणि विष्टिं सर्वत्र वर्जयेत् ।

विष्टिशेषे त्रिदण्डेऽपि पुच्छे कार्यं शुभावहम् ॥ १६० ॥ (ख)

अर्थ-वचनान्तरमें लिखा है कि, विषदानादि और युद्धादिकार्यके सिवाग और समस्त कार्यमेंही विष्टिभद्रा परित्याग करनी चाहिये, विष्टिपुच्छ (शेषके तीन दण्ड) में कार्य करनेसे सिद्ध होता है ॥ १६० ॥

प्रतिप्रसवो यथा ।

दिवा परार्द्धजा विष्टिः पूर्वार्द्धा स्यात्तथा निशि ।

तदा भद्रा न दोषाय सा भद्रा भद्रदायिका ॥ १६१ ॥

अर्थ-जिस तिथिके शेषार्द्धमें विष्टिभद्रा दिनमें हो अथवा जिस तिथिके पूर्वार्द्धमें विष्टिभद्रा रात्रिमें हो तो विष्टिभद्राजन्य दोष नहीं होता है ॥ १६१ ॥

अथ नवग्रहसंज्ञा ।

सूर्यश्चन्द्रो मङ्गलश्च बुधश्चापि बृहस्पतिः ।

शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति नव ग्रहाः ॥ १६२ ॥

अर्थ-अब नवग्रहोंके नाम कहते हैं । रवि, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु इन्हींको नवग्रह कहते हैं ॥ १६२ ॥

अथ वारकथनम् ।

रविः सोमो मङ्गलश्च बुधो जीवः सितः शनिः ।

एतेषां नामतो वाराः सप्तैव परिकीर्तिताः ॥ १६३ ॥

अर्थ-अब सात ग्रहोंके नामानुसार वार कहते हैं-रवि, सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर इन्हींको सात वार कहते हैं ॥ १६३ ॥

अथ वारगुणकथनम् ।

सितेन्दुबुधजीवानां वाराः सर्वत्र शोभनाः ।

(ख) घुजाटिनी सिते फले देफिने वा सिते परे । अक्षरेण तिथिः प्रोक्ता स्वरे दण्डाः प्रकीर्तिताः । तद्यथा । “ चतुर्थ्यां पञ्चदण्डाश्च एकादश्यां त्रिदण्डकाः । दण्डद्वयं तथाष्टम्यां पौर्णमास्यां चतुष्टयम् । तृतीयायां दशम्यान्तु दण्डैकादशकं तथा । सप्तम्याश्च चतुर्दश्यां दण्डानाञ्च चतुष्टयम् । विष्टिपुच्छ तु विशेषं तत्र स्याद्विजयो नृणाम् ” ॥ इति हृदयानन्दकृतसारसंग्रहधृतवचनम् ॥

भानुभूसुतमन्दानां शुभकर्मसु केष्वापि ॥ १६४ ॥ (ग)

अर्थ—शुक्र, सोम, बुध और वृहस्पतिवार समस्त शुभकार्यमें प्रशस्त है. रवि, मङ्गल और शनिवार यह किसी किसी कार्यविशेषमें शुभदायक होते हैं ॥ १६४ ॥

नृपाभिषेको नृपतिप्रयाणं नृपस्य कार्यं नृपदर्शनञ्च ।

पञ्चाग्निकार्यं भुवि बीजपातं सर्वं तदादित्यदिने प्रशस्तम् ॥ १६५ ॥

अर्थ—राजाके अभिषेकमें, राजाके गमन (जाने) में, राजकार्यमें, राजदर्शनमें, आग्निकार्यमें और बीजवपनमें रविवार प्रशस्त है ॥ १६५ ॥

भेदाभिघातं नगरे पुरे वा सेनापतित्वञ्च तथैव राज्ञाम् ।

व्यायामशस्त्रव्यसनानि चौर्यं कुर्यादिने भूमिसुतस्य सर्वम् ॥ १६६ ॥

अर्थ—नगरमें अथवा पुरमें भेदाभिघात, राजाकी सेनापतित्वमें व्रती होना, व्यायाम, शस्त्र, व्यसन क्रिया और चौर्यक्रिया इन समस्त कार्यमें मङ्गलवार प्रशस्त है ॥ १६६ ॥

स्थाप्यं समाप्यं क्रतुयूपकाष्ठं गृहप्रवेशं गजवाजिवाहम् ।

ग्रामे प्रवेशं नगरे पुरे वा कुर्यादिने सूर्यसुतस्य सर्वम् ॥ १६७ ॥

अर्थ—यूप (यज्ञियकाष्ठ) का स्थापन वा विसर्जन, गृहप्रवेश, हाथी और घोड़ेपर चढ़ना, ग्रामप्रवेश अथवा पुरप्रवेश इन सब कार्यमें शनिवार प्रशस्त है ॥ १६७ ॥

इतिवंशावरेलीनिवासिकान्यकुञ्जकुलभूषणमारद्वाजगोत्रत्रिपाठशुपनामकेनपण्डित
बौकेलालारमजेन श्यामसुन्दरशर्मणा सम्पादिते भाषाटीकया विभूषिते च
ज्योतिषतत्त्वसुधारणवे संज्ञारूपः प्रथमस्तरंगः ॥ १ ॥

(ग) वारशुद्धिमाह—सितेति । सर्वत्र सर्वकर्मस्वित्यर्थः । रविभौमशनीनां वाराः केष्वापि शुभकर्मसु शोभनाः न तु सर्वकर्मसु । तथाच राजमार्त्तण्डे—“ जीषार्कभौम-वाराश्च अस्ताः पुस्तवने विधी ” तथा पशुपतिदीपिकायाम्—“ स्थाप्यं समाप्यं क्रतुयूप-काष्ठम् ” इत्यादि । एतेन केष्वापि शुभकर्मसु शुभाः अर्थादशुभकर्मसु सर्वेऽपि पापग्रह-वागः शुभा इति तात्पर्यम् । तथाच—“ व्यतीपातविष्टिबृतिपापग्रहलघ्रादिवसेषु । चौर्य-वरकन्दानृतसंग्रामाः सिद्धिमायान्ति ॥ ” इति ।

द्वितीयस्तरङ्गः २.

अथ विवाहः ।

तत्रादौ कन्यापरीक्षामाह ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां दाराः संप्राप्तिहेतवः ।

परीक्ष्यन्ते प्रयत्नेन पूर्वमेव करग्रहात् ॥ १ ॥

अर्थ-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थोंके देनेवाली, पत्नी है, अतएव विवाहके पूर्वमें भाविपत्नीके लक्षणालक्षणको अवश्य विचारना चाहिये ॥१॥

अथ कन्यालक्षणम् ।

अव्यङ्गाङ्गी सौम्यनाम्नी हंसवारणगामिनीम् ।

तनुलोमकेशदशनां मृदङ्गीमुद्रहेत्स्त्रियम् ॥ २ ॥ (अ)

इति मनुः ।

अर्थ-अब कन्याके लक्षण कहते हैं । अविकलाङ्गी, शुभनामवाली, हंस और हाथीके समान चलनेवाली; रोम, केश और दाँत जिसके अतिसूक्ष्म हों इस प्रकारकी कोमलाङ्गी कन्या विवाहके उपयुक्ता होतीहि, इस प्रकार मनुजीने कहा है । २

हंसस्वर्णा मेघवर्णा मधुपिङ्गललोचनाम् ।

तादृशीं वरयेत्कन्यां गृहस्थः सुखमेधते ॥ ३ ॥

अर्थ-हंसके कण्ठध्वनिके समान जिसके कण्ठकी ध्वनि हो, मेघके समान वर्णवाली, जिसके मधुपिङ्गल नेत्र हों इस प्रकारकी कन्याको विवाहनेसे गृहस्थी-याणको सुख प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

प्रतिष्ठिततलाः सम्यग्रक्ताम्भोजसमात्विपः ।

तादृशाश्चरणा धन्या योपिता भोगवर्द्धनाः ॥ ४ ॥

इति भविष्यपुराणे ।

(अ) कन्यालक्षणमाह-अव्यङ्गाङ्गीमिति।अव्यङ्गाङ्गीम् अविकलाङ्गी सम्पूर्णाङ्गीमित्यर्थः । सौम्यनाम्नी मनोहरनाम्नी यशोदा, सुमद्रा, गौरीत्यादि । उग्रनाम्नीस्तु वर्ज्ये-च्चासुण्डभिरवीत्यादि । हंसहस्तिगामिनी मन्दगामिनीमित्यर्थः । तनुलोम्री सूक्ष्मलोम्रीम् अरुर्केशलोम्रीमित्यर्थः । अरुर्केशकेशा तनुदन्ताम् आयामे दैर्घ्यं दन्तस्य सूक्ष्मत्वे ज्ञेयम् । मृदङ्गी कोमलाङ्गीम् इदृशीं स्त्रियं विनोदित्यर्थः ॥

अर्थ—जिस कन्याके पदतल (पैरोंका तलवा) रक्तपद्मके समान अथ च भूमिलग्न हो इस प्रकारकी चरणयुक्त कन्या प्रशंसाके योग्य है ॥ ४ ॥

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकार्ज्ज्वीं न रोगिणीम् ।

नालोमिकां नातिलोम्नीं न वाचालां न पिङ्गलाम् ॥ ५ ॥

नक्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।

न पक्ष्याहिप्रैष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ६ ॥

इति मनुः ।

अर्थ—जो कन्या कपिलवर्ण, अधिकार्ज्ज्वी, रोगिणी, लोमहीना, अधिकलोम-युक्ता, वाचाला, पिङ्गलवर्णा और नक्षत्र, वृक्ष, नदी अन्त्यज, पर्वत, पक्षी, सर्प, दूती और भीषणनामिका हो उसका विवाह न करना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ प्रतिप्रसवमाह ।

गङ्गा च यमुना चैव गोमती च सरस्वती ।

नदीष्वासां नाम वृक्षे मालतीतुलसी अपि ।

रेवती चाश्विनी भेषु रोहिणी शुभदा भवेत् ॥ ७ ॥

इति मत्स्यसूक्ते ।

अर्थ—पूर्व वचनमें जो नक्षत्र, वृक्ष और नदीनामिका कन्याको वर्जित किया है, अब उसके प्रतिप्रसव कहते हैं यथा,—नदीके मध्यमें गङ्गा, यमुना, गोमती और सरस्वती, वृक्षके मध्यमें मालती और तुलसी और नक्षत्रके मध्यमें रेवती आश्विनी और रोहिणी नामकी कन्या विवाहमें शुभदायिका होती हैं ॥ ७ ॥

नेत्रे यस्याः केकरे पिङ्गले वा

स्याहुःशीला श्यावलोलेक्षणा च ।

कूपौ यस्या गण्डयोः सस्मिताया

निःसन्दिग्धा बन्धकी तां वदन्ति ॥ ८ ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ—जिस कन्याके दोनों नेत्र केकर वा पिङ्गलवर्ण अथवा चञ्चल हों जिसके हँसते समय दोनों गालोंमें कूप (कुआँ) के समान आकारका चिह्न दिखाई देवे, वह कन्या निश्चयही बन्धकी अर्थात् व्यभिचारिणी इसप्रकार शास्त्रवित्पाण्डित-गणोंने कहा है ॥ ८ ॥

श्यामा सुकेशी तनुलोमराजी सुभ्रः सुशीला सुगतिः सुदन्ता ।
वेदीविमध्या यदि पङ्कजाक्षी कुलेन हीनापि विवाहनीया ॥ ९ ॥

इति नन्दिकेश्वरपुराणम् ।

अर्थ-श्यामा (१) सुकेशधारीणी, जिसके सूक्ष्म लोम हों, दोनों भुकुटीमें शोभनीय हो, जो कन्या सुशीलवती हो, जिसकी चाल हंसके समान हो. दाँत जिसके अत्यंत सुन्दर हों, कटिदेश जिसका अतिक्षीण हो, पङ्कजके समान जिसके दोनों नेत्र हों इस प्रकारकी कन्या यदि हीनकुलमें भी उत्पन्न हुई हो तोभी बुद्धिमान् मनुष्यको उसका विवाह करना चाहिये ॥ ९ ॥

धृष्टा कुदन्ता यदि पिङ्गलाक्षी लोम्रा समाकीर्णसमांगयाष्टिः ॥
मध्ये च पुष्टा यदि राजकन्या कुलेऽपि योग्या न विवाहनीया ॥ १० ॥

अर्थ-जो कन्या लज्जाहीन हो, कुत्सित जिसके दाँत हों, पिङ्गलवर्ण दोनों नेत्र हों अत्यन्त लोम जिसके गरीरमें हों, अङ्गयाष्टि जिसकी समान हो और जिसकी मध्यदेश स्थूल हो इस प्रकारकी कन्या यदि उत्तम कुलमेंभी उत्पन्न हुई हो तोभी उसका विवाह न करना चाहिये ॥ १० ॥

रोमहीने समे स्निग्धे जङ्घे च क्रमवर्जुले ।

सा राजपत्नी भवति विशिरे सुमनोहरे ॥ ११ ॥

अर्थ-जिस कन्याकी दोनों जाँघें लोमशून्य समान स्निग्ध, गोलाकार और सुन्दर हों तो वह अवश्यही राजभार्या (रानी) होती है ॥ ११ ॥

गम्भीरा दक्षिणावर्त्ता नाभिः स्यात्सुखम्पदे ।

वामावर्त्ता समुत्ताना व्यक्तग्रन्थी न शोभना ॥ १२ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीकी नाभि गम्भीर और दक्षिणावर्त्त हो तो वह सम्पत्तिकी मालिक होकर सुखभोग करती है और जिसकी नाभि वामावर्त्त, उन्नत, (उठी हुई) अथवा ग्रन्थी स्पष्ट दिखाई दे वह बिरकाल दुःखसे जीवन व्यतीत करती है ॥ १२ ॥

स्निग्धाः समुन्नतास्ताम्रा वृत्ताः पादनखाः शुभाः ।

राज्ञीत्वसूचकं स्त्रीणां पादपृष्ठं समुन्नतम् ॥ १३ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीके पैरोंके नाखून स्निग्ध, उन्नत, ताम्रवर्ण, वर्तुलाकार और

(१) “ स्तनी च कठिनौ यस्या नितम्बे च विशालता । मध्यक्षीणा च या नारी सा श्यामा परिकीर्तिता ॥ ”

सुन्दर हों और जिसके पैरोंके ऊपरका भाग उठा हो वह स्त्री राजभार्या (रानी) होती है ॥ १३ ॥

यस्याः पादतले रेखा सा भवेत्क्षितिपाङ्गना ।

भवेदखण्डभोगा च या मध्याङ्गुलिसङ्गता ॥ १४ ॥

अर्थ—जिस कन्याके चरणतलमें शुभाचिह्न हो तो वह रानी होती है । और जिसकी मध्यमाङ्गुली दूसरी अङ्गुलीसे मिली हुई हो, तो वह चिरकालपर्यन्त सुख भोगती है ॥ १४ ॥

उन्नतो मांसलोऽङ्गुष्ठो वर्तुलोऽतुलभोगदः ।

वक्रो ह्रस्वश्च चिपिटः सुखसौभाग्यभञ्जकः ॥ १५ ॥

अर्थ—जिस बराङ्गनाका अँगूठा मांसल, वर्तुलाकार और उठा हो तो वह अत्यन्त सौभाग्यशालिनी होती है, जिसका अँगूठा वक्र, ह्रस्व और चपटा हो तो उसको सुख नहीं होता है ॥ १५ ॥

दीर्घाङ्गुलीभिः कुलटा कृशाभिरतिनिर्द्धना ।

ह्रस्वाभिः स्याच्च ह्रस्वायुर्भग्राभिर्भग्नवर्तिनी ।

चिपिटभिर्भवेदासी विरलाभिर्दरिद्रिणी ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीकी अङ्गुली दीर्घाकार हो, वह कुलटा होती है । अङ्गुली कृश होनेसे निर्द्धनी होती है और जो ह्रस्व हो तो उस स्त्रीकी आयु (उमर) कम होती है । अङ्गुली भग्नके समान होनेसे वह स्त्री भग्नदशमें अविवाहित रहकर जीवन व्यतीत करती है, चपटी अँगुली होनेसे वह दासी होती है और परस्पर जिसकी सब अँगुली विरल हों तो वह दरिद्रा होती है ॥ १६ ॥

परस्परं पदाङ्गुल्यः समारूढा भवन्ति हि ।

हत्वा वहूनपि पतीन्परप्रेष्या तदा भवेत् ॥ १७ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीकी समस्त अँगुली परस्पर संयुक्त हों वह अनेकपति नष्ट करके दूसरेकी दासी होती है ॥ १७ ॥

समपार्णी शुभा नारी मृदुपार्णी सुदुर्भगा ।

कुलटोन्नतपार्णी स्याद्दीर्घपार्णी च दुःखभाक् ॥ १८ ॥

अर्थ—जिस बराङ्गनाकी पीठ समान हो तो उसके शुभ लक्षण होते हैं, जिसकी

पीठ स्थूल हो वह दुर्भगा होती है, जिसकी पीठ उठी हो, वह कुलटा होती है और जिसकी पीठ दीर्घ हो वह स्त्री दुःखभागिनी होती है ॥ १८ ॥

वृत्तं पिशितसंलग्नं जानुयुग्मं प्रशस्यते ।

निर्मासं स्वैरचारिण्या दरिद्रायाश्च विशुध्यम् ॥ १९ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीकी दोनों जांघें गोलाकार और मांसल हों वह सौभाग्यवती होती है जिसकी दोनों जांघोंमें मांस न हो और जिसकी दोनों जांघें शून्य हों वह दरिद्रा और दुश्चारिणी होती है ॥ १९ ॥

विशिरैः करभाकारैरुरुभिर्मसृणैर्वनैः ।

सुवृत्तै रोमरहितैर्भवेयुर्भूषणैः ॥ २० ॥

अर्थ—जिस बराङ्गनाकी दोनों जांघें गिराशून्य, करिशावकके शुण्डकी समान सुगठित, घन, मसृण, गोलाकार और रोमशून्य हो तो वह स्त्री राजाको प्रिय (प्यारी) लगती है ॥ २० ॥

चतुर्भिरंगुलैः शस्ता कटिवैश्रुतिसंयुतैः ।

समुन्नतनितंबाढ्या चतुरस्रा मृगीदृशाम् ॥ २१ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीके चूतर उठे हुए हों, मोटे और स्थूल हों अत्यन्त विभवशालिनी होती है। किन्तु इसके विपरीत होनेसे दुःखभागिनी होती है ॥ २१ ॥

उदरेणातितुच्छेन विशिरेण मृदुत्वचा ।

योपिद्रवति भोगाढ्या नित्यमिष्टान्नसेविनी ॥ २२ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीके जठर (पेट) का चर्म मुलायम हो, उदर कृश और रोमशून्य हो तो वह अत्यन्त सुख भोगती है और सर्वदा मिष्टान्नभोजन करती है ॥ २२ ॥

कुम्भाकारं दरिद्राया जठरञ्च मृदङ्गवत् ।

कूष्माण्डाभं यवाभञ्च दुष्पूरं जायते स्त्रियाः ॥ २३ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीका जठर (पेट) कुम्भाकार वा मृदङ्गके समान हो तो वह दरिद्रा होती है, जिसका जठर कूष्माण्ड (कुँमड़े) के तुल्य हो वा यवके समान हो तो उसके उदरको कोई भी परिपूर्ण नहीं करसकता है ॥ २३ ॥

निर्लोपं हृदयं यस्याः समं निम्नत्ववर्जितम् ।

ऐश्वर्यं चाप्यवैधव्यं प्रियप्रेमा च सा भवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—जिस वराङ्गनाका हृदय निर्लोक हो और वक्षस्थल जिसका निम्न नहीं है वह ऐश्वर्यशालिनी और चिरकाल सौभाग्यवती रहती है और पतिकी अत्यन्त प्यारी होकर सर्वदा सुखभोग करती है ॥ २४ ॥

यनौ वृत्तौ पृथुद्वौ पीनौ शस्तौ पयोधरौ ।

स्थूलाग्रौ विरलौ सूक्ष्मौ वामोरुणां न शर्मदौ ॥ २५ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीके दोनों स्तन वर्तुल, उच्च, कठिन और स्थूल हों तो वह स्त्री प्रशंसा करनेके योग्य है और दोनों स्तन सूक्ष्म और विरल हों तो अमङ्गलदायक होती है ॥ २५ ॥

दक्षिणोन्नतवक्षोजा पुत्रिणीष्वग्रणीर्मता ।

वागोन्नतकुचा सूते कन्यां सौभाग्यसुन्दरीम् ॥ २६ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीका दहना स्तन उठा हो तो वह पुत्रवती और गृह (घर) की कर्त्री होकर मुखसे जीवन व्यतीत करती है और जिसका बायाँ स्तन उठा हो तो वह सौभाग्यशालिनी होकर सुन्दरी कन्याको उत्पन्न करती है ॥ २६ ॥

मूले स्थूलौ क्रमकृशावग्रेतीक्ष्णौ पयोधरौ ।

सुखदौ बाल्यकाले तु पश्चादत्यन्तदुःखदौ ॥ २७ ॥

अर्थ—स्त्रीके स्तनोंका मूलभाग स्थूल होवै ऊपरका भाग क्रमसे कृश होकर और अग्रभाग अत्यन्त सूक्ष्म हो तो वह स्त्री प्रथम अवस्थामें सुखभोगकर अनन्तर बहुत कष्ट भोगती है ॥ २७ ॥

अम्भोजमुकुलाकारमंगुष्ठांगुलिसम्मुखम् ।

हस्तद्वयं मृगाक्षीणां बहुभोगाय जायते ॥ २८ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीके दोनों अंगुठोंका अग्रभाग पद्मके समान हो तो वह सुखोंको भोगती है ॥ २८ ॥

मृदुमध्योन्नतं रक्तं तलं पाण्योरन्ध्रकम् ।

प्रशस्तं शस्त्ररेखाढ्यमल्परेखं शुभप्रदम् ॥ २९ ॥

अर्थ—स्त्रीगणके करतल यदि शोणितवर्ण हों, छिद्रशून्य हों कोमल हों, अल्प रेखायुक्त हों और शुभरेखाविशिष्ट हों और मध्यस्थल उठाहो तब वह सौभाग्यशालिनी होती है ॥ २९ ॥

विधवा बहुरेखेण विरेखेण दारिद्रिणी ।

भिक्षुकी सुशिराढ्येन नारी करतलेन वै ॥ ३० ॥

अर्थ-स्त्रियोंके करतलमें बहुत रेखा होनेसे वह विधवा होजाती हैं नियमित रेखा न रहनेसे वे दरिद्रा होती हैं और यदि करतलमें शिरा हों तो वे खगिण, भिक्षाद्वारा अपने जीवनका निर्वाह करती हैं ॥ ३० ॥

मत्स्येन सुभगा नारी स्वस्तिकेन तु सुप्रजाः ।

पद्मेन भूपतेः पत्नी जनयेद्भूपतिं सुतम् ॥ ३१ ॥

अर्थ-स्त्रियोंके करतलमें मत्स्यरेखा होनेसे वे सौभाग्यशालिनी होती हैं, स्वस्तिकाकार चिह्न होनेसे वे उत्तम पुत्रको प्रसव (उत्पन्न) करती हैं और पद्मका चिह्न होनेसे राजपत्नी (रानी) होती हैं और उनके पुत्रभी राजा होते हैं ॥ ३१ ॥

अथ वैवाहिकनक्षत्रादिकथनम् ।

रेवत्युत्तरारोहिणीभृगुशिरामूलानुराधामघा-

हस्तास्वातिषु तौलिपष्टमिथुनेष्वहस्तु पाणिग्रहः ।

सप्ताष्टान्त्यवहिःशुभैरुदुपतावेकादशे द्वित्रिगे (आ)

कूरेद्वयायपट्टमैर्न तु भृगौ पष्टे कुले चाष्टमे ॥ ३२ ॥ (इ)

अर्थ-अथ विवाहके विहित नक्षत्रादि कीर्त्तन करतेहैं यथा-रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, मृगशिरा, मूल, अनुराधा, मघा, हस्त और स्वातिनक्षत्रमें, तुला, कन्या और मिथुन लग्नमें विवाह प्रशस्त है । यदि लग्नके मघम, अष्टम और द्वादश स्थानमें शुभग्रह न हों और लग्नसे चन्द्र यदि एकादश द्वितीय अथवा तृतीय स्थानमें स्थित हो और पापग्रहगण तृतीय, एकादश, पष्ठ और अष्टम स्थानमें हों तब शुभदायक होताहै, किन्तु लग्नके पष्ठस्थानमें शुक्र और अष्टम स्थानमें मङ्गल रहनेसे निषिद्ध होताहै ॥ ३२ ॥

(आ) लग्नादित्यनेन सप्तादिना सम्बन्ध इत्यर्थः ।

(इ) वैवाहिकनक्षत्रादीन्याह-रेवतीत्यादि । रेवत्युत्तरादिनक्षत्रेषु कन्यातुलामिथुनेषु उद्यत्सु लग्नेषु पाणिग्रहो विवाहः कार्यः । तथा लग्नात्सप्ताष्टान्त्यवहिःस्थितैः सप्ताष्टादशस्थानानि वर्जयित्वा अन्यत्र स्थितैः शुभग्रहैः तथा लग्नादेकादशद्वितीयतृतीयगते चन्द्रे तथा लग्नात् त्रयायपट्टमैः पापैः पाणिग्रहः कार्य इत्यन्वयः । अत्र च शुक्रस्य पष्ट-स्थाने शुभफलदत्वे प्राप्ते कुजस्य चाष्टमे शुभफलदत्वे प्राप्ते निषेधमाह-न तु भृगौ पष्टे कुजे चाष्टम इति ॥

दंपत्योर्द्विनवाष्टराशिरहिते दारानुकूले स्त्री
चन्द्रे चार्ककुजाकिंशुकवियुते मध्येऽथवा पापयोः।
हित्वा च व्यतिपातवैधृतिदिनं विष्टिश्च रिक्तां तिथिं
क्रराहायनचैत्रपौषाहते लग्नांशके मानुषे ॥ ३३ ॥ (ई)

अर्थ—दम्पतीके अर्थात् वर और कन्याके द्विद्वादश, नवमपञ्चम और पडष्टकादि

(ई) सक्षेपेण दम्पत्योर्गोटादीन्याह—दम्पत्योरित्येव । दम्पत्योरन्योऽन्ये द्विनवाष्टरा-
शिरहितं रहितामिति भावे क्तः । द्विद्वादशनवपञ्चकपडष्टकराशियोटकृत्यागे सति पाणि-
ग्रहः कार्यः इति पूर्वश्लोकेनान्वयः । स्त्री दारस्य वरस्य अनुकूले सति तथातिग्मकिर-
णश्च पुंस इत्यन्तमेव । तथा चाभिधानं स्याद्दारयो माणस्क इति । चन्द्रे च शनिरुजर-
विशुक्रयोगरहिते सति केचित्तु सर्वग्रहायुक्त इत्याहुः । यथा राजमार्त्तण्डे—“ दारिद्र्यं
रविणा कुजे च मरणं सोम्येन नष्टप्रजा क्षीर्मांस्य गुरुणा सिनेन सहिते चन्द्रे च तापतन्य-
कम् । प्रयज्याकसुतेन सेन्दुजगुरौ वाञ्छन्ति केचित्पुनर्द्विद्वादशमृत्युरसद्ग्रहेः शुभयुतर्दी-
र्घप्रवासोऽपि वा ” । तथा राहुयुक्तश्चन्द्रोऽपि न शुभः । यथा राजमार्त्तण्डे—“ राहुसमेते
चन्द्रे प्राप्ता पाणिग्रहन्तु या कन्या।परपुरुषासक्तहृदया नीचैरपि प्रयाति संसर्गम् ” इति ।
अथवा शब्दसमुच्चये । चन्द्रे च पापयोर्मध्ये स्थिते सति विवाहो न कार्य इत्यर्थः । यथा,
तत्रैव—“सकूमे वा शशिनि क्रूरद्वयमध्यगे त्रिलग्रे वा । शुभकर्माणि स्तम्भेच्छन्मेषोपादेशेभरे-
न्द्राणाम्” तथा व्यतिपातवैधृतियोगयुक्तादिनं त्यक्त्वा विष्टिकरणं रिक्ता तिथिश्च त्यज्यता
पाणिग्रहः कार्य इत्यन्वयः । अत्र च—“नन्दायां भार्गवदिने त्रयोदश्या विजन्मनि । तत्र आढ
न कुर्वीत पुत्रदारधनक्षयात्” इति सातकाशश्राद्धनिषेधात् नन्दातिथौ त्रयोदश्याश्च श्राद्धा
सम्भवे विवाहो निषिद्ध इत्यर्थः । क्रराहायनचैत्रपौषाहते इति । क्रराहायनचैत्रपौषाणाहते
त्यागे सतीत्यर्थः । क्रराहाः पापग्रहशराः एतेन सोमबुधगुरुशुक्रवाराः प्रशस्ता इत्यर्थः । अत्र
च नन्दायां भार्गवदिने इत्यादिना सातकाशश्राद्धनिषेधेऽपि शुक्रवारे विवाहः कार्यः शुक्र-
वारस्य शब्दोपात्तत्वे तत्तत्किंविषयधर्मापत्तेः । यथा पञ्चवतिदीपिकाया “पौष्णानुराधमघ-
शोहिणिमूलहस्ताः स्वात्युत्तरामृगशिरश्च शुभाविनाहे । वागस्तया बुधवृहस्पतिशुक्रचन्द्रा
रिक्तेतराश्च तिथयः खलु विप्रिहीनाः ॥” एतेन यत्र सामान्यनिषेस्तत्र सावकाशश्राद्ध-
निषेधः । यत्र शब्दो विशेषविबिस्तत्र कर्तव्यमेवेति निर्गलितार्थः । तथा क्रूरग्रहस्था-
पन सञ्चागदिनम् केचित्तु क्ररायन दक्षिणायनमित्याहुः । तत्र । पौषनिषेधस्यव्यर्थत्वा-
दिति तथा पौषचैत्रमामयोस्त्यागे सतीत्यर्थः । राजमार्त्तण्डे—“मातृत्वेपु विवाहेषु कन्या
संररणेषु च । दशमासाः प्रशस्यन्ते चैत्रपौषविवाजिताः ॥” केचित्तु याम्यायने निषेध-
माहुः । यथा तत्रैव—“ऊर्ध्व दक्षिणमार्गगे दिनपतौ नैव प्रतिष्ठा व्रजेत्कन्येत्याहु समस्त-
शास्त्रकुलो वेद्यो मुनीना मतम् । साध्वीत्युत्तरमार्गगे सुतधनोपेता त्रिहायापरे चैत्र पौष
युत हरेश्च शयन शेष जगुः शुभनम् ॥” इति । अत्र च मुनिमतद्वये वैकल्पित एव शास्त्रार्थः
पौषशिशग्रहणाग्रहणवदिति । अत्र च कन्याया वत्सरशुद्धिमाह । राजमार्त्तण्डे “मासत्र-
याद्धर्मयुग्मवर्षे” इत्यादि । “अग्रर्षा भवेद्वीरी नमर्षा तु रोहिणी। दशवर्षा भवेत्कन्या

न रहनेसे वरके सूर्य और कन्याके चन्द्र शुद्ध रहनेसे और सूर्य, मङ्गल, शनि और शुकके साथ अथवा पापद्वयके मध्यमें चन्द्रकी स्थिति न होनेसे और व्यतीपात, वेधृति, विष्टिकरण, रिक्तातिथि, पापग्रहके वार दक्षिणायन चैत्र और पौषमास त्यागकरके द्विपद लग्नके नवांशमें विवाह प्रशस्त है ॥ ३३ ॥

अथ निषिद्धमासकथनम् ।

आपाढे धनधान्यभोगरहिता नष्टप्रजा श्रावणे
वैशा भाद्रपदे इषे च मरणं रोगान्विता कार्तिके ।
पौषे प्रेतवती वियोगबहुला चैत्रे मदोन्मादिनी
अन्येष्वेव विवाहिता पतिरता नारी समृद्धा भवेत् ॥ ३४ ॥

अर्थ—अब विवाहके निषिद्ध मास कहतेहैं यथा—आपाढमासमें कन्याका विवाह होनेसे धनधान्यभोगसे रहित होतीहैं, श्रावणमासमें विवाह होनेसे सन्तानका नाश होजताहै। इसी प्रकार भाद्रपदमें वैशा, आश्विनमें मृत्यु, कार्तिकमें रोगवती, पौषमें प्रेतगा और वियोगान्विता और चैत्रमासमें विवाह होनेसे वह कन्या मदोन्मत्ता होती है । वैशाख, ज्येष्ठ, मार्गशिर, माघ और फाल्गुन मासमें कन्याका विवाह होनेसे पतिपरायण और समृद्धिशालिनी होतीहैं ॥ ३४ ॥

अथ प्रशस्तमासाः ।

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमार्गःशुभावहाः ।
उक्तस्तथैव चापाढः कथितः शुभदो बुधैः ॥ ३५ ॥

अर्थ—मतान्तरमें कहाहै कि, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, अश्विन और आपाढ मास विवाहमें शुभदायक हैं ॥ ३५ ॥

माङ्गल्येषु विवाहेषु कन्यासंवरणेषु च ।

दश मासाः प्रशस्यन्ते चैत्रपौषविवाजिताः ॥ ३६ ॥ राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, कन्याके शुभ विवाहमें चैत्र और पौष-मासको छोड़कर और दशमासही प्रशस्त हैं ॥ ३६ ॥

—परतस्तु रजस्वला ॥” (नववर्षातुकन्याका । सप्तमि द्वादशे वर्षे ज्ञात तु पाठः) “माता चैव पिता चैव ज्येष्ठभ्राता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् । यस्तां विवाहयेत्कन्यां ब्राम्हणो मदमोहितः । असम्भाष्यो ह्यपाठश्चोयं स विप्रो वृषलोपातिः ।” अतिप्रौढापान्तु कालनियममाह—“ अतिप्रौढा तु या कन्या नानुक्लं प्रतीक्षते ” इति । लग्नांशके मानुष इति कन्यातुलामियुनलग्ने तत्रवांशे च पाणिग्रहः कार्य इत्यर्थः । सौभरिणा तु कुम्भधनुषोरप्युक्तं तदग्रदम् “ कन्यातुलामृन्मिथनेषु साध्वी शेषेष्वसाध्वी धनवर्जिता च ” इति वक्ष्यमाणत्वात् । उक्तञ्च तौलिपष्ठमिथनेष्वन्विति ॥

अथ प्रशस्ताप्रशस्तवारकथनम् ।

गुरुशुक्रबुधेन्दूनां दिनेषु सुभगा भवेत् । ❀

सूर्याकिंभूमिपुत्राणां दिनेषु कुलटा मता ॥ ३७ ॥

अर्थ—अब विवाहके शुभाशुभ वार कहते हैं । बृहस्पति, शुक्र, बुध और सोम-वारमें विवाह होनेसे कन्या सौभाग्यशालिनी होती है और रवि, शनि और मङ्गल वारमें विवाहिता कन्या कुलटा होजाती है ॥ ३७ ॥

अपरञ्च ।

अङ्गारकदिने चैव या कन्या परिणीयते ।

न तृप्तिं पुरुषैर्याति काष्ठैरिव हुताशनः ॥ ३८ ॥

अर्थ—वचनान्तरमें कहा है कि, मङ्गलवारमें यदि कन्याका विवाह हो तो काष्ठ-दाहसे अग्निकी जिस प्रकार तृप्ति नहीं होती है, उसी प्रकार विवाहिता कन्याभी पुरुष द्वारा तृप्तिलाभ नहीं करसकी है ॥ ३८ ॥

अन्यञ्च ।

अर्काकिंभूमिपुत्राणां दिनेषु कलहप्रिया ।

सापत्न्यं समवाप्नोति तुषारकरवासरे ॥ ३९ ॥ (उ)

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें कहा है कि, रवि, शनि और मङ्गल वारमें विवाह होनेसे कन्या कलहकारिणी होती है और सोमवारमें विवाहिता कन्या सपत्नीके साथ कलहकाग्निणी होती है ॥ ३९ ॥

अथ तिथिकथनम् ।

अमावस्यायां रिक्तासु करणे विष्टिसंज्ञके ।

यः करोति विवाहं स शीघ्रं याति यमालयम् ॥ ४० ॥ (ऊ)

अर्थ—अमावस्या रिक्ता (चतुर्थी नवमी और चतुर्दशी) और विष्टि मङ्गल-तिथिमें जो मनुष्य विवाह करे, वह अवश्यही यममवनमें गमन करता है ॥ ४० ॥

* “ गुरुशुक्रबुधेषु विवाहः शुभदः सदा ” इति ।

(उ) “ अङ्गारकदिने नारी कान्तं दृष्ट्वा पलायते । सूर्यपुत्रादिने चैव धनपुत्रविना-शिनी ॥ ऊषा चार्कदिने कन्या धृष्टा भवति निश्चितम् ” इति च ।

(ऊ) तिथयः प्रतिपदश्राष्टमीरिक्ता विना शुभाः इति । “ प्रतिपदुःखजननी द्वितीया प्रीतिवर्द्धिनी । सौभाग्यदा तृतीया च चतुर्थी चार्थनाशिनी । पञ्चम्या सुखवित्तानि षष्ठी वित्तप्रदायिनी । विद्याशीलसुखाप्तिः स्यात्सप्तम्यामफलाष्टमी । नवमी शोकफलदा आनन्दो दशमीदिने । सुखदेकादशी चैव सफला द्वादशी स्मृता ॥ मानपुत्रो त्रयोदश्यां चतुर्दश्यो ॥ दोषदे । फल बहुविध नित्य पञ्चदश्यां विशेषतः ॥ ” इति च ।

रिक्तासु विधवा कन्या दर्शऽपि स्याद्विवाहिता ।

शनैश्चरदिने चैव यदि रिक्ता तिथिर्भवेत् ।

तस्यां विवाहिता कन्या पतिसन्तानवर्द्धिनी ॥ ४१ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-रिक्ता और अमावस्या तिथिमें विवाहिता कन्या विधवा होती है । किन्तु शनिवारमें यदि रिक्ता तिथि हो तब उसमें कन्याका विवाह होनेसे वह कन्या पतिके संसर्गसे बहु संतान प्रसव (उत्पन्न) करती है ॥ ४१ ॥ (ऋ)

तिथिश्चतुर्थी नवमी चतुर्दशी तथाष्टमी देवकुहूदिनञ्च ।

विष्टिव्यतीपातदिवाविवाहे वैधव्यमाप्नोत्यपि देवकन्या ॥ ४२ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, विष्टि भद्रा तिथिमें, व्यतीपातयोगमें और दिनमें विवाह होनेसे नारी देवकन्या होनेसेभी उसको वैधव्य प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

अथ नक्षत्रकथनम् । (ऋ)

पूर्वात्रये विशाखायां शिवाद्यभचतुष्टये ।

ऊढा चाण्डे भवेत्कन्या विधवातो विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, विशाखा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रमें विवाहिता कन्या शीघ्रही विधवा होती है अतएव यह सब नक्षत्रोंमें विवाह निषिद्ध है ॥ ४३ ॥

विष्णुभाद्ये त्रिके चित्रे ज्येष्ठायां ज्वलने त्रिके । ❀

एभिर्विवाहिता कन्या भवत्येव सुदुःखिता ॥ ४४ ॥

अर्थ-श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, ज्येष्ठा, आश्विनी, मरणी और कृत्तिका नक्षत्रमें विवाहिता कन्या अत्यन्त दुःखभागिनी होती है ॥ ४४ ॥

(ऋ) मङ्गलवारमें जया (त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीया तिथि) होनेसे अष्टमी-तिथिका दोष ग्राह्य नहीं होता है ॥

(ऋ) “ मूला मघानुराधा च रोहिण्युत्तरसेवती । हस्ता मृगाशिराः स्वातिविवाहे च सुशोभनाः ” । इति प्रशस्तनक्षत्रम् ।

* ज्वलने त्रिके ज्वलनान्तात्रिके इत्यर्थः इति मार्गवाचार्यः । प्लवने यमे इत्यादि काचित्पाठः ।

कन्यायाः पार्णि मृहीयात्रिषु त्रिपूत्तरादिषु
स्वातौ मृगशिरसोहिण्यां वा ॥ ४५ ॥ (लृ)

इति पारस्कारः ।

अर्थ-पारस्करने कहा है कि, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, स्वाति मृगशिर और रोहिणी इन नक्षत्रोंमें कन्याका विवाह करे । चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा और अश्विनी नक्षत्रमें यजुर्वेदियोंका विवाह होता है । कोई २ यजुर्वेदी आपत्कालमें इन चार नक्षत्रोंका व्यवहार कहते हैं ॥ ४५ ॥

आद्ये मघाचतुर्भागे नैर्ऋतस्याद्य एव च ।

रेवत्यन्तचतुर्भागे विवाहः प्राणनाशकः ॥ ४६ ॥ (लृ)

इति गण्डपादवर्जनम् । *

अर्थ-विवाहमें विहित नक्षत्र मघा, मूल और रेवतीको विशेष कहते हैं यथा मघा और मूलनक्षत्रके प्रथम पादमें और रेवती नक्षत्रके शेष पादमें विवाह होनेसे प्राणनाश होता है अतएव मघा और मूलनक्षत्रके प्रथमपाद और रेवती नक्षत्रका शेष पाद इनको त्याग करके विवाह करे ॥ ४६ ॥

अथ त्याज्ययोगकथनम् ।

व्याघातशूले परिघातिगण्डे गण्डे व्यतीपातपुरन्दरान्ते ॥

पाणिग्रहं यो विदधाति शीघ्रं यमालयं याति सवैधृतौ च ॥ ४७ ॥ (ए)

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ-विवाहमें नित्य योगोंमेंसे कौन योग त्याज्य होता है अब उसको कहते हैं । व्याघात, शूल, परिघ, अतिगण्ड, गण्ड, व्यतीपात, इंद्र और वैधृतियोंमें विवाह होनेसे शीघ्रही यमालयको जाता है, अतएव उक्त समस्त योगमें विवाह न करना चाहिये ॥ ४७ ॥

(लृ) चित्राश्रवणधनिष्ठाश्विनिनक्षत्र यज्ञेर्दिविषयमापदिषय वेति । सत्कृत्यमुक्ता चत्त्याम् ।

(लृ) गण्डपादवर्जनमाहु-आद्यइति । मघाया आद्ये चतुर्थभागे प्रथमपादे नैर्ऋतस्य मूलायाश्च प्रथमे पादे रेवत्या अन्तपादे विवाहः प्राणनाशकः अन्येषां गण्डानामवैवाहिकनक्षत्रत्वेन स्वत एव निषेध इति ।

* “ मासान्ते म्रियते कन्या तिथ्यन्ते स्यादप्राणिणी । नक्षत्रान्ते च वैधव्य वर्षान्ते वर्गनाशनम् ” इति ॥

(ए) “ वैधृतिकैः परिणीता विकलेन्द्रिया व्यतीपाते । विष्टां मरणं नित्यं सुमगा पश्यन्ति करणेषु । ध्रुवगणैः शकुनादौः परिगृह्यद्भुवं मृत्युम् ॥ ”

अन्यच्च ।

कुलच्छेदो व्यतीपाति परिधे स्वामिधातिनी ।

वैधृतौ विधवा नारी विपदाहोऽतिगण्डके ॥ ४८ ॥

व्याघाते व्याधिसंघातः शोकार्त्ता हर्षणे तथा ।

शूले च व्रणशूलं स्याद्व्रण्डे रोगभयं तथा ॥ ४९ ॥

विष्कम्भेऽप्यहिदंशः स्याद्वज्रके मरणं भवेत् ।

एते वै दारुणाः सर्वे दश योगाः प्रकीर्तिताः ॥ ५० ॥

इति रत्नमालायाम् ।

अर्थ—रत्नमालानामक ग्रन्थमें लिखा है कि, व्यतिपातयोगमें विवाह होनेसे कुलच्छेद होता है, इसी प्रकार परिधयोगमें स्वामीका नाश, वैधृतिमें विधवा, अतिगण्डमें विपदाह, व्याघातमें समस्त रोग, हर्षणमें शोक, शूलमें व्रण और शूलरोग, गण्डमें रोगभय, विष्कम्भमें सर्पदंशन और वज्रयोगमें विवाह होनेसे मृत्यु होती है, यह दशयोग अतिभयानक हैं अतएव इनमें कदापि विवाह न करे ॥ ४८-५० ॥

अथ लग्नकथनम् ॥

कन्यातुलाभृन्मिथुनेषु साध्वी शेषेष्वसाध्वी धनवर्जिता च ।

निन्द्येऽपि लग्ने द्विपदांशइष्टःकन्यादिलग्नेष्वपि नान्यभागः॥५१॥(ऐ)

अर्थ—कन्या तुला और मिथुन लग्नमें विवाहिता कन्या साध्वी होती है, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ, मीन, मेष, वृष, कर्क और सिंह लग्नमें विवाहिता नारी असाध्वी होती है, किन्तु इनके बीचमें विशेष यही है कि, कन्या, तुला और मिथुन लग्नके द्विपदांश (१) इष्टफलदायक होकर साध्वीत्व प्रदान करती है और अन्यभागमें केवल साध्वीत्व प्रदान करती है । और निन्द्य लग्नके मध्यमेंभी द्विपदांश इष्ट फल दान करती है; किन्तु कन्यादि लग्नके मद्राव होनेसे और लग्नके द्विपदांश शुभ नहीं होता है ॥ ५१ ॥

अपरञ्च ।

व्यूढा धनुषि कुलटा तत्पूर्वाद्धिं सतीत्यपरे जगुः ॥ ५२ ॥

(ऐ) विहितलग्ननशांशानाह—कन्येति । निन्द्ये लग्नेः कन्यादिव्यतिरिक्तलग्ने द्विपदानां कन्यादीनां नवांश इष्टःकन्यादिलग्न्यादिभावे तत्रांशे वा कस्तव्यमित्यर्थः । तथा कन्यादिलग्न्येष्वपि अन्यनशांशे न कार्यः किन्तु तेषां नवांश एव इति ।

(१) मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनके पूर्वाद्धिना नाम द्विपद है और इनके नशांशोंको द्विपदांश कहते हैं ॥

अर्थ—धन लग्नके परार्द्धमें विवाहिता कन्या कुलटा होती है, किन्तु पूर्वार्द्धमें विवाह होनेसे सती होती है ॥ ५२ ॥

अन्यच्च ।

कन्यातुलामन्मथांशे भवेत्पाणिग्रहो यदि ।

तद्रेक्षाणे च कन्याया वैधव्यं मरणं भवेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, कन्या, तुला और मिथुनके अपने २ नवांशमें और अपने २ द्रेक्षाणमें कन्या परिणीता होनेसे उसको वैधव्य और मृत्यु प्राप्त होताहै, अतएव कन्यादि लग्नके अपने २ नवांशमें और द्रेक्षाणमें विवाह निषिद्ध है ॥ ५३ ॥

अथ युतयामित्रवेधादेवर्जनकथनम् ।

पञ्चपाणिग्रहे दोषा वर्जनीयाः प्रयत्नतः ।

वैधव्यं कुलटामृत्युर्दारिद्र्यमनपत्यता ॥ ५४ ॥

युतयामित्रवेधो च तथा सप्तशलाकजः ।

इन्द्रधूमगतः पापः खर्जुरश्चापि पञ्चमः ॥ ५५ ॥

अर्थ—विवाहमें युतवेध, यामित्रवेध, सप्तशलाका, इन्द्रधूमगतपाप और खर्जुरवेध यह पांच योग अवश्यही वर्जनीय हैं, क्योंकि युतवेधसे वैधव्य प्राप्त होताहै, इसी प्रकार यामित्रवेधसे कुलटादोष, सप्तशलाकासे मृत्यु, इन्द्रधूमगतपापसे दरिद्रता और खर्जुरवेधसे वैधव्यत्व प्राप्त होताहै ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अथ यामित्रवेध ।

रविमन्दकुजाक्रान्तं मृगाङ्गात्सप्तमं त्यजेत् ।

चूडाविवाहयात्रासु गृहकर्मप्रवेशने ॥ ५६ ॥ (ओ)

अर्थ—चन्द्रमा जिस राशिमें हो उस स्थानसे सप्तमराशिमें यदि रवि, शनि अथवा मङ्गलका वास हो तब यामित्रवेध होताहै, इसमें चूडा, विवाह, गृहारम्भ और गृह-प्रवेश न करना चाहिये ॥ ५६ ॥

(ओ) सप्तमस्थे पापे चन्द्रवेधमाह—स्वीति । अस्य चन्द्रस्य सप्तमे रविः शनिः कुजोऽपि तिष्ठति त चन्द्र विवाहादिषु वर्जयेदिति तात्पर्यम् । तथाच राजमार्त्तण्डे ‘पापात्सप्तमगः शशी’ इत्यादि । मित्रगृहादौ दोषाभावमाह—राजमार्त्तण्डः । “मित्राश्रमे मित्रसमीक्षितो वा मित्रांशके मित्रसमाश्रितो वा । क्रूरग्रहादृष्टगणोऽपि सोमः समीहितार्थं वित्तरेवराणाम् ” तथा । “यातः स्वमित्रमवने सुहृदीक्षितो वा मास्वन्नमूखविमलीकृत-” दिहसुखो वा । यामित्रदोषमपहत्य पर करोति सोमः समीहितफलं खलु मानवानाम् ” इति ।

यामित्रसंस्थे प्रियते महीने प्रजाविहीना कुलटा च सूर्ये ॥

सुरारिपूज्ये रजनीकरे वा कन्यान्यरक्ता पतिघातिनी च ॥५७॥

इति सारसग्रहधृतवचनम् (औ)

अर्थ-यामित्र स्थानमें (चन्द्रके सप्तम) मङ्गल होनेसे मृत्यु होती है, इसी प्रकार सूर्य रहनेसे सन्तानहीना और व्यभिचारिणी होती है और चन्द्र शुक्रके साथ युक्त होनेसे नारी पर पुरुषके वशमें होकर अपने पतिका वध करती है । यह वचन दीपिकामें विवाहप्रश्नसम्बन्धमें लिखा है ॥ ५७ ॥

अथ यामित्रवेधप्रतिप्रसवमाह ।

यस्मिन्क्षेत्रे वसेच्चन्द्रस्तस्मादक्षे चतुर्दशे

पापग्रहे स्थिते चैव यामित्रवेध इष्यते ॥ ५८ ॥

इति सारसग्रहे ।

अर्थ-अब यामित्रवेधके प्रतिप्रसव कहते हैं । जिस नक्षत्रमें चन्द्र स्थित हो उस नक्षत्रसे चौदहवें नक्षत्रमें यदि पापग्रह हो तोभी यामित्रवेध होता है ॥ ५८ ॥

मूलत्रिकोणनिजमन्दिरगोऽथ पूर्णो

मित्रक्षसौम्यगृहगोऽथ तदीक्षितो वा ।

यामित्रवेधविहितानपहृत्य दोषान्

दोषाकरः सुखमनेकविधं विधत्ते ॥ ५९ ॥

अर्थ-चन्द्रमा यदि मूलत्रिकोण (*) में वा अपने घरमें (कर्कमें) स्थित हो, पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हो मित्र (सूर्य वा बुध) के घरमें हो, अथवा शुभग्रहके क्षेत्रमें स्थित हो वा शुभग्रहकी दृष्टि हो तब यामित्रवेधका दोष नष्ट होकर शुभफल होता है ॥ ५९ ॥

अथ यामित्रयुतवेधः ।

पापात्सप्तमगः शशी यदि भवेत्पापेन युक्तोऽथवा

(औ) योगान्तरमाह-यामित्रेति । सप्तमस्थे मङ्गले कन्या प्रियते सूर्ये सप्तमस्थे पुत्र विहीना कुलटा च स्यात् कुलटात्वञ्च लग्ने सूर्ये चोति बोद्धव्यम् । तथाच “ दिवसमणि सप्तमगो लग्नात्कन्या मृतप्रजां कुर्यात् । कुलटामुदयोपेतः कुरते नैवान् सन्देहः ” ॥ रजनीकरे वेति वाशब्दः समुच्चये शुक्रे चन्द्रे मिलित्वा सप्तमस्थे परपुरुषगामिनी पतिघातिनी च स्यात्तथा च देवज्ञाह्वयमायम् । “सङ्करो कुरतोऽमृतांशुशशिर्जो पथे खिप दुर्भगा-कुर्वते शशिभार्गवो च कुलटामाये च जायास्यति ” इति ॥

• चन्द्रकी मूलत्रिकोण वृषराशि है ।

यत्नेनाशुविवर्जयेन्मुनिमतो दोषोऽप्ययं कथ्यते ।

यात्रायां विपदो गृहे सुतवधः क्षौरे च रोगोद्भव-

श्चोद्वाहे विधवा व्रते च मरणं शूलञ्च पुंकर्माणि ॥ ६० ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—अब यामित्रयुतवेध कहते हैं । पापग्रहसे सप्तम स्थानमें यदि चन्द्र स्थित हो तब यामित्रवेध होता है और पापग्रहके साथ युक्त होनेसे युत वेध होता है । युतवेधमें यात्रा करनेसे अनिष्ट होता है, इसी प्रकार गृहारम्भमें पुत्र-नाश, चूडाकर्ममें रोग, विवाहमें वैधव्य, उपनयन (यज्ञोपवीत) में मरण और पुंसवन करनेसे शूलरोग उत्पन्न होता है । अतएव उक्त सब कार्य युतवेधमें न करना चाहिये ॥ ६० ॥

अन्यच्च ।

यत्र राशौ भवेच्चन्द्रोऽशुभग्रहो यदा भवेत् ।

युतिदोषस्तदा ज्ञेयो विना शुक्रं शुभे शुभम् ॥ ६१ ॥

इति ज्योतिषसारे ।

अर्थ—ज्योतिःसारनामक ग्रन्थमें लिखा है कि, जिस राशिमें चन्द्र स्थित हो उसी स्थानमें अशुभ ग्रहके स्थित होनेसे युतिवेध होता है और शुक्रमित्र शुभ ग्रह चन्द्रके साथ होनेसे शुभप्रद होता है ॥ ६१ ॥

फलम् ।

रविणा संयुते हानिर्भौमेन निधनं शशी ।

करोति मूलनाशं च राहुकेतुशनैश्वरैः ॥ ६२ ॥

इति ज्योतिषसारे ।

अर्थ—अब युतिवेधका फल कहते हैं । चन्द्र रवियुक्त होनेसे हानि होती है । इसी प्रकार मङ्गलयुक्त होनेसे मृत्यु और राहु, केतु वा शनैश्वर युक्त होनेसे मूलनाश होजाता है ॥ ६२ ॥

अथ युतियामित्रादीनां प्रतिप्रसवः ।

वृषाजालिधनुःकर्कसिंहहीने च चन्द्रमाः ।

न दोषः पापयोर्मध्ये युतियामित्रयोरपि ॥ ६३ ॥ (अं)

अर्थ—वृष, मेष, वृश्चिक, धन, कर्क, सिंह वा मीन राशिमें चन्द्रमा होनेसे

(अ) “ स्वक्षेत्रगः स्वोच्चगो वा मित्रक्षेत्रगतो यदि । युतिदोषाय न भवेद्दम्पत्योऽश्रयसे सदा ॥ ” इति ग्रन्थान्तरे युतिवेधप्रतिप्रसवः ।

यदि युतिवेध वा यामित्रवेध हो तब उसका दोष नहीं होता है और पापद्वयमध्य-
गत चन्द्र यदि उक्त सब राशियों में स्थित होय तबभी दोष नहीं होता है ॥ ६३ ॥

अथ सप्तशलाकावेधः ।

कृत्तिकादिचतुःषतरेखाराशौ परिभ्रमन् ।

ग्रहश्चेदेकरेखस्थो वेधः सप्तशलाकजः ॥ ६४ ॥ (अः)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—कृत्तिकादि अष्टाईस रेखाओं में चन्द्र नित्यही भ्रमण करता है किन्तु चन्द्रा-
तिरिक्त ग्रह यदि वेधराशि वा उसके वेधनक्षत्रों में स्थित हो तब सप्तशलाकावेध
होता है । पाठकगणके हितार्थ आगे सप्तशलाकाचक्र निर्माण किया है ॥ ६४ ॥

अथ सप्तशलाकाचक्रम् ।

सप्तसप्तविलिखेत्तुलिकास्तिर्यग्गूर्ध्वमथ कृत्तिकादिकम् ।

लेखयेदभिजिता समन्वितं चैकरेखखगनेन विध्यते ॥ ६५ ॥

इति राजमार्तण्डः ।

अर्थ—ऊर्ध्वभावे से सात और तिर्यग्भावे से सात रेखा खींचे ऊर्ध्व रेखासे कमा-
नुसार कृत्तिकादि नक्षत्र लिखे अभिजित् नक्षत्रके साथ गणना करनेसेही रेखा
पूर्ण होती हैं एक रेखाओं ग्रह स्थित होनेसे वेध होता है ॥ ६५ ॥

| ऊ. रो. मृ. आ. पु. मू. आ. | | | | | |
|--------------------------|---|---|---|---|-------|
| म | — | ✱ | ✱ | ✱ | —म. |
| अ | — | ✱ | ✱ | ✱ | —पू. |
| रे. | — | ✱ | ✱ | ✱ | —उ. |
| उ | — | ✱ | ✱ | ✱ | —ह |
| पू | — | ✱ | ✱ | ✱ | —चि |
| श | — | ✱ | ✱ | ✱ | —ग्रा |
| घ | — | ✱ | ✱ | ✱ | —वि |
| अ. म. उ पू मू. त्ये. अ | | | | | |

अश्विनीपूर्वफाल्गुन्या रेवत्योत्तरफाल्गुनी ।

हस्तेनोत्तरभाद्रश्च पूर्वभाद्रश्च चित्रके ॥ ६६ ॥

(अः) सप्तशलाकावेधमाह—कृत्तिकादि कृत्ता अनभिजित्त्रयत्रेण सार्द्धं चतुःषतरेखा
राशौ अष्टाविंशतिरेखासमूहे ऊर्ध्वोपः क्रमेण परिभ्रमन् ग्रहो यथेकरेखाख्यः स्यात्तदा सप्त
शलाकजो वेधः स्यात् ।

स्वात्याशतभिषा विद्धा विशाखा च धनिष्ठया ।

कृत्तिका श्रवणाविद्धा रोहिण्यभिजिता तथा ॥ ६७ ॥

मृगशीर्षोत्तरापाढे पूर्वापाढे तथार्द्रया ।

पुनर्वसौ च मूले च तथा पुष्यं च ज्येष्ठया ॥ ६८ ॥

आश्लेषयानुराधा च मघया भरणी तथा ।

विद्वान्येतानि राजेन्द्र अश्विन्यादिभतःक्रमात् ॥ ६९ ॥

अर्थ—किस नक्षत्रके साथ किस नक्षत्रका वेध होता है अब उसको वर्णन करते हैं यथा—आश्विनीके साथ पूर्वाफाल्गुनीका वेध होता है इसी प्रकार रेवतीके साथ उत्तराफाल्गुनीका, हस्तके साथ उत्तराभाद्रपदका, चित्राके साथ पूर्वाभाद्रपदका, स्वातिके साथ शतभिषाका, विशाखाके साथ धनिष्ठाका, कृत्तिकाके साथ श्रवणाका, रोहिणीके साथ अभिजितका, मृगशिरके साथ उत्तरापाढका, आर्द्राके साथ पूर्वापाढका, पुनर्वसुके साथ मूलका, पुष्यके साथ ज्येष्ठाका, आश्लेषाके साथ अनुराधाका और मघाके साथ भरणीनक्षत्रका वेध होता है । इस वेधको अश्विन्यादिक्रमसे जानना चाहिये ॥ ६६-६९ ॥

अन्यच्च ।

हयग्री अभिजिद्विधी मृगशिरोविश्वौ कवन्धेश्वरौ

रक्षोऽद्री गुरुवज्रिणावथ च मित्राही मघासूरजौ ।

योन्यश्वावथ चार्यमान्तगतभे हस्ताहिबुधावज-

त्वष्टारौ वरुणानिलौ वसुविशाखे भद्राभिन्ने इमे ॥ ७० ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ—अब ज्योतिषसारके अनुसार सप्तशलाकाचक्रमें किस नक्षत्रके साथ किस नक्षत्रका वेध होता है, उसको कीर्तन करते हैं । श्रवणनक्षत्रके साथ कृत्तिकानक्षत्रका वेध होता है, इसी प्रकार अभिजितके साथ रोहिणीका, उत्तरापाढके साथ, मृगशिरका, पूर्वापाढके साथ, आर्द्राका, मूलके साथ पुनर्वसुका, ज्येष्ठाके साथ पुष्यका, अनुराधाके साथ आश्लेषाका, मघाके साथ भरणीका, पूर्वाफाल्गुनीके साथ आश्विनीका, उत्तराफाल्गुनीके साथ रेवतीका, हस्तके साथ उत्तराभाद्रपदका, चित्राके साथ पूर्वाभाद्रपदका, स्वातिके साथ शतभिषाका और विशाखानक्षत्रके साथ धनिष्ठानक्षत्रका वेध होता है ॥ ७० ॥

अथाभिजितक्षत्रकथनम् ।

वैश्वस्य चतुर्थांशे श्रवणादौ लितिकाचतुष्के च ।

अभिजित्तस्थे संचरे विज्ञेया सा रोहिणीविद्या ॥७१॥ (क)

अर्थ-उत्तराषाढनक्षत्रका शेष चतुर्थांश (चौथापाद) और श्रवणनक्षत्रके आदिके चार दण्डका नाम अभिजित् है इस अभिजित्नक्षत्रमें ग्रह रहनेसे रोहिणीके साथ वेध होता है ॥ ७१ ॥

अथ सप्तशलाकावेधफलम् ।

यस्याः शशी सप्तशलाकाभिन्नः पापैरपापैरथवा विवाहे ॥

रक्तांशुकैव रुरोदमाना श्मशानभूमिं प्रमदा प्रयाति ॥७२॥ (ख)

अर्थ-जिसके विवाह समय सप्तशलाकाचक्रमें चन्द्रके साथ पापग्रहका वा शुभ-ग्रहका वेध हो तब वह कन्या विवाहके रक्तवस्त्रपीरधानपूर्वक रोदनकरती हुई श्मशानभूमिमें अग्निमें प्रवेश कर गमन करती है ॥ ७२ ॥

अन्यथा ।

चन्द्रातिरिक्तवचरैर्यद्यत्र वधसम्भवः ।

चिताभूमिं विशेषरारी भर्ता च प्रविशेद्वनम् ॥ ७३ ॥

इति सप्तशलाकावेधफलम् ।

अर्थ-विवाहसमय सप्तशलाकाचक्रमें चन्द्र भिन्न ग्रहके साथ यदि वेध हो तब वह कन्या चिताभूमिमें प्रवेश करती है अर्थात् उसकी मृत्यु होती है और उक्त कन्याका स्वामीभी वनकी निःशलाका है ॥ ७३ ॥

अथ इन्द्रघ्नमगतपापकथनम् ।

इन्द्रघ्नमगान्पापान्वजयेन्नैघनं विलग्नञ्च ।

चन्द्रञ्च निधनसंस्थं सर्वारम्भप्रयोगेषु ॥ ७४ ॥ (ग)

अर्थ-अब इन्द्रघ्नमगत पाप कहते हैं । चन्द्रके अष्टमस्थानमें पापग्रह होनेसे

(क) अभिजित्नक्षत्रस्थानमाह-वैश्वस्येति । वैश्वस्य उत्तराषाढायाः चतुर्थे पादे श्रवणाया आदिलितिकाचतुष्के प्रथमचतुर्दण्डे अभिजित्नक्षत्र तत्रस्थे ग्रहे रोहिणी विद्या ज्ञेया इति ।

(ख) विवाहे सप्तशलाकादोषमाह-यस्याइति सुगममिति ।

(ग) सर्वकर्मसु चन्द्रलघ्नयोर्वर्जनमाह-इन्द्रघ्नमिति । इन्द्रोः लग्नादष्टमस्थाने च गतान् चन्द्रसङ्गतान् लग्नाष्टमगतांश्च पापान् वजयेत् । पापानिति बहुवचनविशेषितम् । यथा राजमार्त्तण्डे-“निधन निधनविलग्नं वित्तनाशो विनाशगे हिमगो । पापग्रहे निधनगे चन्द्र-

उसको इन्द्रधूमगत पाप कहते हैं, इस इन्द्रधूमगत पापको, लग्नाष्टमगत पापको और अष्टमस्थ चन्द्रको समस्त कार्योंमें परित्याग करना चाहिये ॥ ७४ ॥

अन्यच्च ।

जन्मक्षान्निधने शशी यदि भवेत्लग्नाच्च पापोऽष्टमः

पापात्सप्तमगोऽथवा हिमकरः पापेन वा संयुतः ।

लग्नाच्चाष्टमगं नृणां यदि भवेत्स्वाज्जन्मलग्नात्तदा

यात्रापुंसवनव्रतादिषु महान्दोषो विवाहे ध्रुवम् ॥ ७५ ॥

इति भोजदेवः ।

अर्थ—मनुष्यकी जन्मराशिसे अष्टमस्थानमें चन्द्रमा हो, लग्नके आठवें पापग्रह हो वा पापग्रहके सातवें चन्द्रमा हो या पापग्रहयुक्त चन्द्रमा हो अथवा जन्मलग्नसे अष्टमलग्नमें यात्रा, पुंसवन उपनयन और विवाहादि शुभकार्य करनेसे अत्यन्त अमङ्गल होताहै ॥ ७५ ॥

इन्द्रधूमगतफलम् ।

१ अष्टमस्थः कुजश्चैव नेत्ररोगं ददाति हि ।

मृत्युं मार्त्तण्डजो दद्यान्मार्त्तण्डो बुद्धिनाशनम् ॥ ७६ ॥

सैहिकेयो महाव्याधिं चन्द्रान्निधनगो यदा ।

चन्द्रान्निधनगाः पापा लग्नाद्वा निधनोपगाः ॥

कर्तुर्मृत्युप्रदा नित्यं सर्वदा शान्तिकर्मसु ॥ ७७ ॥

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखाहै कि, विवाहादि शुभकर्ममें चन्द्रसे आठमें मङ्गल होनेसे नेत्ररोगको प्रदान करतेहैं, शनैश्चर चन्द्रके आठवें होनेसे मृत्युदान करते हैं, इसी प्रकार अष्टम सूर्यसे बुद्धिका नाश, अष्टम राहु होनेसे महाव्याधिरोगसे युक्त होताहै और शुभकर्ममें लग्नके आठवें पापग्रह होनेसे कर्त्ताकी मृत्यु होतीहै। ७६।७७

—गतेऽप्यनेकवैधर्म्यम् ॥” तथा “सक्रूरे वा शशिनि क्रूरद्वयमध्यमे विलग्नौ वा। शुभकर्माणि शुभेच्छुर्नवोपीदशेत्रेन्द्राणाम् ॥ यस्य व्रतोपनयनादिशुभक्रियासु क्रूरोऽष्टमो भवति वाथ शशी विलग्रात् ।” इत्यादिलिखित्यमाणवचनञ्च । इन्द्रोऽष्टमगतान् पापान् वर्जयेदिति तथा जन्मराशेरष्टम लग्न वर्जयेत्तया इष्टलग्नस्याष्टमस्य चन्द्रश्च वर्जयेत् । अत्र सीमरिः जन्मराशेरष्टमस्थमिति वदाति तत्र तस्य गोचराशुद्धत्वेन स्वत एव निवृत्तत्वात् पुनर्विपेधोऽनर्थकः स्यादिति । तथाच राजमातेण्डे “यस्य व्रतोपनयनादिशुभक्रियासु क्रूरोऽष्टमो भवति वाथ शशी विलग्रात् । तस्याचिरणे मरणं परिकीर्तयन्ति सन्तः सुरेन्द्रसचिवोऽपि च कण्ठस्थे” इति ।

मृत्युस्थाने शशांकाब्जनयति च भयं तिग्मरोचिर्नराणां
बन्धूनां शोकमुग्रं विविधगदभयं भूमिजो भूमिनाशम् ।
मार्त्तण्डिवज्रपातं जठरगदभयं सर्वदा शान्तिकर्म
तस्मात्पीयूषभानोर्निपतनभवने नैव पापाः प्रशस्ताः ॥ ७८ ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणि ग्रन्थमें लिखा है कि, शुभकार्यमें चन्द्रके अष्टमस्थानमें सूर्य होनेसे अतिशोक और अनेक प्रकारका रोगमय होता है. मङ्गलचन्द्रके आठवें होनेसे भूमिका नाश होता है, शनैश्चर चन्द्रके आठवें होनेसे मनुष्यके मस्तकमें वज्रपात और उदरपीडा होती है अतएव चन्द्रके अष्टमस्थानमें पापग्रह होनेसे शुभकार्य न करना चाहिये ॥ ७८ ॥

चन्द्रान्निधनगे पापे निधनं परिकीर्तितम् ॥ ७९ ॥

इति भैरवभट्टः ।

अर्थ—चन्द्रके अष्टमस्थानमें पापग्रह होनेसे कर्त्ताकी मृत्यु होती है. इसप्रकार भैरवभट्टने कहा है ॥ ७९ ॥

इन्द्रष्टमप्रतिप्रसवमाह ।

चन्द्रस्थितक्षाद्यदि षोडशक्षं सूर्यारमन्दाः समुपावहन्ति ।

तदा विवाहं व्रतबन्धवृद्धं सर्वं न कार्यं मुनयो वदन्ति ॥ ८० ॥

अर्थ—अब इन्द्रष्टमगत पापके प्रतिप्रसव कहते हैं—कर्मकालमें चन्द्र जिस स्थानमें हो उस नक्षत्रसे षोडश (१६) नक्षत्रमें यदि सूर्य, मङ्गल वा शनि स्थित हों तभी दोष होता है । इसमें विवाह, उपनयन और वृद्धादि शुभकर्म न करना चाहिये किन्तु षोडश नक्षत्र गत न होनेसे विवाहादिकर्ममें कुछ बाधा नहीं होती है ॥ ८० ॥

अथ सर्जूरवेधः ।

तिथ्यङ्गवेदैकदशोनविंशभैकादशाष्टादशविंशसंख्याः ।

इष्टोडुना सूर्ययुतोडुना च योगादमूश्चदशयोगभङ्गः ॥ ८१ ॥ (घ)

अर्थ—अब सर्जूरवेधका कीर्त्तन करने हैं । चन्द्रनक्षत्रके साथ सूर्यका नक्षत्र

(घ) विद्वानक्षत्रमाह—तिथ्यङ्गेति । इष्टनक्षत्रेण सूर्याक्रान्तनक्षत्रेण च योगात् यदि तिथ्यङ्गादयोऽमूद्देशसंख्या भवन्ति तदा दशयोगभङ्गः स्यात्सप्तविंशाधिके तु सप्तविंशं वर्जयित्वा शेषेण दशयोगभङ्गो विचार्यः । यथा राजमार्त्तण्डे “ साध्यक्षमिन्दुयुतमर्क-समन्वितञ्च भागः प्रदेय उद्धभिर्दशयोगवक्रम् ” इति ।

योगकरनेसे, यदि पन्द्रह, छः चार, एक, दश, उन्नीस, सत्ताईस, ग्यारह, अठारह अथवा बीस इन संख्यामेंसे जो कोई अङ्क हो तभी खर्जूरवेध होता है खर्जूरवेधका नामान्तर दशयोगमङ्ग है और इसको विद्वनक्षत्रभी कहते हैं ॥ ८१ ॥

ऊर्ध्वमेका तथा रेखा तिर्यग्रेखास्त्रयोदश ।

आश्लेषां मस्तके दत्त्वा दक्षिणाक्रमयोगतः ॥ ८२ ॥

मघादीन्यपि देयानि चेत्थं खर्जूरवेधतः ।

इष्टनक्षत्ररेखायां यदि तिष्ठति भास्करः ।

वेधस्तदा स्यान्नोद्वाहः कायस्तत्र कदाचन ॥ ८३ ॥

इति ज्योतिःसारः ।

अर्थ—अब खर्जूरवेध देखनेकी प्रणाली (रीति) लिखते हैं । ऊर्ध्वदिशामें एक रेखा खींचकर तिर्यग्भावमें तेरह रेखा खींचना चाहिये । अनन्तर ऊर्ध्वरेखाके ऊपरमें आश्लेषानक्षत्र रखकर दक्षिणावर्तमें मघादिनक्षत्रको स्थापन करै, उसको ही खर्जूरवेध कहते हैं । फर्मकालीन नक्षत्र और सूर्यभोग्य नक्षत्र एक रेखामें पड़नेसे खर्जूरवेध होता है, इसमें विवाह कदापि न करना चाहिये ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

पाठकवर्गके सुभीतार्थ नीचे खर्जूरवेधका चक्र लिखा है—

श्रे

| | |
|-----|------|
| पु. | म. |
| पु. | पु. |
| जा. | उ. |
| मृ. | द. |
| शे. | वि. |
| कु. | म्या |
| म. | वि. |
| अ. | अ. |
| रे. | त्ये |
| उ. | म. |
| पु. | पु. |
| शे. | उ. |
| घ. | अ. |

अ.

• कर्णवेधे विवाहे च व्रते पुंसवने तथा ।

प्राशने चाद्यचूडायां विद्धमृक्षं विवर्जयेत् ॥ ८४ ॥ (ङ)

अर्थ—कर्णवेधमें, विवाहमें, उपनयनमें, पुंसवनमें, अन्नप्राशनमें और चूडा-
कर्ममें विद्धनक्षत्रोंको परित्यागकरै ॥ ८४ ॥

अथ खर्जूरवेधप्रतिप्रसवः ।

आद्यपादे स्थिते सूर्ये तुरीयांशं प्रदुष्यति ।

द्वितीयस्थे तृतीयन्तु विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ८५ ॥ (च)

अर्थ—खर्जूरवेध वा दशयोगमङ्गके प्रतिप्रसव वर्णन करते हैं—सूर्य यदि नक्षत्रके
प्रथमपादमें स्थित हो तब कर्मकालीन नक्षत्रके चतुर्थपाद और द्वितीयपादमें रह-
नेसे तृतीयपाद दूषित होता है और चतुर्थपादमें सूर्य स्थित हो तब प्रथमपादमें
और तृतीयपादमें रहनेसे द्वितीय पाद दूषणीय होता है ॥ ८५ ॥

स्पष्टमाह ।

आद्यांशेन चतुर्थांशं चतुर्थांशेन चादिमम् ।

द्वितीयेन तृतीयन्तु तृतीयेन द्वितीयकम् ॥ ८६ ॥

इति स्वरोदये ।

अर्थ—वचनान्तरमें लिखा है कि, प्रथमपादमें सूर्य स्थित होनेसे चतुर्थांश
त्याज्य है, चतुर्थांशमें रहनेसे प्रथमपाद दूषणीय है और द्वितीयपादमें रहनेसे
तृतीयपाद दूषित है और तृतीयपादमें रहनेसे, द्वितीयपाद दूषणीय होता है ॥ ८६ ॥

अथ सुतहिबुकयोगः ।

सुतहिबुकविषद्विलम्बधर्मेऽ-

प्वमरगुरुर्दानवार्चितो वा ।

यदशुभमुपयाति तच्छुभत्वं

शुभमपि वृद्धिमुपैति तत्प्रभावात् ॥ ८७ ॥ (छ)

अर्थ—वैवाहिक लग्नें वा लग्नके पांचवें, चौथे, दशवें अथवा नववें स्थानमें

(ङ) विद्धनक्षत्रवर्जनमाह—कर्णवेध इति । प्राशने अन्नप्राशने आद्यचूडाया प्रथम-
क्षार इत्यर्थः । विद्ध दशयोगवेधमित्यर्थः । यथा गजमात्तण्डे—“ विवाहेऽर्धप्रतिष्ठाया
व्रते पुंसवने तथा । कर्णवेधादिचूडाया विद्धमृक्षं विवर्जयेत् ” इति ॥

(च) विद्धनक्षत्रस्य विशेषमाह—आद्य इति । आक्रान्तनक्षत्रस्य प्रथमपादस्थिते
सूर्ये इष्टनक्षत्रस्य चतुर्थपादो दुष्यति । अन्यत्पादत्रयमदृष्टमिति तात्पर्यम् । एव द्वितीय
पादस्थे सूर्ये तृतीयपादो दुष्यति ततोऽन्यथा विपरीत चतुर्थपादस्थे सूर्ये आद्यपादः ।

यदि बृहस्पति वा शुक्र हों तो लग्नादिमें जो दोष होता है उसका खण्डन होजाता है और विशुद्ध लग्न अधिकतर प्रशस्त (शुभ) होती है ॥ ८७ ॥

अन्यच्च ।

सप्तमेतरकेन्द्रस्थत्रिकोणस्थश्च वा पुनः ।

शुक्रो गुरुर्विवाहे तु हन्ति दोषान्विलग्नगान् ॥ ८८ ॥

अर्थ-वचनान्तरमें लिखा है कि, वैवाहिक लग्नके सप्तमस्थान भिन्न केन्द्रस्थानमें और त्रिकोणमें बृहस्पति वा शुक्रके होनेसे लग्नके समस्त दोषोंका नाश होजाताहै ॥ ८८ ॥

अपरञ्च ।

लग्ने गुरौ चन्द्रमुते मृगौ वा चतुर्थधर्मात्मजकर्मगैर्वा ।

पाणिग्रहं प्राप्य सुतायै सौख्यं प्राप्नोति वित्तं धनलाभसंस्थैः ॥ ८९ ॥

अर्थ-प्रकारान्तरमें सुतहिबुक्क योगको इस प्रकार कहा है कि, वैवाहिक लग्नमें वा लग्नके चतुर्थ, नवम, पञ्चम अथवा दशम स्थानमें बृहस्पति, बुध वा शुक्रके होनेसे पुत्रार्थी पाणिग्रहण कर्त्ताको अत्यन्त सुख होता है । और द्वितीयस्थानमें वा एकादशस्थानमें उक्त ग्रहोंके होनेसे वित्तलाभ होता है ॥ ८९ ॥

प्रकारान्तरम् ।

लग्ने तत्पञ्चमे तुयै नवमे दशमे तथा ।

गुरुर्भृगुर्वा दोषघ्नो विवाहे वर्द्धते शुभम् ॥ ९० ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि, लग्नके पांचवें, चौथे, नववें, वा दशवें स्थानमें यदि बृहस्पति वा शुक्र स्थित होय तो लग्नगत दोषका नाश होकर विवाहमें शुभकी वृद्धि होती है ॥ ९० ॥ इति सुतहिबुक्कयोगः ।

अथ गोष्टूलियोगः । (ज)

सन्ध्यातपारुणितपश्चिमदिग्विभागे

व्योम्नि स्फुरत्तरलतारकसन्निवेशे ॥

तथाच तृतीयस्थे द्वितीयपादो दुष्यतीत्यर्थः-। तथाच स्वरोदये “ आद्यांशेन चतुर्थांशं चतुर्थांशेन ” इत्यादि-इति ॥ (छ) सुतहिबुक्कयोगमाह-सुतहिबुक्कति । सुगममिति ।

(ज) गोष्टूलियोगमाह-सन्ध्याति । गतां सुखल्लिभिर्व्योम्नि अङ्गं आच्छादिते सतीत्यर्थः । मृगजेन मार्गवस्तुर्निना गोष्टूलियोगः कथितः । राजमात्सेण्डे थ कालमेदेन गोष्टूलिमेद उक्तो यथा “ गोष्टूलि त्रिविधां गदन्ति मुनयः ” इत्यादि-इति ।

रुद्धे गवां खुरपुटोद्गलितै रजोभि-

गोधूलिरेप कथितो भृगुजेन योगः ॥ ९१ ॥

अर्थ-अब गोधूलियोग कीर्तन करते हैं । सूर्यकी किरणोंद्वारा पश्चिमादिशा अरुण वर्ण होनेसे आकाशमें नक्षत्र विमलभावसे प्रकाशित होते हैं उसी समय वनसे चरकर समस्त गौर्ये घर आने लगती हैं मार्गमें उनके खुरोंसे जो धूलि ऊर्ध्वदिशामें उड़ती है । भृगुमुनिने उस समयकोही गोधूलि योग कहा है ॥ ९१ ॥

अथ गोधूलिव्यवस्था ।

लग्नं यदा नास्ति विशुद्धमन्यद्गोधूलिकां तत्र शुभां वदन्ति ।

लग्ने विशुद्धे सति वर्ययुक्ते गोधूलिका नैव फलं विधत्ते ॥ ९२ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ-जिस समय विशुद्धलग्न न पाया जाय मुनिगणोंने उसी समयको गोधूलि-योगकी व्यवस्था करी है, किन्तु विशुद्धलग्नके सम्भव होनेसे गोधूलि लग्न प्रशस्त नहीं होता है ॥ ९२ ॥ (झ)

अथ गोधूलिनिर्णयः ।

गोधूलिं त्रिविधां वदन्ति मुनयो नारीविवाहादिके

हेमन्ते शिशिरे प्रयाति मृदुतां पिण्डीकृते भास्करे ।

ग्रीष्मेऽर्द्धास्तमिते वसन्तसमये भानौ गतेऽदृश्यतां

सूर्ये चास्तमुपागते च नियतं प्रावृट्छरत्कालयोः ॥ ९३ ॥

अथ-नारीके विवाहादिकार्यमें मुनिगणोंने तीन प्रकारके गोधूलि योग कहे हैं । हेमन्त और शिशिरकालमें सूर्य पिण्डीकृत होकर अपने तेजको मन्दीभूत करनेसे गोधूलि योग होता है- इसी प्रकार ग्रीष्मकालमें अर्द्धास्तके बाद, वसन्त-कालमें सूर्यके अदृश्य होनेसे और वर्षा और शरत्कालमें सूर्य देवके अस्तसे प्रवृत्त होनेसेही गोधूलियोग होता है ॥ ९३ ॥

अथ गोधूलिप्रशंसा ।

नास्मिन्ग्रहा न तिथयो न च विष्टिवारा

ऋक्षाणि नैव जनयन्ति कदापि विघ्नम् ।

(झ) “ पष्ठाष्टमे मूर्तिगते शशाङ्के गोधूलिके मृत्युमुपैति कन्या । कुजेऽष्टमे मूर्ति-गतेऽथवास्ते वरस्य नाश प्रवदति गर्गाः ” इति ग्रन्थान्तरे ।

अव्याहतः सततमेव विवाहकाले ।

यात्रासु चायमुदितो भृगुजेन योगः ॥ ९४ ॥ (अ)

अर्थ-गोधूलिकालमें विवाह होनेसे ग्रहशुद्धि, तिथिशुद्धि विष्टि भद्रा दोष वा नक्षत्रशुद्धि इनका कुछभी विचार न करना चाहिये, जिस प्रकार गोधूलिकामें ग्रह-नक्षत्रादि विघ्नकारक नहीं होते हैं, विवाहकालमेंभी गोधूलियोग प्रशस्त है और यात्रामेंभी गोधूलियोग ग्राह्य है इसी प्रकार भृगुमुनिने कहा है ॥ ९४ ॥

अथ गोधूलिनिन्दा ।

मार्गशीर्षे तथा माघे गोधूलिः प्राणनाशिनी ॥ ९५ ॥

अर्थ-किस २ मासमें गोधूलियोग निषिद्ध है अब उसको कीर्तन करते हैं । अग्रहायणमास और माघमासमें गोधूलियोग प्राणनाशक होता है अतएव उक्त दोनों मासोंके गोधूलियोगमें विवाह न करना चाहिये ॥ ९५ ॥

अन्यच्च ।

मार्गे गोधूलिके सुता च विधवा स्यान्माघमासे तथा

पुत्रायुर्थनयौवनेन सहिता कुम्भे स्थिते भास्करे ।

वैशाखे सुखदा प्रजाधनवती ज्येष्ठे पतेर्मानदा

आषाढे धनधान्यपुत्रवहुला पाणिग्रहे कन्यका ॥ ९६ ॥

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखाहै कि, अग्रहायण और माघमासमें गोधूलियोगमें विवाह होनेसे कन्या विधवा होती है और फाल्गुनमासमें गोधूलियोगमें विवाह होनेसे धन, पुत्रादिकी वृद्धि होतीहै इसी प्रकार वैशाखमें सुख, सन्तान और धनवती होतीहै, ज्येष्ठमें पतिकी मानदात्री और आषाढमें गोधूलियोगके समय विवाह होनेसे वह कन्या धन, धान्य और बहुपुत्रान्विता होती है ॥ ९६ ॥

विवाहोद्दीनवर्णस्यगोधूलौतुंप्रशस्यते ॥ ९७ ॥

इति भैरवाचार्यधृतवचनम् ।

अर्थ-भैरवाचार्य धृतवचनमें लिखाहै कि, उत्तम वर्णका विवाह विशुद्धलभमेंही करना चाहिये, दीनवर्णका विवाह गोधूलियोगमें प्रशस्त है ॥ ९७ ॥

इति गोशूलियोगकथनम् ।

(झ) गोशूलिप्रशस्त्रमाह-नाम्नित्रिति । सुगमम् । एतच्च स्तुतिमात्र किन्तु गोशूलि-योगेऽपि शुभाशुभ समिव विचार्यम् । तथा राजमार्तण्डे “ शुभाशुभयुतं नूनं राशेर्दोषश्च निन्दितम् । गिाहलग्रवन्देय गोशूलिमाह मार्गविः ” इति ।

अथ योदकविचारः ।

तत्रादौ गणकथनम् ।

हस्तस्वातिमृगशिरःश्विनीहरिगुरुपौष्यानुराधेऽदिति-
श्चाद्रारोहिणि चोत्तराणि भरणी पूर्वाह्वयं भवयम् ।

ज्येष्ठासर्पविशाखमूलवरुणावस्वग्निचित्रामघाः

कथ्यन्ते मुनिभिर्यथाक्रमवशादेवा नरा राक्षसाः ॥ ९८ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—किस नक्षत्रमें जन्म होनेसे कौन गण होताहै अब उसको वर्णन करते हैं । हस्त, स्वाति, मृगशिर, अश्विनी, श्रवण, पुष्य, रेवती, अनुराधा और पुनर्वसु इन नक्षत्रोंमें जन्म होनेवाले मनुष्यका देवगण होताहै । इसीप्रकार आर्द्रा, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रोंमें जन्म होनेसे मनुष्यका नरगण होताहै । और ज्येष्ठा, आश्लेषा, विशाखा, मूल, शतभिषा, धनिष्ठा, कृत्तिका, चित्रा और मघा, इन नक्षत्रोंमें जन्म होनेसे मनुष्यका राक्षसगण होताहै ॥ ९८ ॥

अन्यत्र ।

हस्तास्वातिश्रुतिमृगशिरःपुष्यमैत्राश्विभानि

पौष्णादित्ये जगुरिह बुधा देवसंज्ञानि भानि ॥ ९९ ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणि ग्रन्थमेंभी लिखाहै कि, हस्त, स्वाति, श्रवण, मृगशिर, पुष्य, अनुराधा, अश्विनी, रेवती और पुनर्वसु नक्षत्रको पण्डितगणने देवसंज्ञक कहा है ॥ ९९ ॥

अपरत्र ।

पूर्वास्तिस्रः शिवभभरणीरोहिणी चोत्तराश्च ।

ग्राहुर्मर्त्याह्वयमुदुगणं नूनमेतं मुनीन्द्राः ॥ १०० ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ—पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वाभाद्रपद, आर्द्रा, भरणी, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद इन नक्षत्रोंको मुनिगणने मनुष्य (नर) संज्ञक कहाहै ॥ १०० ॥

प्रकारान्तरश्च ।

चित्राश्लेषानिर्झतिपितृभे वासवं वासवर्क्षं

शक्राग्न्यामै वरणदहनर्क्षं च राक्षोगणोऽयम् ॥ १ ॥ इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ—चित्रा, आश्लेषा, मूल, मघा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, विशाखा, शतभिषा और क्रांतिका इन नक्षत्रोंको राक्षसगणसंज्ञक कहते हैं ॥ १ ॥

अथ गणफलम् ।

स्वकुले चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमा देवमानुषे ।

देवासुरे वैरिता च मृत्युमानुषराक्षसे ॥ २ ॥ इति गणफलकथनम् ।

अर्थ—अब गणफलको वर्णन करते हैं । वर और कन्याका यदि एकगण हो, तब दोनोंमें अत्यन्त प्रीति होतीहै । देवगण और मनुष्यगणमें विवाह होनेसे मध्यम प्रीति होतीहै । देवगण और राक्षसगणमें विवाह होनेसे वैरिता अर्थात् सर्वदा कलह (लडाई) होतीहै और मनुष्यगणके साथ राक्षसगणका विवाह होनेसे मनुष्यगणकी मृत्यु होतीहै ॥ २ ॥

अथ नाडीवेधः ।

अश्विन्यादि लिखेच्चक्रं सर्पाकारं त्रिनाडिकम् ।

तत्र वेधवशाज्ज्ञेयं विवाहादौ शुभाशुभम् ॥ ३ ॥ (ट)

अर्थ—सर्पाकार तीन नाडीविशिष्ट एकचक्र अङ्कित (खींच) कर उसमें अश्विन्यादि नक्षत्रोंको तीन भागमें स्थापनकरे । अनन्तर वरके नक्षत्रके साथ कन्याके नक्षत्रका वेध है वा नहीं उसको देखे, विवाहमें वेध होनेसे शुभ और वेध न होनेसे अशुभ होताहै ॥ ३ ॥

एकनाडीस्थधिष्ण्यानि यदि स्युर्वरकन्ययोः ।

तदा वेधं विजानीयाद्दुर्वादिषु तथैव च ॥ ४ ॥

अर्थ—यदि वर और कन्याका नक्षत्र एकनाडीमें स्थित होनेसे वेध होताहै, मंत्रके अष्टगणकरने समय गुरु और शिष्यकोभी उक्त प्रकारसे नाडीवेध देखना चाहिये ॥ ४ ॥

(ट) “ अश्विन्यादि लिखेद्रमौ त्रिपङ्क्त्या नवसंख्यया । नक्षत्रे च त्रिभिर्नाडीवेधनं स्यादुपपन्नः ॥ ” अन्यच्च । “ सप्तविंशतिविन्दुश्च लिखित्वा स्याद्विहले शुभे । रेखात्रयेण रचयेत्सर्पाकारं त्रिभिर्ध्रुमिः ॥ सर्पाकारो घटनविशेषः कुत्तिकादियमदैवतशेषाः । पृष्ठे सुनहनपतिगतरोम क्रोडे वनिताचित्तवियोगः । मध्यमरेखे मवाति विवाह उमयोर्मरणं वदति वराहः ॥ मध्ये क्रोडे बहुसन्मानं क्रोडे पृष्ठे यश उद्यानम् । मध्ये पृष्ठे मवाति विवाहो बहुसन्धनशुभमिति तु वराहः ॥ ” इति ।

प्रकटं यस्य जन्मर्क्षं तस्य जन्मर्क्षतो व्यधः ।

प्रनष्टं जन्मभं यस्य तस्य नामर्क्षतो भवेत् ॥ ५ ॥

द्वयोर्जन्मभयोर्वेधे न कर्तव्यः कदाचन ।

द्वयोर्जन्मभयोर्वेधो द्वयोर्नामभयोस्तथाः

नामजन्मर्क्षयोर्वेधो न कर्तव्यः कदाचन ॥ ६ ॥

अर्थ-जो मनुष्य अपने जन्मनक्षत्रको जानता है उस मनुष्यके जन्मनक्षत्रद्वाराही वेध देखै, जन्मनक्षत्र न जाननेसे नामर्क्षद्वारा वेध देखना चाहिये । दोनोंके जन्मनक्षत्रका वेध होनेसे कदापि विवाह न करै, कन्या और वरके जन्मनक्षत्रका वेध निषिद्ध है और दोनोंका नामर्क्षवेध होनेसेभी उसमें विवाह न करना चाहिये किन्तु एकका नामर्क्ष दूसरेका जन्मर्क्षद्वारा वेधको न देखना चाहिये ॥५॥६॥

एका नाडी स्थिता चेत्स्याद्भर्तुर्नाशाय चाङ्गना ।

तस्मान्नाडीव्यधो वीक्ष्यो विवाहे शुभमिच्छता ॥ ७ ॥

अर्थ-एक नाडीमें दोनोंका जन्मनक्षत्र होनेसे अङ्गना (स्त्री) पतिके नाशका कारण होतीहै अतएव मङ्गलकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको अवश्यही वेध देख लेना चाहिये ॥ ७ ॥

अथ नाडीवेधफलम् ।

प्राङ्नाड्या वेधतो भर्ता मध्यनाड्योभयं तथा ।

पृष्ठनाडीव्यधे कन्या म्रियते नात्र संशयः ॥ ८ ॥

अर्थ-प्रथम नाडीमें वेध होनेसे विवाहित पुरुषकी मृत्यु होती है । मध्यम नाडीमें वेध होनेसे स्त्री और पुरुष दोनोंकीही मृत्यु होती है और पृष्ठ (अन्त्य) नाडीमें वेध होनेसे विवाहिता कन्याकी मृत्यु होतीहै ॥ ८ ॥

एकराश्यादियोगे तु नाडीदोषो न विद्यते ।

अन्यत्र तु विचार्यैषा स्वभावाच्छोभनाश्च ते ॥ ९ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-स्त्रीपुरुषके एकराश्यादि योग होनेसे पूर्वोक्त नाडीका दोष नहीं होता है, जिस स्थानमें एकराश्यादि योग नहीं उसकाही नाडीवेधमें दोष होताहै ॥ ९ ॥

समसप्तमादिफलम् ।

एकराशौ च दम्पत्योः शुभं स्यात्सप्तमसप्तके । (ठ)

(ठ) समग्रहणादिपप्तमसप्तके दोषः ।

चतुर्थं दशमे चैव तृतीयैकादशे तथा ॥ ११० ॥ (ङ)

अर्थ—नाडी गिननेमें स्त्रीपुरुषकी एकराशि (१) होनेसे शुभ होता है, और वरकी राशिसे कन्याकी राशि वा कन्याकी राशिसे वरकी राशि यदि सम सातमें अर्थात् समराशि होकर सातवें हो तब शुभप्रद होतीहै, दोनोंकी राशि परस्पर गिननेमें यदि चतुर्थ, दशम, तृतीय अथवा एकादश हो, तौमी शुभ होताहै। इस वचनमें समसप्तक लिखाहै विषमसप्तक होनेसे अमङ्गल होताहै ॥ ११० ॥

विषमसप्तमादिफलम् ।

योदके सप्तके मेघे तुले युग्महर्षौ तथा ।

सिंहघटौ सदा वर्ज्यौ मृतिं तत्रात्रवीच्छिवः ॥ ११ ॥

अर्थ—मेघ, तुला, मिथुन, धन, सिंह अथवा कुम्भ इन्हीं छः को विषमराशि कहते हैं, योदक (नाडी) गिननेमें विषमराशि सप्तम होनेसे मृत्यु होती है, अतएव विषमसप्तमको अवश्यही त्याग करना चाहिये इसप्रकार शिवजीने कहाहै ॥ ११ ॥

राजमार्त्तपदे ।

न राजयोगे ग्रहधरिता च न तारशुद्धिर्न गणत्रयं स्यात् ।

न नाडिदोषो न च वर्णदुष्टिर्गर्गादयस्ते मुनयो वदन्ति ॥ १२ ॥

इति राजयोदकप्रशंसा ।

अर्थ—राजयोग होनेसे ग्रहशुद्धि, ताराशुद्धि, गणशुद्धि, नाडीदोष अथवा वर्णदोष इनका कुछभी विचार नहीं होता है ॥ ११२ ॥

आरिपडष्टकम् ।

मकरः कारिकुलरिपुणा कन्या मेघेन सह झपस्तुलया ।

कर्कषटौ वृषधनुषौ शुश्रिकमिथुनौ चारिविधौ ॥ १३ ॥

अर्थ—मकर, सिंह, कन्या, मेघ, मिथुन, तुला, कर्क, कुम्भ, वृष और धन इन्हींको राशिके षडष्टक आरिपडष्टक कहते हैं ॥ १३ ॥

(ङ) योदकशुद्धिमाह—एकराशिविति । दम्पत्योरेकराशौ सति शुभम् । अत्र च नक्षत्रेक्षेऽतीव शुभम् । यथा “ नक्षत्रमेकं यदि भिन्नराशिर्न दम्पती तत्र सुखं लभेताम् । अभिन्नराशिर्यदि चैकमुक्ष कार्या विवाहो बहुसाध्यदाता ॥ ” एवञ्च समसप्तके तृतीयैकादशे दशमचतुर्थे राशौ शुभमित्यर्थः । एतदन्यत्र द्विद्वादशे षटष्टके नक्षत्रत्रये चाशुभमिति तात्पर्यम् ।

(१) वर कन्याकी एकराशि, समसप्तक दोनोंकी राशि परस्पर गिननेमें धन, दशम, तृतीय और एकादश इन्हीं सातोंको ‘ राजयोदक ’ कहने हैं—इति ।

अथ मित्रपडष्टकम् ।

मकरसमेतं मिथुनं कन्याकलशौ मृगेन्द्रमनौ च ।

वृषभतुलेऽलिमेपौ कर्कटधनुषी च मित्रविधौ ॥ १४ ॥

अर्थ—मकर, मिथुन, कन्या, कुम्भ, सिंह, मीन, वृष, तुला, वृश्चिक, मेष और कर्क धन इन पडष्टकका नाम मित्रपडष्टक है ॥ १४ ॥

यदि कन्याष्टमे भर्ता भर्तुः पष्ठे च कन्यका ।

पडष्टकं विजानीयाद्वर्जितं त्रिदशैरपि ॥ १५ ॥

अर्थ—यदि कन्याके अष्टमस्थानमें बरकी राशि और बरके पष्ठ रथानमें कन्याकी राशि हो तब यह पडष्टक अत्यंत गर्हणीय (दूषणीय) होता है अर्थात् देवतागणभी इस पडष्टकको परित्याग करदेते हैं ॥ १५ ॥

मित्रादियोगेऽपि पडष्टकादौ ताराविपत्प्रत्यारिर्नैधनाख्याः ।

वज्र्या विवाहे पुरुषोऽदुतो हि प्रीतिः परा जन्मसु तारकासु ॥ १६ ॥

अर्थ—पडष्टकयोगमें यदि बर और कन्याकी राशिके अधिपति (स्वामी) के बीचमें परस्पर मित्रता हो तौभी बरके नक्षत्रसे गिननेमें कन्याका जन्मनक्षत्र यदि विपत्, प्रत्यारि वा वधतारा होय तब विवाह नहीं होसकता है, किन्तु जन्म-तारा होनेसे वह विवाह अत्यन्त प्रीतिदायक होता है ॥ १६ ॥

अथ पडष्टकादिफलम् ।

मरणं नाडीयोगे कलहः पट्टकाष्टके विपत्तिर्वा ।

अनपत्यता त्रिकोणे द्विद्वादशे च दारिद्र्यम् ॥ १७ ॥

अर्थ—वर और कन्याकी नाडीवेध होनेसे मृत्यु होती है, पडष्टकमें सर्वदा कलह होता है, नवपञ्चकमें अनपत्यता दोष होता है और द्विद्वादशमें दारिद्र्यता होती है ॥ १७ ॥

नवपञ्चकादौ विशेषफलम् ।

पुंसो गृहात्सुतगृहे सुतहा च कन्या

धर्मे स्थिता सुतवती पतिवल्गभा च ।

पुंसो गृहाद्धनगृहे धनहा च कन्या

रिः स्थिता धनवती पतिवल्गभा च ॥ १८ ॥ (ठ)

अर्थ—यदि बरकी राशिसे कन्याकी राशि पञ्चम हो तो उस कन्याके मृत पुत्र (ठ) नवपञ्चमद्विद्वादशपौरुषमाह-पुंस इति । सुगमम् । पट्टकाष्टकेऽपि विशेष-माहुः केचित् । “पुरुषस्याष्टमे मागे कन्या तिष्ठति वै यदा । कन्यायाः पट्सु स्थानेषु न दोषो वै प्रजायते । यदि कन्याष्टमे भर्ता भर्तुः पष्ठे च कन्यका ” इत्यादि । इति ।

होता है, और वरकी राशिमें कन्याकी राशि नवम हो तो पुत्रवती पतिप्रिया होती है द्वादश गिननेमें पुरुषकी राशिसे कन्याकी राशि द्वितीय होनेसे वह कन्या धननाशिनी होती है और वरकी राशिमें कन्याकी राशि द्वादश होनेसे वह विवाहिता कन्या धनवती और पतिके अत्यन्त प्यारी होती है ॥ १८ ॥

अथ वर्णकयनम् ।

कार्किमीनालयो विप्राः क्षत्राः सिंहतुलाहयाः ।

वैश्या युग्माजकुम्भाख्याः शूद्रा वृषमृगाङ्गनाः ॥ १९ ॥

अर्थ—अष राशिगणके वर्ण कहे जात हैं—यथा—कर्क, मीन और वृश्चिक राशिका ब्राह्मणवर्ण है, सिंह, तुला, और धन राशिका क्षत्रियवर्ण है, मिथुन, मेष और कुम्भ राशिका वैश्यवर्ण है और वृष मकर और कन्या राशिका शूद्रवर्ण है ॥ १९ ॥

अथ वर्णफलम् ।

वर्णश्रेष्ठा च या नारी वर्णहीनश्च यः पुमान् ।

तयोर्विवाहे मृत्युः स्यात्पणमासान्नात्र संशयः ॥ १२० ॥

अर्थ—यदि वरके वर्णसे कन्याका वर्ण श्रेष्ठ हो और वरका वर्ण हीन होय तब उस वर कन्याके विवाह होनेमें विवाहकालसे छः महीनेके बीचमें दोनोंकी मृत्यु होती है इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ १२० ॥

अथ योत्कापवादः ।

एकराश्यादियोगे तु नाडीदोषो न विद्यते ॥ २१ ॥

अर्थ—वर और कन्याकी एक राशि होनेसे नाडीवेधका दोष नहीं होता है ॥ २१ ॥

नक्षत्रमेकं यदि भिन्नराशिर्नदम्पती तत्र सुखं लभेताम् ।

विभिन्नमृक्षं यदि चैकराशिस्तदा विवाहः सुतसौख्यदायी ॥ २२ ॥

अर्थ—वर और कन्याके यदि एक नक्षत्र होकर भिन्न २ राशि होय तब उस विवाहमें वर और कन्याको कभी सुख नहीं होता है और भिन्न २ नक्षत्र होकर यदि दोनोंकी एक राशि हो तो वह विवाह पुत्र और सुखके देनेवाला होता है ॥ २२ ॥

अन्यथा ।

एकक्षा तु यदा कन्या राशयेका च यदा भवेत् ।

धनपुत्रवती नारी भर्ता च चिरजीवकः ॥ २३ ॥

अर्थ—यचनान्तरमें लिखा है कि, वर और कन्याका एक नक्षत्र होकर यदि

एकही राशि होय तो वह कन्या धनशालिनी और पुत्रवती होती है और उसका पति दीर्घजीवी होता है ॥ २३ ॥

सुहृदेकाधिपे योगे तारावले वश्यराशौ वा ।

अपि नाड्यादिविरोधे भवति विवाहो हितार्थाय ॥ २४ ॥

अर्थ-वर और कन्याकी राशिके स्वामीकी यदि परस्पर मित्रता हो वा अन्य-
तन्के नक्षत्र गिननेमें ताराशुद्ध हो अथवा अन्यतर राशिके वश्यता (*) हो
तब नाडीवेधादि होनेसेभी विवाहमें दोष नहीं होता है और उस विवाहमें शुभ
फल प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

अपरञ्च ।

सौहृद्ये ह्युभयोर्द्वयोरेपि तयोरकाधिपत्येऽपि च

तारापष्ठसुमित्रमित्रभवने क्षेमाख्यसम्पद्यदि ।

पट्काष्टे नवपञ्चके व्ययधने योगेऽपि पुंयोपितोः

प्रीत्यायुःसुखवृद्धिपुष्टिजनकः कार्यो विवाहस्तदा ॥ २५ ॥

अर्थ-वचनान्तरमें कहहि कि, वर और कन्याकी राशिके स्वामीकी परस्पर
यदि मित्रता हो वा दोनोंकी राशिका स्वामी एक ग्रह होय अथवा अन्यतर नक्षत्र
गिननेमें यदि पष्ठ (साधक) सुमित्र मित्र क्षेम सम्पत् हो तब पट्काष्ट, नवप-
ञ्चक और द्विदशदि योगमें भी विवाह होसक्ता है, अधिकतर वह विवाह प्रायः
आयु सुखकी वृद्धि करना है और पुष्टिजनक होता है ॥ २५ ॥

द्विदशदि विशेषमाह ।

ऐकाधिपत्यं भवनेश्मैत्रं वश्यं यदि स्यादुभयोर्दुशुद्धौ ।

द्विदशदि वा नवपञ्चके वा कार्यो विवाहो न पट्काष्टे तु ॥ २६ ॥ (ण)

अर्थ-द्विदशदि योगमें जो विशेष है अब उसको कहते हैं । यदि वर और

(*) “अरभेभानफणिद्वयश्च वृषसुहृद्वेपोन्दुरौ मूषिरश्चागुगौः क्रमशस्ततोपि महिषी
व्याघ्रः पुनः सौग्री । व्याघ्रिणौ मृगशृङ्गौ कपिरयोग्रद्वय वानरः सिंहोऽश्वो मृगराट्
पशुश्च क्रुटी योनिश्च भानाभियम् ॥ गोव्याघ्र गजसिंहमश्वमहिष श्येणश्च बभ्रुरग वेरं
वानरभेपरश्च मुमहत्तद्विदालान्दुग्म् । लोकानां व्यग्रहाग्नोऽन्यदापि च ज्ञात्वा प्रयत्ना-
दिद् दम्पर्योर्नृपभृत्ययोगपि सदा वन्यै अभ्यर्थितभिः ॥ ” इति ग्नमालायाम् ।

(ण) द्विदशदिगर्नपञ्चकयोगप्रादान्तर्गमाह-ऐकाधिपत्यमिति । उभयो राशयोरेको-
धिपतिर्यदि स्यात्तदा द्विदशदि नवपञ्चके च न दोष इति । तथा उभयो राश्याधिपयो-

कन्याकी राशिका स्वामी एक ग्रह हो उनकी परस्पर मित्रता हो अथवा दोनों राशिके बीचमें एक राशि अन्यके वक्षमें हो वा एकके नक्षत्रसे गिननेमें दूसरेका नक्षत्र शुद्ध होय तो द्विद्वादश वा नवपञ्चक होनेसेभी विवाह होसक्ता है । किन्तु षडष्टकमें विवाह निषिद्ध है ॥ २६ ॥

अथ भ्रमप्रमादोत्पन्नषडष्टकादिप्रतीकारः ।

षडष्टके गोमिथुनं प्रदेयं कांस्यं सरूप्यं नवपञ्चके तु ।

द्विद्वादशाख्ये कनकान्नताम्रं विप्रार्चनं हेम च नाडिदोषे ॥ २७ ॥ (त)

अर्थ—भ्रमसे वा प्रमादके वक्षसे यदि कदाचित् षडष्टकादियोगमें गिराह हावै, तब उस दोषके शान्तिके अर्थ दान करनेवा चाहिये- षडष्टकमें विवाह होनेसे दो गोवै बठडों करके युक्त दानकरै, इसी प्रकार नवपञ्चकमें सरूप्य कांस्यपात्र और द्विद्वादशमें सुवर्ण तण्डुल और ताम्र दान करनेसे दोषकी शान्ति होती है । षडष्टकमें विप्रार्चन और सुवर्ण दान करनेसे दोषकी शान्ति होती है ॥ २७ ॥

मित्रत्व वा स्यात् यदि वा-उभयो राशयोऽङ्गि-न स्यात्तथापि गिराह कार्य इत्यर्थः । एतच्च उभयोद्दृष्टद्वारेण कार्यं नान्यथा । उभयोद्दृष्टौ अन्योन्यनन्मसम्पदादिताराशुद्धानित्यर्थः । यथा राजमार्तण्डे “ सौहृदे ह्युभयोर्भवेद्यादि तयोरेकान्निपत्येऽपि वा तारा-मित्रसमिजन्मशुभदा क्षेमा च सम्पत्तारौ । पृष्ठाष्टे नवपञ्चमे व्ययधने योगेऽपि पुयो-पितोः प्रीत्यायु सुतवित्तशुद्धिजनन कार्यौ गिराहस्तदा । मेरादियोगेऽपि षडष्टकादौ तारापितप्रत्यरितेनारयाः । वर्या गिराहादियु रीतता तु प्रीतिः परा जन्मसु तार-कासु ॥ ” एतेनोभयोद्दृष्टद्वान्योन्येऽन्यनादीनक्षत्रशुद्धाविति केनचिद्धारयात तदशु-द्धम् । अन्यथा नादीयोगस्य स्वत एव निषिद्धत्वेनोभयोद्दृष्टद्वानित्यनर्थकं स्यात् इति । न षडष्टके त्विति षटष्टके तु एवमेकाधिपत्यादिनिचागे न कार्यं । तस्य सर्वदा निषि-द्धतादिति । अत्र च राजमार्तण्डादौ षटष्टकेऽपि एकाधिपत्यादौ गिराहो वक्षितः । तथा सौहृदेत्यादिरनर्थकं प्रसिद्धिस्तस्मात्ते । तथा बृहद्विंशहस्तप्रमाणम् “ षट्काष्ठ वेऽपि भवनाधिपमित्रभाजमैकाधिपस्यमरलोच्य च वक्ष्यराशिम् । कार्यौ गिराहसमपः शुभमृतराणां तारा भवेद्यादि परम्पगतौ निशुद्ध ” ॥ तथा राजमार्तण्डे—एकाधिपत्या दिगाङ्गीनाह—“ मङ्गममेन मिथुन कन्यारत्नौ मृगेन्द्रमीनौ च । वृषभवद्वज्रजरीदौ कर्कश्वनयो मित्रविर्गौ ॥ ” तथा त्रैराभिर्गङ्गीनाह—“ मकर करिन्दुलसिपुणा योपा भेषेण सह झपन्मुखा । घटमृतेदौ वृषभनृषी वृद्धिर्भयुर्नो चारिभिर्धौ ” ॥ एतच्च मतद्वयभेदे गति कल्पने षटष्टकस्य दोषद्वय कलहो विन क्षेत्रेति तत्र चैकाधिप-त्यादौ विपत्तिदोषाभावेन कलहमात्रस्यापदोपत्त्याद्राजमार्तण्डादौ गिराहो दाशतः इति ग्रन्थवृत्तापि कलहस्य दोषत्वादिनिषिद्धाभाति न विरोधः ।

(त) तदाधिभ्रमप्रमादेन षटष्टकादौ गिराह सति प्रतीकारमाह—षटष्टक इति । गोमिथुन रोगनिवर्तनार्थमित्यर्थः ।

अथ कन्यायाः ग्रहादिशुद्धिकथनम् ।

ग्रहशुद्धिमन्दशुद्धिं शुद्धिं मासायनर्तुदिवसानाम् ।

अर्वाद्दशवर्षेभ्यो मुनयः कथयन्ति कन्यकानाम् ॥ २८ ॥

अर्थ—विवाहमें कन्याके ग्रहादिशुद्धि कहते हैं । दशवर्षकी आयुके मध्यमें कन्याका विवाह होनेमें ग्रहोंकी गोचरशुद्धि, अन्दशुद्धि (युग्मायुग्मवर्षका विचार) मासशुद्धि, अयनशुद्धि, ऋतुशुद्धि, और दिवस (वार) शुद्धि देखना चाहिये। शुनिगणने कन्याके विवाहसम्बन्धमें इस प्रकार कहाहै ॥ २८ ॥

अयुग्मे दुर्भगा नारी युग्मे च विधवा भवेत् ।

तस्माद्गर्भान्वितो युग्मे विवाहे सा पतिव्रता ॥ २९ ॥

अर्थ—कन्याके अयुग्मवर्षमें विवाह होनेसे दुर्भगा होतीहै और युग्मवर्षमें विवाह होनेसे विधवा होती है। अतएव गर्भान्वित (*) युग्मवर्ष गिनकर उसमें विवाह करना चाहिये। इसी प्रकार गर्भान्वित युग्मवर्षमें विवाह होनेसे वह कन्या पतिव्रता होतीहै ॥ २९ ॥

मासत्रयादूर्द्धमयुग्मवर्षे युग्मेऽपि मासत्रयमेव यावत् ।

विवाहशुद्धिं प्रवदन्ति सर्वे वात्स्यादयो ज्योतिषि जन्ममासात् ॥ ३० ॥

अर्थ—वात्स्यप्रभृति ज्योतिर्विद् पण्डितोंने कहाहैकि, अयुग्मवर्षमें तीन मासके अनन्तर (याद) और युग्मवर्षमें तीन मासके अन्तर्गत विवाहमें काल शुद्ध होताहै ॥ ३० ॥

प्रसूत्याधानतः शुद्धिर्विषमेऽन्दे समे क्रमात् ।

विवाहे योपितां चन्द्रार्केज्यशुद्धिर्नृयोपितोः ॥ ३१ ॥

अर्थ—कन्याके विवाहमें प्रसूतिके गर्भग्रहणसे विषम (अयुग्म) वर्षमें विचारना चाहिये और सम (युग्म) वर्षमें जन्मसेही विचार करना चाहिये । सूर्य-चन्द्र, और वृहस्पति शुद्धि यह स्त्री और पुरुष दोनोंकोही देखना चाहिये ॥ ३१ ॥

समर्तृकक्रियारम्भे भर्तुर्गोचरशुद्धितः ।

यात्रोद्वाहे गर्भकृत्ये स्वशुद्ध्याप्नोति तत्फलम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—स्त्रियोंको पतिके साथ जो कर्म करना चाहिये उसमें पतिकी गोचर-शुद्धिका विचारकर, किन्तु यात्रा, विवाह और गर्भकृत्यमें स्त्रियोंकीही गोचरशुद्धि होनेसेही उसमें शुभफल होताहै ॥ ३२ ॥

(*) जन्मसमयके पूर्वके नामास ग्रहण करनेकोही गर्भान्वित कहते हैं ।

प्रारभ्य जन्मसमयाद्युवतेर्विवाहं
 ओजेऽब्दकेषु मुनयः शुभमादिशन्ति ।
 आधानतः प्रभूतितः समवत्सरेषु
 प्रोक्तस्तयोर्न शुभदस्तु विलोमवर्षे ॥ ३३ ॥

अर्थ—अयुग्मवर्षमें जन्मसमयसे वर्षको गिनै, युग्मवर्षमें आधान (गर्भग्रहण) से वर्षको गिनना चाहिये । अयुग्मवर्षमें गर्भग्रहणसे गिनना और युग्मवर्षमें जन्मसे गिनना अशुभ है, विवाह विषयमें मुनिगणने इसी प्रकार कहा है ॥ ३३ ॥

युग्माब्दकेषु युजतेरपि जन्ममासा-
 न्मासत्रयं विवहने परमवदशुद्धिम् ।
 प्राहुः समस्तमुनयो विषमे तु वर्षे
 मासत्रयादुपरितः खलु जन्ममासात् ॥ ३४ ॥

अर्थ—कन्याके विवाहमें जन्ममाससे गिननेमें युग्म वर्षके तीन मासके मध्यमें वर्ष शुद्धि होती है और अयुग्मवर्षमें तीन मासके अनन्तर (बाट) वर्षशुद्धि होती है, समस्त मुनिगणने इसी प्रकार कहा है ॥ ३४ ॥

अथ विवाहे अयनादिशुद्धिः ।

आश्वलायनः ।

उदगयने आपूर्यमाणे पक्षे कल्याणनक्षत्रे चूडोपनयन-
 गोदानाविवाहाः, विवाहः सार्वकालिक इत्येके ॥ ३५ ॥

अर्थ—आश्वलायनने कहा है कि, उदगयणमें, शुक्लपक्षमें और शुभ नक्षत्रमें चूडाधर्म उपनयन, गोदान और विवाह होता है और किमी २ विद्वानने कहा है कि, विवाह सब कालमेंही होसकता है ॥ ३५ ॥

हरौ प्रसुप्ते न च दक्षिणायने त्रितयौ च रिक्ते शशिनक्षयं गते ॥ ३६ ॥

अर्थ—श्रीहरेकी अयनावस्थामें, दक्षिणायनमें, रिक्तानिधिमें और अमावास्यामें विवाह निषिद्ध है ॥ ३६ ॥

राजयस्ते तथा युद्धे पितृणां प्राणसंशये ।

अतिप्रौढा च या कन्या नानुकूलं प्रतीक्षते ॥ ३७ ॥

अर्थ—राजासे अग्रिम होनेमें वा युद्धमें यदि पिताके प्राणोंका संशय होय तब

प्रौढा (यौवनवती) कन्याके ग्रहगोचरशुद्धि वा जन्मादि शुद्धिको न विचारकर उसका विवाह कर देना चाहिये ॥ ३७ ॥

अतिप्रौढा च या कन्या कुलधर्मविरोधिनी ।

अविशुद्धापि सा देया चन्द्रलग्रवलेन तु ॥ ३८ ॥

अर्थ—अतिप्रौढा कन्या अविवाहिता रहनेसे कुलधर्मका नाश होताहे, अतएव कालादिशुद्धि न होनेसेभी चन्द्रबल (चन्द्रशुद्धि) और शुभ लग्न देखकर विवाह कर देना चाहिये ॥ ३८ ॥

कालात्यये च कन्यायाः कालदोषो न विद्यते ॥ ३९ ॥

इति दशमोऽर्पात्परम् ।

अर्थ—विवाहका समय व्यतीत होनेसे जो कालदोष ग्राह्य नहीं होता ह उसको दशवर्षके बाद जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

मलमासादिकालानां विवाहादौ प्रयत्नतः ।

पुंसः प्रति सदा दोषात्सर्वदैवाहि वर्ज्यता ॥ १४० ॥

अर्थ—विवाहादि शुभकर्ममें मलमाम (अधिकमास लौघमाम) का निषेध हे अतएव सर्वदाही उसका परित्याग करना चाहिये ॥ १४० ॥

अथ कालाशुद्धिकथनम् ।

गुर्वादित्ये गुरो सिहे नष्टे शुक्रं मलिम्लुचे ।

याम्यायने हरो सुते सर्वकर्माणि वर्जयेत् ॥ ४१ ॥ (थ)

अर्थ—अथ अशुद्ध (निन्दनीय-वर्जित) कालको कीर्तन करते हैं—बृहस्पति और सूर्य यदि एकनक्षत्रगत होकर एकराशिमें स्थित होय अथवा भिन्न २ नक्षत्रमें रहकर और एकराशिमें स्थित होवे तो गुर्वादित्ययोग होताह, उक्तयोगमें बृह-

(थ) सर्वकर्मणि कालाग्नद्विमाह-गुर्वाति । गुर्वादित्यम् द्विप्रकरणे भवति । गुरो जीवावेकराशिगतौ एकराशिगतौ च एकराशिगततश्च भिन्नराशिगततश्च सतीति बोद्धव्यम् । तथा च काश्यप “ ऋतेरमन्दिगतौ यदि जीवमानू ग्रहोपग मुरपरेरगुरुश्च । नहे । नारभ्यते व्रतविनाहृदप्रतिष्ठा क्षौरादिकर्म गमनागमनश्च धीरे ॥ ” नारभ्यते इत्यनेनारब्धप्रतन्तु पूर्वसङ्गन्धितप्रत वृत्तव्यभिनि तात्पर्यम् । तत्र सर्वकर्माणीत्यत्र कर्मशब्द काम्यकर्मपर देवार्चनन्तु नित्यकर्म वृत्तव्यमेव एव सर्वत्र । तथा मिहगाशिम्बे गुरो सर्वकर्माणि वर्जयेत् । तथा राजमार्त्तण्डे— यात्रा चूडा विद्या श्रुतिपिपरविध याग रामप्रेतशो प्रासादोद्यानहर्म्यामरनरमनारम्भविद्याप्रदानम् । मौञ्जीधन्य प्रतिष्ठा मणि-रत्नकनकाधारण कुर्वते ये मृत्युस्तेषा हर्गने गुरुदिनकस्योरेकराशिस्थयोश्च” । अत्र च मिहस्थबृहस्पति विवाहे विशेषमाह । राजमार्त्तण्डे— गुरोहर्गस्थे न पिनाहमाहर्गगतग र्गप्रमुखा ” इत्यादि । तथा “ मघावृक्ष परित्यज यदा सिहे गुरुभवेत् । पिनाहमत्र वर्त्तव्यो मुनिभि परित्यजितः” । अत्र च वक्रातिचारेण गम्यन्तगमने सिहस्थबृहस्पति

स्पाति सिंहराशिमें होनेसे शुक्रास्तमें सायंकालमें अस्त वा उदय होनेमें मलमासमें दक्षिणायनमें और हरिश्चयनमें समस्तकार्योंको परित्याग करना चाहिये ॥ ४१ ॥

वापीकूपतडागयागगमनं क्षौरप्रतिष्ठा व्रतं

विद्यामंदिरकर्णवेधनमहादानं वनं सेवनम् ।

तीर्थस्नानविवाहदेवभवनं मन्त्रादिदेवैक्षणं

दूरेणैव निजीविपुः परिहरेदस्तं गते भार्गवे ॥ ४२ ॥

अर्थ—वापी (जलाशयविशेष बाउली) कूप (कुँवा) तडाग (तालाब)

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

दोषो नास्ति किन्ताहं वक्रातिचारेकदोषमात्रमेवेत्यर्थः । तथा नष्टे शुके सर्वकाम्य-
कर्माणि वर्जयेत् । विकारागपत्तिनष्टत्वं तच्चतुर्द्धा भवति वृद्धत्वसन्ध्यागतत्वास्तत्त्वबालत्व-
भेदेन । अत्रच अस्तापूर्वं वृद्धत्वं सन्ध्यागतत्वं च अस्तात्परतो बालत्वं तथा राज-
मासतण्डे—“भवेत्सन्ध्यागत पश्चादस्तमेति दिनत्रयम् । दिनानि पञ्च पूर्वेण सर्वकर्म विव-
र्जयेत् ॥ बालो दिनचतुष्कं स्याद्बृद्धः पश्चादहमुच्यते । ज्येष्ठ सन्ध्यागतः शुक्रास्त्रिधाप्येवं
विजर्जयेत् । बाले भृगो परिणता युवतिस्साध्वी भवेद्वश्यमित्थम् । वृद्धे तस्मिन्वृद्ध्या
सन्ध्यास्ते मृत्युमाप्नोति” । मलिम्लुच इति । मलमासे सर्वकाम्यकर्माणि वर्जयेत् । मल-
मासकारणमुक्तं यथा—“दिवसस्य हरत्यर्कपट्टिभागमृत्तो ततः । करोत्येकं महच्छेदं तथै-
वेकं चन्द्रमाः । एवमर्जन्तीषानामब्दानामधिमासकम् । ग्रीष्मे जनपतः पूर्वं पश्चा-
च्चान्ते तु पञ्चमम्” इति । अत्र च शुद्धप्रतिपदादि वर्षान्ते चान्द्रमासे यदि रविस-
न्ध्यागे न स्यात्तदा स मासो मलिम्लुचः स्यात् । तथा च “अमास्यापरिनिष्ठश्च रविस-
न्ध्यागन्ति वर्जयेत् । मलमासं पिजानीयाद्वाहिनं सर्वकर्मसु” ॥ तथा “गविणा लुपितो मास-
श्चान्द्रः स्यात्तो मलिम्लुचः । तत्र यदिहितं कर्म उत्तरे मासि कारयेत्” तथा “पञ्च-
द्वयेऽपि स्रक्तातिर्यदि न स्यात्सितेसिते । तदा तन्मासविहितमुत्तरे मासि कारयेत्” ।
तथाच “अग्न्याधेयं प्रतिष्ठाञ्च यज्ञदानव्रतानि च । देवव्रतगृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः ।
माद्वल्यमभिषेकञ्च मलमासे विजर्जयेत्” । तथा “वापीकूपतडागानि प्रतिष्ठा यज्ञकर्म
च । न वृषान्मलमासेऽपि महादानव्रतानि च ।” अत्र कर्मविशेषस्य कर्तव्यतामाह
हागीत “गर्भं वार्द्धपिकृत्ये च मृतानां पिण्डकर्मसु । सपिण्डीकरणं चैव नाधिमासं विदु-
र्वेषाः” । तथा बृहस्पतिः । “नित्यनेमित्तिके कुर्यात्प्रयतः सन्मलिम्लुचे । तीर्थस्नानं
गजचूडार्पा प्रेतश्चाह तथैव च” । नित्यम् अहरहः कर्तव्यं नित्यश्चाहोमध्यानादि ।
नेमित्तिकं पुत्रजननमित्तकश्चाहमित्यर्थः । गजचूडार्पा चन्द्रसूर्यग्रहणं हस्तीसूत्या
श्रमालुः ग्रसते” इति श्रुतेः । साम्यायने दक्षिणायने आपादे तु हरिश्चयनमभ्युदय-
मुदयौ पुनरुक्तः । अत्र च गुप्तीदित्यादिजालाशुद्धौ आरब्धपट्टपञ्चम्यादिव्रतत्वं कर्तव्य-
मेव विशेषीर्यविर्यव्याति यथा गम्मावनीयादिब्रते शिशुग्रन्थे “मासे मलिम्लुचेऽप्येव
यजेद्देवां सशङ्काम् । किन्तु नोद्यापनं कार्यमित्याह भगवान्निब्रुवः । एतच्च यत्र यत्र
विधिस्तत्र विधीयर्ष्यप्रयात्तत्तरुमेव कर्तव्यमेव यथा साम्यायने अनन्तव्रतादि तथा
आरण्ये मामि गृहाग्न्य इत्यादि—इति ॥

यज्ञ, गमन, चूडाकर्म, प्रतिष्ठा, उपनयन, विद्यारम्भ, गृह्यारम्भ, कर्णवेध, महा-
दान, वनसेवन, अनावृत्त, तीर्थस्नान, विवाह, देवमवनारम्भ, मन्त्रादिग्रहण और
अनावृत्त अनादिदेवतादर्शन इतने कार्य शुक्र अस्त होनेमें जीवनकी इच्छा कर-
नेवाला मनुष्य परित्याग करे अर्थात् शुक्रास्तादिके लिये अकाल होनेसे उक्त
समस्त कार्य न करना चाहिये ॥ ४२ ॥

सर्वाणि शुभकर्माणि कुर्यादस्तं गते सिते ।

विवाहं मेखलाबन्धं यात्राञ्च परिवर्जयेत् ॥ ४३ ॥ (*)

इति बृहद्राजमार्तण्डे ।

अर्थ-बृहद्राजमार्तण्डमें लिखा है कि, सभी शुभकर्म शुक्रास्तमें करना चाहिये-
परन्तु विवाह, उपनयन और यात्रादि (*) को परित्याग करे ॥ ४३ ॥

बाले शुके वृद्धे शुके नष्टे शुके जीवे नष्टे ।

बाले जीवे वृद्धे जीवे सिंहादित्ये गुर्वादित्ये ॥ ४४ ॥

तथा मलिम्लुचे मासि सुराचार्येऽतिचारगे ।

वापीकूपतडागादिक्रियाः प्रागुदितास्त्यजेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ-शुक्रके बाल्य, (उदय) वार्द्धक्य और अस्तसमयमें, बृहस्पतिके अस्त
बाल्य और वार्द्धक्यकालमें सिंहादित्यमें, गुर्वादित्यमें, मलमासमें और बृहस्प-
तिके अतिचारी होनेमें पूर्वोक्त वापी, कूप और तडागादि कर्मको परित्याग
करना चाहिये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अतिचारगते जीवे वक्त्रे चैव बृहस्पतौ ।

कामिनी विधवा प्रोक्ता तस्मात्तौ परिवर्जयेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ-बृहस्पतिके अतिचारी वा वक्त्री होनेमें यदि विवाह हो तब विवाहिता
कन्या विधवा होती है, अतएव बृहस्पतिके अतिचारी वा वक्त्री होनेमें विवाह
निषिद्ध है ॥ ४६ ॥

अतिचारं गते जीवे वक्त्रे वास्तमुपागते ।

व्रतोद्वाहौ न कुर्यात् जायते मरणं ध्रुवम् ॥ ४७ ॥ (दृ)

अर्थ-बृहस्पतिके अतिचारी होनेमें वक्त्री होजानेमें अथवा अस्तादि होनेमें
(*) यात्रा चेति चारो रचनान्तर्गेक प्रातिगिनानिषिद्धमन्त्रि मशुद्धिनोति ।
(•) यात्रादि इति आदिग्रन्थमें अन्यान्यरचनोक्त प्रातिगिनानिषिद्धमं जानना
चाहिये ।

(दृ) अतिचारगे दोषमाह-अतिचार इति । अतिचारगे गुरो व्रतोद्वाहौ न कुर्यात्

उपनयन ओर विवाहादिकार्य न करना चाहिये, उक्त समयमें यदि कोई कार्य करे तो उसकी मृत्यु होती है ॥ ४७ ॥

अतिचारं गतो जीवःपूर्वभं नैव गच्छति ।

समचारेऽपि कर्माणि नैव तत्रैव संस्थिते ॥ ४८ ॥

अर्थ—बृहस्पति अतिचारी होकर यदि पूर्वराशिमें गमन न करे वा समाचार होकरभी यदि उसी राशिमें स्थित हो तब अकालजन्यकर्म निषिद्ध होता है ॥ ४८ ॥

वाले वृद्धे तथैवास्ते कुरुते दैत्यमन्त्रिणि ।

उद्धाहितायां कन्यायां दम्पत्योरेकनाशनम् ॥ ४९ ॥

इति भैरवाचार्यः ।

अर्थ—भैरवाचार्यने कहा है कि, शुक्रके बाल्य (उदय) बादिकय वा अस्तजन्य अकालमें यदि विवाह हो तो दोनोंमेंसे एककी मृत्यु होती है ॥ ४९ ॥

प्रागुद्यतःशिशुरहस्रितयं सितः स्या-

त्पश्चाद्दशाहमिति पञ्चदिनानि वृद्धः ।

प्राक्पक्षमेव कथितोऽग्निवसिष्ठगणै-

र्जीवस्तु पक्षमपि वृद्धशिशुर्विधर्ज्यः ॥ १५० ॥

अर्थ—शुक्र पूर्व दिशामें उदित (शिशु) होनेसे तीन दिन अकाल होता है, इसी प्रकार पश्चिम दिशामें बालक (उदित) होनेसे दश दिन अकाल होता है

ब्रह्मसुपनयनम् । एतच्चोपलक्षणम् यथा गजमात्तण्डे—अतिचारं गते जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम् । ब्रह्मोद्वाहादिब्रूयात्प्रागुद्यतः सितः स्यात् । अत्र च शब्दोक्तस्तस्मात् सत्यं वक्तव्यं । नान्यथेति । अत्र च वक्रातिचारगो गुरुयस्मिन् राशौ याति तस्यैव फल दानि । यथा—गजमात्तण्डे—यगहमाण्डव्यपराशराद्या गंगाद्विगद्या मुनयो वदन्ति । वक्रातिचारे सुराजमन्त्री यत्रागमनम् फल दानि ॥ एव महातिचारे मत्स्यसमेव मङ्गल न वर्ज्यम् । तथाच ' अतिचारं गतो जीवस्तत्रैव कुरुते स्थितम् । तथा महातिचारः स्यान्त्यमत्स्यस्य । ' तथा अस्मिन् जीवे ब्रह्मोद्वाहो न कुर्यात् अत्राप्युपलक्षणं यथा गजमात्तण्डे—' अस्तं प्रयति च भृगो गुणं वा सूर्यं निरशो हिमगो प्रनष्टे । न रूपसाप्पादिकुम्भदिगार्थं शुभं प्रतिष्ठे धनसोक्तिनाशान् । अस्मिन्ने भृगुपुत्रे कन्या प्रियेने बृहस्पते पुत्र्यः । उभयोरपि मरण म्यात्तेतो पाणिग्रहेऽभ्युदिने ॥ तथा अस्तमनत्तमुपलक्षणं सायावाल इहोत्तेऽपि शुभमर्म न कर्तव्यम् । यथा गजमानेण्डे—'वाले वृद्धे च मन्ध्याशे चतुःपथागमनम् । जीवे च भागेने चैव विवाहादिषु वर्जयेत् ' इति ।

पश्चिम दिशामें अस्त (वृद्ध) होनेसे पाच दिन (आपाद्विपयम्) अकाल होताहे और पूर्वदिशामें वृद्ध होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहे और बृहस्पतिके बालक (उदय) वा वृद्ध (अस्त) होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहे ॥ १५० ॥

पक्षं वृद्धस्तु पूर्वेण दशाहं पञ्चमेन तु ।

प्रत्यग्बालो दशाहन्तु पूर्वेण तु दिनत्रयम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—शुक्र पूर्वदिशामें स्थित होकर वृद्ध (अस्त) होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहे । पश्चिमदिशामें वृद्ध होनेसे दशादिन अकाल होताहे पश्चिमदिशाम बालक होनेसे दशादिन अकाल होताहे और पूर्वदिशाम बालक (उदय) होनेसे तीनदिन अकाल होताहे ॥ ५१ ॥

अत्यन्ताशक्तो ।

बाले वृद्धे च सन्ध्यांशे चतुःपञ्चत्रिवासरान् ।

जीवे च भार्गवे चैव विवाहादिषु वर्जयेत् ॥ ५२ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्तण्डमें अत्यन्त अशक्त विषयमें कहा है कि, बृहस्पति वा शुक्रके बालक होनेसे चार दिन, वृद्ध होनेसे पाचदिन और सन्ध्यागत होनेसे तीन दिन परित्याग करके विवाहादि शुभ कार्यको करे ॥ ५२ ॥

वने चैवातिचारे त्रिदशपतिगुरौ देवपूज्ये च सुप्ते
गुर्वादित्येऽधिमासे दिवसकरारिषा वाक्पता चैत्रपापे ।

विष्ट्यां केतुद्रमे वा शरादि सुरगुरौ सिंहसंस्थे मनोज्ञे

वर्षादाप्नोति प्रौढासुनियतमरणं देवकन्यापि भर्तुः ॥ ५३ ॥

अर्थ—बृहस्पतिके वनी वा आतिचारी होनेसे हतिशयनम्, गुर्वादित्ययोगम्, अधिमासमें, राहुके साथ बृहस्पति होनेसे चैत्रमासमें और पोषमासमें, विष्टिभद्रा-तिथिमें, शरत्कालम्, केतुद्रम होनेसे, शर बृहस्पति सिंहगशिम् स्थित होनेमें यदि कन्याका विवाह होय तब वह देवकन्या होनेसेभी उससे पतिकी मरत्माके मध्यमेंही मृत्यु होतीहै ॥ ५३ ॥

एकराशिस्थितौ स्यातां यदि राहुबृहस्पतौ ।

विवाहव्रतयज्ञादि तदा सर्वत्र वर्जयेत् ॥ ५४ ॥

अर्थ—वचनान्तरम् लिखाह कि, राहु और बृहस्पति यदि एकराशिम् मिलन होय तो विवाह व्रत और यज्ञादि कार्यको परित्याग कर ॥ ५४ ॥

(१) ' एकराशौ यदि स्यात्तामेव १ पिये यदि ।

गुर्वादित्ये तदा त्याग्या यज्ञेद्वाहादिक्रिया ॥ ”

उपनयन और विवाहादिकार्य न करना चाहिये, उक्त समयमें यदि कोई कार्य करे तो उसकी मृत्यु होती है ॥ ४७ ॥

अतिचारं गतो जीवःपूर्वमं नैव गच्छति ।

समचारेऽपि कर्माणि नैव तत्रैव संस्थिते ॥ ४८ ॥

अर्थ—वृहस्पति अतिचारी होकर यदि पूर्वराशिमें गमन न करे या समाचार होकरभी यदि उसी राशिमें स्थित हो तब अकालजन्यकर्म निषिद्ध होता है ॥ ४८ ॥

वाले वृद्धे तथैवास्ते कुरुते दैत्यमन्त्रिणि ।

उद्धाहितायां कन्यायां दम्पत्योरेकनाशनम् ॥ ४९ ॥

इति भैरवाचार्यः ।

अर्थ—भैरवाचार्यने कहा है कि, शुक्रके बाल्य (उदय) बादेंकय वा अस्तजन्य अकालमें यदि विवाह हो तो दोनोंमेंसे एककी मृत्यु होती है ॥ ४९ ॥

प्रागुद्यतःशिशुरहस्त्रितयं सितः स्या-

त्पश्चादशहमेति पञ्चदिनानि वृद्धः ।

प्राक्पक्षमेव कथितोऽत्रिवसिष्ठगर्भ-

र्जावस्तु पक्षमपि वृद्धशिशुर्विवर्ज्यः ॥ १५० ॥

अर्थ—शुक्र पूर्व दिशामें उदित (शिशु) होनेसे तीन दिन अकाल होता है, इसी प्रकार पश्चिम दिशामें बालक (उदित) होनेसे दश दिन अकाल होता है

व्रतमुपनयनम् । एतच्चोपलक्षणम् यथा राजमातृण्डे—“अतिचारं गतो जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम् । व्रतोद्वाहादेष्टव्यामष्टाविंशतिवासरात् ॥” अष्टाविंशतिदिनमात्रवर्जनन्तु कार्येवशेनानुपेक्षणीयस्यादिति । अत्र च रात्र्यन्तरसञ्चारे सत्त्वेव व्रतातिचारदोषो नान्यथेति । अत्र च व्रतातिचारगो गुरुर्यस्मिन् गच्छी याति तस्यैव फल ददाति । यथा—राजमातृण्डे—“यगहमाण्डव्यपराशराद्या गर्गाद्विगद्या मुनयो वदन्ति । व्रतातिचारे मुरराजमन्त्री यत्रागतस्तत्र फल ददाति ॥” एवं महातिचारं सप्तस्तरभ्य मद्गल न कर्त्तव्यम् । तथाच “अतिचारं गतो जीवस्मिन् कर्म्म स्थितम् । तथा महातिचारः स्यान्मृतमवत्सर्गक्रियः ।” तथा अस्तं गतो जीवे व्रतोद्वाहो न कुर्यात् अत्राप्युपलक्षणं यथा राजमातृण्डे—“अस्तं प्रयाने च भृगो गुरो वा मूर्धे निरक्षो हिमगो प्रनष्टे । न रूपस्याप्यादिकमन्दिगर्भा शुभं प्रदिष्टं धनकौत्सिनाश्यात् । अस्तमिते भृगुपुत्रे कन्या त्रियने वृहस्पति शुभः । उभयोरापि मरणं स्यात्केतो पाणिग्रहेऽप्युदिने ॥” तथा अस्तगन्तव्युपलक्षणं सध्यावालवृहत्तेऽपि शुभमर्म्म न कर्त्तव्यम् । यथा राजमातृण्डे—“वाले वृद्धे च सन्ध्याशे चतुःपञ्चाशसगत् । जीवे च भार्गवे च विवाहादिषु वर्जयेत् ॥” इति ।

पश्चिम दिशामें अस्त (वृद्ध) होनेसे पांच दिन (आपाद्विपयमें) अकाल होताहै और पूर्वदिशामें वृद्ध होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहै और बृहस्पतिके बालक (उदय) वा वृद्ध (अस्त) होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहै ॥ १५० ॥

पक्षं वृद्धस्तु पूर्वैण दशाहं पञ्चमेन तु ।

प्रत्यग्वालो दशाहन्तु पूर्वैण तु दिनत्रयम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—शुक्र पूर्वदिशामें स्थित होकर वृद्ध (अस्त) होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहै । पश्चिमदिशामें वृद्ध होनेसे दशादिन अकाल होताहै पश्चिमदिशामें बालक होनेसे दशादिन अकाल होताहै और पूर्वदिशामें बालक (उदय) होनेसे तीनादिन अकाल होताहै ॥ ५१ ॥

अत्यन्ताशक्तौ ।

बाले वृद्धे च सन्ध्यांशे चतुःपञ्चत्रिवासरान् ।

जीवे च भार्गवे चैव विवाहादिषु वर्जयेत् ॥ ५२ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्तण्डमें अत्यन्त अशक्त विषयमें कहा है कि, बृहस्पति वा शुक्रके बालक होनेसे चार दिन, वृद्ध होनेसे पांचदिन और सन्ध्यागत होनेसे तीन दिन परित्याग करके विवाहादि शुभ कार्यको करे ॥ ५२ ॥

वक्रे चैवातिचारे त्रिदशपतिगुरौ देवपूज्ये च सुप्ते

गुर्वादित्येऽधिमासे दिवसकरारिषां वाक्पतां चैत्रपौषे ।

विष्ट्या केतुद्रमे वा शरादि सुरगुरौ सिंहसंस्थे मनोज्ञे

वर्षादाप्नोति प्रौढासुनियतमरणं देवकन्यापि भर्तुः ॥ ५३ ॥

अर्थ—बृहस्पतिके वक्रा वा आतिचारी होनेसे हरिश्चयनमें, गुर्वादित्ययोगमें, अधिमासमें, राहुके साथ बृहस्पति होनेसे, चैत्रमासमें और पौषमासमें, विष्टिभद्रा-तिथिमें, शरत्कालमें, केतुद्रम होनेसे, और बृहस्पति सिंहराशिमें स्थित होनेसे यदि कन्याका विवाह होय तब वह देवकन्या होनेसेभी उसके पतिकी संवत्सरके मध्यमेंही मृत्यु होतीहै ॥ ५३ ॥

एकराशिस्थितौ स्यातां यदि राहुबृहस्पतौ ।

विवाहव्रतयज्ञादि तदा सर्वत्र वर्जयेत् ॥ ५४ ॥

अर्थ—वचनान्तरमें लिखाहै कि, राहु और बृहस्पति यदि एकराशिमें स्थित होय तो विवाह व्रत और यज्ञादि कार्यको परित्याग करे ॥ ५४ ॥

(१) “ एकराशी यदि स्यातामेकद्वौ निषेधे यदि ।

गुर्वादित्यो तदा स्याज्या यज्ञोद्वाहादिवक्रिया ॥ ”

वाले च दुर्भगा नारी वृद्धे नष्टप्रजा भवेत् ।

नष्टे च मृत्युमाप्नोति सर्वमेतद्रावपि ॥ ५५ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्तण्डमें लिखाहै कि, शुक्र वा बृहस्पतिके उदयकालमें विवाहिता नारी दुर्भगा होती है, इसी प्रकार शुक्र वा बृहस्पतिके अस्तसमय विवाहिता नारी मृतवत्सा होती है और अस्तभावमें होनेसे विवाहिता कन्याकी मृत्यु होती है ॥ ५५ ॥

सिंहगुरौ परिणीता पतिमात्मानमात्मजान्हन्ति ।

क्रमशस्त्रिषु पित्रादिषु वसिष्ठगगार्दयः प्राहुः ॥ ५६ ॥

अर्थ—वसिष्ठ और गार्गादिषुनिगणने कहाहै कि, सिंहराशिमें स्थित बृहस्पति मघा नक्षत्रमें होनेसे विवाहिता कन्याके पतिका नाश होताहै, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें स्थित होनेसे विवाहिता कन्याकी मृत्यु होती है और यदि उत्तराफाल्गुनी-नक्षत्रमें बृहस्पति होय तब विवाहिता कन्याकी सन्तानकी मृत्यु होती है ॥ ५६ ॥

गुरौ हरिस्थे न विवाहमाहुर्दारीतगर्गप्रमुखा मुनिन्द्राः ।

यदा न माघी मघसंयुता स्यात्तदा तु कन्योद्ग्रहनं वदन्ति ॥ ५७ ॥

अर्थ—बृहस्पति सिंह राशिमें स्थित होनेसे विवाह निषिद्ध होताहै, दारीत गर्ग प्रभृति श्रेष्ठ मुनिगणने इसीप्रकार कहाहै, परन्तु उनके मध्यमें विशेष यही है कि, यदि मघानक्षत्र माघीपूर्णिमामें होय तब सिंहराशिमें स्थित गुरुजन्य अकाल होता है और यदि माघी पूर्णिमाके दिन मघानक्षत्र न होय तो सिंहराशिमें स्थित बृहस्पति समानकालीन विवाहिता कन्याके शुभ होताहै ॥ ५७ ॥

अत्रैव माण्डव्यः ।

मघाऋक्षं परित्यज्य यदा सिंहे गुरुर्भवेत् ।

तत्राब्दे कन्यका चोढा सुभगा सुप्रिया भवेत् ॥ ५८ ॥

अर्थ—मघानक्षत्रमिन्न अन्य नक्षत्रमें स्थित होकर यदि सिंहराशिमें बृहस्पति होय तब उसमें विवाहिता कन्या सुभगा होती है ॥ ५८ ॥

अतिचारं गते जीवे वृषे वृश्चिककुम्भयोः ।

यज्ञोद्वाहादिकं कुर्यात्तत्र कालो न लुप्यते ॥ ५९ ॥

इति दारीतः ।

अर्थ—दारीतने कहाहै कि, बृहस्पति अतिचारी होकर यदि वृष, वृश्चिक वा

कुम्भराशिमें गमनकरै तब उसमें अकाल नहीं होता है, प्रत्युत यज्ञ और विवाहादि-
सर्व कार्य करना चाहिये ॥ ५९ ॥

अतिचारंगते जीवे वृषे वृश्चिककुम्भयोः ।

तत्र विवाहिता कन्या संप्रीणीयात्कुलद्वयम् ॥ १६० ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणौ ग्रन्थमें लिखा है कि, बृहस्पति अतिचारी होकर यदि
वृष, वृश्चिक वा कुम्भराशिमें गमनकरै तब उसमें विवाहिता कन्या दोनों कुलोंको
सुख देती है ॥ १६० ॥

यदातिचारं सुरराजमन्त्री करोति गोमन्मथमनिसंस्थः ।

न याति चेद्यद्यपि पूर्वराशिं शुभाय पाणिग्रहणं वसिष्ठः ॥ ६१ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ-भीमपराक्रममें वसिष्ठ मुनिने कहा है कि, बृहस्पति यदि अतिचारी
होकर वृष, मिथुन वा मीनराशिमें स्थित होय और पूर्व राशि न गमन करै, तब
उसमें विवाह शुभ होता है ॥ ६१ ॥

अतिचारं गते जीवे स्थिरराशौ च संस्थिते ।

तत्र न लुप्यते कालो वदत्येवं पराशरः ॥ ६२ ॥

अर्थ-पराशरने कहा है कि, बृहस्पति यदि अतिचारी होकर स्थिरराशिमें
स्थित होय तो बृहस्पति अतिचारजन्य अकाल नहीं होता है ॥ ६२ ॥

वापीकूपतडागादि निषिद्धं सिंहगे गुरौ ।

मकरस्थे तु तत्कार्यं न दोषः काललोपजः ॥ ६३ ॥

अर्थ-बृहस्पतिक सिंहराशिमें होनेसे वापी, कूप और तडागप्रभृतिका बनवाना
निषिद्ध है, किन्तु मकर राशिमें बृहस्पति स्थित होनेसे वापी, कूप और तडा-
गादि सभी बनवाना चाहिये अर्थात् अकाल नहीं होता है ॥ ६३ ॥

कन्यावृश्चिकमेपेपु मिथुने च ज्ञपे वृषे ।

अतिचारेऽपि कर्तव्यं विवाहादि बुधैः सदा ॥ ६४ ॥ (*)

अर्थ-कन्या, वृश्चिक, मेष, मिथुन, मीन और वृषराशिमें बृहस्पति अतिचारी

होकर गमन करनेसे अकाल नहीं होता है अर्थात् विवाहादि कर्म होसक्ता है इसी प्रकार पण्डितोंने कहा है ॥ ६४ ॥

त्रिकोणजायाधनलाभराशौ वक्रातिचारेण गुरुः प्रयातः ॥ यदा तदा प्राह शुभे विलम्बे हिताय पाणिग्रहणं वसिष्ठः ॥ ६५ ॥ (*)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—बृहस्पति वक्रा वा अनिचारी होकर यदि कर्म करनेवालेके नवम, पञ्चम, सप्तम, द्वितीय वा एकादश राशिमें स्थित होय तो शुभलग्नमें विवाह होसक्ता है, और वह विवाह मङ्गलदायक होता है इस प्रकार वसिष्ठने कहा है ॥ ६५ ॥

मकरस्थो यदा जीवो वर्जयेत्पञ्चमांशकम् ।

शेषेष्वपि च भागेषु विवाहः शोभनो मतः ॥ ६६ ॥

इति देवीपुराणम् ।

अर्थ—देवीपुराणमें लिखा है कि, पहले मकर राशिमें स्थित होनेसे बृहस्पतिमें विवाहका निषेध कियाहै उसको पञ्चमांशमें जानना चाहिये. अन्य भागमें विवाह शुभदायक होताहै ॥ ६६ ॥

गण्डक्या उत्तरे तीरे गिरिराजस्य दक्षिणे ।

सिंहरस्थं मकरस्थञ्च गुरुं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ६७ ॥

अर्थ—गण्डकी नदीके उत्तरमें और हिमालयके दक्षिणमें स्थित जो देश है उनमेंही सिंहराशिमें और मकरराशिमें स्थित बृहस्पतिको यत्नसे परित्याग करे ॥ ६७ ॥

अथ प्रसङ्गादनादिदेवदर्शनादिनिषेधकथनम् ।

अनादिदेवतां दृष्ट्वा शुचः स्युर्नष्टभागवे ।

मलमासेऽप्यनावृत्तं तीर्थस्नानमपि त्यजेत् ॥ ६८ ॥ (घ)

इति भृगुकीशिकाव्ययः ।

अर्थ—नष्ट शुक्रमें और मलमास (अधिमास) में अनावृत्त अनादि देवताओंका

(•) वक्रानिचारे विवाहे विशेषमाह—त्रिकोणेति । जन्मराशेः सकाशात् नवमपञ्चमसप्तमद्वितीयैकादशराशौ वक्रातिचारेण यदि गुरुः प्रयातो गतः तदा शुभे लग्ने पाणिग्रहणं हिताय वसिष्ठः प्राह अन्यथा न कुर्यादित्यर्थः ।

(घ) “ आवृत्ते तीर्थगमने प्रतिज्ञाति च कर्मणि । कालात्यये च कन्यायाः कालदोषो न विद्यते ॥ ” इत्यादिगः । शुचः श्लोकाः नष्टभागव इति अष्टद्वकालमात्रोपलक्षणम् एवं मलमासेष्वपि । शुचः श्लोकाः दुःस्वर्णाति यावत् । नष्टभागव इति अष्टद्वकालान्तरीपलक्षणम् इदञ्च सकामपरं सुमुद्रणा अकालेऽप्यनादिदेवतादर्शनं कर्तुमर्हति शान्तिकर्मकादिति विन्ययः । अनावृत्तत्वञ्च प्रायश्चित्तविवेचि ।

दर्शन करनेसे शोक प्राप्त होता है और मलमासादिरूप अधिमासमें अनावृत्त तीर्थमेंभी स्नान न करना चाहिये ॥ ६८ ॥

वाले वा यदि वा वृद्धे शुके चास्तमुपागते ।

मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम् ॥ ६९ ॥ (न)

इति वृद्धमनुप्रभृतयः ।

अर्थ-मलमासमें जिस प्रकार अनावृत्त अनादि देवताओंका दर्शन करना मनेहे तिसी प्रकार शुक्रके बाल्य (उदय) में, वृद्धिमें (अस्नमें) भी अनावृत्त अनादि देवताओंका दर्शन न करना चाहिये ॥ ६९ ॥

अनादिदेवता (*) चासु कालदोषो न विद्यते ।

नित्यास्वभ्यासयोगेन तथैवैकादशीव्रते ॥ १७० ॥ (प)

अर्थ-आवृत्त अनादि देवताके पूजनमें कालदोष नहीं होताहै और जिस प्रतिमाकी नित्यपूजा होय उसमेंभी कालदोष नहीं होताहै और एकादशीके व्रतमेंभी कालदोष नहीं होताहै ॥ १७० ॥

गयायां प्रतिप्रसवमाह ।

गयायां सर्वकालं तु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः ।

अधिमासे जन्मदिने अस्ते च गुरुशुक्रयोः ।

न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थे च बृहस्पतौ ॥ ७१ ॥

इति तीर्थचिन्तामणौ-वायुपुराणम् ।

अर्थ-गयाक्षेत्रमें पिण्डतगण सर्वदाही पिण्डदान करतेहैं अधिमास (मलमास) में जन्मदिनमें, बृहस्पति और शुक्रके अस्तसमयमें वा बृहस्पतिके सिंहराशिमें स्थित होनेसेभी गयाश्राद्धको परित्याग न करना चाहिये ॥ ७१ ॥

अथाकालवृष्टिकथनम् ।

चतुर्मासे निवृत्ते तु चक्रपाणौ समुत्थिते ।

(न) यथा मलमासे अनावृत्तमेव अनादिदेवतादर्शन वर्जनीय तथा बालशुक्रादावप्यनावृत्तमेव अनादिदेवतादर्शन वर्जयेत् । न तु आवृत्तमापि । शुक्रास्त इति एतच्चेष्टलक्षणम् इति ॥

(*) अनादिदेवतात्वञ्च पुराणभारतादिप्रसिद्ध श्रीपुरुषोत्तमत्रिभुवनेश्वरप्रभृतित्व तेनानावृत्तादिदेवतादर्शन नीर्यस्नानञ्च शुक्रास्ने मलमासे च न्यजेत् इति।मलमासतत्त्वे स्मार्त-नोक्तम् ।

(प) यासु अर्चासु नित्य पूजा क्रियते ताम्बित्यर्थः । अभ्यासोति प्रत्यह पूजयेदित्यर्थः ।

अकालवृष्टिं जानीयाद्यावन्न सुप्यते हरिः ॥ ७२ ॥ (फ)

अर्थ—चतुर्मासके अन्तर्मे श्रीहरिके उत्थान (उठने) से शयनके पूर्वकालपर्यन्त जो समय है उसमें वृष्टि होनेसे अकालवृष्टि कही जाती है । जीमूत (मेघ) वाहन “यावन्न सुप्यते हरिः” इस स्थलमें “यावद्विष्णुमहोत्सवः” इस प्रकार पाठ करके फाल्गुनीपूर्णिमापर्यन्त अकालवृष्टिका समय कहा गया है ॥ ७२ ॥

पौषादिचतुरो मासान्ज्ञेया वृष्टिरकालजा ।

व्रतयज्ञादिकं तत्र वर्जयेत्सप्तवासरान् ॥ ७३ ॥

इति भोजदेवः ।

अर्थ—सौर पौषसे चैत्रपर्यन्त वर्षनेसे अकालवृष्टि जानना चाहिये तीन दिन क्रमसे चरणाङ्कित वर्षनेसे शेष दिनसे सप्ताहपर्यन्त अकाल होता है, इसमें व्रतयज्ञादि काम्य कर्मका आरम्भ न करना चाहिये ॥ ७३ ॥

मार्गा (*) न्मासात्प्रभृति मुनयो व्यासवाल्मीकिगर्गाः

श्वेत्रं यावत्प्रवर्षणविधौ नेति कालं वदन्ति ।

नाडीजङ्घः सुरगुत्सुनिर्वक्ति वृष्टेरकालौ

मासावेतावशुभफलदौ पौषमाघौ न शेषाः ॥ ७४ ॥

अर्थ—पौषमाससे चैत्रमासपर्यन्त वृष्टिका अकाल होता है, व्यास, वाल्मीकि और गर्गमुनिने इस प्रकार कहा है, किन्तु नाडीजङ्घ और बृहस्पतिके मतसे पौष और माघमें वृष्टिसे अकालवर्षण होता है, एतद्विन्नमासमें वृष्टि होनेमें कालवर्षण होता है ॥ ७४ ॥

वृष्टिः करोति दोषं तावन्नाकालसम्भवा राज्ञः ।

यावन्न भवति याने नरपशुचरणाङ्किता वसुधा ॥ ७५ ॥

अर्थ—जित वर्षामें मनुष्य और पशुओंके चरणोंका चिह्न पृथिवीमें अङ्कित न हो तो उस अकालवृष्टि होनेमें दोष नहीं होता है ॥ ७५ ॥

प्रकृतमनुसरामः ।

अनिष्टे त्रिविधोत्पाते सिद्धिकासुनुदर्शने ।

(फ) अथ यावद्विष्णुमहोत्सव इति जीमूतवाहनः पठति । महोत्सवः फाल्गुनपूर्णिमादि व्याप्यते च ।

(*) मार्गादित्यधौ पञ्चमी नाभाविधौ पौषादित्यनेनैकतापत्वात् ।

सप्तरात्रं न कुर्वीत यात्रोद्वाहादि मङ्गलम् ॥ ७६ ॥ (ब)

अर्थ—दिव्य, भौम और आन्तरिक्ष (*) इन तीन प्रकारके उत्पातोंमें और ग्रहण पडनेसे सात दिनपर्यंत यात्रा और विवाहादि मङ्गल कार्य न करना चाहिये ॥ ७६ ॥

विशेषमाह ।

एकरात्रं परित्यज्य कुर्यात्पाणिग्रहं ग्रहे ।

प्रयाणे सप्तरात्रन्तु त्रिरात्रं व्रतबन्धने ॥ ७७ ॥

अर्थ—ग्रहणका एक दिन परित्याग करके विवाहकरै सात दिन परित्याग करके यात्रा करै और तीन दिन परित्याग करके उपनयन (यज्ञोपवीत) करै ॥ ७७ ॥

दिग्दाहे दिनमेकञ्च ग्रहे सप्तदिनानि च ।

भूकम्पे च समुद्रूते त्र्यहाणि परिवर्जयेत् ॥ ७८ ॥

(ब) अस्य कालशुद्धिमाह—अनिष्ट इति । त्रिविधोत्पातो दिव्यभौमान्तरिक्षरूपः । दिव्यो ग्रहयुद्धधूमकेतुदयादिः । भौमो भूकम्पनिर्घातादिः । आन्तरिक्षो दिग्दाहोल्कादिः एतेषाञ्चान्यादिमण्डलपातेनानिष्टफलत्वमिष्टफलत्वञ्च एतत्सर्वं स्थानान्तरे विवृतम् । अत्र चानिष्टफले त्रिविधोत्पाते सप्तरात्र यात्रोद्वाहादि मङ्गल कर्म न कुर्यात् इष्टफले तु कर्त्तव्यमेवैतत् तात्पर्यम् । तथा राहुदर्शनेऽपि सप्तरात्र मङ्गल न कुर्यात् । ननु दिव्य ग्रहैर्विकृत्यमित्यनेन राहुदर्शनस्यापि दिव्योत्पातत्वात् पुनरुक्तिः सत्यं राहुदर्शने सत्येव निषेधः । यस्तु कदाचित् राहु न पश्याति तेन मङ्गल न कर्त्तव्यमेव । यथा राहुदर्शन एव स्नानादेः कर्त्तव्यता नादर्शने । अन्यथा मेघाच्छन्नतया दर्शनाभावेऽपि निषेधः स्यादिति दर्शनपदन्तु चाक्षुषज्ञानपर ज्ञानमात्रपरत्वे लक्षणाप्रसङ्गात् एतत्सर्वं समयप्रकाशे विस्मृतमिति अतो राहुदर्शने सत्येव निषेधः । अन्योत्पातानां तु दर्शनेऽपि निषेध इत्य-पुनरुक्तिः । किञ्चात्र राहुदर्शने इष्टे आनिष्टे च सामान्यतो निषेध इति । तथा चानिष्ट-मुक्त वराहसंहितायाम् । “ जन्मसप्ताष्टरिष्काङ्कदशमस्थे निशाकरे । दृष्टोऽरिष्टप्रदो राहुर्जन्मक्षे निधनेऽपि वा ” ॥ जन्मर्क्षं त्रिजन्मनक्षत्र निधन त्रयोर्विज्ञानक्षत्रम् । अत्रापि दृष्ट इति त्रिरात्रान्तर्धनमप्यदर्शनदेव्यारिष्टप्रदत्तं जन्मदर्शनादिति । अत्र च राशौ यत्र विधुन्तुदेन तरणिरित्यादिवचन पठन्ति । समूलमिति समूलत्वे च गोचरविशेषोऽयम् । एवञ्चाकालवृषावपि सप्तरात्र मङ्गल न कर्त्तव्यम् । तथा च राजमार्त्तण्डे—“ पीपादिच-तुरो मासाञ्शेषा वृष्टिराजरा । व्रत यात्रादिकं तत्र वर्जयेत्सप्तवासरात्र ॥ दृष्टिः करोति दोषं तावन्माकालसम्भवा राज्ञः । यावन्न भवाति गमने नरपशुचरणजिह्वा वसुधा ” इति । यावत्कर्द्धमाक्ता पृथिवी न स्यादित्यर्थः ।

(•) ग्रहयुद्ध और धूमकेतु उदयादि दिव्योत्पात, भूकम्पनिर्घातादि भौम उत्पात और दिग्दाह उल्कापातादि आन्तरिक्षोत्पन्न उत्पात हे ॥

उल्कापाते च त्रिदिनं धूमे पञ्चदिनानि च ।

वज्रपाते दिनमेकं वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥ ७९ ॥

अर्थ—दिग्दाहमें एक दिन, ग्रहणमें सात दिन, मृकम्पमें तीन दिन, उल्कापातमें तीन दिन, धूमकेतुके दर्शनमें पांचदिन और वज्रपतन (गिरने) में एक दिन परित्याग करके समस्त मङ्गलकार्य करना चाहिये ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अथ जन्ममासादौ विवाहादिनिषेधः ।

न जन्ममासे नच चैत्रपौषे क्षौरं विवाहो न च कर्णवेधः ।

अर्थस्य हानिं बहुदुःखपीडां मूलस्य नाशं मुनयो वदन्ति ॥ १८० ॥

अर्थ—अथ जन्ममासादिमें विवाहादिका निषेध कहते हैं जन्मके मासमें, चैत्रमासमें वा पौषमें क्षौरकर्म विवाह और कर्णवेध न करना चाहिये जो मनुष्य इन मासोंमें उक्त कार्यको करते हैं उनके द्रव्यका नाश होता है अनेकप्रकारके दुःख होते हैं, रोग होता है और मूलका विनाश होता है इसप्रकार मुनिगणोंने कहा है ॥ १८० ॥

आपिच भोजदेवः ।

यो जन्ममासे क्षुरकर्मयात्रां कर्णस्य वेधं कुरुते विवाहम् । (भ)

नूनं स रोगं धनपुत्रनाशं प्राप्नोति मूढो वधबन्धनानि ॥ ८१ ॥

अर्थ—भोजराजने कहा है कि, जो मनुष्य जन्ममासमें क्षौरकर्म, यात्रा, कर्णवेध और विवाह करता है उसके धन और पुत्रका नाश होता है और वह मनुष्य रोगी होता है और वध बन्धन होता है ॥ ८१ ॥

मातिप्रसवमाह ।

जातं दिनं दूषयते वसिष्ठश्चाष्टौ च गर्भो यवनो दशाहम् ।

जन्माख्यमासं किल भागुरिश्च चौले विवाहेक्षुरकर्णवेधे ॥ ८२ ॥

अर्थ—वसिष्ठने कहा है कि, जन्मदिन परित्याग करके चूड़ा, विवाह, क्षौरकर्म और कर्णवेध करना चाहिये । इसी प्रकार गर्भमुनिके मतसे आठ दिन और यवन मुनिके मतसे दशदिन त्यागकरके उक्त कार्य करना चाहिये किन्तु भागुरिसुनिके मतमें जन्ममासकोटी परित्याग करके उक्त कार्य करना चाहिये ॥ ८२ ॥

(भ) एतं च मोहादिति पाठान्तम् ।

अपिच ।

स्नानं दानं तपो होमः सर्वमाङ्गल्यवर्द्धनम् ।

उद्वाहश्च कुमारीणां जन्ममासे प्रशस्यते ॥ ८३ ॥

इति श्रीपतिसमुच्चये ।

अर्थ-स्नान, दान, तपस्या, होम और समस्त मङ्गलके बढानेवाले कार्य और कन्याका विवाह जन्ममासमें प्रशस्त हैं ॥ ८३ ॥

अन्यच्च ।

जन्ममासे च पुत्राढ्या धनाढ्या च धनोदये ।

जन्मभे जन्मराशौ च कन्या हि ध्रुवसन्ततिः ॥ ८४ ॥

इति ध्रुवचिन्तामणौ

अर्थ-कृत्याचिन्तामणिग्रन्थमें लिखाहै कि, जन्ममासमें कन्याका विवाह होनेसे पुत्रवती होती है, जन्ममाससे द्वितीयमासमें विवाहिता कन्या धनशालिनी होती है और जन्मनक्षत्रमें वा जन्मराशिमें जिस कन्याका विवाह होय तो उसके शीघ्र ही सन्तति होती है ॥ ८४ ॥

अपरञ्च ।

ज्येष्ठे मासि तथा मार्गे क्षौरं परिणयं व्रतम् ।

ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोश्च यत्नतः परिवर्जयेत् ॥ ८५ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ-प्रथम गर्भोत्पन्न पुत्र वा कन्याको ज्येष्ठ मासमें, वा अप्रहायण मासमें चूडाकरण, विवाह और पुत्रका उपनयन इनको यत्नके साथ परित्याग करना चाहिये । इस प्रकार गर्गमुनिने कहा है ॥ ८५ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

न जन्ममासे न च जन्मभे तथा नैव जन्मदिवसेऽपि कारयेत् ।

आद्यगर्भभवपुत्रकन्ययोज्येष्ठे मासि न च जातु मंगलम् ॥ ८६ ॥

अर्थ-जन्ममासमें, जन्मनक्षत्रमें और जन्मदिनमें पुरुषका माङ्गल्य कर्म न करे और ज्येष्ठ मासमें प्रथम गर्भके पुत्र वा कन्याका माङ्गल्य कर्म न करना चाहिये ८६

अपिच ।

कृत्तिकास्थराविं त्यक्त्वा ज्येष्ठे ज्येष्ठस्य कारयेत् ।

उत्सवेषु च सर्वेषु दिग्दिनानि च, वर्जयेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ—कृत्तिका नक्षत्रमें स्थित सूर्य अर्थात् ज्येष्ठ मासके प्रथम कृष्ण पक्षके दश दिन परित्याग करके ज्येष्ठ पुत्र वा ज्येष्ठ कन्याका समस्त मङ्गलकार्य करना चाहिये ॥ ८७ ॥

अन्यच्च ।

कूपिवपनविवाहाः पट्टवद्धाभिषेकः
प्रथमयुवतिसेवा गन्धमाल्यानुलेपः
इति वदति समस्तं जन्मवारे प्रशस्तं
पथिगमनविरुद्धं क्षौरकर्मातिरुद्धम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—सस्यरोपण (खेतमें बीज बोना) विवाह (*) पट्टवद्ध, आभिषेक, गर्भाधान, गन्ध, माल्य, (माला) और अनुलेपनकरण (उवटन करना) जन्मवारमें प्रशस्त है, यात्रा और क्षौरकर्म जन्मवारमें अत्यन्त निषिद्ध है, अतएव इन दोनों कार्योंको जन्मवारमें कभी न करना चाहिये ॥ ८८ ॥

अथ विवाहादौ ग्रहशुद्धिकथनम् ।

अष्टवर्गशुभैः श्रीमान्कर्म कुर्यान्नभश्चरैः ।
गोचरस्थैस्तदप्राप्तौ तत्प्राप्तौ चैव वेधगैः ॥ ८९ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमें लिखा है कि, अष्टवर्गमें ग्रहशुद्धि देखकर कर्म करना चाहिये, अष्टवर्गमें ग्रहोंकी शुद्धि न होनेसे गोचर शुद्धि देखे, गोचरमेंभी यदि ग्रहगण शुद्ध न हो तो वामवेधमें वा दक्षिणवेधमें शुद्ध होनेसे कार्य करना चाहिये ॥ ८९ ॥

अथाष्टवर्ग कथनम् ।

तथादी खेरष्टवर्गः ।

स्वादिनकृच्छुमदः क्षितिपक्षसमुद्रनगादिकपञ्चगतो-१ । २ । ४ । ७ । ८ ।
९ । १० । ११ इय विमावारिभर्तुर्मुख्यद्वादशेशगतो, ३ । ६ । १० । ११ इय कुजा-
दिनकरवत् १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ बुधाञ्जिशरर्चुनवादिषु जातो ३
५ । ६ । ९ । १० । ११ । १२ देवगुरोर्विषयर्चुनवेशगतो, ५ । ६ । ९ । ११ इय
मुरारिगुरोः समयाचलमास्करयातः ६ । ७ । १२ वीक्षणमरीचिसुतादपि मास्करव-
१ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ इय लग्नगृहान्निकृताद्वादशादिषु यातः ३ । ४ । ६ । १० ।

(*) कन्याके विवाहमें जन्ममास, जन्मराशि, और जन्मनक्षत्र प्रशस्त है । अतएव जन्मवारभी कन्याके विवाहमें प्रशस्त है ।

११ । १२ ॥ (x) ॥ रविरेखाः (४८) तथाच । सूर्यात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ चन्द्रात् ३ । ६ । १० । ११ । कुजात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । बुधात् ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । १२ जीवात् ५ । ६ । ९ । ११ शुक्रात् ६ । ७ । १२ मन्दात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ लग्नात् ३ । ४ । ६ । १० । ११ । १२-४८ ॥ १९० ॥

अर्थ-अब अष्टवर्ग कीर्तन करते हैं । जन्मसमयका राशिचक्र अर्थात् मनुष्यके जन्मकालमें जो ग्रह जिस राशिमें स्थित हों उन सब ग्रहोंको राशिचक्रमें स्थापन कर जो लग्न होय उनकोभी “ल” चिह्नद्वारा, यथास्थानमें अङ्कित करें । अनन्तर सूर्यके अष्टवर्ग करनेमें सूर्यग्रह जिस स्थानमें स्थित होय उसी स्थानसे प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम और एकादश घरमें एक २ रेखापात करनी चाहिये । एवं चन्द्रसे तृतीय, पष्ठ, दशम और एकादश घरमें एक २ रेखापात करें । इसी प्रकार मङ्गलसे प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश घरमें, बुधसे तृतीय, पञ्चम, षष्ठ, नवम, दशम, एकादश और द्वादश घरमें, बृहस्पतिसे पञ्चम, षष्ठ, नवम और एकादश घरमें, शुक्रसे षष्ठ, सप्तम और द्वादश घरमें, ज्ञानसे प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम और एकादश घरमें, और लग्नसे तृतीय, चतुर्थ, षष्ठ, दशम, एकादश और द्वादश घरमें एक २ रेखा अङ्कित करनी चाहिये । अष्टवर्गमें ग्रहगण शुद्ध है वा नहीं इसके देखनेकी रीति आगे लिखी गई है ॥ १९० ॥

इति रेखेष्टवर्गः ।

अथ चन्द्रस्याष्टवर्गः ।

चन्द्रः शुभोऽर्कात्रिकालाद्रिदन्तावलाशाशिवस्थः ३ । ६ । ७ । ८ । १० । ११-ततः स्वात्कुलामर्त्वगाशाशिवस्थः १ । ३ । ६ । ७ । १० । ११ क्षमाजादिवह्नीपुष्यद्विगीशेषवथ २ । ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । ज्ञात् कुगमाविवपाणागदन्तावलाशाशिवस्थो १ । २ । ३ । ४ । ५ । ७ । ८ । १० । ११ ५य जीवात्कुलभेदशैलेभकाष्ठाशिवस्थो १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ ५य शुक्रात्रिवेदेषुशैलप्रहाशाशिवस्थः ३ । ४ । ५ । ७ । ९ । १० ११ । तीक्ष्णांशु-

(*) अष्टवर्गोक्तगोचरफलमाह-स्वादिनकृदिति । जन्मकाले यत्र ग्रहास्तिष्ठन्ति तस्माद्वक्ष्यमाणप्रकरणेण शुभाशुभत्व बोद्धव्यम् । तत्र च यस्मिन्स्थाने शुभत्र वक्ष्यते तत्र रेखा दातव्या यत्र च नोक्त तत्र विद्वो दातव्या इति प्रकारः । अत्र च रविः स्वादात्मन क्षित्यादिगः शुभः विभावरीमर्त्तश्चन्द्रात् आदिषु रविः शुभः विभावरीति याकारी स्त्रीकृतौ हस्वी कचिदिति दीर्घस्य हस्तता । कुजात्सूर्यगत रविः शुभः बुधात्रिशरादिषु रविः शुभः । गुरोर्विषयादिषु रविः शुभः । शुक्रात् पडादिषु रविः शुभः । शनेः सूर्यगत रविः शुभः । लग्नात् आदिषु रविः शुभः ॥ इति ।

(१०२)

ज्योतिषतत्त्वसुधारणः ।

देहोद्भवाद्रामबाणर्तुशंभुस्थितो ३ । ५ । ६ । ११ । ऽथोदयाद्व्यवाहर्तुकाष्टाशि-
वस्यः ३ । ६ । १० । ११ ॥ (×) ॥ चन्द्ररेखा (४९) तथाच सूर्यात् ३ ।
६ । ७ । ८ । १० । ११ । चन्द्रात् १ । ३ । ६ । ७ । १० । ११ कुजात् २ ।
३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । बुधात् १ । १ । ३ । ४ । ५ । ७ । ८ । १० ।
११ जीवात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ शुक्रात् ३ । ४ । ५ । ७ ।
९ । १० । ११ मन्दात् ३ । ५ । ६ । ११ । लग्नात् ३ । ६ । १० । ११ ।
४९ ॥ ९१ ॥

इति चन्द्रस्याष्टवर्गः । (•)

अथ कुजस्याष्टवर्गः ।

कुजोऽर्काचतुभो बह्निबाणर्तुदिकछम्भुगो ३ । ५ । ६ । १० । ११ ऽथेन्दुतो गम-
कालेशगः ३ । ६ । ११ । ततः स्वात्कुहग्वेदसप्ताष्टदिकछम्भुगो १ । २ । ४ । ७ । ८ ।
१० । ११ । ऽथ निजानाथपुत्रादृणेष्वङ्गरुद्रोपयातः ३ । ५ । ६ । ११ । ततो
जीवतः कालकाष्टाशिवाकौपयातो ६ । १० । ११ । १२ ऽथ देवारिपृज्यादनेहो
(१) गजेशार्कसंस्थः ६ । ८ । ११ । १२ ततः सूर्यपुत्रात्कुवेदागनागग्रहाशा-
मवस्यो १ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ ऽथ लग्नात्कुरामाङ्गदिकछम्भुयातः
१ । ३ । ६ । १० । ११ । कुजरेखाः (३९) तथा च सूर्यात् ३ । ५ । ६ ।
१० । ११ । चन्द्रात् ३ । ६ । ११ कुजात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ ।
बुधात् ३ । ५ । ६ । ११ । जीवात् ६ । १० । ११ । १२ शुक्रात् ६ । ८ ।
११ । १२ मन्दात् १ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ लग्नात् १ । ३ । ६ ।
१० । ११ । ३९ ॥ ९२ ॥

इति कुजस्याष्टवर्गः ।

अथ बुधस्याष्टवर्गः ।

ज्ञः शुभोऽर्कतः शरर्तुगोशिवार्कगो ५ । ६ । ९ । ११ । १२ । ऽथ चन्द्रतो द्विवेद
कालनागद्विहमेहश्चेषु २ । ४ । ८ । १० । ११ भूमिजात् कुहककृतामनागगोदिगे-
शगः १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । ततः स्वात्कुवाद्विषधपण्णवादिषु १ ।
३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । १२ वाक्पते रसाष्टग्रम्भुसूर्यगो ६ । ८ । ११ ।

(•) चन्द्रोऽर्कात्रिभालादिषु शुभः । स्वादात्मनश्चन्द्रः कुगमादिषु शुभः । रुजा
दयादिषु चन्द्रः शुभः । बुधश्चन्द्रः कुगमादिषु शुभः । गुरोः कुहगादिषु चन्द्रः शुभः ।
शुक्राभ्यादिषु चन्द्रः शुभः । अने रामादिषु चन्द्रः शुभः । लग्नादिषु चन्द्रः शुभः । एव-
मन्येषामपि ग्रहाणां कर्त्तव्यम् ।

(•) चान्द्रादि ग्रहोक्ते अष्टवर्गोक्तानुगाद करनेमे निजेष लाभ नहीं है मिथानपू
र्वक रेखापातसे अष्ट देवसेही पाठक्रमण उक्त अष्ट देवक्रम अष्टवर्गचक्र खींच सक्ते है ।

(१) कुजद्वि । अनेहः पट् द्वि ।

तः ३ । ६ । ९ । ११ गुरोः शराष्टरन्ध्रादिष्टमहेगमः । ५ । ८ । ९ । १० । ११ ततः
 स्वात् कुपश्चकाष्टरन्ध्रादिविचोपगः १ । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । १० । ११ शने-
 गुणान्ध्रपश्चनागमोदशेगमो ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । १० । ११ ५थ लग्नतः कुपश्चका-
 ष्ठगोशिवस्थितः १ । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । ११ शुक्ररेखाः (५२) तथाच
 सूर्यात् ८ । ११ । १२ । चन्द्रात् १ । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । ११ । १२
 कुजात् ३ । ४ । ५ । ९ । ११ । १२ बुधात् ३ । ५ । ४ । ९ । ११ जीवात् ५ ।
 ८ । ९ । १० । ११ । शुक्रात् १ । २ । ६ । ४ । ५ । ८ । ९ । १० । ११ मन्दात्
 ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । १० । ११ लग्नात् १ । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । ११-५२ ॥ ९५ ॥

इति शुक्रत्याष्टवर्गः ।

अथ शनेष्टवर्गः ।

पङ्कगुरर्काच्छुभः क्षमायमाम्मोधिशीलाष्टदिक्छम्भुगो-१ । २ । ४ । ७ । ८ । १० ।
 ११ ५थेन्दुतो गमकालेशगः । ३ । ६ । ११ क्षमासुताद्विवाणर्जुकाष्टशिवाकोपगो ३ ।
 ५ । ६ । १० । ११ । १२ ५थ ज्ञतः कालदन्तावला (ग) विस्थितः ६ । ८ । ९ ।
 १० । ११ । १२ अथ जीवतो बाणकालेशमार्त्तण्डगः ५ । ६ । ११ । १२ ततो दैत्य-
 पूज्यादनेहः शिवाकोपगः ६ । ११ । १२ स्वाद्वताशेषुकालेशयातः ३ । ५ । ६ । ११ ।
 ततो लग्नतः क्षमागुणाम्मोधिपङ्कदिक्छम्भेस्थितः १ । ३ । ४ । ६ । १० । ११
 चन्द्रात् शानिरेखाः (४९) तथाच सूर्यात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ ।
 चन्द्रात् ३ । ६ । ११ कुजात् ३ । ५ । ६ । १० । ११ । १२ बुधात् ६ । ८ । ९ । १० ।
 ११ । १२ जीवात् ५ । ६ । ११ । १२ शुक्रात् ६ । ११ । १२ मन्दात् ३ । ५ ।
 ६ । ११ लग्नात् १ । ३ । ४ । ६ । १० । ११-३९ ॥ ९६ ॥

इति शनेष्टवर्गः ।

अथ लग्नाष्टवर्गः ।

सूर्यादेकाद्विचतुःसप्ताष्टदशैकादशेषु १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ सोमात्रि-
 पदेकादशेषु ३ । ६ । ११ मौमात्रिपक्षपदेकादशेषु ३ । ५ । ६ । ११ बुधात् पट्टनवद-
 शैकादशेषु ६ । ८ । ९ । ११ । गुरोः पञ्चपदेकादशदशेषु ५ । ६ । ११ । १२
 शुक्रात् पदेकादशदशेषु ६ । ११ । १२ शनेष्टपञ्चाष्टशैकादशेषु ३ । ५ । ८ ।
 १० । ११ लग्नादेकात्रिचतुःपङ्कदशैकादशेषु १ । ३ । ४ । ६ । १० । ११ लग्नरेखाः
 (३७) तथाच सूर्यात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ चन्द्रात् ३ । ६ ।

(ग) दन्तावलो हस्ती तदादि द्वादशपमेन्तमित्यर्थः । अत्राष्टमो गणिग ४८ चन्द्रस्य
 ४१ पुन्य ३९ बुधस्य २५ गुरोः ५६ शुक्रस्य ५२ शनेः ३९ ॥

११ । कुजात् ३ । ५ । ६ । ११ बुधात् ८ । ९ । १० । ११ जीवात् ५ । ६ ।
११ । १२ शुक्रात् ६ । ११ । १२ मन्दात् ३ । ५ । ८ । १० । ११ लग्नात् १ ।
३ । ४ । ६ । १० । ११-३७ ॥ ९७ ॥

इति एग्राष्टवर्गः ।

अथाष्टवर्गगणनक्रमः ।

यावती यावती रेखा ग्रहाणामष्टवर्गके ।

तावती द्विगुणीकृत्य चाष्टाभिः परिशोधयेत् ॥ ९८ ॥

अर्थ-अब अष्टवर्गके गिननेका क्रम लिखते हैं । पूर्वोक्तीतिसे रेखापात करनेमें जिस घरमें जिननी रेखा पातित हो उनको द्विगुणी (दूनी) करके आठसे भाग देवै ॥ ९८ ॥

अष्टोपरि भवेद्रेखा अष्टाभ्यान्तरविन्दवः ।

अष्टभिश्च समो यत्र समस्तोऽत्र निगद्यते ॥ ९९ ॥

अर्थ-आठसे भाग देनेसे जो अङ्क शेष बचै उनको उसी घरमें रखना चाहिये दूनी करनेसे यदि आठसे कम हों तो जितने बिन्दुओंसे आठ होसकै उतने बिन्दु उस घरमें रखना चाहिये और दूनी करनेसे यदि आठ होवें तब उस घरमें सम लिखना चाहिये ॥ ९९ ॥

स्पष्टमाह ।

शून्ये तु विन्दवश्चाष्टौ रेखैके रसविन्दवः ।

चत्वारो विन्दवो युग्मे द्विविन्दू रामरेखके ॥ २०० ॥

समा रेखा चतुष्के तु पञ्चमे नेत्ररेखिका ।

पङ्कटरेखासु चतूरेखा सप्तमे रसरेखिका ॥ १ ॥

इति जातरुचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ-अब आठों वर्गमें रेखा और शून्य लिखनेकी रीति कही जाती है । जिस घरमें रेखा, रेखापात न हो, उस घरमें आठ शून्य लिखना चाहिये । इसी प्रकार जिस घरमें एक रेखापात हो, उसमें छः शून्य जिस घरमें दो रेखा हों, उसमें चार शून्य, जिस घरमें तीन रेखा हों उसमें दो शून्य, लिखै और जिस घरमें चार रेखा हों उसमें सम लिखै, जिस घरमें पांच रेखा हो उसमें दो शून्य, जिस घरमें छः रेखा हों उसमें चार शून्य और जिस घरमें सात रेखा पातित हों उस घरमें छः शून्य लिखना चाहिये ॥ २०० ॥ १ ॥

अथ रेखाविन्दादीनां फलम् ।

श्रीरानन्दस्तथा श्रेयो योगो राज्यप्रदस्तथा ।

व्यादिद्विगुणरेखाणां फलमेतदनुक्रमात् ॥ २ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब द्व्यादिद्विगुण रेखाका फल कीर्तन करतेहैं । दो रेखा होनेसे श्री (लक्ष्मी) प्राप्त होती है । इसी प्रकार चार रेखामें आनन्दका अनुभव होताहै । छः रेखामें मङ्गल होताहै और आठ रेखा होनेसे राज्यप्राप्ति होती है ॥ २ ॥

अन्यच्च ।

रेखाद्वये शुभं कुर्याद्वनी रेखाचतुष्टये ।

रेखापङ्के प्रभुख्यातिरष्टरेखे महीपतिः ॥ ३ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—जातकचन्द्रिकामें लिखाहै कि, अष्टवर्गके धर्ममें दो रेखा होनेसे शुभ होताहै, चार रेखा होनेसे धनवान् होताहै, छः रेखा होनेसे प्रभुत्वलाभ होताहै और आठ रेखा होनेसे राजा होताहै ॥ ३ ॥

मलिनोऽथ विपद्धानिर्योगो मृत्युप्रदस्तथा ।

द्व्यादिद्विगुणविन्दूनां फलमेतदनुक्रमात् ॥ ४ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—द्व्यादिद्विगुणशून्यका फल वर्णन करतेहैं । अष्टवर्गमें दो शून्य पडनेसे मलीनता होती है इसी प्रकार चार शून्यमें विपत् छः शून्यमें हानि और आठ शून्य पडनेसे मृत्यु होती है ॥ ४ ॥

अपरश्च ।

शून्यद्वये भवेन्मृत्युश्चतुःशून्ये प्रपीडनम् ।

षट्शून्ये रोगदारिद्र्यमप्यशून्ये मृतिर्भवेत्ति ॥ ५ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—जातकचन्द्रिकामें अष्टवर्गके शून्योंका फल इस प्रकारसे कहाहै कि, दो शून्य होनेसे मृत्युके समान फल होताहै । इसी प्रकार चार शून्य होनेसे पीडा होतीहै छः शून्य होनेसे रोग और दरिद्रता होतीहै और आठ शून्य होनेसे मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ५ ॥

शुभा रेखाः समाख्याता विन्दुश्चाशुभा मताः ।

यत्र रेखा न विन्दुश्च तत्समं परिकीर्तितम् ॥ ६ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अष्टवर्गमें यदि रेखापात हो तब शुभ होता है, बिन्दु पडनेसे अशुभ

होता है और जिस स्थानमें रेखा वा बिन्दु (ग्रन्थ) कुठभी न होवे उसको सम करते हैं । उस स्थानसेभी शुभ फल होता है ॥ ६ ॥

अविशुद्धाष्टवर्गस्य फलमाह ।

अष्टवर्गेषु ये शुद्धास्ते शुद्धाः सर्वकर्मसु ।

अशुभाश्चाष्टवर्गेषु सर्वत्रैवाशुभा मताः ॥ ७ ॥

इति जातकचन्द्रियायाम् ।

अर्थ-ग्रहगण अष्टवर्गमें शुद्ध होनेसे समस्त कर्ममें शुभफल प्रदान करते हैं, यदि अष्टवर्गमें अशुद्ध होवे तो समस्त कार्योंमें अशुभ दते हैं ॥ ७ ॥

व्रतारम्भे विवाहे च यात्रायां क्षुरकर्मणि ।

अविशुद्धाष्टवर्गस्य समस्ता निष्फला भवेत् ॥ ८ ॥

इति ज्योति सारे ।

अर्थ-ज्योतिषसारमें लिखा है कि, व्रतारम्भमें, (उपनयनमें) विवाहमें, यात्रामें और चूडाकर्ममें इन समस्त कार्योंमें यदि अष्टवर्गमें ग्रह शुद्ध होनेसे कर्म निष्फल होता है । अतएव कर्म करनेके समय अष्टवर्गमें ग्रहोंकी शुद्धि अवश्य देखना चाहिये ॥ ८ ॥

अथ ग्रहाणां गोचरशुद्धिः । (म)

केतूपपुवभौममन्दगतयः पष्ठत्रिसंस्थाः शुभा- (य)

चन्द्रार्कावपि ते च तौ च दशमौ चन्द्रः पुनः सप्तमः ।

जीवः सप्तनवद्विपञ्चमगतौ युग्मेपु सोमात्मजः

शुक्रः पञ्चदशसप्तवर्जमितरे सर्वेऽप्युपान्ते शुभाः ॥ ९ ॥

इति माण्डव्य ।

अर्थ-अब माण्डव्योक्त गोचरशुद्धि कही जाती है जन्मराशिसे तृतीय, पष्ठ

(म) केतूपपुवभौममन्दगतयः गोचरस्याष्टवर्गगोचरस्य च द्वयोरेक फले अतीथ शुभफल द्वयोर्विरोधे मध्यफल द्वयोर्युग्मेऽतीताशुभफलमिति युक्ति । अत्र सोमरिणा इत्यष्टवर्ग गोचर यत्रिगदित तद्विष्टम् अन्यत्केतूपपुवभौमदिना यदुक्त तत्रेष्ट न सम्यक्फलदायकमिति प्रलपित तद्वेद्यमेव । "स्थानेष्वेतेषु हिता शेषेष्वहिता भवन्ति चाष्टानाम् । अशुभ शुभावशेषफल ग्रहा प्रयच्छन्ति चरगता ॥ " इति लघुजातशुक्लचनविरोधात् । श्लोक स्थानन्वयापत्तेश्च बृहज्जातके केतूपपुवभौमदिगोचरस्थानुरक्तत्वेनाष्टवर्गगोचरस्थानन्तर मस्य वचनस्य पाठादस्या व्याख्याया अघटनाच्चेत्यल बहुना ।

(य) गोचरशुभाशुभमाह-केतूपपुवभौममन्दगतयः पष्ठस्यास्तृतीयस्थाश्च शुभदा । चन्द्रार्कावपि पष्ठस्थौ तृतीयस्थौ च शुभदौ ते च केतूपपुवभौममन्दगतयः दशमस्था अभिदा तौ च चन्द्रार्कौ दशमौ शुभदौ दशमाविति । समीपस्यसख्यागृहीतौ वक्रन्तु सप्तमस्थोऽपि शुभदः ।

और दशमस्थानमें स्थित केतु, गह्व, मङ्गल, जनि और सूर्य ग्रह होनेसे शुभफल प्रदान करतेहैं। तृतीय, पष्ठ, दशम और सप्तम स्थानमें चन्द्रग्रह स्थित होनेसे शुभफल प्रदान करता है बृहस्पति जन्मराशिमें सप्तम, नवम, द्वितीय और पञ्चम स्थानमें स्थित होनेसे शुभफल होता है। बुध द्वितीय, चतुर्थ, पष्ठ, अष्टम, दशम और द्वादशवें स्थानमें स्थित होनेसे शुभफलको देता है। शुक, पष्ठ, दशम और सप्तम मित्त्र स्थानमें शुभ होता और जन्मराशिसे एकादश स्थानमें समस्तग्रहही शुभफल प्रदान करते हैं ॥ ९ ॥

सूर्यः पट्टत्रिंशस्थितास्त्रिंशपट्सप्तमसप्तमश्चन्द्रमा

जीवः सप्तनवद्विपञ्चमगतो चक्रोर्कजौ पट्टत्रिंशौ ।

सौम्यः पट्टद्विचतुदंशाष्टमगतः सर्वेऽप्युपान्ते शुभाः

शुकः पट्टदशसप्तमर्क्षसहितः शार्दूलवज्रासकृत् ॥ २१० ॥ (२)

इति वराहः ।

अर्थ—अथ वराहोक्त गोचरशुद्धि कही जाती है जन्मराशिसे छठे, तीसरे और दशवें स्थानमें स्थित सूर्यग्रह शुभ होता है। तीसरे, दशवें, छठे सातवें और जन्म-राशिमें स्थित चन्द्र शुभ होता है। सातवें, नववें, दूसरे और पाचवें स्थानमें स्थित बृहस्पति शुभ होता है। मङ्गल और जनि छठे और तीसरे स्थानमें स्थित होनेसे शुभ होता है। छठे दूसरे चौथे, दशवें और आठवें स्थानमें स्थित बुध शुभ होता है। जन्मराशिसे ग्यारहवें स्थानमें समस्तग्रह स्थित होनेसे शुभप्रद होते हैं और छठे, दशवें और सातवें स्थानमें स्थित शुक होनेसे व्याघ्रके समान प्राप्त उत्पन्न करता है ॥ २१० ॥

एते च गह्वरेतुजन्मदसूयास्तृतीयपष्ठदशमगाः। जमडाः । चन्द्रः तृतीयपष्ठदशमसप्तम शुभ इत्यर्थः । जन्मराशि सप्तमात् गुरु सप्तनवपञ्चमगतः शुभदः । बुधस्तु शुभेषु द्वितीयचतुर्थपष्ठाष्टमदशमद्वादशेषु स्थितः शुभदः । शुकस्तु पष्ठदशमसप्तमगार्क्षस्यस्त्वा इतरे अन्यस्थाने एवदिनिचतुःपञ्चाष्टमनमैरादशद्वादशेषु शुभदः । इत्येति माण्डव्यमुनि-नीक्त्यात् सर्वनामार्थमात्र इति चेन्न । तत्रितु पष्ठदशमसप्तमर्क्षसहित इति पाठ उच्यते । अतस्तु इतरे इति परेण महान्यायः तत्रैव व्याख्या । शुकः पष्ठदशमसप्तम-मराशिप्रगणेषु जन्मद्विचतुःपञ्चाष्टमनमैरादशद्वादशेषु शुभदः । एतेन शुकस्यैरादशस्थाने जन्ममात्राण्येव इत्येवमेषां सर्वे एकादशे शुभाः । अत्र प्रापिशब्दोऽपि सार्था इति अन्तर्गम्य समीपमुपान्तमैरादश सर्वे ग्रहा एकादशस्थाः आभा इत्यर्थः ।

(२) एतन्माण्डव्योक्तमेव वराहोक्तगोचरेण भाग्यदयति-सूयति । अथ जन्मराशि-गात्रान्दः शुभद इति विज्ञेय । तत्रार्थो पट्टत्रिंशोऽप्यष्टमगात्रेऽप्यष्टमः । बुधश्च द्वादशस्थः शुभ इत्यप्युक्तम् ॥

रविशुद्धौ गृहकरणं रविगुरुशुद्धौ व्रतोद्वाहो ।

क्षौरं तारकशुद्ध्या शेषं चन्द्राश्रितं कर्म ।

सर्वदा सर्वकार्येषु चित्तशुद्धिर्विशेषतः ॥ ११ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-अब गृहारम्भमें सूर्यशुद्धिको कहते हैं, उपनयन और विवाहमें सूर्य और बृहस्पति शुद्ध होना चाहिये चूडाकर्ममें नक्षत्रशुद्धिका प्रयोजन है और अन्यान्य कार्यमें चन्द्रशुद्धिको विचारना चाहिये किन्तु सर्वदा समस्त कार्यमेंही चित्त शुद्ध ररना चाहिये अर्थात् चित्तशुद्धि न होनेसे कोई कार्य न करना चाहिये ॥ ११ ॥

पुंसामर्कः स्मृतो योनियोपितामृतद्युतिः ।

अतः पुंयोपितोः शस्तं बलमर्कशशाङ्कजम् ॥ १२ ॥

इति विद्याधरीविलासे ।

अर्थ-पुरुषको सूर्यका बल और स्त्रीको चन्द्रका बल विचारकरके पुरुष और स्त्रीका कार्य करना चाहिये ॥ १२ ॥

गोचरशुद्धाविन्दुं कन्याया यत्नतः शुभं वीक्ष्य ।

तिग्मकिरणञ्च पुंसः शेषैर्वलैरपि विवाहः ॥ १३ ॥ (*)

अर्थ-विवाहके समय कन्याके गोचरमें चन्द्रशुद्धि होनेसे और पुरुषके गोचरमें सूर्यशुद्धि होनेसे और अन्य समस्त ग्रह शुद्ध न होनेसे भी विवाह करना चाहिये ॥ १३ ॥

(*) चन्द्रशुद्धि रविशुद्धिश्चाह-गोचरशुद्धाविति । सप्तमोपचयइत्यादिना गोचरशुद्धौ कन्याया यत्नेन शुभं चन्द्रं दृष्ट्वा विवाहः कार्य इत्यर्थः । एतेनेतदुक्तं भवति । उभयोरेव चन्द्रशुद्धिः कार्या किन्त्वत्र कन्यायाः यत्नेनावश्यं चन्द्रशुद्धिः कार्या वस्त्य ॥ कदाचित् कार्यवशात् प्रतीकारेणापि विवाहः कार्यो न न कन्याया इत्यर्थः । अत एव वामवेधादिशुद्धिरस्य सर्वत्र कल्पनीयेत्यर्थः । यथा राजमार्तण्डे-“तारातुरूपफलदः स्वगृहे स्वर्गे स्नाञ्चेऽपि शीतकिरणः सुहृदस्त्रिभागे । शस्तोऽष्टवर्गपरिशोधितगोचरेण पञ्चादिशुद्धिविपरीतविशुद्धिशुद्धः” इति । यथा जन्मराशेः शुभः सूर्य इत्यादिना शुद्धौ सूर्यं च पुंसः शुभं वीक्ष्य विवाहः कार्यः । अत्राप्युभयोरेव विशुद्धिः कार्या । किन्तु पुंसो यत्नेनावश्यं रविशुद्धिः कार्या कन्यायाः कदाचित्कार्यवशात् प्रतीकारेण रविशुद्ध्यभा-वोपि विवाहः न तु वरस्येत्यर्थः । अतः कन्याया अपि रविशुद्धिः । यथा राजमार्तण्डे-“जन्मनि भानो विधवा पतिसुतयुक्ता भवत्युपचयर्हे । शेषगृहस्थे कन्या नानाशोकातुरा नूनम् ॥” इति । अत्र च गुरुशुद्धिरपि चिन्त्या यथा तत्रैव । “रविशुद्धौ गृहकरणं रविगुरुशुद्धौ व्रतोद्वाहो । क्षौरं तारकशुद्धौ शेषं कर्म चन्द्राश्रितम् ॥” इति । गुरुशुद्धिस्तु

अथ रविशुद्धिः ।

जन्मराशेः शुभः सूर्यस्त्रिपष्ठदशलाभगः ।

द्विपञ्चनवमोऽपीष्टस्रयोदशदिनात्परम् ॥ १४ ॥

अर्थ—अथ सूर्यशुद्धिको कीर्त्तन करते हैं । मनुष्यकी जन्मराशिसे तीसरे, छठे दशवें और ग्यारहवें घरमें स्थित होनेसे सूर्य सर्वदा शुभ होता है और जन्म-राशिसे दूसरे, पांचवें वा नववें घरमें स्थित होनेसे सूर्य तेरह दिनके बाद शुभ होता है ॥ १४ ॥

फलम् ।

त्रिपट्टदशैकादशगोदिनेशः पुतार्थसौभाग्यसुतप्रदः स्यात् ॥

वैधव्यदाताष्टमराशिसंस्थः शेषेषुस्तदुःखशुचः करोति ॥ १५ ॥

इति भोजराजः ।

अर्थ—जन्मराशिसे तीसरे, छठे, दशवें और ग्यारहवें घरमें स्थित होनेसे सूर्य पुत्र, अर्थ, सौभाग्य और अङ्गलदायक होता है, आठवें घरमें रहनेसे स्त्रीको विधवा कर देता है । और जन्मराशिमें स्थित हो वा दूसरे, चौथे, पांचवें, सातवें, नववें और बारहवें घरमें स्थित होनेसे सूर्य, रोग दुःख और अनेक प्रकारके शोक प्रदान करता है ॥ १५ ॥

अन्यच्च—शुद्धिमाह ।

द्विपञ्चनवमस्थोपि भवेच्छुभकरो रविः ।

उभौ यदि शुभौ स्यातां हरिणा बृहस्पतौ ॥ १६ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—यदि चन्द्र और बृहस्पति गोचरमें शुद्ध होंगे तो दूसरे, पांचवें, वा नववें स्थानमें स्थित सूर्यभी तेरह दिनके मध्यहीमें शुभ होजाता है ॥ १६ ॥

—“जीवः सप्तनवाहिपञ्चमगतः” इत्यादिनाभ्योध्या । तथा “जन्माष्टमद्वादशगः सुरेज्यो वैधव्यदः स्त्रीक्षयकृत्रिपष्ठः । क्षीमाग्यदाता दशमश्चतुर्थः शेषेषु सौभाग्यसुखायकत्स्यात्” शेषेति एतच्छेषैर्मेढ्रलादिभिरखलेर्गोचराशुद्धेरपि विवाहः कार्य इत्यर्थः । एतच्च गोहृद्देशीयानां यथा “यद्यपि सूर्यगुरुभ्यां अस्ती कथितौ विवाहयोगेऽपि । सकलशुणो-दयदात्री भानोः शुद्धिः परा गोहे ।” तथा राजमातृगण्डे “बृहस्पतौ गोचरशोमनस्ये विवाहमिच्छन्ति हि दाक्षिणात्याः । रवौ विशुद्धे प्रवदन्ति गोढा न गोचरे माणवके प्रमा-पम् । भौमे विशुद्धे यमुनातटोद्भवा हिमालयोद्याः शशिजे शुभप्रदे । कैलासदेशप्रमवाः शनिश्चरे ह्यपान्तरोद्या मृगजे जगुः शुभम्” । अत्रच ग्रहा मित्रादिगृहे स्थिता अनिष्टा अपि शुभदाः । यथा पशुपतिदीपिकायाम् “सुहृद्बृहस्वीच्चगतोऽपि वा स्यान्मित्रेक्षितो वा स्वगृहं गतो वा । अनिष्टसंश्लोऽपि ध्रुवं नगणां सर्वे ग्रहाः श्रेष्ठफलं ददन्ते” इति ।

अपरञ्च ।

द्वितियपुत्राङ्कगतः प्रभाकरः स्रयोदशाहात्परतः शुभप्रदः ।

न जन्मसप्तव्ययरन्ध्रगस्तथा करोति पुंसामपि तादृशं फलम् ॥ १७ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें कहाहै कि, जन्मराशिसे दूसरे, पांचवें और नववें स्थानमें सूर्य स्थित होनेसे मासके तेरह दिनके अनन्तर (बाद) शुभप्रद होतेहैं; किन्तु जन्म राशिमें स्थित वा सातवें, बारहवें और आठवें घरमें सूर्य स्थित होनेसे किसी समयभी शुभ फल प्रदान नहीं करते हैं ॥ १७ ॥

अथ निषिद्धरविफलम् ।

जन्मन्यकै भवति विधवा बन्धुहीना द्वितीये

निःस्वा पातालसंस्थे सुतगृहधनहा सप्तमे नष्टकामा ।

मृत्यौ प्राप्नोति मृत्युं व्ययनवमगते रोगशोकाभिभूता

शेषे राशौ विवाहे विपुलधनवती धर्मकामार्थयुक्ता ॥ १८ ॥

अर्थ-जन्मके सूर्यमें विवाहिता कन्या विधवा होतीहै, इसी प्रकार दूसरे सूर्यमें बन्धुहीना, चौथेमें धनहीना, पांचवेंमें धननाशिनी, सातवेंमें कामनाभ्रष्टा और आठवें सूर्यमें मरण होताहै, बारहवें और नववें सूर्यमें विवाह होनेसे रोगशोकादिते ग्रसित होतीहै । तीसरे, छठे, दशवें और ग्यारहवें सूर्यमें विवाहिता नारी विपुल-धनशालिनी और धर्मकामार्थयुक्ता होतीहै ॥ १८ ॥

अन्यच्च ।

चतुर्थे चाष्टमे चैव द्वादशे च दिवाकरे ।

कन्या वैधव्यमाप्नोति नियतं पाणिपीडने ॥ १९ ॥

अर्थ-वचनान्तरमें कहाहै कि, विवाहसमय जन्मराशिसे चौथे, आठवें और बारहवें घरमें सूर्य होनेसे विवाहिता कन्या शीघ्रही विधवा होजातीहै ॥ १९ ॥

अथ बृहस्पतिशुद्धिः ।

चतुर्थे चाष्टमे चैव द्वादशे च बृहस्पतौ ।

विवाहितो नरो मृत्युं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥ २२० ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ-जन्मराशिसे चौथे आठवें वा बारहवें घरमें बृहस्पति होनेसे विवाहित

पुरुषकी निःसंदेह सृष्ट्यु होतीहै- अतएव उक्त स्थानोंको छोड़कर अन्य स्थानोंमें रहनेसे बृहस्पति विवाहमें शुभ होताह ॥ २२० ॥

अथ चन्द्रशुद्धिः ।

सप्तमोपचयाद्यस्थश्चन्द्रः सर्वत्रशोभनः । (*)

शुक्लपक्षे द्वितीयस्तु पञ्चमो नवमस्तथा ॥ २१ ॥

अर्थ—जन्मचन्द्रसे सातवें, ग्यारहवें और छठे स्थानमें स्थित चन्द्र सर्वदाही शुभप्रद होता है, शुक्लपक्षमें दूसरे, पांचवें वा नववें स्थानमें स्थित चन्द्रमाभी शुभ प्रद होताहै ॥ २१ ॥

अपिच ।

दशपद्यतृतीयैकादशसप्तमगः शुभः ।

चन्द्रमा जन्मचन्द्रोऽपि जन्मक्षपरिवर्जितः ॥ २२ ॥

इति ग्रन्थान्तरे । "

अर्थ—मनुष्यकी जन्मराशिसे दशवें, छठे, तीसरे और ग्यारहवें स्थानमें चन्द्र शुभप्रद होताहै और जन्मनक्षत्रगत न होनेसे जन्मचन्द्रमाभी शुभ होताहै ॥ २२ ॥

अन्यथा ।

जन्मनक्षत्रगश्चन्द्रः प्रशस्तः सर्वकर्मसु ।

क्षौरभेषजवादाध्वकर्तृनेषु च तं त्यजेत् ॥ २३ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमें लिखाहै कि, जन्मनक्षत्रगत जन्मचन्द्र सभी कार्यमें प्रशस्त है- केवल क्षौरकर्ममें, औषधप्रयोगमें, विवादमें, यात्रामें, और छेदनकर्ममें जन्मनक्षत्रगत जन्मचन्द्र परित्याग करना चाहिये ॥ २३ ॥

अथ चन्द्रताराशुद्धिप्रशंसा ।

ताराचन्द्रवले प्राप्ते दोषाश्चान्ये भवन्ति ये ।

ते सर्वे विलयं यान्ति सिद्धं दृष्ट्वा गजा इव ॥ २४ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—अथ चन्द्र और ताराशुद्धिकी उत्कर्षता प्रतिपादन करतेहैं । ग्रन्थान्तरमें लिखाहै कि, जिस प्रकार सिद्धको देखकर हाथी माग जातेहैं विसी प्रकार तारा और चन्द्रशुद्धिके होनेसे समस्त दोष दूर होजातेहैं ॥ २४ ॥

अपिच ।

सर्वकर्मण्युपादया विशुद्धिश्चन्द्रतारयोः ।

तच्छुद्धावेव सर्वेषां ग्रहाणां फलदातृता ॥ २५ ॥ (क)

अर्थ-चन्द्रशुद्धि और ताराशुद्धिकी प्रशंसा करतेहैं । समस्त कर्ममेंही चन्द्र-तारा शुद्धिकी उत्कर्षता कहीहै, अतएव चन्द्र और ताराकी शुद्धि होनेसेही समस्त ग्रह शुभफल प्रदान करतेहैं ॥ २५ ॥

अन्यथा ।

तिथिरेकगुणा प्रोक्ता वारश्चैव चतुर्दश । (*)

ऋशं षोडशमित्याहुयोगश्चापि शताधिकः ॥ २६ ॥

सहस्रादधिकः सूर्यश्चन्द्रो लक्षगुणः स्थितः ।

वर्जयित्वा बलं सर्वं तस्माच्चन्द्रबलं बलम् ॥ २७ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्तण्डमें लिखा है कि, कर्मकालीन तिथिका एकगुण कहहि, इसी प्रकार वारके चौदह गुण कहे हैं, नक्षत्रके सोलह गुण, योगके शताधिक गुण, सूर्यके सहस्राधिक गुण और चन्द्रके लक्षगुण कहे गये हैं, अतएव अन्य सब बल परित्याग करके और भी चन्द्रका बल अवश्यही ग्रहण करना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥

अपरश्च ।

तारास्तत्र न गण्यन्ते यत्र चन्द्रो बलोत्तरः ।

स्वामिना परितुष्टेन भृत्यक्रोधो निरर्थकः ॥ २८ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-जिस प्रकार भृत्य (नौकर) का स्वामी प्रसन्न होनेसे भृत्यका क्रोध निरर्थक होता है, उसी प्रकार जिस स्थानमें चन्द्रका बल होय तो उसमें ताराबल नहीं देखा जाता है ॥ २८ ॥

(क) सर्वकर्मोत्प्रेषु चन्द्रताराशुद्धेः प्राशस्त्यमाह-सर्वकर्मणीत्यादि । तस्मात्तच्छुद्धौ चन्द्रताराशुद्धौ सत्यामेव सर्वकर्मसु ग्रहाणां फलदायकत्वमिति । यथा राजमार्तण्डे-“ चन्द्रबलेन विहीनो न मनःपरितोषदः क्रियारम्भः । अन्यगुणैरपि युक्तो नर इवाबलो वस्त्रीणाम् । ” तथा “ तिथिरेकगुणा प्रोक्ता वारश्चैव ” इत्यादि । तथाच “ तत्रैव तारास्तत्र न गण्यन्ते यत्र ” इत्यादि “ कृष्णे बलवती तारा ” इत्यादि । “ ताराबलेन कर्तव्य चन्द्रमा ” इत्यादि ।

(*) वारश्चैव चतुर्गुणा इत्यापि पाठः ।

प्रकारान्तरश्च ।

ऋकचा मृत्युयोगश्च दिनं दग्धं तथापरे ।

शुभे चन्द्रे प्रणश्यन्ति वृक्षा वज्रहंता इव ॥ २९ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—जिसप्रकार वज्रसे वृक्षका नाश होताताहै, तिसी प्रकार ऋकचयोग, मृत्यु-
योग, दग्धादिन और अन्यान्य अशुभ दोषोंका चन्द्र शुद्ध होनेसे नाश होता है २९॥

आपिच ।

कृष्णे बलवती तारा शुक्ले चन्द्रो बलोत्तरः ।

तस्मात्कार्यं प्रयत्नेन सुशुद्धे चन्द्रतारके ॥ २३० ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—कृष्णपक्षमें ताराबल अधिक होता है और शुक्लपक्षमें चन्द्रका बल
अधिक होताहै अतएव चन्द्र और तारा इन दोनोंके शुद्ध होनेसेही कर्म करना
चाहिये ॥ २३० ॥

अन्यथा ।

ताराबलेन कर्त्तव्यं चन्द्रमा यदि दुर्बलः ।

दुर्बलेनैव शक्तः स्यात्प्रारब्धे विषये यतः ॥ ३१ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—यदि चन्द्रमा क्षीण होनेसे दुर्बल होय तो ताराबल ग्रहण करना चाहिये
जैसे प्रारब्ध विषयमें भी दुर्बल चन्द्र शक्त नहीं होताहै ॥ ३१ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

न कृष्णपक्षे शशिनः प्रभावस्ताराबलं तत्र विचारणीयम् ॥

विदेशसंस्थे विकलेऽपि पत्यौ सर्वाणि कर्माणि करोति नारी ॥ ३२ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमें लिखाहै कि, जिस प्रकार विदेशगामी वा विक-
लाङ्गादियुक्त पति वर्तमान होनेसे समस्त कर्म उसकी स्त्री करतीहै, तिसी प्रकार
कृष्णपक्षमें चन्द्रमाकी कला क्षीण होनेसे ताराबलकोही ग्रहण करना चाहिये ३२॥

अथ चन्द्रताराद्यशुभप्रतीकारः ।

कर्म कुर्यात्फलावाप्तौ चन्द्रादिशोभने बुधः ।

सुस्थकाले त्विदं सर्वं नात्तः कालमपेक्षते ॥ ३३ ॥

इति ज्योतिषसारसंग्रहे ।

अर्थ—कर्म करनेके समय यदि अवकाश होवै वा विशेष फल पानेके अर्थ चन्द्र-

तारादिके शुद्ध होनेसेही कर्म करना चाहिये, किन्तु जब कर्म करनेका अवकाश न होय तब निम्न (नीचे) लिखेहुए प्रतीकारको करके कर्म करे ॥ ३३ ॥

अन्यच्च ।

चन्द्रे च शंखं लवणञ्च तारे तिथावभद्रे सिततण्डुलांश्च ॥

धान्यञ्च दद्यात्करणक्षंवारे योगे तिलान्हेम मणिञ्च लग्ने ॥ ३४ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—अब चन्द्रतारादिके अशुद्ध होनेसे उनका प्रतीकार कहते हैं यथा,—
चन्द्र अशुद्ध होनेसे शंखदान करना चाहिये, इसी प्रकार तारा अशुद्ध होनेसे लवणदान, तिथि अशुद्ध होनेसे शुभ्र तण्डुलदान करे अशुद्ध करण अशुभनक्षत्र वा अशुद्ध वार होनेसे धान्य (नाज) दान करे और अशुभ योगमें तिलदान और अशुद्ध (अशुभ) लग्न होनेसे उसके प्रतीकारके निमित्त स्वर्ण और मणि-
दान करना चाहिये ॥ ३४ ॥

चन्द्रस्य विशेषः ।

श्वेतं वासः सिता धेनुः शंखो वा क्षीरपूरितः ।

देयो वा राजतश्चन्द्रश्चन्द्रदोषोपशान्तये ॥ ३५ ॥ (क)

अर्थ—चन्द्र अशुद्ध होनेसे दोषशान्तिके अर्थ श्वेतवस्त्र, शुक्लवर्णकी गौ और दूधसे भराहुआ शङ्ख अथवा चाँदीका चन्द्रमा धनवाकर दान करना चाहिये ॥ ३५ ॥

अथ चन्द्रदोषोपशान्तिसान्नाम् ।

उशीरञ्च शिरीषञ्च चन्दनं पद्मकं तथा ।

शंखे न्यस्तमिदं स्नानं चन्द्रदोषोपशान्तये ॥ ३६ ॥

अर्थ—चन्द्र अशुभ होनेसे उशीर, शिरीष, चन्दन और पद्ममिश्रित जल शङ्खमें भरकर उसके द्वारा स्नान करनेसे चन्द्रका दोष दूर हो जाता है ॥ ३६ ॥

अथ गोचरे चन्द्रशुद्धिफलम् ।

सप्ताद्यचन्द्रे ध्रुवमर्थलाभः पष्ठे तृतीये घनभोगमायुः ॥

सर्वार्थसिद्धिं दशमे लभन्ते एकादशे सर्वसुखानि चैव ॥ ३७ ॥

अर्थ—अब चन्द्रशुद्धिका फल वर्णन करते हैं, सातवें स्थानमें स्थित वा जन्मके

(क) चन्द्रदोषशान्तिदानमाह—श्वेताभिनि वस्त्रादीनां प्रत्येकमेव दोषहनृत्त्य सप्त-
दिनेषु तु फलभूमा कल्पनीयः ।

चन्द्र होनेसे अर्थ (द्रव्य) लाभ होता है इसी प्रकार छठे और तीसरे चन्द्रमें भोग और आयुकी वृद्धि होती है । दशवें चन्द्र होनेसे सर्वार्थलाभ होता है और ग्यारहवें चन्द्र होनेसे सर्वप्रकारके सुख प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥

अथ ग्रहाणां गोचरापवादमाह ।

त्रयोदशदिनान्यको दशपद्धरणीसुतः ।

सार्द्धं दिनश्च शीतांशुर्मासमेकादशं तमः ॥ ३८ ॥

सौरिः पादाधिकं वर्षं मासानष्टौ बृहस्पतिः ।

भवनाद्धं भृगुः सौम्यो यावद्राश्यशुभाः फलम् ।

कष्टं व्रतादिके द्युर्न तथा शेषभागगाः ॥ ३९ ॥

अर्थ—सूर्य एक राशिमें एक मास स्थित रहते हैं । यदि सूर्य विरुद्ध हों तब तेरह दिनके बाद शुभ फल प्रदान करते हैं, मङ्गल तीन पक्ष एक राशिमें रहते हैं यदि विरुद्ध हो तो सोलह दिनके बाद शुभ फल करते हैं, इसी प्रकार चन्द्र सवादो दिन एक राशिमें रहता है विरुद्ध होनेसे डेढ़दिनके बाद शुभफल करता है, राहु डेढ़ वर्ष एक राशिमें रहता है विरुद्ध होनेसे ग्यारह मासके बाद शुभ फल करता है, शनि अठ्ठाई वर्ष एक राशिमें वास करता है विरुद्ध होनेसे एक वर्ष तीन महीनेके बाद शुभ फल करता है; बृहस्पति एक वर्ष एक राशिमें रहता है विरुद्ध होनेसे आठ महीनेके बाद शुभ फल करता है; शुक्र अठ्ठाईस दिन एक राशिमें रहता है विरुद्ध होनेसे चौदह दिनके बाद शुभ फल करता है और बुध अठारह दिनतक एक राशिमें वास करता है विरुद्ध होनेसे नौ दिनके बाद शुभ फल प्रदान करता है; किन्तु उक्त नियतकालके पूर्वमें विरुद्ध ग्रह होनेसे उनमें उपनयनादि कार्य न करना चाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ ग्रहाणां दक्षिणवेधवामवेधौ । (ख)

तत्रादौ रवेः ।

लाभविक्रमखशत्रुतः स्थितः शोभनो निगदितो दिवाकरः ॥

खेचरैः सुततपोजलान्त्यगैर्व्याकिंभिर्यादि न विध्यते तदा ॥ २४० ॥

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ—अब ग्रहोंकी दक्षिणवेध और वामवेधमें शुद्धि कही जाती है यथा, जन्म-राशिसे ग्यारहवें तीसरे, दशवें और छठे स्थानमें स्थित सूर्य दक्षिणवेधमें शुद्ध होते

(ख) वामवेधत्वश्च द्युर्न जन्मोति इति स्मार्ताः । सप्तानां ग्रहाणां दक्षिणवेधवामवेधौ । इत्यपि ज्योतिस्तत्त्वे स्मर्तनोक्तम् ।

हैं । यदि शनि ग्रह पांचवें, नववें चौथे और बारहवें स्थानमें हो अर्थात् ग्यारहवें स्थानके सूर्य शुभ होतेहैं यदि पांचवें शनि होय इसी प्रकार तीसरे स्थानके सूर्य शुभ होतेहैं यदि नववें स्थानमें शनि होय, दशमें स्थानका सूर्य शुभ होताहै यदि चौथे शनि होय और छठे स्थानमें स्थित सूर्य शुभफल प्रदान करतेहैं यदि बारहवें स्थानमें शनि ग्रह होय जन्मराशिसे पांचवें, नववें, चौथे और बारहवें सूर्य वामवेधमें शुद्ध (शुभ) होते हैं यदि शनिग्रह ग्यारहवें, तीसरे, दशवें और छठे स्थानमें स्थित न होवै अर्थात् पांचवें सूर्य शुभ होते हैं यदि शनि ग्यारहवें न होय- इसी प्रकार नववें सूर्य शुभ होताहै, जो तीसरे स्थानमें शनि न होय, चौथे सूर्य शुभ होताहै, यदि दश शनि न होय और बारहवें स्थानके सूर्य वामवेधमें शुभ-फल प्रदान करतेहैं, यदि शनि छठे स्थानमें स्थित न होय ॥ २४० ॥

चन्द्रस्य ।

द्युनजन्मरिपुलाभखत्रिगश्चन्द्रमाः शुभफलप्रदस्तथा ।

स्वात्मजास्तमृतिबन्धुधर्मगैर्विध्यते न विबुधैर्यादि ग्रहैः ॥ ४१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-जन्मराशिसे सातवें, प्रथम, छठे, ग्यारहवें, दशमें और तीसरे स्थानमें स्थित चन्द्र दक्षिणवेधमें शुभफल प्रदान करताहै, यदि दूसरे, पांचवें, बारहवें, आठवें, चौथे और नववें स्थानमें बुध ग्रह स्थित होय अर्थात् सातमें चन्द्र शुभ होताहै, यदि दूसरे स्थानमें बुध स्थित होय, इसी प्रकार जन्मराशिका चन्द्र शुभ होताहै यदि पांचवें बुध होय, छठे स्थानका चन्द्र शुभ होता है, यदि बारहवें बुध होय, ग्यारहवें चन्द्र शुभ होताहै, जो आठवें बुध होवै, दशमें स्थानका चन्द्र शुभ होताहै जो चौथे स्थानमें बुध होय और तीसरे स्थानमें स्थित चन्द्र दक्षिणवेधमें शुभफल प्रदान करतेहैं यदि नववें स्थानमें बुध ग्रह स्थित होय, जन्मराशिसे दूसरे, पांचवें, बारहवें, आठवें, चौथे और नववें स्थानमें स्थित चन्द्र वामवेधमें शुभफल प्रदान करतेहैं, यदि सातवें जन्मराशिमें, छठे, ग्यारहवें दशवें और तीसरे स्थानमें बुध ग्रह न होय अर्थात् दूसरे स्थानमेंका चन्द्रमा शुभ होता है यदि सातवें स्थानमें बुध न होय इसी प्रकार पांचवें चन्द्र शुभ होताहै यदि जन्मराशिमें बुध न होय, बारहवें चन्द्र शुभ होता है यदि छठे बुध न होय आठवें चन्द्र शुभ होताहै जो ग्यारहवें बुध न होवै, चौथे चन्द्र शुभ होताहै जो दशमें बुध न होय और नववें स्थानमें स्थित चन्द्र वामवेधमें शुभफल प्रदान करता है यदि तीसरे स्थानमें बुध ग्रह स्थित न होवै ॥ ४१ ॥

प्रकारान्तरे वामवेधे चन्द्रशुद्धिकथनम् ।
 सितशानिकुजजीवार्कास्त इन्दुनराणां
 व्ययमुखनवमस्थोऽर्पाष्टदाताथ तेषाम् ।
 खसुतनिधनगश्चेन्मृत्युपुत्रार्थगोऽपि
 प्रचुरशुभफलं स्याद्वामवेधेन शुद्धः ॥ ४२ ॥ (ग)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब प्रकारान्तरकी रीतिसे वामवेधमें स्थित चन्द्रकी शुद्धि कही जाती है

(ग) चन्द्रस्य वामवेधेन शुद्धिमाह-सितेति । नराणां व्ययमुखनवमस्थो विरुद्ध-
 श्वन्द्रः शुक्रशानिकुजजीवार्काणाम् अस्ते सप्तमे स्थितो नराणामिष्टदाता स्यात् एतत्तु रवि-
 मन्दकुजाक्रान्तमित्यादिना वामित्रवेधनिषिद्धादन्येषु कर्मसु योद्धव्यम् । अथ नराणां
 मृत्युपुत्रार्थगोऽपि चन्द्रः यथासंख्यं तेषां सितादीनां खसुतनिधनगो यदि स्यात्तदा वाम
 वेधेन शुद्धः प्रचुरशुभफलो भवति । प्रचुर शुभफलं यस्मात्स प्रचुरशुभफल इत्यर्थः । अय-
 मर्थः नृणामष्टमगोऽपि सितादीनां दशमगश्चेच्छुभः । नृणां पञ्चमगोऽपि सितादीनां
 पञ्चमगश्चेच्छुभः । नृणां द्वितीयगोऽपि सितादीनामष्टमगश्चेच्छुभः इति । तथाच बृहद्या-
 त्त्रया “ पञ्चमायं दशपट्त्रिजन्मगो नेष्टदो द्विनिधनोपगो ग्रहेः । बन्धुरिः फनवपञ्चमस्थितै-
 श्वेष्टदो यदि विलोमवेधगः ” अस्यार्थः । जन्मराशेः सप्तमायं दशपट्त्रिजन्मगश्चन्द्रो यथा-
 संख्यं जन्मराशेर्द्विनिधनोपगो बन्धुरिः फनवपञ्चमस्थेश्च ग्रहेर्विद्धो न शुभदः स्यात् । अत्रच
 पूर्वोक्तश्च जन्मेत्यादिवधनाद् बुधं त्यक्वेति बोद्धव्यम् । तद्यथा जन्मराशेः सप्तमश्चन्द्रो
 जन्मराशेर्द्वितीयस्थेन बुधवर्जितेन ग्रहेण विद्धो न शुभः । एव जन्मराशेरेकादशस्थे
 जन्मराशेरष्टमस्थेन दशमस्थो बन्धुस्थेन षष्ठस्थो रिः फस्थेन तृतीयस्थो नवमस्थेन
 दशमस्थो बन्धुस्थेन षष्ठस्थो रिः फस्थेन तृतीयस्थो नवमस्थेन जन्मगः पञ्चमस्थेन
 विद्धो नेष्टद इत्यर्थः । यदि तु विलोमवेधकश्चन्द्रः स्यात्तदा इष्टद इत्यर्थः ।
 एतदुक्तं भवति विपरीतगश्चन्द्रो द्विनिधनबन्धुरिः फनवपञ्चमस्थो यथासंख्यं विपरीतस्थैः
 जन्मराशेः सप्तमायं दशपट्त्रिजन्मस्थैर्बुधवर्जिते ग्रहेर्विद्धश्चन्द्रः शुभदः स्यात् । तद्यथा
 जन्मराशेर्द्वितीयस्थश्चन्द्रो जन्मराशेः सप्तमस्थेन ग्रहेण विद्धः शुभः । अतएव जन्मराशेः
 सप्तमायं जन्मराशेर्द्वितीयस्याष्टमत्वेन ग्रन्थकृता अर्थगश्चन्द्रः सितादीनां निधनगश्चेच्छुभ
 इत्युक्तः । एवञ्चाष्टमस्य एकादशस्थेन विद्धः शुभः अतोऽष्टमस्य एकादशाद्दशमस्थत्वेन
 ग्रन्थकृता मृत्युगश्चन्द्रः सितादीनां दशमगश्चेत् शुभ इत्युक्तः । एव बन्धुस्थो दशमस्थेन
 विद्धः शुभः । अतश्चतुर्थस्य दशमायं सप्तमस्थत्वेन ग्रन्थकृता सुखगश्चन्द्रः सितादीनां
 सप्तमस्थश्चेच्छुभ इत्युक्तः । एव रिः फस्थः षष्ठस्थेन विद्धः शुभः । अतो रिः फस्थः षष्ठात्स-
 प्तमस्थत्वेन ग्रन्थकृता व्ययस्थश्चन्द्रः सितादीनां सप्तमस्थश्चेत् शुभः इत्युक्तः । एव नवम-
 स्थस्तृतीयस्थेन विद्धः शुभः अतो नवमस्य तृतीयात्सप्तमस्थत्वेन सितादीनामस्तस्य इत्यु-
 क्तम् । एव पंचमस्थो जन्मराशिगतोऽनेन ग्रहेण विद्धः शुभः अतः पञ्चमस्य जन्मराशितः
 पञ्चमत्वेन ग्रन्थकृता पञ्चमश्चन्द्रः सितादीनां पञ्चमस्थश्चेच्छुभ इत्युक्तः । तथाच वासिष्ठः ।
 “ जन्मराशिगतश्चन्द्रो जन्मतः पञ्चमो ग्रहः । स्थितो यदा तदा चेन्बुधेधगो नेष्टदः

मनुष्यके बारहवें, चौथे और नववें स्थानमें स्थित विरुद्ध चन्द्र यदि शुक्र, शनि, मङ्गल बृहस्पति वा सूर्यके सातवें स्थानमें स्थित होय तो वाम-वेधमें शुद्ध होकर शुभफल प्रदान करता है, इसी प्रकार मनुष्यके आठवें स्थानका विरुद्ध चन्द्र जो शुक्र, शनि, मङ्गल, बृहस्पति वा सूर्यके दशवें स्थानमें स्थित होय तो शुभफल होता है, पांचवें स्थानका विरुद्ध चन्द्र इन्हीं शुक्रादि ग्रहोंके पांचवें स्थानमें स्थित होनेसे शुभफल करता है और दूसरे स्थानका विरुद्ध चन्द्र यदि उक्त शुक्रादिग्रहोंके आठवें स्थानमें स्थित होय तो वामवेधमें शुद्ध होकर प्रचुर शुभफल प्रदान करता है ॥ ४२ ॥

कुजशन्योः ।

विक्रमायारिपुगः कुजः शुभः स्यात्तदान्त्यसुतधर्मगैः खगैः ।

चेन्न विद्ध इनसूनुरप्यसौ किञ्च घर्मघृणिना न विध्यते ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—मनुष्यकी जन्मराशिसे तीसरे स्थानमें मङ्गल होनेसे दक्षिणवेधमें शुद्ध होता है यदि बारहवें स्थानमें कोई ग्रह न होव इसी प्रकार ग्यारहवें स्थानका मंगल शुभ होता है जो पांचवें घरमें कोई ग्रह न होय और छठे स्थानका मंगल शुभफल करता है जो नववें स्थानमें कोई ग्रह न होय । जन्मराशिसे बारहवें स्थानका मङ्गल वामवेधमें शुभ होता है, यदि तीसरे घरमें कोई ग्रह होय, इसी प्रकार पांचवें स्थानका मङ्गल शुभ होता है, जो ग्यारहवें स्थानमें कोई ग्रह होय और नववें स्थानका मङ्गल शुभ होता है जो छठे स्थानमें किसी ग्रहका वास होवै । मनुष्यकी जन्मराशिसे तीसरे स्थानका शनि दक्षिणवेधमें शुभ होता है जो बारहवें स्थानमें सूर्य न होय, इसी प्रकार ग्यारहवें स्थानका शनि शुभ होता है जो पांचवें स्थानमें सूर्य न हो और छठे स्थानका शनि शुभ होता है जो नववें घरमें सूर्य न हो मनुष्यकी जन्मराशिसे बारहवें स्थानका शनि शुभ होता है यदि ग्यारहवें स्थानमें सूर्य स्थित होय और नववें स्थानका शनि वामवेधमें, शुभ होता है जो छठे स्थानमें सूर्य स्थित होवै ॥ ४३ ॥

बुधस्य ।

स्वाम्बुशत्रुमृतिस्त्रायगः शुभो ज्ञस्तदा न खलु विध्यते यदा ।

आत्मजात्रिनवकाद्यनैधनप्रान्त्यगैर्विविधुभिर्नभश्चरैः ॥ ४४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—जन्मराशिसे दूसरे स्थानमें बुध होनेसे दक्षिणवेधमें शुद्ध होता है यदि स्मृतः । पञ्चमस्थानगश्चन्द्रो जन्मराशिगतो ग्रहः । यदा तदा विपर्ययो वेधगः शुभदः स्मृतः । एव तृतीयपञ्चमदशमे राशिशेषः । धर्मैरहितवन्ध्याप्रस्थितोऽपि द्विस्तु नेष्टदः । विपरितेन विद्धस्तु शुभदः परितोऽस्ति ॥” इति ।

पांचवें स्थानमें चन्द्र ग्रह होय, इसी प्रकार चौथे बुध शुभ होता है जो तीसरे स्थानमें चन्द्र होय छठे बुध शुभ होता है जो नववें स्थानमें चन्द्रमा होय आठवें बुध शुभ होता है जो जन्मराशिमें चन्द्र होय; दशवें बुध शुभ होता है जो आठवें चन्द्रमा होय और ग्यारहवें बुध दक्षिणवेधमें शुभ होता है यदि बारहवें स्थानमें चन्द्रातिरिक्त ग्रह न होय । जन्मराशिसे पांचवें स्थानमें बुध वामवेधमें शुभ होता है । यदि दूसरे स्थानमें चन्द्रमा न होय इसी प्रकार तीसरे स्थानका बुध शुभ होता है जो चौथे घरमें चन्द्रग्रह न होय नववें स्थानका बुध शुभ फल करता है यदि छठे स्थानमें चन्द्र न होय, जन्मराशिमें स्थित बुध शुभ होता है यदि आठवें स्थानमें चन्द्र न होय, आठवें बुध शुभ होता है यदि दशवें स्थानमें चन्द्र ग्रह न होय और बारहवें स्थानमें स्थित बुध वामवेधमें शुभफल प्रदान करता है यदि ग्यारहवें स्थानमें चन्द्र ग्रह न होय ॥ ४४ ॥

शुभः ।

स्वायधर्मतनयपुनस्थितो नाकनायकपुरोहितः शुभः ।

रिः फरश्चलजलत्रिगैर्यदा विध्यते गगनचारिभिर्नाहि ॥ ४५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—जन्मराशिसे दूसरे स्थानमें स्थित बृहस्पति दक्षिणवेधमें शुभ होता है यदि बारहवें स्थानमें कोई ग्रह न होय, इसी प्रकार ग्यारहवें स्थानका बृहस्पति शुभ होता है यदि आठवें स्थानमें कोई ग्रह न होय, नववें स्थानका बृहस्पति शुभ होता है जो दशवें स्थानमें कोई ग्रह न होय, पांचवें स्थानका बृहस्पति शुभ होता है यदि चौथे घरमें कोई ग्रह न होय और सातवें स्थानमें स्थित बृहस्पति दक्षिणवेधमें शुभ फल प्रदान करता है जो तीसरे स्थानमें किसी ग्रहका वासस्थान न होय, जन्मराशिसे बारहवें स्थानमें स्थित बृहस्पति वामवेधमें शुभ फल प्रदान करता है यदि दूसरे घरमें कोई ग्रह होय, इसी प्रकार आठवें बृहस्पति शुभ होता है यदि ग्यारहवें घरमें कोई ग्रह स्थित होय, दशवें बृहस्पति शुभ होता है यदि नववें स्थानमें कोई ग्रह होय, चौथे स्थानका बृहस्पति शुभ होता है यदि पांचवें स्थानमें कोई ग्रह होय और तीसरे स्थानमें स्थित बृहस्पति वामवेधमें शुभफल प्रदान करता है यदि सातवें स्थानमें कोई ग्रह स्थित होय ॥ ४५ ॥

शुक्रस्य ।

आसुताश्रमतपोव्यायागो विद्ध आस्फुजिदशोभनः स्मृतः ।

नैधनास्ततनुकर्मधर्मधीलामवैरिसहजस्थखचरेः ॥ ४६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—मनुष्यकी जन्मराशिमें स्थित शुक्र दक्षिणवेधमें शुभ होता है यदि आठवें

स्थानमें कोई ग्रह न होय इसी प्रकार दूसरे स्थानमें स्थित शुक्र शुभ होता है यदि सातवें स्थानमें ग्रह न होय, तीसरे शुक्र शुभ अशुभ होता है यदि कोई ग्रह जन्मराशिमें स्थित न होय चौथे स्थानके शुक्र शुभ होता है यदि दशवें घरमें कोई ग्रह न होय, पांचवें स्थानके शुक्र शुभ होते हैं यदि नववें स्थानमें कोई ग्रह न होय, नववें स्थानके शुक्र शुभ होता है यदि ग्यारहवें स्थानमें कोई ग्रह न होय, बारहवें स्थानके शुक्र शुभ होता है यदि छठे घरमें कोई ग्रह न होय और ग्यारहवें स्थानमें स्थित शुक्र दक्षिणवेधमें शुभ फल प्रदान करता है यदि तीसरे स्थानमें किसी ग्रहका वासस्थान न होय मनुष्यकी जन्मराशिसे आठवें स्थानमें स्थित शुक्र वामवेधमें शुभफल प्रदान करते हैं यदि जन्मराशिमें कोई ग्रह स्थित होय, इसी प्रकार सातवें स्थानका शुक्र शुभ होता है, यदि दूसरे स्थानमें किसी ग्रहका वास स्थान होय जन्मराशिमें स्थित शुक्र शुभ होता है यदि तीसरे स्थानमें कोई ग्रह होय, दशमें स्थानका शुक्र शुभ होता है यदि चौथे स्थानमें कोई ग्रह होय, नववें स्थानका शुक्र शुभ होता है यदि पांचवें स्थानमें कोई ग्रह होय, पांचवें स्थानका शुक्र शुभ होता है यदि आठवें स्थानमें कोई ग्रह स्थित होय, ग्यारहवें स्थानका शुक्र शुभ होता है यदि नवमें स्थानमें कोई ग्रह होय, छठे स्थानका शुक्र शुभ होता है यदि बारहवें स्थानमें कोई ग्रह स्थित होय और तीसरे स्थानका शुक्र वामवेधमें शुभ फल प्रदान करता है यदि ग्यारहवें स्थानमें किसी ग्रहका वासस्थान होय ॥ ४६ ॥

इति ग्रहाणां दक्षिणवेधनामपेक्षी ।

अथ वेधफलम् ।

एवमत्र खचरा व्यधान्विताः सत्फलं न हि दिशन्ति गोचरे ।

वामवेधविधिना त्वशोभना अप्यमी शुभफलं दिशन्त्यलम् ४७ (५)

अर्थ-दक्षिणवेधमें जिस २ स्थानमें ग्रहोंके होनेसे वेध होता है वह पूर्वमें कह-

(•) यथोक्तस्थानग्राह्या ग्रहा एवमुक्तप्रकारेण व्यधान्विता जन्मराशेर्यथासंख्य पूर्वोक्तस्थानस्थैर्ग्रहैर्विद्धा गोचरे शुभा अपि शुभफलं न दिशन्ति । विपरीतपेधाविधिना तु विद्धाः शुभाः । वेधकस्थानानि यान्युक्तानि वामवेधे तानि वेध्यस्थानानि यानि च वेध्यस्थानान्युक्तानि वामपेधे तानि च वेधकस्थानानि नगणां वामपेधवेध्यस्थानग्राह्या ग्रहाः जन्मराशिनी वामपेधकस्थानस्थैर्ग्रहैर्विद्धा अशुभफलं अपि शुभफलमप्यर्थं दिशन्तीति । तथाच खेरुदाहियते । नराणां लाभविक्रमराशश्च स्थितो दिशकरो जन्मराशिनी यथासंख्य सुततपोजलान्त्यगोः शनिवाजितैर्ग्रहैर्विद्धः सन् शुभफलं न ददाति । तथाच वामपेधे नगणां सुततपोजलान्त्यगो दिशकरो जन्मराशिनी यथासंख्य लाभविक्रमराशश्च स्थिते ग्रहेः शनिवाजितैर्ग्रहैः सन् शुभफलं ददातीत्यर्थः । एवमन्येषामपि बोद्धव्यम् इति ॥

दियाहै उस २ स्थानमें ग्रह होनेसे गोचरमें ग्रहोंके शुद्ध अशुद्ध होनेसेभी शुभफल प्रदान नहीं करते हैं; किन्तु वामवेधमें ग्रहोंके विद्ध होनेसेभी उनके द्वारा शुभफल प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥

इति वेधफलम् ।

अथ दिवाविवाहनिषेधः ।

विवाहे तु दिवाभागे कन्या स्यात्पुत्रवर्जिता ।

विवाहानलदग्धा सा नियतं स्वामिवातिनी ॥ ४८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—दिनमें विवाह होनेसे कन्या पुत्रहीना होती है और विवाहानल द्वारा दग्ध होकर वह द्यौः स्वामीवातिनी होतीहै ॥ ४८ ॥

अथ कुलिकारूपयोगकथनम् ।

सूर्ये च सप्तमी सोमे षष्ठी भौमे च पञ्चमी ।

बुधे चतुर्थी देवेज्ये तृतीया भृगुनन्दने ॥ ४९ ॥

द्वितीया वर्जनीया स्यात्प्रतिपच्च शनैश्चरे ।

कुलिकारूपो हि योगोऽयं विवाहादौ न शस्यते ॥ २५० ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ—ज्योतिःसारमें लिखाहै कि, रविवारको सप्तमी, सोमवारको षष्ठी, मङ्गलवारको पञ्चमी, बुधवारको चतुर्थी, वृहस्पतिवारको तृतीया, शुक्रवारको द्वितीया और शनिवारको प्रतिपदा तिथि होनेसे कुलिकारूपयोग होताहै, इस योगमें विवाह न करना चाहिये ॥ ४९ ॥ २५० ॥

अथ दम्पकथनम् ।

द्वितीया मीनधनुषोश्चतुर्थी वृषकुम्भयोः ।

मेपकर्कटयोः षष्ठी कन्यामिथुनकेऽष्टमी ॥ ५१ ॥

दशमी वृश्चिके सिंह द्वादशी मकरे तुले । (x)

एभिर्जातो न जीवेत् यदि शत्रुसमो भवेत् ॥ ५२ ॥

विवाहे विधवा नारी यात्रायां मरणं भवेत्

निष्फलं कृषिवाणिज्यं विद्यारम्भे च मुखता ॥ ५३ ॥

(x) “सिता च कृष्णा दशमी हरावली विष्णुपुंगे तोलधरेऽवलक्षे” इति ग्रन्थान्तरे ।

गृहप्रवेशे भङ्गः स्याच्चूडायां मरणं ध्रुवम् ।

ऋणदाने फलं नास्ति व्रतादाने च निष्फले ।

शुभकर्माणि सर्वाणि नैव कुर्याद्विचक्षणः ॥ ५४ ॥

इति राजमार्तण्डादी ।

अर्थ—अब दग्धातिथि वर्णन करते हैं, मीन और धन राशिमें सूर्य होनेसे द्वितीया दग्धा तिथि होती है इसी प्रकार वृष और कुम्भके सूर्य होनेसे चौथी दग्धा तिथि होती है, मेष और कर्कके सूर्य होनेसे पष्ठी दग्धा होती है, कन्या और मिथुनके सूर्य होनेसे अष्टमी दग्धा होती है, वृश्चिक और सिंहके, सूर्य होनेसे दशमी दग्धा होती है, मकर और तुला राशिमें सूर्य होनेसे द्वादशी तिथि दग्धा होती है । इन्हींको मासदग्धा कहते हैं । इनमें उत्पन्न हुआ मनुष्य इन्द्रके समान होनेसे भी नहीं जीसक्ता है, मासदग्धामें विवाह होनेसे कन्या विधवा होजाती है इसी प्रकार यात्रा करनेसे मृत्यु होता है, कृषि (खेती) और वाणिज्य करनेमें कर्म निष्फल होता है, विद्या रम्भ करनेसे सूर्य होता है, गृहप्रवेशमें गृहभङ्ग होजाता है, चूडाकरण करनेमें मृत्यु होती है । ऋणदानमें फलका अभाव होता है, और उपनयन और दान करनेसे निष्फल होता है । अतएव पण्डितगणको चाहिये कि, किसी प्रकारका शुभ कर्म मासदग्धामें न करे ॥ ५४ ॥

अन्यच्च ।

आद्या धनुःपु शफरीपु परा द्वितीया

एकान्तरे दिनकरे तिथयः प्रदग्धा ॥ ५५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—धनराशिमें सूर्य होनेसे शुक्र पक्षकी द्वितीया दग्धा तिथि होती है । और मीन राशिमें सूर्य होनेसे कृष्णपक्षकी द्वितीया दग्धा होती है एकएक तिथिअन्तर प्रदग्धा होती है ॥ ५५ ॥

कार्मुके च तथा कुम्भे मेषे युग्मे हरौ घटे ।

एषु शुक्ला द्वितीयाद्या दग्धाः कृष्णा श्रृपादिषु ॥ ५६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—धन, कुम्भ, मेष, मिथुन, सिंह और तुला राशिमें सूर्य होनेसे शुक्रपक्षकी द्वितीयादि एक २ तिथिके अन्तरमें दग्धा होती है और कृष्णपक्षकी द्वितीयादि मीनादिराशिमें सूर्यके होनेसे दग्धा होती है ॥ ५६ ॥

राश्योश्चन्द्रस्य च रवे स्थित्या वाच्यं फलं बुधः ।

याः प्रोक्तास्तिथयो दग्धा मेपादिषु च राशिषु ।

शुक्लास्ता विषमे राशौ समे कृष्णाः प्रकीर्तिताः ॥ ५७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—पूर्व वचनमें जो दोदो राशिमें द्वितीयादि तिथि दग्धा कही है उनको चन्द्र और सूर्य इन दोनों तिथिके द्वाराही जानना चाहिये इसमें विशेष यही है कि, विषम राशिमें शुक्लपक्षकी तिथि दग्धा होती है और समराशिमें कृष्णपक्षकी तिथि दग्धा होती है ॥ ५७ ॥

रात्रिषु चन्द्रस्थित्या दग्धायां व्यक्तत्वमाह ।

पृष्ठी मेपकुलीरयोर्हिमकरे कन्या युगे चाष्टमी

सिंहे वृश्चिकराशिगे च दशमी तौलौ मृगे द्वादशी ।

चापे चाथ झपे द्विका यदि वृषे कुम्भे चतुर्थी यदा

दग्धारुयास्तिथयो वदन्ति मुनयस्त्याज्याभसदा कर्मसु ॥ ५८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—राशिमें चन्द्रके स्थित होनेसे जो तिथि दग्धा होती है अब उनको कीर्तन करते हैं। मेप और कर्क राशिमें चन्द्र होनेसे पृष्ठी तिथि दग्धा होती है इसी प्रकार कन्या और मिथुन राशिमें चन्द्रके होनेसे अष्टमी दग्धा होती है, सिंह और वृश्चिक राशिमें चन्द्रके होनेसे दशमी दग्धा होती है, तुला और मकर राशिमें चन्द्रके होनेसे द्वादशी दग्धा होती है, धन और मीन राशिमें चन्द्रके होनेसे द्वितीया दग्धा होती है और वृष और कुम्भराशिमें चन्द्रके स्थित होनेसे चतुर्थी तिथि दग्धा होती है। इन समस्त दग्धा तिथियोंको समस्त शुभकर्ममें परित्याग करना चाहिये इस प्रकार शुनिगणने कहा है ॥ ५८ ॥

अथावमप्रयहस्पर्शी ।

तिथ्यन्तद्वयमेको दिनवारः स्पृशति यत्र ॥ तद्भवत्यवमादिनं

त्रिदिनस्पृक्तिथित्रयस्पर्शनादहः ॥ ५९ ॥ (१)

अर्थ—अब अवम और व्यहस्पर्शको कहते हैं एक दिनरात्रिके मध्यमें दो

(१) अवमव्यहस्पर्शदिनमाह—तिथ्यन्तेति । एको दिनवारः एक एव वारास्तिथ्यन्तद्वयं यत्र दिने स्पृशति तद्दिनमवमसंज्ञकं भवति अहस्तिथित्रयस्पर्शनात् त्रिदिनस्पृगदिनं स्यात् यदहस्तिथित्रयं स्पृशति तद्दिनं त्रिदिनस्पृगित्यर्थः । यथा दण्डद्वयमेका तिथिस्तदनन्तरमपरदिनसूर्योदयावाधि समस्तदिनव्यापिनी चान्या तद्दिनमवमं स्यादिति । यत्र

तिथियोंका अवसान होनेसे उस दिनको अवम (२) कहते हैं और एक दिन रात्रिके मध्यमें तीन तिथियोंका स्पर्श होनेसे उसको त्र्यहस्पर्श कहते हैं ॥५९॥
आपेच ।

द्वौ तिथ्यन्तावेकवारं यत्र स स्याद्दिनक्षयः ॥ २६० ॥

इति कीर्तिपात्रयोः ।

अर्थ-कूर्मपुराण और पद्मपुराणमें लिखा है कि, यदि एक दिनरात्रिके मध्यमें दो तिथियोंका अन्त होय तब उसको दिनक्षय (त्र्यहस्पर्श) कहते हैं ॥२६०॥
अन्यच्च ।

एकस्मिन्प्रातरे त्वह्नि तिथीनां त्रितयं यदा ।

तदा दिनक्षयः प्रोक्तस्तत्र साहसिकं फलम् ॥ ६१ ॥ ३ ॥

इति वसिष्ठः ।

अर्थ-वशिष्ठने कहा है कि, श्रावणमासमें एक दिनके मध्यमें यदि तीन तिथि होंय तो उसको दिनक्षय (त्र्यहस्पर्श) कहते हैं; इस दिनमें माङ्गल्यके इतर वैदिक कर्म करनेसे सहस्रगुण फल प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥

च दण्डद्वयमेका तिथिरन्या च सप्तपञ्चाशद्विंशतिमिका तदनन्तरमन्यातिथियोगः अतस्तिथित्रयस्पर्शात् त्र्यहस्प्रागिति साम्प्रदायिकाः । वस्तुतस्तु दिनवार इत्यनेन वारप्रवृत्तिकालात् परदिनसूर्योदयावधितिथ्यन्तद्वयस्पर्शोऽवमदिन स्यात् । त्र्यहस्प्रागिति अह्नः सूर्योदयकालात् तिथित्रययोगो यदा स्यात्तदा इत्यर्थः । तथाच गौटदेशे साङ्गिकदण्डादूर्ध्वं वारप्रवृत्तिः । तदनन्तरं परदिनसूर्योदयावधितिथ्यन्तद्वयस्पर्शो तद्दिनमवम स्यात् यथा दण्डत्रयमेका तिथिर्दण्डैकान्या च पट्टपञ्चाशद्विंशतिमिका इति तथा यस्मिन् दिने सूर्योदयाद् वारप्रवृत्तेः पूर्वमेका तिथिर्दण्डैकान्या च सप्तपञ्चाशद्विंशतिमिका चेत्तस्मिन्नेव दिनेऽन्यतिथियोगः स्यात्तदा त्र्यहःस्पृष्टं तद्दिनं स्यात् । तथा करणरत्नेश्वराचार्येण लिखितम् । “ अयमं तद्वारादिनं तिथ्यन्तद्वययोगि यत् । त्र्यहस्पर्शान्तं त्रितयिस्पर्शादीदयिकं विदुः ” इति । केचित्तु अह्नस्त्रयस्पर्शादितिपाठं कृत्वा व्याचक्षते अह्नस्त्रयस्पर्शाद्दिनत्रयस्पर्शात् त्रिदिनस्पृष्टं तिथिः स्यादिति पट्टिदण्डात्मिकतया वर्द्धमाना या तिथिः सा त्रिदिनस्युगित्यर्थः । एतच्च सम्प्रदायविरुद्धमाचारविरुद्धं शास्त्रविरुद्धञ्च तथाच शूलपाणिना एकादशीविधेके विष्णुरहस्यवचनं लिखितम् । “ एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी । त्र्यहस्पर्शकद्वारात्रयमुपोष्या सा सदा तिथिः । ” इति । तथाच राजमार्तण्डे-“ एकस्मिन् श्रावणे त्वह्नि तिथीनाम् ” इत्यादि । “ त्र्यहस्प्रागदिवसश्चैव महापुण्यतमः स्मृतः । तिथित्रयस्य सस्पर्शात्र्यहस्पृन्समुदाहृतः ॥ ”

(२) जो तिथि सूर्योदयके (वागप्रवृत्तिके) बाद कुछ समय रहकर यदि परतिथि परदिन सूर्योदयके पूर्वकालपर्यन्त रहे तब उसको ‘ अवम ’ कहते हैं ।

(३) साहसिक फलमिति माङ्गल्येतरवैदिककर्मपरमिति स्मार्त्तनोक्तम् ।

अपरञ्च ।

अधिमासे दिनपाते (४) धनुषि खौ भानुलङ्घिते मासि ।
चक्रिणि सुते कुर्यान्नो माङ्गल्यं विवाहश्च ॥ ६२ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—भीमपराक्रममें कहा है कि, अधिमासमें, दिनक्षयमें, सौरपौषमें, मलमासमें और श्रीहरिके शयनावस्थामें विवाहादिमङ्गलजनक कार्य न करना चाहिये ॥ ६२ ॥

त्र्यहस्पृशन्नाम यदेतदुक्तं यत्र प्रयत्नः कृतिभिर्विधेयः ।

विवाहयात्राशुभपुष्टिकर्म सर्वं न कार्यं त्रिदिनस्पृशे तु ॥ ६३ ॥ (५)

इति त्र्यहस्पृशनिन्दा ।

अर्थ—जिस दिनमें त्र्यहस्पर्श कहा गया है, उस दिनमें विवाह और यात्रादि शुभ कर्मको पण्डितगण यत्नपूर्वक परित्याग करदेवें ॥ ६३ ॥

एकादिने सोदराणां विवाहनिषेधः ।

एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्नपि वासरे । (६)

विवाहो नैव कर्तव्यो गर्गस्य वचनं यथा ॥ ६४ ॥

इति बृहस्पतिः ।

अर्थ—बृहस्पतिने कहाहै कि, “ गर्ग मुनिके मतसे एक दिनमें एक गर्भसे उत्पन्न सहोदर वा सहोदर गणके मध्यम एकाधिक विवाह निषिद्ध है ” गौडादि देशमेंभी इसी प्रकारही व्यवहार होता है किन्तु औडिष्यावासीगण उक्त वचनसे “ वासरे ” इस स्थलमें “ वत्सरे ” इसी प्रकार पाठ करके एकवर्षके मध्यमें एक गर्भसे उत्पन्न हुए दो भाईयोंका वा दो बहनोंका विवाह नहीं करते हैं ॥ ६४ ॥

अपिच ।

एकस्मिन्दिवसे चैव सोदराणां तथैव च ।

युग्ममौद्वाहिकं वर्ज्यं कन्यादानद्वयं तथा ॥ ६५ ॥

इति मत्स्यसूक्ते महातंत्रे ।

(४) दिनपाते दिनक्षये इति स्मार्त्ताः ।

(५) त्र्यहस्पृशनिन्दामाह—त्र्यहस्पृशमिति । त्र्यहस्पृशदिनं यदुक्तं तत्र पण्डितैः प्रयत्नः कार्ययत्नेन तद्वर्जनीयमित्यर्थः । विवाहादि सर्वं शुभकर्म तत्र न कार्यमित्यर्थः ।

(६) वासरे इत्यत्र वत्सरे इति औडदेशीयगणाः पठन्ति व्यवहरन्ति च । इति उदाहृतत्वे स्मार्त्तेनोक्तम् ।

अर्थ-मत्स्यसूक्त महातन्त्रमे भी लिखाहै कि, एक दिनमें दो सगे भाइयोंका विवाह निषिद्ध है और दो कन्या दानभी एक दिनमें न करना चाहिये ॥ ६५ ॥

गुणबाहुल्ये अल्पदोषस्य त्याज्यताकथनम् ।

न सकलगुणसम्प्लभ्यतेऽल्पैरहोभि-

र्बहुतरगुणयुक्तं योजयेन्मङ्गलेषु ।

प्रभवति हि न दोषो भूरिभावे गुणानां

सलिललव इवाग्नेः संप्रदीप्तेन्धनस्य ॥ ६६ ॥ (×)

अर्थ-समस्तगुण अल्प (थोड़े) दिनमें नहीं प्राप्त होते हैं अतएव विवाहादि मङ्गलकार्यमें वह गुणयुक्त दिनका सुहूर्त रखने कारण प्रज्वलितकाष्ठ जिस प्रकार जलके बिन्दुसे निवारण होता है तिसी प्रकार वह गुणयुक्त दिनभी अल्पदोषसे दूषित नहीं होता है ॥ ६६ ॥

बहुगुणसत्त्वे गुरुतरैकदोषस्य निन्दाकथनम् ।

गुणशतमपि दोषः कश्चिदेकोऽतिवृद्धः

क्षपयति यदि नान्यस्तद्विराधी गुणोऽस्ति ।

घट इव परिपूर्णं पञ्चगव्येन सद्यो

मलिनयति सुराया बिन्दुरेकोऽपि सर्वम् ॥ ६७ ॥ (*)

अर्थ-एक बड़े दोषसेही सौ गुणोंका नाश होजाता है यदि दोषका विरोधी कोई गुण न होवै, जिस प्रकार पञ्चगव्यसे भराहुआ घट एक बूंदसे गराबके मिलनेसे ही दूषित होजाता है ॥ ६७ ॥

इति वंशावरेलीनिवासिकान्यकुञ्जकुलभूषणभारद्वाजगोत्रेण त्रिपाठद्युपनामकेन पण्डितर्षिकेलात्मात्मजेन श्यामसुन्दरशर्मणा सम्पादिते भाषाटीकया विभू-
पिते च ज्योतिषतत्त्वसुधारणवे विवाहप्रकरणनाम द्वितीयस्तरङ्गः ॥ २ ॥

× उपसहारमाह-नसकलेति । अल्पादिभिः सौ गुणा न लभ्यन्ते तस्माद्विवाहादिमङ्गलकर्मसु बहुगुणयुक्त दिनं योजयेत् । हि यस्माद् गुणानां भूरिभावे बहुत्वे दोषो न प्रभवति । दृष्टान्तमाह-सलिललव इति ।

(*) बहुगुणे सत्यपि एकस्यापि दोषस्य अतिगुरुत्वे निषेधमाह-गुणशतमिति । एकोप्यतिगुरुः कश्चिदोषो गुणशतमपि नाशयति यदि तदोषविरोधी गुणोऽन्यो नास्ति विरोधिगुणे तिष्ठति सति गुरुदोषोऽपि न दोषावह इति । दृष्टान्तमाह-घटमिति । यथा पञ्चगव्येन पूरित घट सद्यस्तत्क्षणात् सुराविन्दुर्मलिनयति वरणे तद्वत्पर्ययोरिति वरणे यद्यी । एष सर्वो निवारो मुख्यकर्मण्येन विवाहे तु केचित्पाणिग्रहणमुत्पद्यद्दन्ति केचि

तृतीयस्तरङ्गः ३.

अथ नववध्वागमनम् ।

युग्माङ्कबाणाद्रिदिने विवाहाद्द्व्यागमः षोडशवासरान्तः ।

शुभस्तदूर्ध्वं विषमाब्दमासघट्टेषु यावन्नच पञ्चमाब्दम् ॥ १ ॥

अर्थ—अब नववध्वागमन कहते हैं विवाहके बाद सोलह दिनके मध्यमें युग्म दिनमें और अयुग्म दिनके मध्यमें नववें, पाँचवें और सातवें दिनमें नववधूको पतिके घरमें लाना चाहिये । सोलह दिनके बाद पाँच वर्षके मध्यमें अयुग्म वर्षमें अयुग्म मासमें और अयुग्म दिनमें नववधूको पतिके घरमें लावै ॥ १ ॥

अन्यच्च ।

आरभ्योद्वाहदिवसात्पष्टे वाप्यष्टमे दिने ।

वधूप्रवेशः सम्पत्तौ दशमेऽथ समे दिने ॥ २ ॥

अर्थ—विवाहके दिनसे छठे, आठवें वा दशवें दिनमें अथवा अन्यान्य युग्म दिनमें नववधूको पतिके घरमें लानेसे सम्पत्तिकी वृद्धि होती है ॥ २ ॥

अपरञ्च ।

वधूप्रवेशनं कार्यं पञ्चमे सप्तमे दिने ।

नवमे च शुभे वारे सुलग्ने शशिनो बले ॥ ३ ॥

अर्थ—विवाहके दिनसे पाँचवें, सातवें, वा नववें दिनमें शुभग्रहके वारमें शुभलग्ने चन्द्र बलवान् होनेसे नववधूको पतिके घरमें लावै ॥ ३ ॥

प्रकारान्तरम् ।

ध्रुवक्षिप्रमृदुश्रोत्रवसुमूलमघानिले ।

वधूप्रवेशः सन्नेष्टो रिक्तारार्के बुधे परैः ॥ ४ ॥

अर्थ—उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, अश्विनी, इस्त, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मघा और स्वाति नक्षत्रमें, रिक्ताभिन्न तिथिमें, मङ्गल, इतवार और बुधभिन्न वारमें नववधूको पतिके घरमें लाना चाहिये ॥ ४ ॥

अन्योऽन्यमुखावलोकनामिति । यथा राजमार्तण्डे—“ घृतदधिमधुपर्कप्राशनादग्निस्ताप्ताद्यादि शुभमशुभ वा पाणियोंगेऽङ्गनायाः । बहुमुनिमतमेतत्सम्प्रदान प्रधान ह्यभयवदन-चन्द्रालोकनाद्यश्च केचित् ” इति । एतेन द्वयमेव शुभलक्षणे कार्यामिति प्रतीम इति ।

माटेष्पणीक-भाषार्थसहितः ।

अथ बालबन्धः ।

ध्रुवमृदुलध्रुवर्गे विष्णुमूलानिलर्शे
शनिशशिदिनवर्ज्यं गोद्विदेहोदयेषु ।

उपचयगतपापे सत्सु केन्द्रत्रिकोणे

सुतिथिकरणयोगे बालबन्धः शुभेन्दो ॥ ५ ॥ (*)

अर्थ-विवाहके बाद केशबन्धन शुभदिन कीर्तन करते हैं । उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, पुष्य, आश्विनी, हस्त, श्रवण, मूल और स्वाति नक्षत्रमें शनि और सोमामित्र वारमें वृष, मिथुन, कन्या, धन, और मीन लग्नमें, तीसरे, ग्यारहवें, छठे और दशमें स्थानमें स्थित पापग्रह होनेसे लग्नमें, चौथे, सातवें, दशवें, नववें और पांचवें स्थानमें शुभ ग्रह स्थित होनेसे शुभ तिथिमें, शुभ करणमें और शुभयोगमें चन्द्र शुद्ध होनेसे कामिनीके विवाहके बाद प्रथम केशबन्धन करना चाहिये ॥ ५ ॥

अथ द्विरागमनम् ।

वृत्ते पाणिग्रहे गेहात्पितुःपतिगृहं प्रति ।

पुनरागमनं बध्वास्तद्विरागमनं विदुः ॥ ६ ॥

इति नारायणपद्धतिः ।

अर्थ-अब द्विरागमनका सुवृत्त कहते हैं । विवाह होनेके बाद पिताके घरसे बधू पतिके घरमें दूसरीबार जो जातीहै उसकोही पण्डितगण द्विरागमन कहते हैं ॥ ६ ॥

अपिच-

श्वश्रूं हन्त्यष्टमे वर्षे श्वशुरञ्च दशब्दिके ।

संप्राप्ते द्वादशे वर्षे पतिं हन्ति द्विरागमे ॥ ७ ॥ (१)

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ-आठवें वर्षमें द्विरागमन होनेसे मासकी मृत्यु होती है इसी प्रकार दशवें

(*) विवाहानन्तर केशबन्धमाह-ध्रुवोति । ध्रुवगणादिनक्षत्रेषु शनिशशिरा वर्ज्यं यित्वा अन्येषु वारेषु तत्र च गविशुरुजवारा आतिप्रशस्ताः यथा राजमार्त्तण्डे “ भवति पुत्रहवारे स्त्रीणां सलु बालबन्धने पुरुषः । सुवृत्तिग्रहे हि युवती नपुंसके स्यान्नपुंस-कोत्पतिः ” वृषद्वयात्मकलग्नेषु वृषमिथुनवन्याधनुर्मीनेषु लग्नादुपचयपापे केन्द्रत्रिकोण स्त्रेषु सद्ग्रहेषु शुभे चन्द्रे शुभानिथिकरणयोगे बालबन्धः कार्यः ।

(१) “ षष्ठेऽष्टमे द्विदशवर्षचतुष्टये माप्यष्टादशे वसुधुगे च चतुर्दशे वा । वर्षे यदा नववधू गमनञ्च शीघ्र वैपत्यत गमयानि स्वपानि स्वबन्धुम् ” इति ग्रन्थान्तरे ।

वर्षमें श्वशुरकी मृत्यु होता है और बारहवें वर्षमें द्विरागमन होनेसे पतिकी मृत्यु होती है ॥ ७ ॥

अपरञ्च ।

विवाहमासि प्रथमं वध्वा नागमनं यदि ।

तदा सर्वमिदं चिन्त्यं युग्माद्यब्दं विचक्षणैः ॥ ८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—विवाह जिस मासमें होता है उस मासके मध्यमेंही जो बधू पतिके घरमें न आवे तभी पाण्डितगणकर्तृक युग्मादि वर्षका विचार करना चाहिये ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

विवाहदिवसाद्यात्रा द्वितीयदिवसे शुभा ।

तन्मासाभ्यन्तरे तस्य चिन्त्यं नैतद्विचक्षणैः ॥ ९ ॥

अर्थ—वचनान्तरमें लिखा है कि, विवाहके दिनसे दूगरे दिनमें यात्रा शुभ होती है और विवाहके एक मासके मध्यमें भी युग्मादिका विचार नहीं होता है ॥ ९ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

स्त्रीशुद्ध्यालिषटाजसंयुतरवौ काले विशुद्धे भृगुं

संत्यज्य प्रतिलोमगं शुभदिने यात्राप्रवेशोचिते ।

त्यक्त्वाहस्तु निरंशकंनववधूयात्राप्रवेशे पतिः

कुर्यादेकपुरादिपुप्रतिभृगोर्नेच्छन्ति दोषं बुधाः ॥ १० ॥ (१)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—दीपिकानामक ग्रन्थमें लिखा है कि, बधूके चन्द्रताराशुद्धि और काल-शुद्धि होनेसे सौर अग्रहायण, फाल्गुन वा वैशाखमासके शुभदिनमें संक्रान्ति और पुरः शुक्रको त्यागकरके यात्रोचित नक्षत्रमें नववधूको यात्रा करावे । पति यदि स्वयं नववध्वागमन करावे तो पुरः शुक्रादिदोषको ग्रहण न करना चाहिये ॥ १० ॥

अपरञ्च ।

पैत्र्यागारे कुचकुसुमयोः संभवो वा यदि स्यात्

कालः शुद्धो न भवति यदा सन्मुखो वापि शुक्रः ।

(१) “ भृगो सन्मुखे संस्थिते वाथ दक्षे न गच्छेन्नवोटा शिशुगोर्बेणी च । क्रजेदेव वन्ध्या भवेत्ता नवोटा शिशुर्मृत्युमामोत्यगर्भा सगर्भा ॥ ” इति ग्रन्थान्तरे ।

मेपे कुम्भेऽलिनि च न भवेद्भास्करश्चेत्तथापि

स्वामी भद्रेऽहनि नववधूं वेशयेन्मन्दिरं स्वम् ॥ ११ ॥ (२)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—यदि पिताके घरमें रमणीके दोनों स्तन विकसित होजाय तो कालश्राद्ध न होनेसेभी पुरः श्रुकादि दोष न विचार करके शुभ दिनमें उसका स्वामी स्वयं नववधूको अपने घरको लेजाय । वैशाख, फाल्गुन वा अग्रहायण मास न होने-सेभी कोई दोष नहीं होता है ॥ ११ ॥

अपिच ।

भर्तुर्गोचरशोभने दिनपतौ नास्तं गते भार्गवे
हित्वा च प्रतिलोमगा बुधसितौ जीवस्य शुद्धौ तथा ।

सूर्ये कीटघटाजगे शुभदिने पक्षे च कृष्णेतरे
चानिता गुणशालिनी नववधूर्नित्योत्सवामोदिता ॥ १२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—पतिके गोचरमें सूर्य और बृहस्पति शुद्ध होनेसे सौर अग्रहायण, फाल्गुन वा वैशाखमासमें, शुक्लपक्षमें, और शुभदिनमें सर्वदा उत्सवयुक्ता और आमोदान्विता गुणशालिनी भार्याको द्विरागमन करावे, किन्तु शुक्रके अस्त होनेसे अथवा बुध वा शुक्र सम्मुख होनेसे द्विरागमन निषिद्ध होता है ॥ १२ ॥

पुनरपिच ।

एकग्रामे चतुःशाले दुर्भिक्षे राश्रविषुवे ।

पतिना नीयमानायाः पुरःशुको न दुप्यति ॥ १३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—सन्मुखमें स्थित शुक्रके प्रतिग्राम कहते हैं यथा एक ग्राममें वा चतुः-शालाके मध्यमें अथवा दुर्भिक्षसमयमें अथवा राजविषुव होनेमें पति यदि पत्नीको लेजाय तो उसमें सम्मुख शुक्र होनेसेभी दोष नहीं होता है ॥ १३ ॥

अन्यच्च ।

काश्यपेषु वसिष्ठेषु भृगवादित्याङ्गिरःसु च ।

भारद्वाजेषु वात्स्येषु प्रतिशुको न दोषभाक् ॥ १४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—जिसका काश्यप, वसिष्ठ, भृगु, अदिति, आङ्गिर, भारद्वाज वा वात्स्य-

(२) “ पेड्ये गृहे चेत्तुचपुष्पसम्भजः स्त्रीणां न दोषः प्रतिशुक्रसम्भव । भृगुद्विरे-
वात्स्यवसिष्ठश्च १२५पात्रीणां नरद्वाजमुनेः तुले तथा ” । इति ग्रन्थान्तरे ।

गोत्र होय उसके गमनकालमें सम्मुखस्थ शुक्र दोषभागी नहीं होता है ॥ १४ ॥

अपरश्च ।

मार्गफाल्गुनवैशाखे शुक्लपक्षे शुभान्विते ।

गोचरादित्यशुद्धौ च पत्युः शुद्धौ बृहस्पतौ ॥

वध्वा द्विरयनं शस्तं मासेष्वन्येष्वनिष्टदम् ॥ १५ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—भीमपराक्रममें द्विरागमनके विषयमें कहा है कि, अग्रहायण फाल्गुन वा वैशाख मासके शुक्लपक्षमें शुभनक्षत्रवारादियुक्त दिनमें वधूके गोचरमें सूर्य शुद्धि और पतिके गोचरमें बृहस्पतिशुद्धि होनेसे नववधूका द्विरागमन शुभ होता है और उक्तमास भिन्न अन्यान्य मासमें द्विरागमन करानेसे अनिष्ट होता है १५॥

प्रकारान्तरश्च ।

पुष्यादित्यसमीरणादितिवसुष्वप्युत्तरारेवती-

तारानायकरोहिणीषु शुभदे मेपालिकुम्भे रवौ ।

वारेष्विष्यसितेन्दुवित्सु शुभदे तारे प्रशस्ते विधौ

कन्यामन्मथमीनतौलिमृगभे स्यादङ्गनाढ्यागमः ॥ १६ ॥ (१)

इति प्रचेताः ।

अर्थ—प्रचेताने कहा है कि, पुष्य, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, धनिष्ठा; उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, मृगशिर और रोहिणी इन समस्त शुभनक्षत्रोंमें सौर वैशाख, अग्रहायण और फाल्गुनमासमें, बृहस्पति सोम और बुधवारमें, शुभतारामें, चन्द्रशुद्धि होनेसे कन्या, मिथुन मीन मतान्तरमें, कुम्भ, तुला और मकर लग्नमें नववधूका द्विरागमन शुभ होता है ॥ १६ ॥

अन्यश्च ।

पुष्यादित्यसमीरणादितिवसुत्रीण्युत्तराण्याश्विनी-

रोहिण्यः शशलाञ्छनोऽपि शुभदो मेपालिकुम्भे रवौ ।

देवाचार्यसितेन्दुसौम्यदिवसे ताराप्रशस्ते बुधः

कन्यामन्मथमीनभे नववधूयानं मृगे तौलिके ॥ १७ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—सारसंग्रहनामक ग्रन्थमें लिखा है कि—पुष्य, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु,

(१) “ तौलिकुम्भे मृगभे ” इति पाठान्तरम् ।

धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपदा, अश्विनी, रोहिणी और मृगशिर इन नक्षत्रोंमें, सौर वैशाख, अग्रहायण वा फाल्गुनमासमें वृहस्पति, शुक्र, सोम और बुधवारमें ताराशुद्धि होनेसे कन्या, मिथुन, मीन, मकर और तुला लग्ने नववधूका द्विगमन प्रशस्त है ॥ १७ ॥

अपरञ्च ।

वृद्धे चास्तमिते शिशौ भृगुसुते चन्द्रे च सूर्ये स्थिते
वक्त्रे चापि गुरौ तथातिचरिते लुप्ते च संवत्सरे ।
वर्षे द्वादशके गुरौ हरिगृहे पक्षे च शुक्लेतरे
आनीता श्रमकाक्षिणी नववधूरत्यन्तदुःखप्रदा ॥ १८ ॥

इति पराशरः ।

अर्थ—शुक्रके वार्द्धक्य, अस्त वा बाल्यावस्थामं चन्द्र और सूर्य एक गतिमें स्थित होनेसे, वृहस्पति सिंहराशिमें स्थित वक्त्री, अतिचारी वा महातिचारी होनेसे, कृष्णपक्षमें द्वादशवर्षवयस्का, नववधूका द्विगमन करनेसे वह अत्यन्त दुःखनायिनी होती है । इस प्रकार पराशरने कहा है ॥ १८ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

ओजोऽब्देऽलिषटाजगे दिनकरे गुर्वर्कचन्द्रे शुभे
कन्यामन्मथर्तालिर्मानमृगभे युक्तोक्षिते सद्ब्रह्मैः ।
देवाचार्यसितेन्दुसौम्यदिवसे पक्षे च कृष्णेतरे
मूलक्षिप्रचरध्रुवेषु मृदुभे वध्वा द्वितीयागमः ॥ १९ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—अब ग्रन्थान्तरकी गीतिसे द्विगमनका शुभ दिन कहते हैं, अयुग्मवर्षमें सौर अग्रहायण, फाल्गुन और वैशाख मासमें वृहस्पति, सूर्य और चन्द्र शुद्ध होनेसे कन्या, मिथुन, तुला, मीन और मकरलग्न शुभग्रहयुक्त वा शुभग्रहकी दृष्टि होनेसे, वृहस्पति शुक्र, सोम और बुधवारमें शुक्लपक्षमें, मूल, पुष्य, अश्विनी, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, जतमिषा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुगधा, मृगशिर और रेवती इन नक्षत्रोंमें नववधूका द्विगमन प्रशस्त है ॥ १९ ॥

अथ द्विगमने प्रशस्तविविक्तथनम् ।

द्वितीया तृतीया चैव पञ्चमी सप्तमी तथा ।

दशम्येकादशी प्रोक्ता त्रयोदशी शुभा तथा ॥ २० ॥

अर्थ—द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी तिथि द्विरागमनमें प्रशस्त हैं ॥ २० ॥

अथ निषिद्धतिथिकथनम् ।

नाष्टम्यां न च रिक्तायां नाद्यपष्टी च पूर्णिमा ।

द्वादशी चाशुभा ज्ञेया द्विरागमनकर्मसु ॥ २१ ॥ (*)

अर्थ—अष्टमी, रिक्ता (चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी) पतिपदा, पष्टी, पूर्णिमा और द्वादशी तिथि द्विरागमनमें अप्रशस्त हैं ॥ २१ ॥

अथ पितृगृहे भोजनानन्तरं पतिगृहे भोजननिषेधः ।

भुक्त्वा पितृगृहे कन्या भुङ्क्ते स्वामिगृहे यदि ।

दौर्भाग्यं जायते तस्याः शपन्ति कुलदेवताः ॥ २२ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—विवाहिता कन्या पिताके घरमें भोजन करके यदि पुनः (फिर) पतिके घरमें भोजन करे तब दुर्भाग्यवती होती है और कुलदेवता उसको शाप देते हैं ॥ २२ ॥

अथाचरजोदर्शने शुभाशुभवारादिकथनम् ।

आदित्ये विधवा नारी सोमे चैव पतिव्रता ।

वेश्या मङ्गलवारे च बुधे सौभाग्यमेव च ॥ २३ ॥

बृहस्पता पतिः श्रीमान्शुके पुत्रवती भवेत् ।

शनी वन्ध्या विजानीयात्प्रथमं स्त्री रजस्वला ॥ २४ ॥

इति नारायणपद्धतौ ।

अर्थ—अब प्रथम रजोदर्शनका फल वर्णन करते हैं । रविवार (इतवार) में स्त्रीको प्रथम रजोदर्शन होनेसे वह स्त्री विधवा होजाती है, इसी प्रकार सोमवारमें पतिव्रता, मङ्गलवारमें वेश्या और बुधवारमें सौभाग्यवती होती है, बृहस्पतिवारमें प्रथम रजस्वला होनेसे उसका पति अत्यन्त धनाढ्य होता है, शुक्रवारमें प्रथम रजोदर्शन होनेसे वह नारी पुत्रवती होती है और शनिवारमें प्रथम रजस्वला होनेसे वन्ध्यात्व प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ मासकथनम् ।

ज्येष्ठे स्याद्विधवा नारी आषाढे बन्धुनाशिनी ।

(*) मासदग्धाविवाहप्रकरणे विलिखिता विष्टिप्रदरा च सामान्यकाण्डे लिखिता दिन्दग्धा यात्राप्रकरणे वर्द्ध्यामि । एता ग्रहणीयाः ।

श्रावणे च मृतापत्या भाद्रे च बहुरोगिणी ।

आश्विने च मृतापत्या कार्तिके कुठनाशिनी ॥ २५ ॥

मार्गशीर्षे धर्मशीला पौषे च रतिविह्वला ॥ २६ ॥

माघे पतिव्रता नारी फाल्गुने बहुपुत्रिणी ।

चैत्रे च मदनोन्मत्ता वैशाखे प्रियवादिनी ॥ २७ ॥ (४)

इति द्योतिष्मन्त्रे ।

अर्थ—उद्येष्टमासमें प्रथम रजस्वला होनेसे वह नारी विधवा होती है। इसी प्रकार आपाढमें बन्धुनाशिनी, श्रावणमें मृतवत्सा, भाद्रपदमें रोगिणी, आश्विनमें मृतवत्सा, कार्तिकमें कुलक्षयकारिणी, अग्रहायणमें धर्मपरायणा, पौषमें मदनोन्मत्ता, माघमें पतिव्रता, फाल्गुनमें बहुपुत्रवती, चैत्रमें कामुकी और वैशाखमासमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे वह नारी प्रियभाषिणी होती है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ तिथिकथनम् ।

प्रतिपत्सुभगां नारीं द्वितीया वातुलां प्रियाम् ।

तृतीया क्षेममारोग्यं चतुर्थी पतिवल्लभाम् ॥ २८ ॥

पञ्चमी सुभगां नारीं षष्ठी पररताञ्जरेत् ।

सप्तमी श्रीयुतां नारीमष्टमी पतिरोगिणीम् ॥ २९ ॥

नवमी विधवां नारीं दशमी च सुपुत्रिणीम् ।

एकादशी मृतवत्सां द्वादशी परगामिनीम् ॥ ३० ॥

त्रयोदशी चार्थपुत्रां चञ्चलाञ्च चतुर्दशी ।

नष्टेन्दुः कुरुते मृत्युं पौर्णमासी च सम्पदः ॥ ३१ ॥

अर्थ—स्त्रियोंके प्रथमवार रजस्वला होनेमें तिथिफल कहते हैं। प्रतिपदा तिथिमें प्रथमवार स्त्री रजस्वला होनेसे सुभगा होती है, इसी प्रकार द्वितीयामें वातुला, तृतीयामें मङ्गल और आरोग्यलाम्, चतुर्थीमें पतिकी प्यारी, पञ्चमीमें सुभगा, षष्ठीमें परपुरुषमें प्रीति रखनेवाली, सप्तमीमें धनशालिनी, अष्टमीमें पतिकी रोग, नवमीमें विधवा, दशमीमें पुत्रवती, एकादशीमें मृतवत्सा, द्वादशीमें परपुरुषगामिनी, त्रयो-

(•) “ सन्ध्याद्वये तथा रात्रौ पित्रगारे परालये । विष्टौ तथैव भक्तान्त्या ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । कुष्णपक्षे चाशुभ स्यान्नास्तीनां प्रथम रजः ॥ ” इति मन्ध्यादी आद्यन्तु-फलम् ।

दशमीं धन और पुत्रयुक्ता, चतुर्दशीमें चञ्चला और अमावास्यामें मृत्यु होती है और पूर्णमासी तिथिमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे सम्पत्तिलाभ होता है ॥ २८-३१ ॥

अन्यच्च ।

द्वितीया पञ्चमी चैव तृतीया दशमी तथा ।

प्रथमे रजसि स्त्रीणां शुभाश्चान्येऽधमाः स्मृताः ।

अमारिक्ताष्टमीपष्टीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि ॥ ३२ ॥ ग्रन्थान्तर ।

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, द्वितीया, पञ्चमी, तृतीया और दशमी तिथिमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे शुभ होता है, और अमावस्या, रिक्ता, अष्टमी, पष्टी, द्वादशी और प्रतिपदा तिथिमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे अशुभ होता है ॥ ३२ ॥

अथ योगादिकथनम् ।

परिधस्य तु पूर्वार्द्धे व्यतीपाते च वैधृतौ ॥

सन्ध्या सूपप्लवे विद्यादशुभं प्रथमार्त्तवम् ॥ ३३ ॥ (❀)

अर्थ—अथ योगका फल वर्णन करते हैं । परिध योगके पूर्वार्द्धमें, व्यतीपातमें, वैधृतियोगमें, सन्ध्याकालमें और ग्रहणसमयमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे अशुभ फल होता है ॥ ३३ ॥

अन्यच्च ।

विष्कम्भे दुर्भगा नारी वन्ध्या स्यादतिगण्डके ।

शूले शूलान्विता गण्डे वज्रे वेश्पा भवेद्भुवम् ॥ ३४ ॥

व्यतीपाते वैधृतौ च पतिघ्नी नात्र संशयः ।

परिधे स्यान्मृतापत्या व्याघाते चात्मघातिनी ।

शेषा यथानामफला नारीणां प्रथमार्त्तवे ॥ ३५ ॥

अर्थ—विष्कम्भयोगमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे वह स्त्री दुर्भगा होती है। इसी प्रकार अतिगण्डयोगमें वन्ध्या, शूलयोगमें शूल रोगान्विता गण्ड और वज्र योगमें वेश्पा, व्यतीपात और वैधृति योगमें स्वामिघातिनी, परिधयोगमें मृतपुत्रा और व्याघातयोगमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे आत्मघातिनी होती है; अन्यान्य योगमें नामकेसे माने फल होता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

(•) मार्गफाल्गुनवैशाखे ज्येष्ठे च श्रावणे तथा । माघे कृष्णतरे पक्षे स्त्रीणामादि-रजःशुभम् । कृष्णपक्षे तु दशमी मध्यमं फलमादिशेत् ॥ इति कर्ममन्त्रिग्रन्थे ।

अथ नक्षत्रकथनम् ।

पूर्वात्रये याम्यभुजङ्गरौद्रे

वेधव्यमस्या विदधाति नूनम् ।

मघे सशोकाप्यथ भेऽदितीशे

सा बन्धकीन्द्रानलभे दरिद्रा ॥ ३६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-पूर्वोफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, आश्लेषा और आर्द्रा नक्षत्रमे प्रथमवार स्त्री रजस्वला होनेमें निश्चयही विधवा होती है, इसी प्रकार मघानक्षत्रमें शोक हांता है, पुनर्वसु नक्षत्रमें जाग्रणी होती है और ज्येष्ठा और कृत्तिका नक्षत्रमे प्रथम बार रजस्वला होनेसे नारी दरिद्रा होती है ॥ ३६ ॥

पुष्पं दृष्टं निन्दिते भे यदि स्या-

(*) च्छान्तिं कुर्यादङ्गनानाञ्च पूर्वम् ।

तत्संयोगं बान्धवा वर्जयेयु-

यावद्भूयो दृश्यते शस्तभे तत् ॥ ३७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-निन्दित नक्षत्रमें यदि प्रथमवार नारी रजस्वला होय तब उस नारीके लिये शान्ति करनी चाहिये और जबतक शुभ नक्षत्रमें दूसरीवार रजस्वला न होय तबतक बान्धवगण उस स्त्रीके साथ स्पर्शादि सम्बन्धको परित्याग करेद्वे ॥ ३७ ॥

कृत्तिकादीनि ऋक्षाणि दिक्ष्वप्यसु लिखेद्बुधः ।

चत्वारि दिक्षु ऋक्षाणि कोणेषु च त्रयं लिखेत् ॥ ३८ ॥

पूर्वादिक्रमतो लेख्यं फलं तैरेव निर्दिशेत् ।

श्रीर्वन्ध्या सुभगा चैव विपुत्रा पुत्रिणी तथा ॥ ३९ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

विधवा सर्वसम्पन्ना वेद्या चेति क्रमात्फलम् ।

(*) “ मासदोषे गुह तेल वारदोषे च तण्डुलम् । नक्षत्रे च माणि दद्याद्योगे च तिलकाञ्चनम् । तिथिदोषे माणि दद्यात्कण्ठे चाञ्चनं तथा । लग्नदोषे वृष दद्यात्प्रथमे स्त्री रजस्वला ॥ ”

आद्ये रजसि सम्भूते स्त्रीणामृक्षफलं भवेत् ॥ ४० ॥ (x)

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ-एक दिक्चक्र अङ्कित करके उसमें कृत्तिकादिकरके नक्षत्रांक आठों दिशामें स्थापन करें । चारों दिशामें चार २ नक्षत्र और चतुष्कोणमें तीन २ नक्षत्रांक अंकित करना चाहिये । कृत्तिकादि नक्षत्र पूर्वादिक्रमसे लिखें फलभी इसी प्रकार जानना चाहिये अर्थात् पूर्वदिशाके नक्षत्रोंके मध्यमें प्रथम बार रज-स्वला होनेसे श्रीयुक्ता होती है, इसी प्रकार अग्रिकोणमें होनेसे वन्ध्या दाक्षिणमें मौभाग्यवती, नैऋतमें पुत्रहीना, पश्चिममें पुत्रवती, वायुकोणमें विधवा, उत्तरमें नवसम्पन्ना और ईशान कोणास्थित नक्षत्रांकाक मध्यमें प्रथमवार नारी रजस्वला होनेसे बेड्या होती है । स्त्रियोंके प्रथमवार रजस्वला होनेमें नक्षत्रांका फल इस प्रकारसे कहा गया । आगे दिक्चक्र स्पष्ट लिखा है जिसके देखनेसेही पाठकगणका अनायासमें ज्ञात होजायगा ॥ ३८-४० ॥ इति नक्षत्रकथनम् ।

अथ दिक्चक्रम् ।

| ई. रे. अ. म | पृ. कृ. रे. मृग. आ. | अ. पुन. पु डल. |
|---------------------------|----------------------------|-------------------------------|
| उ. ध ज. पू. भा. उ. भा. | अथ दिक्चक्रम्. | द. म. पू. फा. उ. फा. इ. |
| वा. उ. पा. डभि. अ. | प. ननु. ज्ये मू पू. पा. | न. दि म्या नि. |

अथ गर्भाधानम् ।

तत्राष्टौ पञ्चपर्वनिरूपणम् ।

चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावस्याथ पूर्णिमा ।

(•) अधिन्यादित्रयेण नक्षत्रफलम् । “ सुभगा चतुर्दशीला वन्ध्या पुत्रममन्विता । भर्मयुक्ता वनव्री च परसन्तानमोहिनी । सुपुत्रा चैव दुपुत्रा पितृवेभरतामश । दीना प्रजावती चैव पुत्राद्या चित्राणि । साध्वी प्रतिप्रिया नित्य सुपुत्रा नष्टचारिणी । स्वर्गोणि रता हिम्वा पुण्यपुत्रादिमंशुना । नित्य धनचयासक्ता सुपुत्रा धन्यमयुना । मृत्वा चान्ना पुण्यानीडमृक्षदिः क्रमात्फलम् ॥ ” इति ग्रन्थान्ते ।

पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च ॥ ४३ ॥

स्त्रीतैलमांसभोगी च पर्वस्वेतेषु वै पुमान् ।

विष्णुभोजनं नाम प्रयाति नरकं ध्रुवम् ॥ ४२ ॥

अति विष्णुपुराणे ।

अर्थ-अय पञ्चपर्व वर्णन करते हैं । विष्णुपुराणमें लिखा है कि, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा और रविसंक्रान्तिको पञ्चपर्व कहते हैं इनमें जो मनुष्य स्त्रीसम्भोग तैलाभ्यङ्ग, वा मांसभोजन करता है, वह मनुष्य विष्णुभोजननामक नरकमें निश्चयही वास करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अन्यच्च ।

कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तचतुर्दश्यष्टमीषु च ।

नरचाण्डालयोनिःस्यात्तलस्त्रिमांससेवनात् ॥ ४३ ॥ (*)

इति मारुतग्रहे ।

अर्थ-सारसंग्रहमें लिखा है कि; अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, चतुर्दशी और अष्टमी तिथियोंमें मनुष्य तैलव्यवहार, स्त्रीभङ्ग, वा मांसभोजन करनेसे चाण्डालयोनिमें प्राप्त होता है अतएव उक्त समस्त निषिद्ध दिनमें स्त्रीमेवनादि न करना चाहिये ॥ ४३ ॥

अथ निषेककालकथनम् ।

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मपातिनी ।

तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्धयति ॥ ४४ ॥

अर्थ-रजस्वला स्त्री प्रथम दिनमें चाण्डालिनीके समान होती है द्वितीयदिनमें ब्रह्मघातिनिके समान होती है और तृतीय दिनमें रजकीनी (धोविन) के समान अस्पृश्या रहकर चतुर्थ दिनमें शुद्ध होती है ॥ ४४ ॥

रामं दिनं परित्यज्य यावद्ब्रह्म शोणितम् ।

तावदेव ऋतुः स्त्रीणां रात्रयः षोडशः स्मृताः ॥ ४५ ॥

अर्थ-स्त्रियोंके रजस्वला होनेकी अत्राधि मोलह रात्रिके मध्यमें मयम तीन दिन परित्याग करके ऋतुकाल जानना चाहिये ॥ ४५ ॥

(*) “ पूर्णानु योषित्परिवर्जनीया ” इति उत्पत्त्युद्भवशामनपुगणम् । “ कथे च योषा न समाश्रजे ” इति । “ योषिन्मवावृत्तिरामृतगतु ” इति रज्याग्रे ।

चतुर्थे जायते पुत्रः स्वल्पायुर्गुणवर्जितः ।

विद्याधर्मपरिभ्रष्टो दरिद्रः क्लेशभोजनः ॥ ४६ ॥

अर्थ—रजस्वला स्त्री चौथे दिनमें स्नान करके पतिके साथ वास करसक्ती है, किन्तु उक्त दिनमें गर्भ धारण करके पुत्रप्रसव करनेसे वह पुत्र अल्पायुविशिष्ट, गुणहीन, मूर्ख, अधर्माचारी, दरिद्र होता है और उसको क्लेशका भोजन प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

पञ्चमे जायते कन्या दुर्भगा नित्यदुःखिता ।

स्वल्पायुरसती वेश्या कुरूपा विधवा स्मृता ॥ ४७ ॥

अर्थ—पांचवें दिन गर्भधारण करनेसे कन्या होती है, वह कन्या दुर्भगा, चिर-दुःखिनी अल्पायुविशिष्टा, असती, वेश्या, कुरूपा और विधवा होती है ॥ ४७ ॥

षष्ठे च जायते पुत्रो न दोषी न गुणी तथा ।

मूर्खो दुःखी कुरूपश्च धनसन्ततिवर्जितः ॥ ४८ ॥

अर्थ—छठे दिनमें गर्भ धारण करनेसे पुत्र होता है, वह पुत्र दोषहीन, निर्गुण मूर्ख, दुःखभागी, कुरूप, धनहीन, और निःसन्तान होता है ॥ ४८ ॥

सप्तमे जायते कन्या दुःखिनी नायिका भवेत् ।

जीवन्ती सा मृता लोके धनधान्यविवर्जिता ॥ ४९ ॥

अर्थ—सातवें दिन गर्भ धारण करनेसे कन्या उत्पन्न होती है वह कन्या दरि-द्रकी स्त्री और जीवन्मृताके समान धनधान्यसे हीना होती है ॥ ४९ ॥

अष्टमे जायते पुत्रः पितुर्वित्तविनाशकः ।

व्याधितो दुर्मुखश्च प्रायो निष्ठुरमानसः ॥ ५० ॥

अर्थ—आठवें दिन गर्भ धारण करनेसे पुत्र होता है, वह पुत्र पिताके धनका नाश करनेवाला, व्याधियोंसे युक्त, दुर्मुख और निर्दय होता है ॥ ५० ॥

नवमे जायते कन्या मेघायुःपुत्रसंयुता ।

लक्ष्मीसमा भवेत्प्राची स्वामिनी हितकारिणी ॥ ५१ ॥

अर्थ—नववें दिन गर्भ धारण करनेसे कन्या होती है, वह कन्या मेघायिनी, दीर्घायुयुक्ता, पुत्रवती, लक्ष्मीके समान और पतिके हितकारिणी होती है ॥ ५१ ॥

दशमे जायते पुत्रो धनधान्यमहेश्वरः ।

भाग्यवान्वहुशो विद्यामेघायुःपुत्रसंयुतः ॥ ५२ ॥

अर्थ—दशवें दिन गर्भ धारण करनेसे पुत्र होता है, वह पुत्र धनधान्यका स्वामी, भाग्यवान्, अत्यन्त विद्वान्, मेघायुक्त और पुत्रवान् होता है ॥ ५२ ॥

रुद्रे च जायते कन्या कुलद्वयमनोहरा ।

सती पुत्रवती साध्वी धर्मकर्महितैपिणी ॥ ५३ ॥

अर्थ—ग्यारहवें दिन गर्भ धारण करनेसे कन्या होती है. वह कन्या दोनों कुलोंको उज्ज्वल करती है और सती, पुत्रवती, साध्वी और धर्मकर्मम प्रीति रखनेवाली होती है ॥ ५३ ॥

द्वादशे जायते पुत्रो यशोविद्यादयान्वितः ।

धनी सुपुत्रयुक्तश्च मतिमोल्लोकपालकः ॥ ५४ ॥

अर्थ—बारहवें दिन गर्भ धारण करनेसे पुत्र होता है, वह पुत्र यशस्वी, विद्वान् दयाशील, धनी, सुपुत्रान्वित, बुद्धिमान और लोकपालक होता है ॥ ५४ ॥

त्रयोदशे च कन्या स्यात्कुलद्वयमनोहरा ।

साध्वी पुत्रवती धन्या धर्मलोकनिवासिनी ॥ ५५ ॥

अर्थ—तेरहवें दिन गर्भ धारण करनेसे कन्या होती है वह कन्या दोनों कुलोंके उज्ज्वल करनेवाली, साध्वी, पुत्रवती और प्रगसनीया होकर धर्मलोकम वास करती है ॥ ५५ ॥

चतुर्दशे तु पुत्रः स्याद्बलवानृषसन्निभः ।

शुद्धवीर्ययशोराशिर्मेघालक्ष्मीसमन्वितः ॥ ५६ ॥

अर्थ—चौदहवें दिन गर्भ धारण करनेसे पुत्र होता है, वह पुत्र बलवान् राजाके समान, यशस्वी, मेघावी और लक्ष्मीयुक्त होता है ॥ ५६ ॥

भवेत्पञ्चदशे कन्या भूपानां कण्ठधारिणी ।

अर्द्धप्राणहरा पत्युः सती धर्मपरायणा ॥ ५७ ॥

अर्थ—पन्द्रहवें दिन गर्भ धारण करनेसे कन्या होती है वह भूपालप्रणयिनी, स्वामीकी अर्द्धाङ्गरूपा सती और धर्मपरायणा होती है ॥ ५७ ॥

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च समयज्ञो महीपतिः ।

षोडशे जायते पुत्रः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ ५८ ॥ (*)

इति सारसंग्रहधृततत्त्वानि ॥

अर्थ—सोलहवें दिन गर्भधारण करनेसे पुत्र होता है. वह पुत्र धर्मज्ञ, कृतज्ञ,

(*) इत्यादिष्वचनानुसारेण ऋतुफालावधिषोडशदिनमध्ये दशमे द्वादशे चतुर्दशे षोडशे वा निषेक उत्तम्य ॥ इति ।

भृषति, मत्स्यवादी और जितेन्द्रिय होता है ॥ ५८ ॥

अथ गर्भाधाने युग्मायुग्मदिनव्यवस्था ।

पोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत् ॥ ५९ ॥

इति याज्ञवल्क्यः ।

अर्थ-भगवान् चात्रवल्क्यने कहा है कि, स्त्रियोंके ऋतुकालका समय सोलह गात्रिनका होना है तिनके मध्यमें युग्म रात्रियोंमें निषेक करना चाहिये ॥ ५९ ॥

अन्यच्च ।

स्त्रीणामृतुर्भवाति पोडशवासराणि

तत्रादितः परिहरेच्च निशाश्च तिस्रः ।

युग्मासु रात्रिषु नरा विषमासु नार्यः

कुर्यान्निषेकमथ तास्वपि पर्व वर्जम् ॥ ६० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-स्त्रियोंके ऋतुकालका समय सोलह दिनतक होता है, तिनके मध्यमें प्रथमके तीन दिन परित्याग करके अन्य तेरह दिनके मध्यमें रजोदर्शनावधि युग्मगात्रिम गर्भधारण करनेसे पुत्र और अयुग्म रात्रिम कन्या उत्पन्न होती है अतएव युग्म गात्रियोंमें निषेक करना चाहिये किन्तु पञ्चपर्वको परित्याग करेदी ॥ ६० ॥

अपरच्च ।

एवं गच्छेत्स्त्रियं क्षामां मवां मूलञ्च वर्जयेत् ।

शस्त इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान् ॥ ६१ ॥

इति याज्ञवल्क्यः ।

अर्थ-मूल और मघा नक्षत्रको छोड़कर शुभ चन्द्रमें जाह्नग्लाघडादिदाता क्षीणा स्त्रीमें गमन करनेसे उत्तम लक्षणकाहान्न पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ६१ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।

तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदात्तवे स्त्रियम् ॥ ६२ ॥

इति याज्ञवल्क्यः ।

अर्थ-याज्ञवल्क्यने कहा है कि, युग्मगात्रिम पुत्र और अयुग्म गात्रिम कन्या उत्पन्न होती है अतएव पुत्रार्थी मनुष्यको युग्म गात्रिमही स्त्रीगमन करना चाहिये ॥ ६२ ॥

अपिच ।

पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ॥ ६३ ॥

इति मनुः ।

अर्थ-भगवान् मनुजीने कहाहै कि, पुरुषके शुक्र (वीर्य) अधिक होनेसे पुत्र और स्त्रीके शोणित अधिक होनेसे कन्या उत्पन्न होतीहै ॥ ६३ ॥

अन्यथा ।

युग्मायामपि रात्रौ चेच्छोणितं प्रचुरं तदा ।

कन्या पुंवद्भवति शुक्राधिक्ये पुमान्भवेत् ॥ ६४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-युग्मरात्रिमेंभी यदि स्त्रीका शोणित अधिक होय तब पुरुषचरित्रा कन्या उत्पन्न होतीहै और पुरुषका शुक्र (वीर्य) अधिक होनेसे पुत्र उत्पन्न होताहै ॥ ६४ ॥

अपरञ्च ।

पीडाराशौ भौमदृष्टे शशाङ्के मासं मासं योपितामार्त्तवं स्यात् ।

त्र्यंशे शान्तं यच्च रक्तं जपामं तद्गर्भाथैवेदनागन्धहीनम् ६५ ॥ (*)

अर्थ-अनुपचयराशिमें स्थित चन्द्रग्रहपर मङ्गलकी दृष्टि होनेसे प्रतिमासमें स्त्रियोंकी जो रज उत्पन्न होती है, और जो शोणित तीन दिनमेंही उसके समान होजाय और जिस शोणितका वर्ण जपापुष्पके समान और वेदनागन्धादिविहीन होय तो उसमें निषेक करनेसे गर्भका सञ्चार होताहै ॥ ६५ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

मासेशैः सितकुजगुरुरविशशिशनिसौम्यलग्नपशशनिः ।

(•) ऋतुनिरूपणमाह-पीडेति । कुजदृष्टे चन्द्रे प्रतिमासं स्त्रीणामुत्तमवति । यथा सारावल्याम् । “इन्दुर्जल कुजोऽग्निर्जलमिश्रस्त्वग्निरेव पित्तं स्यात् । एव ह्यग्निने पित्तेनेन रजः प्रवर्त्तते स्त्रीषु ॥ ” अत्र च वालां वृद्धातृणां वन्ध्यां वर्जयित्वा तु योपित पीडाराशौ अनुपचयराशी गते चन्द्रे भौमदृष्टे मासमासं यदार्त्तं रजो भवति तद्रजो गर्भाथै गर्भक्षमं स्यात् यच्च रक्तं त्र्यंशे दिनत्रये शान्तं जपामं औद्गुण्यसदृशवर्णं वेदनाहीनं गन्धहीनञ्च तच्च रजो गर्भक्षमं स्यादित्यर्थः । यथा सारावल्याम् “ अनुपचयराशिसंस्थे कुमुदाकरवान्धवे रुधिरदृष्टे । प्रतिमासं युवतीनां भवति रजो जगुर्मुनयः । एव यद्भवति रजो गर्भस्य निमित्तमेव कथितं तत् । उपचयसंस्थे विफलं प्रतिमासं दर्शनं तस्य ” इति । एतेन पीडाराशौ गोचरदृष्टे चन्द्रे इत्यशुद्धमेव प्रलपितं सोभरिणेति ।

कलुपैःपीडागर्भस्य पीडितैः पतनमन्वथा पुष्टिः ॥ ६६ ॥ (१)

अर्थ—गर्भमासाधिपतिद्वारा गर्भका शुभाशुभ कहते हैं—गर्भधारणसे प्रसव-कालपर्यन्त दशमासके स्वामी क्रमानुसार शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, रवि, चन्द्र, शनि, बुध, निपेककालकी लग्नके स्वामी चन्द्र और सूर्य कहते हैं, अर्थात् प्रथम मासका स्वामी शुक्र, द्वितीयमासका स्वामी मङ्गल, तीसरे मासका स्वामी बृहस्पति, चौथे मासका स्वामी सूर्य, पांचवें मासका स्वामी चन्द्र, छठे मासका स्वामी शनि, नानवें मासका स्वामी बुध, आठवें मासका स्वामी निपेकलग्नाधिपति, नववें मासका स्वामी चन्द्र और दशवें महीनेका स्वामी सूर्य ग्रह होता है। उक्त समस्त मासके स्वामी ग्रहोंके मध्यमें कोई ग्रह पापयुक्त होय तो मौम्यमासमें गर्भकी पीडा होती है, और यदि कोई ग्रह अस्तादि त्रिविधोत्पात वा उपरागादिद्वारा पीडित होय—तब उसी मासमें गर्भपात होजानेकी आशङ्का होती है और यदि कोई ग्रह शुभग्रह युक्त हो वा किसी ग्रहपर शुभग्रहकी दृष्टि होय तो गर्भ पुष्ट होकर शुभ होता है ॥ ६६ ॥

प्रगस्ताप्रशस्तनक्षत्रकथनम् ।

पुंनक्षत्राणिचैतानितिष्योहस्तःपुनर्वसुः ।

अभिजित्प्रौष्ठपाञ्चैवानुराधापादश्चाश्वयुक् ॥ ६७ ॥

इति वशिष्ठः ।

अर्थ—वशिष्ठने कहा है कि, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, अभिजित्, अनुराधा, पूर्वा-फाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और अश्विनी इनको पुंनक्षत्र कहते हैं ॥ ६७ ॥

अपिच--

हस्तो मूलं श्रवणः पुनर्वसुमृगशिरस्तथा पुष्यश्च ।

गर्भाधानादिकार्येषु पुंन्नामायं गुणः शुभदः ॥ ६८ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—ग्रन्थान्तर्गते लिखा है कि; हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिर और पुष्य इन पुंनक्षत्रोंमें गर्भाधानादिकार्य करनेमें शुभफल प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥

(•) मामनायेर्गर्भस्य शुभाशुभमाह—मासेर्गतिः । यथाक्रम गर्भाधानात्प्रभूति दश-मासानामधिपैः मितादिभिः कलुपैः पापग्रहयुक्तेर्गर्भस्य पीडा स्यात्तैश्च पीडितैः अमन्त्या-दित्रिविधोत्पातोपरागादिहर्नेर्गर्भस्य पानः स्यात् अन्यथा शुभग्रहयोगे शुभदृष्टे गर्भस्य पुष्टिः स्यादित्यर्थः । तथा च देवजगद्भाषायाम्—“ एते यदा शत्रुगृहे वसन्ति मुद्रे जिता शत्रुभिरन्तगा वा ॥ अन्यत्र वा पीडितदेहभाजो गर्भस्य पाताय भवन्ति रोदाः ॥ ” तथा सारावल्याम् “ उत्पानकृद्गृहे तन्मामस्याधिपे पतन्ति गर्भः ” इति । अत्र च लग्नपर-निपेकलग्नाधिपः प्रभललग्नाधिपश्च ज्ञाने ।

अन्यच्च ।

ज्येष्ठा मूलमघाश्लेषा रेवती कृत्तिका श्विनीः ।

उत्तरात्रितयं त्यक्त्वा पर्ववर्जं व्रजेदतौ ॥ ६९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि ज्येष्ठा, मूल, मघा, आश्लेषा, रेवती, कृत्तिका, श्विनी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र और पर्व त्यागकरके ऋतुकालमें स्त्रीके साथ सहवास करना चाहिये ॥ ६९ ॥

अपरंच ।

पुण्यार्कचन्द्रशिवमूलपुनर्वसुः स्या-

दापाठ्युगमहरिभाद्रपदद्वयं च ।

एतानि पुंसि कथितानि शुभानि भानि

चान्येषु गर्भपतनादिभयञ्च भेषु ॥ ७० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—पुष्य, हस्त, मृगशिर, आर्द्रा, मूल, पुनर्वसु, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदा इन सब पुंसंज्ञक नक्षत्रोंमें गर्भाधान शुभदायक होता है । उक्त नक्षत्रोंके शिवाय अन्य समस्त नक्षत्रोंमें गर्भाधान होनेसे वह गर्भ पतन होजाता है ॥ ७० ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

मूलर्क्षं स्मृतिदुष्टत्वाद्गर्भाधानेषु नेष्यते ।

तस्य पुंसवनादौ तु पुंसंज्ञत्वे प्रयोजनम् ॥ ७१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—मूलनक्षत्र स्मृतिके विरुद्ध होनेसे गर्भाधानमें प्रशस्त नहीं है किन्तु पुंसवनादिकार्यमें मङ्गलदायक पुंसंज्ञाके मध्यमें कहाँ है ॥ ७१ ॥

अथप्रशस्ताप्रशस्ततिथ्यादिकथनम् ।

नन्दा भद्रा भवेत्पुंसि स्त्रीषु पूर्णा जया स्मृता ।

रिक्ता नपुंसके त्वाहुस्तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ७२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—नन्दा और भद्रा तिथि पुरुषकर्ममें प्रशस्त हैं, पूर्णा और जया तिथि

स्त्रीकर्ममें प्रशस्त हैं, रिक्ता तिथि नपुंसक है अतएव उसको समस्त कर्ममें परित्याग करना चाहिये ॥ ७२ ॥

पापासंशुतमध्यगेषु दिनकृच्छ्रप्रक्षयास्वामिषु
तद्द्यूनेष्वशुभोज्झितेषु विकुजे च्छिद्रे विपापे सुखे ।

सद्युक्तेषु, त्रिकोणकण्टकविधुष्वायत्रिपष्टान्विते

पापे युग्मनिशास्वगण्डसमये पुंशुद्धितः (१)सङ्गमः ॥ ७३(२)

अर्थ—यदि सूर्य, लग्न और चन्द्र पापग्रहयुक्त न हों, पापग्रहके मध्यमें स्थित न होय, सूर्य, लग्न और चन्द्रके सातव स्थानमें पापग्रहका वासस्थान न होय, आठवें मङ्गल अथवा चौथे पापग्रहमें युक्त न होय, और राशि, लग्न और लग्नके पांचवें, नववें, चौथे, सातवें और दशवें स्थानमें शुभग्रह होय और लग्नके ग्यारहवें, तीसरे और छठे स्थानमें पापग्रह स्थित होय तो युग्मरात्रियोंमें गण्डनक्षत्र त्याग करके पुरुष चन्द्रशुद्धि होनेसे गर्भाधान करे ॥ ७३ ॥

(१) “अन्यानक्षत्रशुद्धौ स्याद्विवाह शुभकृन्मृणाम् । पश्चाद्दर्शयिषुद्ध्या तु यात्रा-
पुष्पोत्सवादयः ॥” इति ज्योतिस्तत्त्वे । “विनाह्वार्यं कुसुमप्रतिष्ठा गर्भप्रतिष्ठा वनिता-
विशुद्धौ । अन्यानि कार्याणि धनस्य शुद्धौ पश्यो विहीने प्रमदात्मशुद्ध्या ॥” इति
अन्यान्तरे विरुद्धवचनमस्ति ।

(२) निषेकमाह—पापेति । रविलग्नचन्द्रेषु पापायुक्तेषु तद्द्यूनेषु तेषां रविलग्नचन्द्राणां
सप्तमेषु पापशान्तेषु लग्नस्य छिद्रेऽष्टमस्थाने विकुजे कुजरहिते सति लग्नस्य सुखे चतुर्थे
पापराहिते सति । सौमरिस्तु तेषां छिद्रे विकुज इति । तत्र निरुपाधिद्वितीयादिशुद्धौ लग्न-
स्यैव द्वितीयादिवाचको नान्यस्योति । तथाच सारावल्याम् “होराष्टमे क्षितिमुते त्रिपते
गर्भे, सहजनस्येति” ॥ सद्युक्तेष्विति । लग्नस्य त्रिकोणे नवपञ्चमे केन्द्रे चन्द्रे च शुभग्रह
युक्त इत्यर्थः । अत्र च सौमरिणासङ्ख्येयविति षाठ कृत्वा सङ्ख्येषु चानुपहतलग्नेषु त्रिको-
णकण्टकस्थेषु चन्द्रेष्विति व्याख्यातम् । एष च इन्द्राक्षनाभ्यासनप्रमादः । यतो राज-
मार्त्तण्डे “केन्द्रत्रिकोणेषु शुभस्थितेषु लग्ने शशाङ्के च शुभे समेते । पापैस्त्रिणामारि-
गति प्रयापात्पुनन्मयोगेषु च सम्प्रयोगम् ॥” तथा ब्रह्मजातवे—“शशाङ्कलग्नोपगते शुभ-
ग्रहेस्त्रिकोणजायार्थसुखास्पदस्थिते । तृतीयलग्नारिगतिश्च पापे, सुखी च गर्भो रविणा
निरक्षितः ॥” इति । तथा पापग्रहे लग्नस्यायत्रिपष्टगते माते युग्मरात्रौ यया मनुः
“अनु स्त्रामाविकः स्त्रीणां रात्रय षोडश स्मृता । तासामावाध्वनस्तु निन्दितेकादशी
च या । त्रयोदशी च तेषां स्थुः प्रशस्ता दश रात्रयः । युग्मासु पुनः जायन्ते त्रिषोड-
शुग्मासु रात्रिषु ॥” तथा “पर्ववर्गे व्रजेजेना तद्वती रतिकाम्यया ” इति । गण्डसम-
वर्जयित्वा पुशुद्धितः पुसश्चन्द्रशुद्ध्या सङ्गमः कार्य इत्यर्थः । तथा सारावल्याम्—“उप-
पयमवने शशमृद्वष्टो गुरुणा सुहृद्भिरयवाती । पुसां कगेति योग विशेषतः शुक्र
सदृष्टः ॥ ” इति ।

अथ गण्डपादवर्जनम् ।

मूलमघाश्विनीनामाद्यं ज्येष्ठान्त्यसार्पाणाम् ।

अन्त्यं गण्डपदं त्यक्त्वा षोडशाहे ऋतौ व्रजेत् ॥ ७४ ॥

अर्थ-अब गण्डनक्षत्रको कहते हैं । मूल, मघा और आश्विनीके प्रथम चरणको और ज्येष्ठा, रेवती और आश्लेषाके चतुर्थचरणको गण्डनक्षत्र कहते हैं । गण्डनक्षत्र त्यागकरके सोलह रात्रियोंके मध्यमें गर्भाधान करे ॥ ७४ ॥

अशक्तौ तु भुजबलमाह ।

अन्त्यं पौष्णेन्द्रसर्पाणामाद्यं पित्रश्विमूलगम् ।

गण्डं दण्डत्रयं रूपातं सर्वकार्येषु गर्हितम् ॥ ७५ ॥

इति भीमपगक्रमे ।

अर्थ-अशक्त विषयमें भुजबल कहते हैं, भीमपराक्रममें लिखा है कि, रेवती, ज्येष्ठा और आश्लेषाके अन्त्य (शेष) तीन दण्ड और मघा आश्विनी और मूलके आद्य (प्रथम) तीन दण्डको गण्डनक्षत्र कहते हैं, इनको समस्त कार्यमें ही परित्याग करना चाहिये ॥ ७५ ॥

अथ फलबन्धनम् ।

रोहिण्यन्तकचित्राहिविशाखशतवर्जिते ।

भे पुंयहाहे स्त्रीशुद्धया फलबन्धनमिष्यते ॥ ७६ ॥ (*)

अर्थ-स्त्रियोंके प्रथम रजोदर्शन होनेसे ऋतुस्नानके बाद फलबन्धन करना चाहिये अब उसका शुभ दिन वर्णन करते हैं । रोहिणी, भरणी, चित्रा, आश्लेषा, विशाखा और शतभिषा इन समस्त नक्षत्रोंको छोड़के अन्य नक्षत्रोंमें मङ्गल रावि और बृहस्पति वागमें स्त्रियोंके चन्द्रताराशुद्धि होनेसे प्रथम ऋतुस्नानके बाद फलबन्धन करे ॥ ७६ ॥

पुमान्विशतिवर्षश्चेत्पूर्णषोडशवर्षया ।

स्त्रिया संगच्छते गर्भाशये शुद्धे रजस्पपि ।

अपत्यं जायते भद्रं ततोऽन्येऽधमं स्मृतम् ॥ ७७ ॥

अर्थ-तीस वर्षका पुरुष यदि सोलह वर्षकी स्त्रीके साथ सम्भोग करे और

(*) प्रथम ऋतौ रजमि चोपगते ऋतुस्नानान्तरं फलबन्धनं क्रियते । तद्विधिमाह-रोहिणीति । रोहिण्यादेवर्जिते नक्षत्रे पुंयहस्याहानि वारे रविशुभगुरुयोगे स्त्रीशुद्धयः स्त्रीणां चन्द्रताराशुद्धया फलबन्धनमिष्यते । ऋतुस्नानान्तु चतुर्थदिने पुष्पादिभिः कार्यं यथा राजमार्तण्डे-“शुभसौमन्यविबृद्धावेलाचम्पयमुन्नचन्दनोपेतैः । सत्फलनीफलपुष्पैः पुष्पेषु निशात्रये स्नायात् ॥” इति ।

स्त्रीके गर्भाशयमें वा श्रोणितमें कोई दोष न होय तो उत्तम सन्तान उत्पन्न होती है, इसके इतर विशेष होनेसे अधम सन्तान उत्पन्न होती है ॥ ७७ ॥

अथ षोडशवर्षीयागर्भिणीचिन्ता ।

प्रसूता षोडशे वर्षे तत्र या धृतगर्भिका ।

मृत्युस्तस्याः सपुत्रायाः पितृश्चापि च सम्मतः ॥ ७८ ॥

अर्थ—जो नारी सोलह वर्षकी आयुमें प्रसव करे वा गर्भधारण करे, तो उसकी पुत्रके साथ मृत्यु होती है, और इस पुत्रके पिताकोभी मृत्यु होजाती है ॥ ७८ ॥

अथ पुंसवनम् ।

कुर्यात्पुंसवनं सुयोगकरणे नन्दे सभद्रे तिर्यो

भाद्रापाठनृभेश्वरेषु नृदिने वेधं विनेन्दौ शुभे ।

अक्षीणश्च त्रिकोणकण्टकगते सौम्येऽशुभे वृद्धिषु

स्त्रीशुद्ध्या घटगुग्मसूर्यगुरुभेषूद्यत्सु मासत्रये ॥ ७९ ॥ (६३)

अर्थ—अब पुंसवन कहते हैं । गर्भाधानके दिनसे गिनकर तीसरे मासमें, शुभ-योगमें और शुभकरणमें, प्रतिपदा, एकादशी, पक्षी, द्वितीया, द्वादशी और सप्तमी तिथिमें पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिर, पुष्य और आर्द्रा नक्षत्रमें; गवि, मङ्गल और बृहस्पतिवारमें, यामित्रवेध, द्युतिवेध और दशयोगभङ्ग न होनेसे शुभ चन्द्रमें, और पूर्ण चन्द्रमें, लग्नके त्रिकोण स्थानमें और केन्द्रस्थानमें शुभ ग्रह होवें और तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें अशुभ ग्रह होनेसे स्त्रीके चन्द्रतारा शुद्धि होनेसे कुम्भ, मिथुन, सिंह, धन और मीन लग्नमें पुंसवन करना चाहिये ॥ ७९ ॥

(•) पुंसवनमाह—कुर्यादिति । शोभनयोगे शोभनकरणे च नैन्दाभद्रातथा तथा च “नन्दा भद्रा भवेत्पुंसि स्त्रियां पूर्णा तथा जया । रिक्ता नपुंसकस्य स्यात्तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ” भाद्रपदाद्वये आपाठद्वये नृभे पुत्रागमणे हस्तमूलश्रवणपुनर्वसुमृगशिरः-पुष्येषु ईश्वरे आर्द्रायाञ्च नृदिने पुष्यह्वारे रविकुजगुरुवारे अक्षीणे पूर्णे चन्द्रे वेधं यामित्रवेध दशयोगभङ्गवेधश्च विना शुभे गोचरशुद्धे सति लग्नात् केन्द्रत्रिकोणस्थे शुभग्रहे पापग्रहे च वृद्धिगे उगचयस्थे स्त्रीशुद्ध्या स्त्रीणां चन्द्रताराशुद्धौ । तथा च ग्रन्थान्तरे “स्त्रीणां सर्वद्विपारम्भे मत्तुगोचरशुद्धितः । यात्रापुसवनोद्वाहे विशुद्धियोपितः सदा ॥ इति । कुम्भमिथुनसिंहधनुर्मीनलग्नेषु मासत्रये पुंसवनं कुर्यात् । एतापमासऽशक्तां पष्ठाष्टमासेऽपि कार्यम् । तथाच “मासे पष्टेऽष्टमे वापि शुद्ध्या चन्द्रमसः सदा । अरिक्तायां तिर्यो शुद्धे वेधे पुसवनं हितम् ॥ ” एतत्प्रतिगमं कर्तव्यम् । यथा राजमासकण्डे—“ प्राग् एतापमासे स्फुरदिन्दुङ्गलाकलापपक्षे च । पुंसवनं पुत्रेच्छागर्भेण प्रकुर्वीत ॥ ” इति ।

अथ पञ्चामृतम् ।

रेवत्यश्विपुनर्वसुद्वयमरुन्मूलानुराधामघा

हस्ताद्युत्तरफाल्गुनेषु च भृगो जीवाकंवारे तथा ।

लग्ने चोभयशुद्धिगे सुनियतं संत्यज्य रिक्तां तिथि (१)

देयं मासि तु पञ्चमे शुभदिने पञ्चामृतं योपिताम् ॥८०॥ (२)

अर्थ—अब पञ्चामृतका शुभ दिन कहते हैं । रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, स्वाति, मूल, अनुराधा, मघा, हस्त और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें शुक्र, बृहस्पति और गवितारमं शुभलग्ने स्त्री और पुरुषके चन्द्र तारा शुद्ध होनेसे रिक्ताभिन्न तिथिमें गर्भवाग्ण करनेसे पाचव मासके शुभ दिनमें स्त्रियोंको पञ्चामृतपान करना चाहिये ॥ ८० ॥

अन्यथा ।

पञ्चामृतं पञ्चममास एव अजद्वये चाम्बुनि पत्रपट्के ।

विरश्चिपञ्चान्त्यचतुष्टयेषु शुक्रारसूयैन्दुदिने शुभेन्द्रा ॥८१॥ (३)

अर्थ—वचनान्तरमें पञ्चामृतके विषयमें कहा है कि, गर्मांशानके दिनसे पाचव माहिनेमें शुक्र, मंगल, गवि और सोमवाग्मं, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, पूर्वा-पादा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी हस्त, चित्रा, स्वाति, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अश्विनी, भगणी और कृत्तिका नक्षत्रमें चन्द्रशुद्धि होनेसे स्त्रियोंको पञ्चामृत पिलाना चाहिये ॥ ८१ ॥

अथ धटी (चीरबख) दानम् । (४)

मघाष्टकेऽम्बुत्रितयेऽदितिद्वये पाष्णद्वये धातुयुगे गुरुद्वये । मासे

च पष्टे च चतुष्टये स्त्रियां शुद्ध्या ज्ञमन्दाहवर्द्धिर्धटी शुभा ८२ ॥ (४)

अर्थ—अब धटीदान कहते हैं । मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त,

(१) लग्नक्षौद्रपशोभनेषु ज्ञान पाठान्तरम् । (२) मुत्ररणे इति पाठान्तरम् ।

(३) पञ्चमे मासि गर्भदोहद्वयं पञ्चामृत दीयते तस्य विप्रिमाह—रेवत्यश्विनी । रेवत्यादिनक्षत्रेषु शुक्रगुरुविगमे शुभे लग्ने उपचयशुद्धिगे पुस्त्रीशुद्धिगे च रिक्तां तिथि त्यक्त्वा शुभदिने पञ्चममासे योपितां पञ्चामृत देयम् । याज्ञवल्क्य “ दोहद्वयप्रदानेन गर्भो दोषमनाश्रयात् । वैरूप्य मरण नापि तस्मात्तार्यं प्रिय स्त्रियाः ॥ ” पञ्चामृतमुक्तं यथा “ दुग्धं मशरंश्चैव घृतं क्षीरं तथा मधु । पञ्चामृतमिदं प्रोक्तं विधेयं सर्वरुमेसु ॥ इति ।

(४) प्राचीनसमूहकृद्भिरिहिरित्वादप्रमाणमिति लक्ष्यते ।

(५) पष्टे मासि गर्भक्षयं ग्रन्थियक्तं हृग्दिनात् नखाच्च धर्मासत्तत्र नार्हद्वेजे निरुध्यते तस्य विप्रिमाह—मघाष्टक इति । मघाष्टकप्रत्यये पूर्वापादादि त्रितये पुनर्वसुपुष्ययोः रेवत्य-

चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अश्विनी, रोहिणी और मृगशिरानक्षत्रमें, धन और मीन लग्नमें, पांचवें वा छठे महीनेके गर्भसमय स्त्रियोंके चन्द्रतारादि शुद्धि होनेसे बुध और शनि भिन्न वारमें गर्भकी रक्षाके निमित्त हरिद्राक्तग्रन्थिपुक्त वस्त्राञ्चल स्त्रियोंके कटिदेशमें बांधना चाहिये उक्त वस्त्राञ्चलकोही घटी कहते हैं ॥ ८२ ॥

अथ सीमन्तोन्नयनम् ।

पष्ठे मास्यष्टमेऽह्नीज्यकुजदिनकृतां नन्दभद्रे तिथौ च

मैत्रे मूले मृगाङ्के करपितृपवने पौष्णविष्णुत्रिगुम्भे । (१)

तिष्याश्व्यादित्यरौद्रे युवातिहारिद्वये वृश्चिके वापि लग्ने

चन्द्रे ताराऽनुकूले शुभमपि नियतं स्याच्च सीमन्तकर्म ॥ ८३ ॥

अर्थ—अथ सीमन्तोन्नयनका सुहृत् कहते हैं । गर्भाधानसे छठे वा आठवें महीनेमें बृहस्पति, मङ्गल और रविवारमें, प्रतिपदा, एकादशी, पष्ठी, द्वितीया, द्वादशी और सप्तमी तिथिमें; अनुराधा, मूल, मृगशिर, हस्त, मघा, स्वाति, रेवती, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य, अश्विनी, पुनर्वसु और आर्द्रा नक्षत्रमें, कन्या, सिंह, मीन और वृश्चिक लग्नमें, चन्द्र तारा शुद्ध होनेसे सीमन्तोन्नयन करना चाहिये ॥ ८३ ॥

अन्यच्च ।

मृगाजरहिते लग्ने नवांशे पुंयहस्य च ।

केचिद्वदन्ति सीमन्तं तथा रिक्ततरे तिथौ ॥ ८४ ॥

अर्थ—कोई २ पंडितोंने कहा है कि, मकर और मेषभिन्न लग्नमें, रवि, मङ्गल और बृहस्पतिवारके नवांशोंमें, रिक्ताभिन्न तिथियोंमें गर्भवती स्त्रियोंका सीमन्तोन्नयन करना चाहिये ॥ ८४ ॥

अपरञ्च ।

(२) मासेशे प्रवले शुभेक्षितविधौ मासे च पष्ठेऽष्टमे

--रिक्तयो रोहिणीमृगशिरसौ" गुरुद्वये धनुर्मीनलग्नेपष्ठे-चतुष्टये मासे त्रिष्याश्वन्द्रताराशु-
क्लना उपश्रितवार त्यक्त्वा जघ्नीदानकर्म शुभमित्यर्थः । इति ।

(१) त्रिगुम्भे फाल्गुनीद्वये आषाढद्वये भाद्रपदद्वये चेत्यर्थः ।

(२) मासाधिपास्तु मिनरुजगुरुविशिशिनिसीम्पलग्नपशुशुनाःनिपेकदिवसावधि
माम गृहीत्वा मामाधिषा गणनीयाः ।

भेत्ते पुंसवनोदितक्षसहिते रिक्ताविहनि तिथौ ।

सीमन्तोन्नयनं मृगाजरहिते लग्ने नरांशोदये

योज्यं पुंसवनोदितं यदपरं तत्सर्वमत्रापि च ॥ ८५ ॥ (३)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-मासाधिपति (महीनोंके मालिक) ग्रहोंके बलवान् होनेसे; चन्द्रपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे, छठे वा आठवें महीनेमें अनुराधा और पुंसवनोदित नक्षत्रोंमें रिक्ताभिन्न तिथिमें, मकर और मेषाभिन्न लग्नमें, मिथुन, तुला, कुम्भ और कन्या लग्नके नवांशोंमें, पुंसवनोक्त वारादिमें स्त्रियोंका सीमन्तोन्नयन करना चाहिये ॥ ८५ ॥

अथ जातकप्रकरणम् ।

तत्रादौ लग्नमानम् ।

वेदोऽंगोः ४ । ७ खसुतेयुगो ४ । ५० ग्रहभुजैर्वाणो ५ । २९
ऽश्विवेदैः ५ शरो ४३ बाणो वह्निगुणैः ५ । ३३ शरो ग्रहभुजैः
५ । २९ शूलानलैः सायकः ५ । ३७ ॥ बाणः शून्यकृतैः ५ ।
४ शरोऽग्नशशिभिः ५ । १७ बह्व्यग्निभिर्वेदको ४ । ३३
वह्निः सप्तशरैः ३ । ५७ गुणे नगकृतैः ३ । ४७ मेषादिमानं
सताम् ॥ ८६ ॥

अर्थ-अब मेषादि लग्नका मान कहते हैं, मेषलग्नका मान ४ । ७ । चार दण्ड सात पल होता है, इसी प्रकार वृषका मान ४ । ५० चार दण्ड पचाश पल, मिथुनका मान ५ । २९ । पांच घड़ी उन्तीस पल, कर्कका मान ५ । ४१ पांच घड़ी इकतालिस पल, सिंहका मान ५ । ३३ पांच घड़ी तेतिस पल, कन्याका मान ५ । २९ पांच घड़ी अन्तिस पल, तुलाका मान ५ । ३७ पांच घड़ी सैतीसपल,

(३) मासेश इति । गर्भमासाधिपः पूर्वाक्तः तस्मिन्प्रबले शुभदृष्टे चन्द्रे पष्ठेऽष्टमे वा मासे पुंसवनोक्तनक्षत्रे अनुराधायाश्च रिक्तान्यतिथौ मकरमेष्वातिरिक्ते लग्ने नरांशोदये नरांशोमिथुनतुलापटक्न्याशशेनवांशे सीमन्तोन्नयनं कार्यमित्यर्थः । यथा राजमार्तण्डे-
“ मासे पष्ठेऽष्टमे वा बलिनि तदधिपे शीतगी चेष्टदृष्टे पुत्रामक्षोपयाने नरभवननवांशो-
दये कामिनीनाम् । कार्यं सीमन्तकर्म विदशपानिशुरो केन्द्रगे कोणगे वा क्रूरः केन्द्रात्रि-
कोणव्ययानिधनवाहिर्गर्भमुष्टिं करोति ॥ ” यदपरं पुंसवनोदितं पुग्रहवारादि तत्सर्वं सीम-
न्तोन्नयने कार्यमित्यर्थः । एतच्च प्रथमगर्भे एव कार्यं नान्यत्र । यथा “ सकृत्सकृत्
संस्काराः सीमन्तेन द्विजस्त्रियः । य य गर्भं प्रसूयन्ते स गर्भः शुद्धिमर्हति ॥ ” देवाद-
नरणे सपुत्रापि सत्कर्त्तव्या । यथा राजमार्तण्डे “ नारी याऽकुनसीमन्ता प्रसवेच्च
कदाचन । क्रौडे निषाय तत्पुत्र पुनः सस्फारमर्हति ॥ ” इति ।

चुश्चिकका मान ५ । ४० पांच घड़ी चालीस पल, धनका मान ५ । १७ पांच घड़ी मन्त्रहपल, मकरका मान ४ । ३३ चार घड़ी तेतिस पल, कुम्भका मान ३ । ५७ तीन घड़ी सत्तावन पल और मीनलग्नका परिमाण ३ । ४७ तीन घड़ी सैंतालिस पल होता है ॥ ८६ ॥

अथ प्रसूतिज्ञानम् ।

सुप्रसूतिर्भवेच्चन्द्रे शुभग्रहयुतेक्षिते ।

दुर्ग्रहेक्षितयुक्ते च प्रसूतिर्दुःखभागिनी ॥ ८७ ॥

अर्थ—अब जातकप्रकरण कहते हैं । उत्पन्न हुए मनुष्यके फलाफल जाननेके पूर्व उसकी माताके प्रसवसमयकी अवस्था जाननी चाहिये, अतएव उसको कहते हैं, यथा, चन्द्र शुभग्रहयुक्त होय वा उसपर शुभग्रहकी दृष्टि होनेसे गर्भिणी सुखसे प्रसव करती है और यदि चन्द्रपर पापग्रहकी दृष्टि होय वा पापग्रहके साथ होय तो गर्भिणी खी अत्यन्त कष्टसे प्रसव करती है ऐसा जानना चाहिये ॥ ८७ ॥

अथ लग्नज्ञानम् ।

यस्मिन्नक्षत्रे वसेद्भानुस्तदेव सप्तमेऽपि वा ।

यावद्विप्रहरं पश्चाद्दिवा द्वादशभिः पुनः ॥ ८८ ॥

ऊनविंशतिभे रात्रौ यावद्यामो वसेद्वयम् ।

चतुर्विंशतिभे पश्चाज्जातलग्नमुदाहृतम् ॥ ८९ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—अब बालकके उत्पन्न होनेकी लग्न कही जाती है यथा,—सूर्य जिस जिस नक्षत्रमें स्थित होय अथवा उसका सातवां नक्षत्र जिस घरमें होय तो उसी स्थानमें लग्न होती है, यह नियम दोप्रहर दिनके मध्यमें जानना चाहिये । दो प्रहरके बाद सायंतक सूर्यके नक्षत्रमें बारहवां नक्षत्र जिस घरमें होय उसी घरमें लग्न होती है । इसी प्रकार अर्द्धरात्रिके मध्यमें सूर्यके नक्षत्रसे उन्नोसवें नक्षत्रमें लग्न होती है और ओष अर्द्ध रात्रिके मध्यमें सूर्यके नक्षत्रसे चौबीसवें नक्षत्रमें लग्न होती है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अन्यत्र ।

यस्मिन्नक्षत्रे वसेद्भानुस्तदादिसप्तऋषके ।

द्वादशे सप्तदशे चैव तथैव पञ्चविंशतौ ॥ ९० ॥

पूर्वापरालयोगेन दिने रात्रौ यथाक्रमात् ॥ ९१ ॥

अर्थ—अब वचनान्तर्गी रीतिमें लग्ननिर्णय करते हैं । मनुष्यके जन्मसमय

सूर्य जिस नक्षत्रमें होय तिसको आदि ले सातवें, बारहवें और सत्रहवें, तथा पचीसवें नक्षत्रमें दिनके समय पूर्वाह्न पश्चात् योगसे, रात्रिसमय पूर्वरात्रि यथाक्रमसे पूर्वोक्तनक्षत्रोंकी लग्न तात्कालिक लग्न होती है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

अपरश्च ।

चन्द्रे वा सप्तमे वापि ह्युभयत्रिकोणेऽपि वा ।

जातलग्नं न सन्देह इति ज्योतिर्विदो विदुः ॥ ९२ ॥

अर्थ—अन्य प्रकार कहते हैं । चन्द्रमा जिस राशिमें हो वह राशि वा चन्द्र-
माने सप्तम राशि, अथवा इन दोनोंसे ५ । ९ राशि निस्पन्देह जातलग्न होती है
यह ज्योतिर्विद पंडितोंने कहा है ॥ ९२ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

चन्द्रो राश्यधिपो वापि यत्र तत्सप्तमेऽपि वा

एषां त्रिकोणके वापि जातलग्नमुदाहृतम् ॥ ९३ ॥ (१)

अर्थ—अब अन्य प्रकारसे कहते हैं । चन्द्रमाकी राशि वा चन्द्रराशि जिस
राशिपर हो अथवा उनसे सातवीं राशि यद्वा इनके त्रिकोण ५ । ९ स्थानमें जो
राशि हो वह जन्मलग्न निश्चय जानना ॥ ९३ ॥

अपि च ।

मेपेकुलीरतुलाविधे प्रागुत्तरतो गुरुसौम्यगृहेषु ।

पश्चिमतश्च वृषेण निवासो दक्षिणभागकरौ मृगसिंहौ ॥ ९४ ॥

इति बृहज्जातके ।

अर्थ—बृहज्जातकमें लिखा है कि, मेप, कर्क, तुला, धृश्चिक और कुम्भ लग्नमें
उत्पन्न होनेसे गर्भिणीका घर पूर्व दिशामें वा उत्तर दिशामें होता है, धन, मीन,
मिथुन वा कन्या लग्नमें उत्पन्न होनेसे गर्भिणीका घर पश्चिमदिशामें जाने और
वृष, मकर और सिंह लग्नमें उत्पन्न होनेसे गर्भिणीका घर दक्षिण दिशामें जानना
चाहिये ॥ ९४ ॥

अथ गृहस्वरूपमाह ।

जीर्णं संस्कृतमर्कजे क्षितिमुने दग्धं नवं शीतगौ

काष्ठाढ्यं न दृढं रवौ शशिसुते चानेकाशिल्पोद्भवम् ।

(१) “ चन्द्रराश्यधिपतिर्यत्र तत्रिकोणमथापि वा । तत्सप्तमे तृतीये वा जातलग्न
तदेव हि ॥ ” प्रथमचरणे मन्त्रराश्यधिपतिर्यत्रोति पाठान्तरमिति ग्रन्थान्तरे ।

रम्यं चित्रयुतं नवञ्च भृगुजे जीवे दृढं मान्दिरं

चक्रस्थैश्च यथोपदेशरचनां सामन्तपूर्वां वदेत् ॥ ९५ ॥

अर्थ—जन्मसमय सूर्य बलवान् होनेसे जीर्णसंस्कृत घरमें प्रसव होता है, इसी प्रकार मङ्गल होनेसे दग्ध घरमें, चन्द्र होनेसे नवीन घरमें, रवि होनेसे भग्नकाष्ठके घरमें बुध होनेसे बहुशिल्पकार्यान्वित घरमें, शुक्र होनेसे मनोहर चित्रयुक्त नवीन घरमें और बृहस्पति जन्मसमयमें बलवान् होनेसे सुदृढ (मजबूत) घरमें प्रसव होता है फलितार्थ यह है कि, चक्रमें स्थित ग्रहोंके बलसेही प्रसव होनेका घर निश्चय किया जाता है ॥ ९५ ॥

अन्यञ्च ।

मेघे चापमृगेन्द्रयोः किल शिशुः प्राचीशिरा जायते

गोकन्यामकरेषु दक्षिणशिरा जातो भवेन्निश्चितम् ।

मीने वृश्चिककर्कणोर्यदि तदा कौवेरमूर्द्धा भवेत्

कुम्भक्षे घटयुग्मोर्यदि तदा पाश्चात्यमूर्द्धा यतः ॥ ९६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अब बालकके मस्तक पतनसे लग्न निर्णय करते हैं । मेघ, धन और सिंह लग्नमें प्रसव होनेसे उत्त बालकका मस्तक पूर्व दिशामें होता है, इसी प्रकार वृष, कन्या और मकर लग्नमें उत्पन्न होनेसे दक्षिणदिशामें, मीन, वृश्चिक और कर्क लग्नमें उत्पन्न होनेसे उत्तर दिशामें और कुम्भ, तुला और मिथुन लग्नमें उत्पन्न होनेसे बालकका शिर पश्चिम दिशामें होता है ॥ ९६ ॥

अपरञ्च ।

द्वारं वास्तुनि केन्द्रोपगाद्गृहादसति वा विलग्नक्षात् ।

दीपोऽर्कादुदयाद्वर्तिरिन्दुतः स्नेहनिर्देशः ॥ ९७ ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—बालकके जन्मसमय केन्द्रस्थानमें जो ग्रह होय वह ग्रह जिस दिशाका

(क) जन्मकालसप्रत्ययार्थं वास्तुद्वारादिज्ञानमाह—द्वारमिति । वास्तुनि वास्तुविषये द्वारं निर्गमवर्त्म केन्द्रगतग्रहात् ज्ञातव्यं केन्द्रे यो ग्रहः तादृशी निर्गमवर्त्मत्यर्थः । बहुषु सप्तु बलिनो ग्रहस्य एवं द्वयोर्बलवशात् द्वे अपि निर्गमवर्त्मनी ज्ञातव्ये केन्द्रे ग्रहे त्वसति सति लग्नक्षेदशीत्यर्थः । एव यस्मिन्गृहे जन्म तस्य द्वार चोद्भव्यम् । अर्कादीपो ज्ञातव्यः यदि लग्ने रविः स्थितस्तस्यां दिशि आदित्याद्दृष्ट्यराशोर्दिशि सञ्चार्यमाणो दीपः वाच्यः । यदि आदित्याद्दृष्ट्यराशोर्दिशि तदा स्थिरो दीपो वाच्यः । आदित्याद्दृष्ट्या-
स्मकराशोर्दिशि चालेनः दीपः स्थिरश्च वाच्यः । तथाच बृहज्जातके “ स्नेहः शशाङ्क-

स्वामी होय उसी दिशामें गर्भिणी स्त्रीके घरका द्वार होता है यदि (ख) केंद्र-स्थानमें अनेक ग्रह होंय तब उनमेंसे जो ग्रह अधिक बलवान् होय उसकी दिशामें ही गर्भिणी स्त्रीके घरका द्वार होता है । यदि दो ग्रह समान बलके हों तब गर्भिणी स्त्रीकी घरके दो द्वार होतेहैं । और केन्द्रके स्थानमें यदि ग्रह न होंय तो जन्मलग्न जिस दिशाकी मालिक होतीहै उसी दिशामें गर्भिणी स्त्रीके घरका द्वार जानना चाहिये । सूर्यकी राशिसे दीपज्ञान होताहै अर्थात् सूर्य यदि किसी चर राशिमें स्थित हो तो उसी राशिकी दिशा अनुसार उसी दिशामें दीपक चालित होताहै । और सूर्य यदि किसी स्थिर राशिमें स्थित होय तब उसी राशिकी दिशानुसार दीपक स्थिरभावसे रहताहै । सूर्य यदि द्वाचात्मक राशिमें होय तो उसी राशिकी दिशानुसार दीपक सञ्चालित और स्थिरभावसे रहताहै लग्नके भोगानुसार दीपककी बत्ती जाननी चाहिये अर्थात् लग्नके जितने परिमित अंशोंका भोग हो उतनेही परिमित दीपककी बत्ती जलती है । दीपकका स्नेह अर्थात् तैल घृतादि चन्द्रमाकी क्षीणता और पूर्णतासे जाना जाता है ॥ ९७ ॥

अथ दीपस्थितिज्ञानम् ।

द्वादशभागे विभक्ते वासगृहे व्यवस्थिते सहस्रांशौ ।

दीपश्चरस्थिरादिषु तथैव वाच्यः प्रसवकाले ॥ ९८ ॥

अर्थ-गर्भिणीके घरको द्वादश (१२) भागमें विभक्त करके चरस्थिर और द्वाचात्मक राशिके मध्यमें जिस किसी राशिमें प्रसवसमय सूर्य ग्रह स्थित होय और उस राशिका स्वामी जो ग्रह होय तो उसी दिशामेंही दीपक सञ्चालित होताहै ॥ ९८ ॥

अथ वर्तिज्ञानम् ।

लग्नस्य यस्तु वर्णोऽपि निर्दिष्टस्तेन वर्तिरादेश्या ।

लग्नस्योदिताद्भागात्क्षीणो ज्ञेयो दशाभागः ॥ ९९ ॥

अर्थ-लग्नका जो वर्ण कहाहै उस वर्णके अनुसारही बत्तीका वर्ण होता है ।

“उदयाच्च वर्तिर्दीपोऽर्कयुक्तर्क्षवशाच्चराद्यैः” इति । तथार्कस्य बलाबलादीपस्य उज्ज्वला-
नुज्ज्वलत्व वदेदित्यर्थः । तथा उदयाद्वर्तिर्ज्ञेया लग्नभोगवशेन वर्तेर्द्दग्धता वाच्या तथा
चन्द्रात्स्नेहानिर्देशः तैल वाच्य चन्द्रस्य क्षीणत्वपूर्णत्वाभ्यांतैलस्यानल्पाल्पत्वं ज्ञातव्यम् ।
अन्येषु चन्द्रस्यारूढराशेर्भोगात्स्नेहो वाच्य इति वदन्ति तदयुक्तम् । तथाच सारावल्याम्-
“ यावल्लग्नमुदितं वा वर्तिर्द्दग्धा तु तावती भवति । दीपः पूर्णः पूर्णं शशिनि क्षीणे
क्षयस्तु तैलस्य ॥ ” इति ।

(ख) लग्न और लग्नसे चौथे, सातवें स्थानको केन्द्र कहते हैं ।

और जन्मसमयमें लग्नके जितने अंश भुक्त होजातेहैं वहीके भी उतने अंश जल-
जातेहैं ॥ ९९ ॥

अथ तैलज्ञानम् ।

इन्दोर्भागवशाद्राशेर्दीपे तैलस्य संस्थितिः ।

केचित्पूर्णादिभेदेन वदन्त्येवं मनीषिणः ॥ १०० ॥

अर्थ-प्रसवसमयमें राशिके जितने अंश भुक्त होकर चन्द्रके बाकी रहते हैं
दीपकमें भी उतने अंश तेल जलकर बाकी रहता है- कोई २ पंडित कहते हैं कि,
चन्द्रके पूर्णादि भेदभाग दीपकमें तेलकी स्थिति जानी जातीहै ॥ १०० ॥

अथ पङ्क्तिनिर्णयः ।

तत्रादौ क्षेत्रकथनम् ।

कुजशुक्रबुधेन्द्रर्कसौम्यशुक्रावनभिषाम् ।

जीवाकिराविजेज्यानां क्षेत्राणि स्युरजादयः ॥ १ ॥

अर्थ-अब क्षेत्र और क्षेत्रोंके स्वामी ग्रहोंको कीर्तन करते हैं । मङ्गल, शुक्र,
बुध, रवि, बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति शनि शनि, बृहस्पति यही क्रमानुसार
मेपादि द्वादश राशियोंके क्षेत्राधिपति होते हैं । अर्थात् मेपादि द्वादशराशि
उक्त ग्रहोंके क्षेत्र (स्थान) हैं, यथा-मङ्गलका क्षेत्र मेष, शुक्रका वृष,
बुधका मिथुन, चन्द्रका कर्क, सूर्यका सिंह, बुधका कन्या, शुक्रका
तुला, मङ्गलका वृश्चिक, बृहस्पतिका धन शनिका मकर, शनिका कुम्भ
और बृहस्पतिका क्षेत्र मीनराशि होती है ॥ १ ॥

अथ होगकथनम् ।

होरे विषमेऽर्केन्द्रोः समराशौ चन्द्रसूर्ययोः ॥ २ ॥ (×)

अर्थ-अप होरा कहते हैं । राशिके (लग्नके) अर्द्धभागका नाम होरा है । विषम
राशिका प्रथम होरा सूर्यकेभी द्वितीय होरा चन्द्रका होता है और समराशिमें
प्रथम होरा चन्द्रकेभी द्वितीय होरा सूर्यका होता है ॥ २ ॥

अपिच ।

ओजःसु रवेः प्रथमा परा हिमांशोः

समे विपरीता इति सत्याचार्यः ॥ ३ ॥

अर्थ-सत्याचार्यने कहा है कि, ओज (विषम) राशिका प्रथम होरा सूर्यके
(×) होरा राश्यर्द्ध द्विपञ्चनिर्दिष्टात् ।

मी द्वितीय होरा चन्द्रका होता है । और सम राशिमें इसके विपरीत अर्थात् प्रथम प्रथम होरा चन्द्रका द्वितीय द्वितीय होरा सूर्यका होता है ॥ ३ ॥

फलम् ।

**सूर्यस्य होरायां तेजस्विनो भवन्ति
चन्द्रस्य होरायां मृद्वो भवन्ति ॥ ४ ॥**

इति होराफलम् ।

अर्थ—सूर्यके होगमें उत्पन्न होनेसे मनुष्य तेजस्वी होता है और चन्द्रके होगमें उत्पन्न होनेसे मनुष्य मृदु (कोमल) होता है ॥ ४ ॥

अथ द्रेकाणकथनम् ।

द्रेकाणाः प्रथमपञ्चनवपानाम् ॥ ५ ॥ (१)

अर्थ—अब द्रेकाण कहते हैं । लग्नको तीन अंशमें विभक्त करनेसे उसके एक २ भागका नाम द्रेकाण कहा है । प्रथम द्रेकाणका स्वामी लग्नाधिपति ग्रह होता है, दूसरे द्रेकाणका स्वामी लग्नसे पांचवें राशिका मालिक ग्रह होता है और तीसरे द्रेकाणका स्वामी ग्रहके नववें राशिका मालिक ग्रह होता है ॥ ५ ॥

आपिच ।

**राशोस्त्रिधा द्रेकाणास्तत्पञ्चमनवमभवनपतयस्तु ।
तेषामधिपाः स्वद्रेकाणग्रहा वलिनः ॥ ६ ॥**

इति सत्याचार्यः ।

अर्थ—सत्याचार्यने कहा है कि, राशिको (लग्नको) तीन भागमें विभक्त करनेसे प्रथम द्रेकाण लग्नके स्वामी ग्रहका होता है दूसरा द्रेकाण लग्नसे पांचवें राशिके मालिक ग्रहका होता है और तीसरा द्रेकाण नववें राशिके स्वामी ग्रहका होता है, किन्तु इनके मध्यमें अपने द्रेकाणका स्वामी ग्रहही चलवान् होता है ॥ ६ ॥

अन्यच्च ।

मीनकुम्भधनुर्मेषमृगकर्क द्वितीयके ।

वृषे द्वन्द्वे च भूतसंख्ये कन्याद्यन्तौ भवेत्क्रमात् ॥ ७ ॥

वृश्चिके प्रथमे मध्ये द्रेकाणे कन्यका भवेत् ।

अन्यस्मिन्पुरुषो जातो द्रेकाणे मुनिनोदितः ॥ ८ ॥

अर्थ—लग्नके द्रेकाणविशेषमें पुरुष और कन्याके जन्म कहते हैं । मीन, कुम्भ,

(१) द्रेकाणा इति स्वग्रहस्थितराशिभिभाग्य द्रेकाणमज्ञा बहुवचननिर्देशात् तदधिपनिर्देशाच्च ।

धन, मेष, मकर और कर्क लग्नके दूसरे द्रेक्षाणमें वृष, और मिथुन लग्नके प्रथम द्रेक्षाणमें, कन्या लग्नके प्रथम और तृतीय द्रेक्षाणमें और वृश्चिक लग्नके प्रथम और द्वितीय द्रेक्षाणमें कन्या होती है, इनको छोड़कर और द्रेक्षाणोंमें पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

इति द्रेक्षाणवचनम् ।

अथ नवाशकथनम् ।

मेपकेसरिचापानां मेपाद्याः स्युर्नवांशकाः ।

कर्किवृश्चिकमीनानां कर्कटाद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ९ ॥

तुलाकुम्भनृयुग्मानां तुलाद्याः कथिता इमे ।

मकरस्त्रीवृषाणाञ्च मकराद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ११० ॥

अर्थ—अब नवाश कहते हैं, यथाः—लग्नमानको नौ भागोंमें विभक्त करनेसे एक २ भागका नाम नवाश होता है । मेष, सिंह और मेषादि (१) करके नवांशकी गणना करी जाती है । कर्क, वृश्चिक, और मीनके कर्कटादि करके नवांशको गिने । तुला कुम्भ और मिथुनके नवांशको तुलादिसे गिने, और मकर, कन्या और वृषके नवांशको मकरादिसे गिनकर देखना चाहिये ॥ ९ ॥ ११० ॥

वर्गोत्तमकथनम् ।

चराणां सत्रिकोणानां तच्चराद्या नवांशकाः ।

राशीनां स्वनवांशो यः सवर्गोत्तमसंज्ञकः ॥ ११ ॥

अर्थ—मेष कर्क तुला और मकर इन चार राशियोंको चरराशि कहते हैं । इन चर राशियोंके और इनके पाचवें और नववें राशिके नवांशको इन चरराशिसेही गिनना चाहिये । राशिका जो अपना नवाश हो उसको वर्गोत्तम कहते हैं ॥ ११ ॥

अपिच ।

चराणां प्रथमोऽंशः स्थिराणां पञ्चमस्तथा ।

व्यात्मकानां तथा चान्त्यः स वर्गोत्तमसंज्ञकः ॥ १२ ॥

अर्थ—नर (मेष, कर्क, तुला और मकर) राशिके प्रथमांशकोही वर्गोत्तम

(१) मेष सिंह और धन इन तीनों लग्नोंके नवांशको मेषमे गिने अर्थात् नौ भागोंमें विभक्त लग्नका प्रथम भाग मेषाधिपति मंगलका, दूसरा भाग वृषाधिपति शक्रका, तीसरा भाग मिथुनाधिपति बुधका—इत्यादि प्रकारसे नवांशको देखना चाहिये इति ।

कहते हैं । स्थिर अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भराशिके पञ्चमांशको वर्गोत्तम कहते हैं और द्वात्मक अर्थात् मिथुन, कन्या, धन और मीन राशिके नवमांशको वर्गोत्तम कहते हैं ॥ १२ ॥

इति नवांशकथनम् ।

अथ द्वादशांशकथनम् ।

स्वर्क्षे च मेपपूर्वाणां स्वर्क्षाद्या द्वादशांशकाः ॥ १३ ॥

अर्थ—लग्नमानको द्वादश भागमें विभक्त करनेसे एक २ भागका नाम द्वादशांश होता है मेपादिराशिके द्वादशांशको मेपादिकरके द्वादश राशिका स्वामी भाग करता है ॥ १३ ॥

अन्यच्च ।

लग्नमानं व्यवस्थाप्य द्वादशस्वेव राशिषु ।

कृत्वा द्वादशभागांस्तु गणयेत्स्वगृहाद्बुधः ॥ १४ ॥

अर्थ—अथ द्वादशांशको अन्यप्रकारसे कहते हैं । लग्नमानको बारहजगह भाग करनेसे उसके एक २ भागको द्वादशांश कहते हैं, जिस लग्नके द्वादशांशका विचार करना हो, उसको अपने घरसे गिनना चाहिये अर्थात् जैसे मेपलग्नके द्वादशांशको मेपसे गिनै, वृष लग्नके वृषसे और मिथुन लग्नके द्वादशांशको मिथुनसे गिनना चाहिये, इत्यादि औरभी इसी प्रकार जानना ॥ १४ ॥

इति द्वादशांशकथनम् ।

अथ त्रिंशांशकथनम् ।

कुजयमजीवज्ञसिताः पञ्चेन्द्रियवसुमुनीन्द्रियांशानाम् ।

विषमेषु समर्क्षेष्टूत्कमतस्त्रिंशांशाः कल्प्याः ॥ १५ ॥

अर्थ—अब त्रिंशांश कहते हैं । लग्नमानको त्रिंशत्भागमें विभक्त करनेसे उसके एक २ भागका नाम त्रिंशांश होता है, इस त्रिंशांशमें विषमराशिके प्रथम पांच अंश मङ्गलके होते हैं इसी प्रकार उनके बाद पांच अंश शनिके, आठ अंश बृहस्पतिके, सात अंश बुधके और शेषके पांच अंश शुकके होते हैं । और समराशिके त्रिंशांशको विपरीत भावसे जानना चाहिये अर्थात् प्रथम पांच अंश शुकके, इसी प्रकार उसके बाद बुधके, बृहस्पतिके, शनिके और सर्व शेषमें मङ्गलका त्रिंशांश होता है ॥ १५ ॥

इति त्रिंशांशकथनम् ।

अथ यामार्द्धकथनम् ।

आदौ दिनेशयामार्द्धस्तदन्ते तत्पराः क्रमात् ।

दिवसेषु षडावृत्त्या पञ्चावृत्त्या तु रात्रिषु ॥ १६ ॥

इति सारमग्रेहे ।

अर्थ—अब यामार्द्ध कहते हैं । सारसंग्रहनामक ग्रन्थमें लिखाहै कि, दिनमान वा रात्रिमानको आठ भागमें विभक्त करनेसे उसके एक २ भागका नाम यामार्द्ध कहाहै । इसके प्रथम यामार्द्ध दिनमें होय वा रात्रिमें होय वह वागके स्वामीका होताहै । दिनमें द्वितीयादि यामार्द्ध वागके स्वामीसे गिनकर छठे ग्रहका होता है और रात्रिमें पाचवें ग्रहका होताहै । अर्थात् रविवारके दिनमें प्रथम यामार्द्ध सूर्यका होताहै इसी प्रकार दूसरा यामार्द्ध शुक्रका, तीसरा यामार्द्ध बुधका, चौथा यामार्द्ध चन्द्रका, पाचवां यामार्द्ध शनिका, छठा यामार्द्ध बृहस्पतिका, सातवां यामार्द्ध मङ्गलका और आठवां यामार्द्ध सूर्यका होताहै । रात्रिमें प्रथम यामार्द्ध सूर्यका, दूसरा यामार्द्ध बृहस्पतिका, तीसरा यामार्द्ध चन्द्रका, चौथा यामार्द्ध शुक्रका, पांचवां यामार्द्ध मङ्गलका, छठा यामार्द्ध शनिका, सातवां यामार्द्ध बुधका और आठवां यामार्द्ध सूर्यका होताहै । अन्योन्य वारमेंभी वारके स्वामीसे इसी प्रकार गिनकर यामार्द्ध जानना चाहिये ॥ १६ ॥

अपेक्ष ।

द्युनिशोः षडिषुकमाद्वारेशादर्थयामतः ॥ १७ ॥

इति सारमग्रेहे ।

अर्थ—दिनमें वागके स्वामीसे गिननेमें ठः २ ग्रह अन्तरसे यामार्द्धके स्वामी होतेहैं और रात्रिमें वारके स्वामीसे पाच २ ग्रह अन्तरसे यामार्द्धके स्वामी होतेहैं ॥ १७ ॥

जन्यश्च ।

वारेशादर्थयामेषु रात्र्यहोः पञ्चपट्क्रमात् ।

अधिपाः स्युर्ग्रहास्तत्र यथार्काहे भवन्ति ते ॥ १८ ॥

स्वीज्येन्दुभृगुक्षमाजशनिज्ञरवयो निशि ।

रविशुक्रज्ञरात्र्यंशशनीज्यकुजभास्कराः ।

दिनेषूह्याः परेष्वेव तत्राध्यक्षाच्चतुर्ग्रहाः ॥ १९ ॥

इति सत्कृत्यमुत्तारयाम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुत्तारयामनामक ग्रन्थमें लिखाहै कि, दिनमें हो वा रात्रिमें होय प्रथम यामार्द्धका स्वामी वारका मालिक ग्रह होताहै, वारके मालिक

ग्रहसे गिनकर पांचवों ग्रह द्वितीय यामार्द्धका मालिक होता है और दूसरे यामार्द्धका मालिक ग्रह तीसरे यामार्द्धका स्वामी होता है इत्यादि प्रकारसे रात्रिमें आठों यामार्द्धके मालिक जानना चाहिये । दिनमेंभी वारके स्वामीका प्रथम यामार्द्ध होता है; प्रथम यामार्द्धके स्वामी ग्रहसे गिनकर छठा ग्रह दूसरे यामार्द्धका मालिक होता है और दूसरे यामार्द्धके स्वामीसे गिनकर छठा ग्रह तीसरे यामार्द्धका मालिक होता है । अन्यान्य यामार्द्धके स्वामीभी इसी प्रकारसे जानना चाहिये । रविवारको रात्रिमें प्रथम यामार्द्धका स्वामी सूर्य होता है, इसी प्रकार दूसरे यामार्द्धका स्वामी बृहस्पति, तीसरे यामार्द्धका स्वामी चन्द्र, चौथे यामार्द्धका स्वामी शुक्र, पांचवें यामार्द्धका स्वामी मङ्गल, छठे यामार्द्धका स्वामी शनि, सातवें यामार्द्धका स्वामी बुध और आठवें यामार्द्धका स्वामी सूर्य ग्रह होता है । दिनके प्रथम यामार्द्धका स्वामी सूर्य होता है । इसी प्रकार दूसरे यामार्द्धका स्वामी शुक्र, तीसरे यामार्द्धका स्वामी बुध, चौथे यामार्द्धका स्वामी चन्द्र, पांचवें यामार्द्धका स्वामी शनि, छठे यामार्द्धका स्वामी बृहस्पति, सातवें यामार्द्धका स्वामी मङ्गल और आठवें यामार्द्धका स्वामी सूर्य होता है । प्रत्येक यामार्द्धके चार ग्रह मालिक होते हैं उन्हींको दण्डाधिपति कहते हैं । इसी प्रकारसे अन्यान्यवारके यामार्द्धके स्वामी जानना चाहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ दण्डकथनम् ।

यामार्द्धाधिपसंख्यातो द्वितीयस्तु तदर्द्धतः ।

तदर्द्धांशु तृतीयः स्यात्तदर्द्धांशु तुरीयकः ॥ २० ॥

अङ्काभावे तु राहुः स्यात्तदर्द्धो वसुसंज्ञकः ।

भग्राङ्कस्य परित्यागादिवादण्डाधिपा यथा ॥ २१ ॥

रवौ राहुर्बुधश्चन्द्रः परेष्वप्येवमादिशेत् ॥ २२ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—अब दण्ड (घड़ी) को वर्णन करते हैं, यामार्द्धको चार भागमें विभक्त करनेसे उसके एक २ भागको दण्ड कहते हैं । दिनमें प्रथम यामार्द्धके स्वामीका दण्ड होता है, और इस यामार्द्धपतिको जिस अङ्कमें जानों उसके अर्द्धाङ्क-विशिष्ट ग्रह दूसरे दण्डका मालिक होता है, दूसरे दण्डका मालिक जिस अङ्कमें होय उसके अर्द्धअंक्रमे स्थित ग्रह तीसरे दण्डका मालिक होता है और तीसरे दण्डके मालिकको जिस अंक्रमे जाने उसके अर्द्धअंक्रमे युक्त ग्रह चौथे दण्डका मालिक होता है । जिस स्थानमें अंक न हो केवल शून्यही होय तो उसकी जगह आठ धरे और उसका मालिक राहु होता है अर्द्धसे भग्नांक होय, तो

उक्तको परित्याग कर देवे दिनमें उक्त नियमके अनुसार दण्डके स्वामी ग्रहोंको जानना चाहिये । सूर्यके यामार्द्धमें सूर्य, राहु, बुध और चन्द्र क्रमानुसार दण्डके स्वामी होते हैं, इसी प्रकार अन्यान्य यामार्द्धमेंभी दण्डके स्वामी जाने जाते हैं ॥ २०-२२ ॥

विशेषमाह ।

रविदनुजबुधाग्लौश्चन्द्रसुरासुरज्ञाः

कुजरविदनुजज्ञा ज्ञेन्दुसुरासुराश्च ।

गुरुशशिरविदैत्याः शुक्रभौमार्कदैत्याः

शनिकुनरविदैत्या दण्डदण्डे ग्रहाः स्युः ॥ २३ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—अब दण्डाधिपतिका विवरण स्पष्ट प्रकारसे वर्णन करते हैं यथा,—दिनमें सूर्यके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड सूर्यका होता है—इसी प्रकार दूसरा दण्ड राहुका, तीसरा दण्ड बुधका, चौथा दण्ड चन्द्रका होता है; चन्द्रके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड चन्द्रका, दूसरा दण्ड सूर्यका, तीसरा दण्ड राहुका, चौथा दण्ड बुधका होता है; मङ्गलके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड मङ्गलका दूसरा दण्ड सूर्यका, तीसरा दण्ड राहुका, चौथा दण्ड बुधका होता है; बुधके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड बुधका, दूसरा दण्ड चन्द्रका तीसरा दण्ड सूर्यका, चौथा दण्ड राहुका होता है; बृहस्पतिके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड बृहस्पतिका, द्वितीय दण्ड चन्द्रका, तृतीय दण्ड सूर्यका, चतुर्थ दण्ड राहुका होता है; शुक्रके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड शुक्रका, द्वितीय दण्ड मङ्गलका, तृतीय दण्ड सूर्यका, चतुर्थ दण्ड राहुका होता है, शनिने यामार्द्धमें प्रथम दण्ड शनिका, दूसरा दण्ड मङ्गलका, तीसरा दण्ड सूर्यका और चौथा दण्ड राहुका होता है, इसी प्रकार प्रत्येक दण्डका मालिक एक ग्रह होता है ॥ २३ ॥

अथ सूक्तिकावखेण शिशोर्दिवादण्डज्ञानम् ।

दग्धवस्त्रं रवेर्दण्डे श्वेतश्च शशिनस्तथा ।

भौमे सरक्तहारिद्रं बुधे छिद्रं नवांशुके ॥ २४ ॥

गुरोश्चित्रं भृगोश्छिद्रं छिन्नभिन्नं शनैश्चरे ।

राहोः शुक्रतरं जीर्णमिति दण्डस्य निर्णयः ॥ २५ ॥ (ॐ)

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—सूर्यके दण्डमें प्रभव होनेसे गोर्धणीका पाग्धान दग्धवस्त्र होताहै इसी

(*) दण्ड जाननेके अनेक प्रकारके सूत्र हैं यथा—“शरयाद्याद्रतिवेत्तं मास-
ज्ज्ञातमेव च । एकीकृत्यापनिदेत्वा दिवा रात्री तु सनाभिः ॥” इति अन्यान्यतरे ।

मकार चन्द्रके दण्डमें शुक्र वस्त्र, मङ्गलके दण्डमें रक्तवर्णयुक्त हारिद्रेयवस्त्र, बुधके दण्डमें छिद्रयुक्त नूतनवस्त्र, बृहस्पतिके दण्डमें चित्रितवस्त्र, शुकके दण्डमें छिद्रयुक्त वस्त्र, शनिके दण्डमें छिन्नवस्त्र और राहुके दण्डमें गर्भिणी स्त्री प्रभवसमय शुक्रतर अथच जीर्णवस्त्र पहिरे होती है ॥ २४ ॥ २५ ॥

इति दिग्दण्डज्ञानम् ।

अथ रात्रिदण्डज्ञानम् ।

यामार्द्धाधिपतेर्दण्डः प्राग्ज्ञेयो जन्मवासरे ।

पडावृत्त्या क्रमेणैव निशादण्डाधिपा यथा ॥ २६ ॥

अर्थ—अब रात्रिके दण्डाधिपाति ग्रहोंको कहते हैं । रात्रिके प्रथम दण्डका स्वामी यामार्द्धाधिपाति होता है, यामार्द्धपातिसे गिनकर छः २ ग्रहके अन्तरमें द्वितीयादि दण्डके स्वामी होते हैं ॥ २६ ॥

अपिच ।

यस्यार्द्धयामस्तस्यैव प्राग्दण्डः समुदाहृतः ।

पदपदपरीत्य रात्रौ तु त्रयो दण्डाधिपा यथा ।

रवौ भृगुर्बुधश्चन्द्रः परेष्वेवं प्रकल्पयेत् ॥ २७ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावस्थाम् ।

अर्थ—जिसका यामार्द्ध प्रथम दण्डका स्वामी वही ग्रह होय, रात्रिमें दण्डके स्वामी ग्रहसे गिनकर छठा ग्रह दूसरे दण्डका मालिक होताहै, इसनियमसे तीसरे और चौथे दण्डका स्वामी जाना जाताहै । रात्रिमें सूर्यके यामार्द्धमें प्रथम दण्डका मालिक सूर्य होताहै, दूसरे दण्डका मालिक शुक्र, तीसरे दण्डका मालिक बुध और चौथे दण्डका मालिक चन्द्र होताहै । अन्यान्य यामार्द्धमें भी यही नियम जानना चाहिये ॥ २७ ॥

अन्यच्च ।

आदित्ये भृगुबोधनौ शशधरश्चन्द्रे शनीज्यौ कुजे

भौमेऽर्कः सितसोमजौ शशिसुते रात्रीशसौरीज्यकाः ।

जिवेङ्गाररवी भृगुर्भृगुसुते रोहिण्यचन्द्रान्तकाः

काले जीवमहीजचण्डकिरणा रात्रौ च दण्डाधिपाः ॥ २८ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—अब दण्डके स्वामीको स्पष्ट रीतिसे वर्णन करने हैं । सूर्यके यामार्द्धमें प्रथम दण्डका स्वामी सूर्य होताहै, दूसरे दण्डका मालिक शुक्र, तीसरे दण्डका

मालिक बुध और चौथे दण्डका मालिक चन्द्र ग्रह होता है इसी प्रकार चन्द्रके यामार्द्धमें चन्द्र, शनि, बृहस्पति और मङ्गल होता है, मङ्गलके यामार्द्धमें मङ्गल, सूर्य, शुक्र और बुध, होता है, बुधके यामार्द्धमें बुध, चन्द्र, शनि और बृहस्पति होता है, बृहस्पतिके यामार्द्धमें बृहस्पति, मङ्गल, सूर्य और शुक्र होता है, शुक्रके यामार्द्धमें शुक्र, बुध, चन्द्र और शनि होता है और शनिके यामार्द्धमें शनि, बृहस्पति, मङ्गल और सूर्य क्रमानुसार रात्रिदण्डके स्वामी होते हैं ॥ २८ ॥

अथ जन्मसमये पितुः परोक्षादिज्ञानम् ।

वाच्यं शिशोर्जन्म पितुः परोक्षं क्षपाकरे पश्याति नैव लग्नम् ।

चरास्थितेऽर्केऽष्टमधर्मगे वा जातः परोक्षे विपरीतिवाच्यम् ॥ २९ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—पिताके असमक्षमें (पीछे) बालकका जन्म कहते हैं । यदि चन्द्रमाकी दृष्टि जातलग्नमें न होय और सूर्य चरराशिमें रहकर अष्टम वा नवमस्थायी होय तब उस लग्नमें जात बालक पिताके परोक्षमें जन्म हुआ है ऐसा जानना चाहिये ॥ २९ ॥

लग्ने स्थिते वा दिननाथसूनौ यामित्रसंस्थेऽप्यथवा महीजे ।

चन्द्रे च शुक्रेन्दुजमध्यगे वा विदेशसंस्थे पितरि प्रजातः ॥ ३० ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—जातलग्नमें यदि शनिश्चर स्थित होय और मङ्गल इस लग्नके सातवें स्थानमें होवै तो बालकका जन्म पिताके विदेश समयमें होता है और जन्मकालमें शुक्र और बुधके मध्यमें चन्द्रमा स्थित होनेसे भी बालकके जन्मसमय उसका पिता परदेशमें था ऐसा जानना चाहिये ॥ ३० ॥

अथ (क) जारज (अन्यपुरुषजातसन्तान) योगः ।

न लग्नमिन्दुश्च गुरुर्निरीक्षते न वा शशाङ्कं रविणा समायुतम् ।

सपापकोऽर्केण युतोऽथवा शशी परेण जातं प्रवदन्ति निश्चयात् ३१

अर्थ—अथ अन्यपुरुषजात सन्तानका योग वर्णन करते हैं । यदि जन्मसमय

(क) जारजयोगमाह—न लग्नमिति । गुरुर्वादि लग्नं चन्द्रश्च न निरीक्षते तद्विकी जारजयोगः स्यात् एते दृष्टे सूर्यापि रवियुक्तं चन्द्रं यदि गुरुर्न निरीक्षते तदा द्वितीयः अथवा लग्नं पश्यतु न वा पश्यतु यदि सार्कः शशी अन्यपापग्रहेण युक्तः स्यात्तदा बुधाः परजातमेव वदन्ति । तथा लघुजातके “पापयुतोऽर्कः सेन्दुः पश्यति होरां न चन्द्रमपि जीवः । पश्यति सार्कः नेन्दुं यदि जीवो वा परेजातः ” तथा जारजयोगान्तरयुक्तं “ द्वादशवाच्यं द्वितीयायां सप्तम्याम् ” इत्यादि । इति ।

बृहस्पति लग्न और चन्द्रको न देखता होय तब वह बालक अन्य पुरुषसे उत्पन्न होता है और यदि लग्नमें बृहस्पतिकी दृष्टि होय किन्तु रविपुक्त चन्द्रकी वह न देखे तब वह बालक अन्य पुरुषसे उत्पन्न होता है । लग्नमें बृहस्पतिकी दृष्टि होय या न होय रविपुक्त चन्द्र यदि अन्य पापग्रहके साथ एक घरमें स्थित होय तब वह बालक निश्चयही जारज होता है; इस प्रकारसे पंडितोंने इन तीन योगोंको कहा है ॥ ३१ ॥

अन्यथा ।

अजीविभागे ह्यनिरीक्षिते वा जीवेन चन्द्रेऽथ विलग्नभे वा ।

जातं परोद्भूतमिति बुवन्ति हारीतगर्गप्रमुखा मुनीन्द्राः ॥ ३२ ॥

अर्थ—अब अन्य प्रकारसे जारजयोग कहते हैं । लग्नसे वा चन्द्रसे यदि बृहस्पतिका किसी प्रकार सम्बन्ध न होय तो उस बालकको अन्यपुरुषजात हारीत गर्गप्रभृति मुनिगणोंने कहा है ॥ ३२ ॥

अपरञ्च ।

द्वादश्याञ्च द्वितीयायां सप्तम्यां भग्नक्षके ।

रविमन्दकुजे वारे जारजः स प्रकीर्तितः ॥ ३३ ॥

अर्थ—अब प्रकारान्तरसे जारज योग कहते हैं । द्वादशी द्वितीया और सप्तमी तिथि, भग्नपादनक्षत्र और रवि शनि और भीमवार इसके अन्यतम तिथि, नक्षत्र और वार यदि एक समय हों और उसमें बालक उत्पन्न होय तो उस बालकको जारज (दुमरेकी सन्तान) कहते हैं इस जारजयोगका प्रतिपत्तव नहीं होतादि ३३॥

अथ जारजयोगभङ्गः ।

गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे तद्युक्ते वान्यवेश्मनि ।

तद्वेक्काणे नवांशे वा जायते न परेण सः ॥ ३४ ॥ (ख)

अर्थ—अब जारज योगके प्रतिपत्तवकी कहते हैं । यदि चन्द्र बृहस्पतिके घरमें (धन वा मीनराशिमें) होय तो जारज योगमें बालक उत्पन्न होनेसे भी जारज नहीं होता है । और धन मीन भिन्न अन्य राशिमें—चन्द्र गुरुयुक्त होनेसे

(ख) जारजयोगभङ्गमाह—गुरुक्षेत्र इति । गुरुग्रहगते चन्द्रे सति न परेण जातः अन्यग्रहस्थे चन्द्रे गुरुयुक्ते सति न पण्ये जातः । तथा तद्वेक्काणे गुरुक्षेत्रेण गुरुनवांशे चन्द्र गुरुक्षेत्रगते न पत्न्यात इति । तथा “शशाङ्गो जीवस्युक्तस्तदशो वा भवेदादि । जीवक्षेत्रगता वापि न जातः परतस्तदा ॥” एष च पूर्वोक्तस्यैवापत्तादः न तु द्वादश्याञ्चेत्यनेनोक्तयोगान्तरस्येति । इति ।

बालक अन्यसे जात नहीं होता है और बृहस्पतिके द्रेकाणमें वा बृहस्पतिके नवांशमें चन्द्र होनेसेभी जात बालक जारज नहीं होता है ॥ ३४ ॥

अन्यच्च ।

शशाङ्को जीवसंयुक्तस्तदंशे वा भवेद्यदि ।

जीवक्षेत्रगतो वापि न जातः परतस्तदा ॥ ३५ ॥

अर्थ—अब अन्यप्रकारसे जारज योगका मङ्ग कहते हैं । चन्द्र यदि बृहस्पति-युक्त वा बृहस्पतिके नवांशमें अथवा बृहस्पतिके क्षेत्रमें स्थित होय तो जारज योगमें जात बालक जारज नहीं होता है । यह समस्त प्रतिप्रसव “ न लग्नमिन्द्रज ” इत्यादि वचनके हैं “ द्वादश्यां च द्वितीयायां ” इस वचनके नहीं हैं ॥ ३५ ॥

अथ बालस्य पितृमातृसादृश्यज्ञानम् ।

यादृक्पश्यति सौम्यस्तत्तुल्यं गुणं सुतः समाधत्ते ।

पितृजननीसादृश्यं रवेः शशाङ्काच्च बलयोगात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—अब बालकको पिता और माताके समान कहते हैं । शुभ ग्रह लग्नको जिस प्रकारसे देखताहै जात बालकको तदनुरूप गुण (उसके समानही गुण) प्राप्त होताहै और सूर्यके बलानुसार जात बालक पिताके समान और चन्द्रके बलानुसार माताके समान बालक उत्पन्न होता है ॥ ३६ ॥

अथ गण्डयोगः ।

अश्विनीमघमूलानां तिस्रो गण्डाद्यनाडिकाः ।

अन्त्याः पौष्णोरगेन्द्राणां पञ्चैव यवना जगुः ॥ ३७ ॥ (अ)

अर्थ—अब गण्डयोग कहत हैं । अश्विनी, मघा और मूलनक्षत्रके प्रथम तीन दण्डको गण्ड कहते हैं । रेवती, आश्लेषा और ज्येष्ठा नक्षत्रके दोष तीन दण्डको भी गण्ड कहते हैं ॥ ३७ ॥

अथ गण्डयोगस्य कालनिर्णयः ।

मूलेन्द्रयोर्दिवा गण्डो निशायां पितृसर्पयोः ।

सन्ध्याद्वये तथा ज्ञेया रेवती तुरगर्क्षयोः ॥ ३८ ॥ (आ)

अर्थ—मूल और ज्येष्ठानक्षत्रमें जो गण्ड होताहै उसको दिवागण्ड कहत हैं मघा (अ) गण्डयोगमाह—अश्विनीति । अश्विनीमघामूलानां गण्डाद्यनाडिका गण्डसप्त-प्रथमनाडिकाभिन्नी जगुर्द्वयः । केचित्तु आद्यनाडिकाभिन्नी गण्डा गण्डसप्त-तुरगः नन्मेतदनादि निर्दिष्टमनित्यमिति पुनः सन्निः । रेवत्याश्लेषाज्येष्ठानामन्त्यः । पञ्चैव नाडिका गण्डसप्त-तुरगः जगुर्द्वयः ।

(आ) गण्डयोगस्य कालनिर्णयमाह—मूलेन्द्रयोर्दिवा । मूलज्येष्ठयोगेण्डः दिवा दिवस

और आश्लेषा नक्षत्रका जो गण्ड होता है उसको रात्रिगण्ड कहते हैं, रेवती और अभिनीनक्षत्रमें जो गण्ड होता है उसको सन्ध्यागण्ड कहते हैं ॥ ३८ ॥

अथ गण्डारिष्टकथनम् ।

सन्ध्यारात्रिर्दिवाभागे गण्डयोगोद्भवः शिशुः ।

आत्मानं मातरं तातं विनिहन्ति यथाक्रमम् ॥ ३९ ॥ (इ)

अर्थ-अब गण्डारिष्ट कहते हैं । सन्ध्या समय रेवती और अभिनी नक्षत्रके गण्डमें जात बालक स्वयं विनष्ट होजाता है । रात्रिकालमें मघा और आश्लेषा नक्षत्रके गण्डमें जात बालकके माताकी मृत्यु होती है और दिनमें मूल और ज्येष्ठा नक्षत्रके गण्डमें जो बालक उत्पन्न होता है उसके पिताकी मृत्यु होजाता है ॥ ३९ ॥

अन्यच्च ।

मूलायाः प्रथमे पादे पितुर्वपुः प्रणश्यति ।

द्वितीये नियतां पीडां मातुः कुर्यात्पितुस्तथा ॥ ४० ॥

तृतीये धननाशाय चतुर्थे सर्वसम्पदः ।

व्यत्ययेन फलं ज्ञेयमाश्रोपास्वपि पूर्ववत् ॥ ४१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, मूलके प्रथमपादमें जात बालकको पिताका एव स्यात् । पितृसर्पयोगस्तु निशायामेव गण्ड स्यात् । अभिनीरेवत्यो सन्ध्याद्वय एव गण्डः स्यादित्यर्थः । इति । 'मूलायपादो यदि रात्रिभागे तदात्मनो नास्ति पितृविनाशः द्वितीयपादो दिनगो यदि स्यान्न मातुरन्वोऽपि तदास्ति दोषः ॥' इति ग्रन्थान्तरे । "स्वर्गे शुचिप्रोष्ठपदेयमाधे भूमौ नभः कात्तिकचेत्रपौपे । मूल ह्यधस्तात् तपस्यमार्गे वैशाखशुक्लेष्वशुभञ्च तत्र ॥" इति च ग्रन्थान्तरे ।

(इ) गण्डदोषमाह-सन्ध्येति । गण्डयोगे अभिनीरेवत्योर्गण्डे सन्ध्याकाले जात आत्मानं हन्ति । पितृसर्पयोगण्डयोगे रात्रिकाले जातो मातरं हन्ति मूलेन्द्रयोगण्डयोगे दिवसे जात पितरं हन्ति । अत्र च दिवाभागे निशागण्डनक्षत्रे रात्रौ च दिवागण्डनक्षत्र इत्यादि विपरीतेन यदि स्यात्तदा मात्रादीना महापीडा न जनयतीत्यर्थः । अत्र च शिशोर्दर्शन एव गण्डयोग वदन्ति । तथाच राजमार्तण्डे "गण्डप्रसूतपुरुष शुभमाहुरपश्यतां नृणामेव । अन्ये होमपूर्वे दाने तद्दर्शनं शुभदम् " तथा "गण्डादौ गण्डकान्ते च विवाहे विप्रतेऽङ्गना । न जीवे जातकोऽत्रैव पितृमातृविनाशकृत् । गतो न जीवेत्सीमन्त विधौ गर्भच्युतिर्भवेत् । वतारम्भे विनाश स्यात्क्षीरे पञ्चत्वमादिशेत् । वपनश्चैव घान्याना कीर्त्यरिम्माविधिं नर । यानि प्रशस्तकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥" इति ।

वियोग होता है, दूसरे पादमें जन्म होनेसे माता पिताको सर्वदाही पीडा रहती है, तीसरे पादमें जन्म होनेसे धनका नाश होना है, और चौथे पादमें जन्म होनेसे बालककी समस्त सम्पत्तियोंका नाश होजाता है । आश्लेषादि नक्षत्रमें जन्म होनेसे इसके विपरीतभावसे फल होता है अर्थात् प्रथमपादमें सर्वसम्पत्तियोंका नाश होजाता है, दूसरे पादमें धनक्षय इत्यादि ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ गण्डापवादः ।

दिवा जाता तु या कन्या निशि जातश्च यः पुमान् ।

नोभयोर्गण्डदोषः स्यान्नाचलो हन्ति पर्वतम् ॥ ४२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--अब गण्डदोषका अपवाद कहते हैं । जिस प्रकारके पर्वतका नाश पर्वत नहीं करसक्ता है, उसी प्रकार दिनके गण्डमें उत्पन्न हुई कन्याका और रात्रि-गण्डमें जात पुरुषका गण्डदोष नहीं होता है ॥ ४२ ॥

दिवागण्डे निशाजातो निशिगण्डेऽथ वा दिवा ।

नोभयोर्गण्डदोषः स्यान्नाचलो हन्ति पर्वतम् ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--जिस प्रकार पर्वतका नाश पर्वत नहीं करसक्ता है विसी प्रकार दिवागण्ड-संज्ञक नक्षत्रमें यदि रात्रिसमय जन्म होय और रात्रिगण्डसंज्ञक नक्षत्रमें यदि दिनमें जन्म होय तो उसमें गण्डदोष नहीं होता है ॥ ४३ ॥

अथ गण्डारिष्टशान्तिः ।

सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते ।

तातेनादर्शनं वापि यावत्पाण्मासिको भवेत् ॥ ४४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--गण्डयोगमें जो बालक उत्पन्न होय तो उसको परित्याग करना चाहिये अथवा जबतक छः मासका बालक न होय तबतक उस बालकका दर्शन पिताको न करना चाहिये ॥ ४४ ॥

कुङ्कुमं चन्दनं कुष्ठं गोरोचनमथापि वा ।

घृतैर्नैवान्वितं कृत्वा चतुर्भिः कलशैर्बुधः ॥ ४५ ॥ (ई)

(ई) गण्डदोषप्रतिकारमाह-कुङ्कुममिति सांद्धिभिः श्लोकेः । सुगमम् । “ॐ सह-स्राक्षेण शनशरदेन शत्रायुपाहापनेनम् ॥ अतः यदेनं शरदो न यातीन्द्रो विश्वस्य हरि-

सहस्राक्षेण मन्त्रेण बालकं स्नापयेत्ततः ।

पितृयुक्तं दिवाजातं मातृयुक्तश्च रात्रिजम् ॥ ४६ ॥

स्नापयेत्पितृमातृभ्यां सन्ध्योरुभयोरपि ।

बल्मीकमृत्तिकां दद्यान्नद्याश्च तटमृत्तिकाम् ॥ ४७ ॥

गोविषाणमृदश्चैव दन्तिमृत्सां च निक्षिपेत् ।

तीर्थाम्भः पञ्चगव्येन स्नानं मातुः पितुः शिशोः ॥ ४८ ॥

कांस्यपात्रं घृतैः पूर्णं गण्डदोषोपशान्तये ।

दद्याद्धेतुं सुवर्णञ्च ग्रहांश्चापि प्रयोजयेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ-अब गण्डदोषकी शान्ति कही जाती है । कुङ्कुम, चन्दन, कूठ, गोरौचन और घृत इनको चार कलशमें रखकर उनमें जल भरि अनन्तर इन्हीं कलशोंके जलद्वारा “ ॐ सहस्राक्षेण गतशारदेन ” इत्यादि मन्त्रको पढ़कर दिवागण्डजात बालको पिताके साथ स्नान करावै, इसी प्रकार रात्रिगण्डजात बालकको माताके साथ स्नान करावै और दोनों सन्ध्यागण्डजात बालकको पिता और माताके साथ स्नान कराना चाहिये और बल्मीकमृत्तिका, नदीके समीपकी मृत्तिका, गोशृङ्गोद्भूत मृत्तिका, और हस्तिदन्तोद्भूतमृत्तिका और पञ्चगव्योंको तीर्थके जलमें मिलाकर उसके द्वारा माता, पिता और बालकका स्नान करावै; अनन्तर घृत-पूर्ण कांस्यपात्र, धेनु और सुवर्ण दान और सुवर्ण दान और ग्रहोंकी पूजा करावै तभी गण्डदोषकी शान्ति होती है अर्थात् गण्डदोष दूर होजाताहै ४५-४९॥

तस्य पारम् ॥ शतश्रीवि शरदो वर्द्धमानः शत हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् । शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शनायुषा हविषेभ पुनर्नः । अहो विपन्त्वा विदन्त्वा पुनरामाः पुनर्नवः । सर्वाङ्गी सर्वन्ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेविदम् । शतमानश्च आयुष्कामः । शतार्थुर्गुरुपः शत वीर्यः शतेन्द्रियः । अगुप्य एवैन तदीर्यभिन्द्रिये दधातु ॥ इति स्नानमन्त्रः । तथा जप पूजादिकन्तु राजमातृगण्डे उक्त-“कांस्यपात्रं प्रकुर्वीत पलैः षोडशभिर्विषुषः । अष्टाभिर्वाचतु-भिर्वाद्वाभ्यां वा शोभनं समग्रानन्मध्ये स्थापिते शले नवनीतप्रपूरितो राजत चन्द्रमभ्यर्च्य सितपुष्पसहस्रकैः । देवज्ञः सोपवासश्च शुक्लाम्बरसुपूजितः । सोमोहमिति सखित्य कुयादेवमतन्द्रितः । जपेत्सहस्र मन्त्रञ्च श्रद्धधानः समाहितः ॥ ओं अमृतात्मने नमस्तुभ्यं भन्त्रमेतदुदाहृतम् । तप्तचामीकरं दद्यात्ताम्रपात्रे तिलान्वितम् । गण्डदोषोपशान्त्यर्थं यजुर्वेदविदे शशिः ॥ ” इति ।

अथ मात्रारिष्टम् ।

केन्द्रत्रिकोणगः पापोमातृहासप्तवासरात् ।

सपापाद्भागशत्पापोहिबुकेमातृनाशकृत् ॥ ५० ॥ (उ)

अर्थ—अब माताके आरिष्ट ग्रहोंको कहते हैं जन्मसमयका लग्नमें वा लग्नसे चौथे, दशवें, सातवें नववें और पाचवें स्थानमें यदि बलवान् पापग्रह स्थित होय तो जात मनुष्यके सातदिनके मध्यमें माताकी मृत्यु होती है और पापग्रहयुक्त शुक्रसे चौथे स्थानमें पापग्रह होनेसेभी जात बालकके माताकी मृत्यु होती है ॥ ५० ॥

अन्यत्र ।

लग्नाच्चतुर्थगः पापो यदि स्याद्भुवत्तरः ।

तदा मातृवधं कुर्यात्तत्केन्द्रे चापरो यदि ॥ ५१ ॥ (ऊ)

अर्थ—अब अन्य प्रकारसे माताके आरिष्ट ग्रह कहते हैं । जन्मलग्नसे चौथे स्थानमें यदि बलवान् पापग्रह स्थित होय और उसके केन्द्रमें (उसी स्थानमें और चौथे, सातवें दशवें) यदि पापग्रह होय तब जात बालककी माताकी मृत्यु होती है ॥ ५१ ॥

अपरञ्च ।

शनिमङ्गलयोर्मध्ये यदि तिष्ठति चन्द्रमाः ।

तदा मातृवधो ज्ञेयो भौमाको संयुतौ यदि ॥ ५२ ॥

अर्थ—अब अन्य प्रकारसे मात्रारिष्ट कहते हैं । शनि और मंगलके मध्यमें यदि चन्द्र होय और मंगल सूर्यके साथमें होय तो उसी समयमें जात बालकके माताकी मृत्यु होती है ॥ ५२ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

चन्द्रमा यदि पापेन त्रयेणैवेह वर्णितः ।

मातृनाशो भवेत्तस्य पष्ठः पापो भवेद्यादि ॥ ५३ ॥

अर्थ—चन्द्रमापर यदि तीन पाप ग्रहोंकी दृष्टि होय और जन्मलग्नसे छठे (उ) मात्रारिष्टमाह—केन्द्र शनि । केन्द्रगणितकोणगश्च बलवान्पापः सप्तदिनान्मातृहा स्यात् योगान्तर सपापाद्भागशत्पापयुक्ताच्छुक्राच्चतुर्थस्यः पापो मातृहा स्यात् ।

(ऊ) योगान्तरमाह—लग्नाच्चतुर्थो बलवान्पापः एतत्केन्द्रस्थोऽपरः—पापो यदि स्यात्तदा मातृवधं जानीयात् । तथा योगान्तरं शनिमङ्गलयोर्मध्य इत्यादि वक्ष्यमाणवचनात् इति ।

स्थानमें पापग्रह होय तब जात बालकके माताकी मृत्यु होती है ॥ ५३ ॥

लग्नाच्चतुर्यगः पापो यदि स्याद्वलवतरः ।

नूनं मातृवधं कुर्याच्चन्द्राच्चैव विशेषतः ॥ ५४ ॥

अर्थ-जन्मलग्न वा जन्मलग्नसे छठे स्थानमें बलवान् पापग्रहोंके स्थित होने-सेही जात बालकके माताकी मृत्यु होती है ॥ ५४ ॥

चन्द्रः पापसमायुक्तो लग्नकेन्द्रगतो यदि ।

तदा मातुर्वधो ज्ञेयः सप्ताहान्नात्र संशयः ॥ ५५ ॥

अर्थ-जन्मसमय पापग्रहयुक्त चन्द्रमा यदि लग्नके केन्द्र स्थानमें स्थित होय तब सात दिनके मध्यमें जात बालकके माताकी मृत्यु होती है ॥ ५५ ॥

चन्द्राष्टमगते भौमे शत्रुस्ये शत्रुवीक्षिते ।

मातुस्तस्य भवेद्धानिः पिता चासीद्विदेशगः ॥ ५६ ॥

अर्थ-जन्मसमय चन्द्रमाके आठवें स्थानमें मङ्गल स्थित होकर यदि शत्रु-युक्त हो वा शत्रुको देखता होय तब जात बालकके माताकी मृत्यु होती है और पिता विदेशको चला जाता है ॥ ५६ ॥

प्रसवे रात्रिसमये चन्द्रः पापग्रहे स्थितः ।

माता च म्रियते तस्य यदि पापैः समन्वितः ॥ ५७ ॥

अर्थ-रात्रिजात बालकके जन्मसमयका चन्द्रमा यदि पापग्रहके घरमें स्थित होकर पापग्रहयुक्त होय तो उसके माताकी मृत्यु होती है ॥ ५७ ॥

अथवा क्षीणचन्द्रश्च पापाः पश्यन्ति सर्वदा ।

शुभग्रहा न पश्यन्ति माता च म्रियते ध्रुवम् ॥ ५८ ॥

अर्थ-रात्रिमें जन्मसमयका चन्द्रमा यदि क्षीण होय और इस चन्द्रमापर पापग्रहकी दृष्टि होय शुभग्रहकी दृष्टि न होय तो जात बालकके माताकी शीघ्रही मृत्यु होती है ॥ ५८ ॥

निधनारिगतश्चन्द्रो भौमो वा सप्तमे स्थितः ।

तदा मातुर्विनाशः स्याद्यदि पापैः समन्वितः ॥ ५९ ॥

अर्थ-बालकके जन्मसमय यदि चन्द्रमा आठवें स्थानमें वा छठे स्थानमें

स्थित होकर पापग्रहयुक्त होय अथवा मङ्गल सातवें स्थानमें पापग्रहके साथ स्थित होय तो जात बालकके माताकी मृत्यु होतीहै ॥ ५९ ॥

पापग्रहे स्थिते शुक्रे पापैर्वा पापगेहगे ।

शुभग्रहा न पश्यन्ति माता च म्रियते ध्रुवम् ॥ ६० ॥

अर्थ—जन्मसमय शुक्र यदि पापग्रहके घरमें होय वा पापग्रहके साथ पापग्रहके स्थानमें स्थित होय और उसके ऊपर शुभग्रहकी दृष्टि न होय तो जात बालकके माताकी शीघ्रही मृत्यु होतीहै ॥ ६० ॥

प्रसवे च दिवाभागे शुक्रे वा पापसंयुते ।

अथवा पापसंदृष्टे माता संम्रियते ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—दिनमें जात बालकके जन्मसमय शुक्र यदि किसी पापग्रहके साथ होय अथवा शुक्रपर पापग्रहकी दृष्टि होय तो जात बालकके माताकी शीघ्रही मृत्यु होती है ॥ ६१ ॥

अथारिष्टभङ्गयोगः ।

आत्मक्षेत्रगते शुक्रे पापैर्वा पापगेहगे ।

शुभग्रहाः प्रपश्यन्ति रिष्टभङ्गस्तदा भवेत् ॥ ६२ ॥

अर्थ—अब शुक्रारिष्टभङ्गयोग कहते हैं शुक्र यदि अपने घरमें होय वा पापग्रहके साथ पापग्रहके घरमें स्थित होनेसे भी यदि शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तो अरिष्टभङ्ग होताहै ॥ ६२ ॥

अथ पित्रारिष्टम् ।

कर्मस्थाने स्थितः सौरी (१) रिःफस्थाने (२) च चन्द्रमाः ।

कुजे च सप्तमे स्थाने म्रियते पितृसंज्ञकः ॥ ६३ ॥

अर्थ—अब पिताके अरिष्टग्रह कहतेहैं । जन्मलग्नसे शनि यदि दशवें स्थानमें होय और चन्द्रमा बारहवें स्थानमें होय और मङ्गल सातवें स्थानमें स्थित होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होतीहै ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

तमोहा यदि पापेन त्रयेणैवेह वीक्षितः ।

शुभैर्युतदृष्टश्च पितुरप्यन्तमादिशेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ—जन्मसमय सूर्य यदि शुभग्रहयुक्त न होय और शुभग्रहकी सूर्यपर दृष्टिमी

(१) स्थिते सौम्ये इति पाठः ।

(२) रिष्टस्थाने च चन्द्रमाः इति पाठान्तरम् ।

न होय केवल तीन पाप ग्रहोंकी दृष्टि होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होती है ॥ ६४ ॥

अपरञ्च ।

अष्टमस्थो यदा भानुर्लग्नं च राहुसंयुते ।

पिता वा म्रियते तस्य स्वयं वा म्रियते शिशुः ॥ ६५ ॥

इति सोमासिद्धान्ते ।

अर्थ-जन्मलग्नके आठवें स्थानमें सूर्य और लग्नमें यदि राहु स्थित होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होती है वा जात बालककी ही मृत्यु होती है ॥ ६५ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

सूर्याच्च सप्तमे राशौ शनिभौमौ यदा स्थितौ ।

तदा पितृवधो ज्ञेयस्तयोर्मध्येऽथवा रविः ॥ ६६ ॥

इति सोमासिद्धान्ते ।

अर्थ-जन्मसमय सूर्यसे सातवीं राशिमें यदि शनि और मङ्गल स्थित होय अथवा शनि और मङ्गलके मध्यमें सूर्य होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होती है ॥ ६६ ॥

अपिच ।

अष्टमस्थो यदा चन्द्रो गुरुराहू द्वितीयगौ ।

सौरिभौमेक्षिते मित्रे पितृदा सप्तवासरात् ॥ ६७ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि चन्द्रमा आठवें स्थानमें होय और बुधस्पाति और राहु दूसरे स्थानमें होय और शनि और मङ्गलकी दृष्टि सूर्यपर होय तो सात दिनके मध्यमें जात बालकके पिताकी मृत्यु होती है ॥ ६७ ॥

अन्यथा ।

लग्नाष्टमे गते भौमे द्वादशे द्वित्रये खले ।

पितृघाती भवेन्नित्यं शुभैर्यदि न दृश्यते ॥ ६८ ॥

अर्थ-जातलग्नके आठवें स्थानमें यदि मङ्गल स्थित होय और दूसरे चारहवें और तीसरे स्थानमें पापग्रह होय और लग्नमें शुभग्रहकी दृष्टि न होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होती है ॥ ६८ ॥

अपरञ्च ।

रन्ध्रेऽर्के सप्तमे भौमे घनसंस्थे च सूर्यजे ।

पितुर्मृत्युर्भवेत्तस्य शुभैर्यदि न दृश्यते ॥ ६९ ॥

अर्थ-जन्मलग्नके आठवें वा नववें स्थानमें सूर्य, सातवें स्थानमें मङ्गल और

दूसरे स्थानमें गनि होय और इनपर शुभग्रहोंकी दृष्टि न होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होती है ॥ ६९ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

निधनारिगतश्चन्द्रः सौरिभौमोक्षितो यदि ।

शुक्रगुर्वोर्न चालोकी सपिता श्रियते शिशुः ॥ ७० ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि चन्द्रमा आठवें वा छठे स्थानमें स्थित होय और उक्त पर गनि और मङ्गलकी दृष्टि होय और शुक्र और बृहस्पतिकी दृष्टि चन्द्रमापर न होय तब बालककी पिताके साथ मृत्यु होती है ॥ ७० ॥

अथ पितृमातृहा योगः ।

भौमे वा निधने चन्द्रः पापयुक्तो भवेद्यादि ।

पितृघाती परोक्षे च माता च श्रियते ध्रुवम् ॥ ७१ ॥

अर्थ—लग्नके आठवें स्थानमें मङ्गल वा चन्द्रमा यदि पापग्रहके साथ स्थित होय तिसके पिता और माताकी मृत्यु होती है ॥ ७१ ॥

आपिच ।

दिवाकंशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ शनैश्चरेन्दू निशि तद्विपर्ययात् ।

पितृव्यमातृष्वसंज्ञितौ तावथौज्युग्मक्षगताौ तयो शुभौ ७२ ॥

इति बृहज्जातके ।

अर्थ—बालकका दिनमें जन्म होनेसे सूर्यकी पितासंज्ञा और शुक्रकी मातासंज्ञा होती है और रात्रिमें जन्म होनेसे शनिकी पितासंज्ञा और चन्द्रमाकी मातासंज्ञा होती है । और दिनमें जन्म होनेसे गनिकी पितृव्य (चचा) संज्ञा होती है और चन्द्रमाकी मातृष्वसृ (मौसी) संज्ञा होती है, और रात्रिमें जन्म होनेसे सूर्यकी पितृव्य (चचा) संज्ञा और शुक्रकी मातृष्वसृ (मौसी) संज्ञा होती है । उक्त समस्त संज्ञाओंका प्रयोजन यही है कि सूर्य, शुक्र, शनि और चन्द्रमा इन सब ग्रहोंकी स्थिति और बलाबलद्वारा जात बालकके पिता, माता, चचा और मौसीका शुभाशुभ फल जाना जाता है ॥ बालकका दिनमें जन्म होनेमें यदि सूर्य विषमराशिमें (मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन वा कुम्भराशिमें) स्थित होय तो जात बालकके पिताका शुभ होता है, और इन समस्त राशिओंमें सूर्य होनेसे यदि रात्रिमें जन्म होय तब पितृव्य (चचा) को शुभ होता है । रात्रिमें जन्म होनेसे यदि शनैश्चर विषम राशिमें स्थित होय तो पिताको शुभकारक होता है, दिनमें जन्म होनेसे यदि शनि विषमराशिमें

होय तब पितृव्य (चचा) को शुभकारक होता है और इसके विपरीतमें विपरीत भावसे फल होता है । दिनमें जन्म होनेसे यदि सूर्य समराशिमें (वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर वा मीन राशिमें) होय तब पिताको अशुभकारक होता है और रात्रिमें समराशिमें सूर्य होनेसे पितृव्य (चचा) को अशुभकारक होता है । दिनमें शुक्र समराशिमें माताको शुभ होते हैं और रात्रिमें शुक्र समराशिमें स्थित होनेसे मौसीको शुभ होता है । इसी प्रकार रात्रिमें चन्द्र समराशिमें होनेसे माताको अशुभ होता है । और दिनमें समराशिगत होनेसे मौसीको अशुभ होता है । दिनमें शुक्र विषम राशिमें होनेसे माताको अशुभ होता है और रात्रिसमय विषमराशिमें होनेसे शुक्र मौसीको अशुभ होता है और रात्रिमें चन्द्रमा विषम राशिमें होनेसे माताको अशुभ होता है और दिनमें चन्द्रमा विषमराशिमें होनेसे मौसीको अशुभ होता है ॥ ७२ ॥

अथ शिश्वरिष्टम् ।

तत्रादौ सूर्यारिष्टम् ।

पापास्त्रिकोणकेन्द्रेषु सौम्याः पष्ठाष्टमव्ययगताश्चेत् ।

सूर्यादये प्रसूतः सद्यः प्राणास्त्यजति जन्तुः ॥ ७३ ॥ (१)

अर्थ-अब बालकके अरिष्ट ग्रह कहते हैं । पापग्रह यदि जन्मलग्नके नववें, पांचवें, वा अपने घरमें अथवा चौथे वा दशवें घरमें स्थित होय और शुभग्रह यदि लग्नके छठे, आठवें वा बारहवें स्थान स्थित होय तो सूर्यादयकालमें प्रसूत बालककी उसी समय मृत्यु होती है ॥ ७३ ॥

इति सूर्यारिष्टम् ।

अथ चन्द्रारिष्टम् ।

पष्ठेऽष्टमे चन्द्रः सद्यो मरणाय पापसंहारः ।

अष्टाभिः शुभदृष्टो वर्षैर्मिश्रैस्तदर्थेन ॥ ७४ ॥ २ ॥

अर्थ-जात लग्नके छठे वा आठवें स्थानमें यदि चन्द्रमा होय और इस चन्द्रमा पर पाप ग्रहोंकी दृष्टि होय तो जात बालककी उसी समय मृत्यु होती है और शुभ ग्रहोंकी इस चन्द्रमापर दृष्टि होनेसे आठ महीनेके मध्यमें जान बालककी

(१) सूर्यारिष्टमाह । पापा इति । त्रिकोणे केन्द्रे च यदि पापास्तिष्ठन्ति शुभग्रहाश्च पष्ठाष्टमद्वादशस्था यदि स्वस्तदा सूर्यादयकाले जातः सद्यस्तत्क्षणतः प्राणास्त्यजति ।

(२) चन्द्रारिष्टमाह-पष्ठ इति । मिश्रैः शुभाशुभदृष्टैः तदर्थेन अष्टवत्सराद्धेन वर्ष-चतुष्केण चन्द्रो मरणाय कल्प्यते इत्यर्थः ।

मृत्यु होती है और जो शुभाशुभ ग्रहोंकी चन्द्रमापर दृष्टि होय तो चार महीनेके मध्यमें जात बालककी मृत्यु होती है ॥ ७४ ॥

अथ चन्द्रारिष्टभङ्गः ।

पक्षे सिते भवति जन्म यदि क्षपायां

कृष्णे तथाहनि शुभाशुभदृष्टमूर्तिः ।

तं चन्द्रमा रिपुर्विनाशगतोऽपि यत्ना-

दापत्सु रक्षति पितेव शिशुं न हन्ति ॥ ७५ ॥ (३)

अर्थ—अब चन्द्रारिष्टका अपवाद कहते हैं । शुक्लपक्षमें रात्रिसमय जात बालक और कृष्णपक्षमें दिनमें जात बालकको छठे वा आठवें राशिमें स्थित चन्द्रमा शुभाशुभ ग्रहोंकी दृष्टि होनेसेभी क्रमानुसार पिता पुत्रकी समान रक्षा करता है और किसी प्रकारका आनेष्टसाधन नहीं करवा है ॥ ७५ ॥

अथ पापयुतचन्द्रारिष्टम् ।

सुतमदननवान्तरान्ध्रलग्नेष्वशुभयुतो मरणाय शीतराशिः । (४)

भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैर्यदि वलिभिर्न युतोऽवलोकितो वा ॥ ७६ ॥

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमा यदि किसी पापग्रहके साथमें होकर लग्नमें वा लग्नके पांचवें, सातवें, नववें, बारहवें वा आठवें स्थानमें स्थित होय और शुक्र, बुध, वा बृहस्पति यदि इस चन्द्रमाको न देखते हों वा उसके (चन्द्रमाके) साथ न होवै तो जात बालककी मृत्यु होती है ॥ ७६ ॥

अन्यथा ।

द्यूनचतुरस्रसंस्थे पापद्वयमध्यगे शशिनि जातः ।

विलयं प्रयाति नियतं देवैरपि रक्षितो बालः ॥ ७७ ॥ (५)

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमा यदि दो पाप ग्रहोंके मध्यमें होकर लग्नके सातमें, चौथे,

(३) उक्तचन्द्रारिष्टभङ्गमाह—पक्षइति । शुक्लपक्षे रात्री यदि जन्म कृष्णपक्षे च दिवा यदि जन्म तदा शुभेनाशुभेन वा दृष्टश्चन्द्रः पक्षाष्टमस्थोपि आपत्सु तं बालं रक्षति न हन्ति पितेव पुत्रमिति ।

(४) चन्द्रारिष्टमाह—सुतेति । शुक्रबुधगुरुणामेकेनापि दृष्टे युक्ते वा चन्द्रे योगभङ्गः स्यादित्यर्थः ।

(५) चन्द्रारिष्टान्तरमाह—सूनेति । लग्नात्सप्तमचतुर्थाष्टमस्थे चन्द्रे पापद्वयमध्यगे जातो विलयं प्रयाति मध्यगतत्वञ्च द्वितीयद्वादशस्थयोरेकराशिस्थयोर्वा पापयोस्त्यर्थः ।

अथवा आठवें स्थित होय तो उस बालकका रक्षा करनेमें देवतागणभी असमर्थ होते हैं अर्थात् उसकी निश्चयही मृत्यु होती है ॥ ७७ ॥

अथ लग्नस्थक्षीणेन्द्रारिष्टम् ।

क्षीणे शशिनि विलग्रे पापैः केन्द्रेषु मृत्युसंस्थैर्वा ।

भवति विपत्तिस्वयं यवनाधिपतेर्मतश्चैतत् ॥७८॥ (६)

अर्थ-जन्मसमय क्षीण चन्द्रमा यदि लग्नमें स्थित होय और पापग्रहगण यदि लग्नमें वा लग्नके चौथे, सातवें, दशवें अथवा आठवें होय तो उस जात शिशु (बालक) की अवश्यही मृत्यु होती है, इस प्रकार यवनाचार्यने कहा है ॥७८॥

अथ त्रिंशाशविशेषस्यचन्द्रारिष्टम् ।

नागगोसेद्धिजातीषु क्षमाब्धिज्यश्विधृतिर्नखाः ।

क्षमाब्धिदिकचेत्यजाद्यंशे तत्तुल्यान्दैर्विधौ व्यसुः ॥७९॥ (७)

अर्थ-राशिको त्रिंशाशभागमें विभक्त करनेसे उसको त्रिंशाश कहते हैं इस त्रिंशाश भागमें मेषके आठ, वृषके नौ, मिथुनके चौबीस, कर्कके पारस, सिंहके पाच, कन्याका एक, तुलाके चार, वृश्चिकके तेईस, धनके अठारह, मकरके बीस, कुम्भके इक्कीस और मीनके दशमांशके मध्यमें यदि किसी बालकका जन्म होय तो उस बालककी उक्त सख्याक वर्षके मध्यमें मृत्यु होती है ॥७९॥

इति चन्द्रारिष्टम् ।

(६) चन्द्रारिष्टान्तरमाह-क्षीणइति । क्षीणे चन्द्रे लग्नस्थे केन्द्रेषु स्थिते पापैरिष्टमस्थैर्वा जातस्य विपत्तिस्वयं भवेदित्यर्थः । एषु पूर्वोक्तश्लोकत्रयेषु योगेषु कालनियमस्वयं चन्द्रो यदा योगकर्तृमहस्य स्थान सगृह वा जन्मलग्न वा गतो बलवाद् पापदृष्टश्च स्यात्तदा वत्सराभ्यन्तरे मरण स्यात् तथाच सारावल्याम्-“ योगे बलिन स्थान स्व वा लग्न गतेऽपि वा चन्द्रे । बलवति शशुभदृष्टे आवर्णान्मृत्युकाल स्यात् ॥ ” इति ।

(७) चन्द्रारिष्टान्तरमाह-नागोति । अजादीना मेपादीना यथाक्रम त्रिंशाशस्फुटस्य नागाद्यंशे चन्द्रे गते साति तत्तुल्यैर्नागाद्यंशमितेर्वर्षैर्मृत्यु स्यात् । मेपस्य नागा अष्टौ वृषस्य गावश्छिद्राणि नव, मिथुनस्य सिद्धयश्चतुर्विंशति, कर्कस्य जातिद्वौविंशति, सिंहस्य इषव पञ्च, कन्याया क्षमा एक, तुलाया अष्विंशत्वार, वृश्चिकस्य त्र्यश्वि त्रयोविंशति, धनुषो छतिरष्टादश, मकरस्य नखा विंशति, कुम्भस्य क्षमाश्च एक-विंशति, मीनस्य दिङ् दश इति । चन्द्रारिष्टभङ्गस्तु सारावल्यामुक्तः । “ बुधविशुधासुर सचिवद्रेक्षाणद्वादशांशे शशिनि । भवति चिरायुर्जात सप्राप्तानेकरिष्टोऽपि । चन्द्र शुभवर्गस्य क्षीणोऽपि शुभेक्षितो हरत्यरिष्टम् । जलमिव महातिसार जातीफलक्लृप्त-क्वार्थितम् । लग्नेश्वरस्य चन्द्र पट्टत्रिदशायहिषकेषु शुभदृष्ट । क्षपयति समस्तरिष्टान्यनु-जातो निरूपणोऽहम् । एको जन्माधिपति परिपूर्णबल शुभग्रहेर्दृष्ट । हा ॥ निशाकर-रिष्ट न्याय इव मृग वने मत्तम् ॥ ” इति ।

अथ विविधभौमारिष्टम् ।

भौमो विलग्रे शुभदैरदृष्टः पष्टेऽष्टमे वार्कसुतेन युक्तः ।

सद्यः शिशुं हन्ति वदेन्मुनीन्द्रः स्मरे यमारी न शुभेक्षितौ च ८० ॥ (८)

अर्थ-मङ्गल लग्नमें स्थित होय और उसपर शुभग्रहोंकी दृष्टि न होवै अथवा लग्नके छठे वा आठवें स्थानमें शनिके साथ स्थित होय वा सातवें स्थानमें शनिके साथ मङ्गल होय और उसको शुभग्रह न देखते हों तब जात बालककी शीघ्रही मृत्यु होती है ॥ ८० ॥ इति भौमारिष्टम् ।

अथ बुधारिष्टम् ।

कर्कटधामनि सौम्यः पष्टाष्टमराशिगो विलग्नर्क्षात् ।

चन्द्रेण दृष्टमूर्तिर्वर्षचतुष्केण मारयति ॥ ८१ ॥ (९)

अर्थ-जन्मसमय लग्नके छठी वा अष्टम राशिस्य बुध यदि कर्कराशिमें स्थित होय और उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि होय तो जात बालककी चार वर्षके मध्यमें मृत्यु होती है ॥ ८१ ॥ इति बुधारिष्टम् ।

अथ गुर्वारिष्टम् ।

बृहस्पतिभौमगृहेऽष्टमस्थः सूर्येन्दुभौमार्कजदृष्टमूर्तिः ।

वर्षेष्टिभिर्भागवदृष्टिहीनो लोकान्तरं प्रापयति प्रसूतम् ॥ ८२ ॥ (१०)

अर्थ-जन्मसमय बृहस्पति यदि लग्नके अष्टमस्थ होकर भेषमें वा वृश्चिक राशिमें स्थित होय और सूर्य, चन्द्र मङ्गल और शनि इनकी बृहस्पतिपर दृष्टि होय, और शुक्र उसको न देखता होय तो तीन वर्षके मध्यमें जात बालककी मृत्यु होती है, किन्तु शुक्रकी बृहस्पतिपर दृष्टि होनेसे उक्त शिशुका अरिष्टमङ्ग होजाताहै ॥ ८२ ॥ इति गुर्वारिष्टम् ।

अथ शुक्रारिष्टम् ।

रविशशिभवने शुके द्वादशरिपुरन्ध्रगोऽशुभैः सर्वैः ।

(८) भौमारिष्टमाह-भौम इति । लग्नरथभौमः शुभग्रहेरदृष्टः शिशुं हन्ति । पष्टाष्टमस्थः शनियुक्तश्च शिशुं हन्ति सप्तमे स्थितौ यमारी शनिरुजो शुभग्रहेरदृष्टौ च शिशुं हन्ति इत्यर्थः । इति ।

(९) बुधारिष्टमाह-कर्कटेति । कुम्भलग्नान्तर्लगाच्च पष्टाष्टमगतः कर्कटस्थो बुधश्चन्द्रदृष्टश्चतुर्वर्षः शिशुं मारयति ।

(१०) गुर्वारिष्टमाह-बृहस्पतीरिति । भौमगृहे भेषे वृश्चिके वा स्थितो गुरुः लग्नादष्टमस्थः सूर्येन्दुशनिदृष्टः शुकेषादष्टमिभिर्योजितं मारयति शुकेण तु दृष्टे योगमङ्ग एवेत्यर्थः ।

दृष्टः करोति मरणं पट्टभिर्वर्षैः किमिह विचित्रम् ॥ ८३ ॥ (११)

अर्थ-जन्मसमय सिंह वा कर्क राशिस्य शुक्र यदि जातलग्नके बारहवें, छठे, आठवें स्थित होय और समस्त पापग्रहोंकी उत्तर दृष्टि होय तो छः वर्षके मध्यमें जात बालककी मृत्यु होती है ॥ ८३ ॥ इति शुक्रारिष्टम् ।

अथ शून्यरिष्टम् ।

मारयाति षोडशाहाच्छनैश्चरः पापवीक्षितो लग्ने ।

संयुक्तो मासेन च वर्षाच्छुद्धस्तु मारयाति ॥ ८४ ॥ (१२)

अर्थ-जन्मसमय शनि यदि लग्नमें स्थित होय और उत्तर पापग्रहोंकी दृष्टि होय तो सोलह दिनके मध्यमें जात बालककी मृत्यु होती है, और इस शनिके साथ पापग्रह होनेसे सोलह महीनेमें और पापग्रह युक्त वा पापग्रहोंकी दृष्टिहीन होकर शुद्ध लग्नमें स्थित होनेसे सोलह वर्षमें जात बालककी मृत्यु होती है । किन्तु बलवान् शुभग्रहोंकी दृष्टि होनेसे वा युक्त होकर शनि यदि लग्नमें स्थित होय तब अरिष्टमद्ग्न होनाता है ॥ ८४ ॥

अथ शून्यरिष्टमद्ग्नः ।

स्वोच्चस्वजीवभवने क्षितिपालतुल्यो

लग्नेऽर्कजे भवति देशपुराधिनाथः ।

शेषेषु दुःखगदभीतित एव बाल्ये

दारिद्र्यकामवशगो मलिनोऽलसश्च ॥ ८५ ॥

इति सारावस्थाम् ।

अर्थ-अब लग्नमें स्थित शनिके दोषका अपवाद कहते हैं । जन्मसमय शनि-श्चर उच्च स्थानमें (तुला राशिमें) स्थित होय वा अपने धरमें (मकर और कुम्भ राशिमें) स्थित होय अथवा बृहस्पतिके धरमें (धन वा मीन राशिमें) स्थित होकर यदि जात लग्नमें स्थित होय तो जात बालक राजाके समान

(११) शुक्रारिष्टमाह-स्वीति । रविचन्द्रगृहे सिद्धे कर्कटे वा स्थितः शुक्रो द्वादश-षष्ठाष्टमगतः सर्वैः पापैर्दृष्टः पट्टभिर्वर्षैर्मरणं करोति ।

(१२) शून्यरिष्टमाह-मारयातीति । पापदृष्टः शनिर्लग्नस्थः षोडशादिने मारयाति संयुक्तः पापेन शनिः मासेन मारयाति शुद्धः केवलः पापायुक्तश्च पापदृष्टश्चैव लग्नस्थः शनिर्वर्षाणामारयाति बलिभिः शुभग्रहैर्युक्ते दृष्टे वा योगमद्ग्नः स्यादित्यर्थः । तुलायां स्वगृहे गुरुगृहे च लग्ने शनौ स्थिते रिष्टमद्ग्नो गुणातिरेकश्च स्यात् । तथा सारावस्थाम्-“स्वोच्च-स्वजीवभवने” इत्यादि । तथा राजमार्तण्डे-“तुङ्गाङ्गिरोगेहते” इत्यादि ।

प्रतापशाली होकर देशपुरादिका स्वामी (मालिक) होता है । और उक्त समस्त राशिभिन्न अन्यराशिमें रहकर शनि लग्नस्थ होनेसे जातबालक दुःखी, पीड़ित और भीत होकर बाल्यावस्थामें दरिद्र, कामासक्त, मलीन और अलसी होता है ॥ ८५ ॥

अन्यच्च ।

तुलाकोदण्डमीनस्थो लग्नस्थश्च शनिर्यदा ।

सर्वारिष्टं निहन्त्याशु शेषे जातो भवेद्युगः ॥ ८६ ॥

अर्थ—जन्मतमय शनैश्चर यदि तुला, धन वा मीन राशिमें स्थित होकर लग्नस्थ होय तो जात बालकके समस्त अरिष्ट नष्ट होजाते हैं; किन्तु उक्त राशियोंके भिन्न अन्य राशिमें शनि रहकर लग्नस्थ होनेसे जात बालककी मृत्यु होती है ॥ ८६ ॥

अपरश्च ।

तुङ्गाङ्गिरोद्गते विलम्बे भवेन्नरेन्द्रप्रातिमः प्रसूतः ।

मार्तण्डजे माण्डलिकोऽथवास्थे अन्यत्र लग्नोपगते गतायुः ॥ ८७ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्तण्डमें लिखाहै कि, शनैश्चर यदि उच्च स्थानमें वा बृहस्पतिके घरमें अथवा अपने घरमें स्थित होकर लग्नगत होय तो जात बालक नरेन्द्रके समान अथवा माण्डलिक होता है । और उक्त समस्त स्थानाभिन्न अन्य राशिमें होकर यदि शनैश्चर लग्नगत हो तब जात बालककी मृत्यु होती है ॥ ८७ ॥

इति शन्यरिष्टम् ।

अथ राह्यरिष्टम् ।

राहुश्चतुष्टयस्थो मरणाय वीक्षितो भवति पापः ।

वर्षवदन्ति दशभिः षोडशभिः केचिदाचार्याः ॥ ८८ ॥ (❀)

अर्थ—जन्मलग्नमें चौथे स्थानमें राहु होय और उसपर पाप ग्रहोंकी दृष्टि होय तो जात बालककी दश वर्षमें मृत्यु होती है, किसी २ आचार्यके मतसे इस प्रकार होनेसे सोलह वर्षमें मृत्यु होती है ॥ ८८ ॥

अथ गह्वरिष्टमङ्गः ।

अजवृषभकर्किविलम्बे रक्षति राहुः समस्तरिष्टेभ्यः ।

(•) राह्यरिष्टमाह—राह्यरिति । केन्द्रस्थो राहुः वर्षवदन्तो मरणाय स्यात् । तत्र मरण दशवर्षे इति केचिद्वदन्ति षोडशभिरिति । अत्र च मेघे कृपे कर्कटे च लग्ने स्थिते राहो गह्वरिष्टमङ्गः स्यात् । तथाच सारावल्याम्—‘अजवृषभकर्किविलम्बे’ इत्यादि ।

पृथ्वीपतिः प्रसन्नः कृतापराधं यथा पुरुषम् ॥ ८९ ॥

इति सारावल्याम् ।

अर्थ—अब राहुका अरिष्टमङ्ग कहते हैं । जन्मसमयमें भेष, वृष वा कर्क लग्नमें राहु स्थित होनेसे जात बालक सन अरिष्टोंको दूर करदेता है, जिस प्रकार अपराधी मनुष्यको प्रसन्न होकर राजा छोड़ देता है ॥ ८९ ॥

इति राहुरिष्टम् ।

अथ केत्वारिष्टम् ।

केतुर्यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तस्मिन्प्रसूयते यस्तु ।

रौद्रे सर्पमुहूर्ते वा प्राणैः संत्यज्यते चाशु ॥ ९० ॥ (*)

अर्थ—अब केत्वारिष्ट कहते हैं । राशिचक्रके जिस नक्षत्रमें केतु ग्रह स्थित होय उस नक्षत्रमें, आर्द्रानक्षत्रके मुहूर्तमें वा आश्लेषा नक्षत्रके मुहूर्तमें यदि बालकका जन्म होय तो इस बालककी शीघ्रही मृत्यु होती है ॥ ९० ॥

इति केत्वारिष्टम् ।

अथ द्रेक्षाणारिष्टम् ।

लग्ने ये द्रेक्षाणा निगडाहिविहङ्गपाशघरसंज्ञाः ।

मरणाय सप्तर्षैः क्रूर्युता न स्वपतिदृष्टाः ॥ ९१ ॥ (×)

अर्थ—अब द्रेक्षाणका अरिष्ट कहते हैं । निगड, सर्प, पक्षी और पाशघरसंज्ञक द्रेक्षाण लग्नगत होय और उनपर पापग्रहोंकी दृष्टि होय और उनके स्वामीगणकी उनपर दृष्टि न होय तो जात बालककी सातवर्षमें मृत्यु होती है ॥ ९१ ॥

इति द्रेक्षाणारिष्टम् ।

अथ लग्नाधिपावरिष्टम् ।

लग्नाधिपजन्मपती पष्ठाष्टमरिः फगौ प्रसवकाले ।

अस्तमितौ मरणकौ राशिप्रतिमैर्वदेद्वर्षैः ॥ ९२ ॥ (५)

अर्थ—लग्नके स्वामी और राशिके स्वामीका अरिष्ट कहते हैं । जन्मसमयमें

(•) केत्वारिष्टमाह—केतुरिति । यस्मिन् नक्षत्रे केतुर्भ्युदितः स्थितः तस्मिन् नक्षत्रे रौद्रे मुहूर्ते आर्द्रानक्षत्रमुहूर्ते आश्लेषानक्षत्रमुहूर्ते वा यः प्रसूयते स चाशु तत्क्षणादेन प्राणैर्विमुच्यते त्रियत इत्यर्थः ।

(×) द्रेक्षाणारिष्टमाह—लग्नइति । ये निगडसर्पपक्षपाशघरसंज्ञा द्रेक्षाणास्ते लग्नगताः क्रूर्युता न स्वपतिना दृष्टाः सप्तवर्षमरणाय युः ॥ इति ।

(५) लग्नजन्माधिपावरिष्टमाह—लग्नाधिपजन्मपती इति । लग्नाधिपो जन्मपतिः राश्यधिपो वास्तगतः पष्ठाष्टमरिः फगः सन राशिप्रतिमैर्वर्षैः पष्ठाष्टमहादशवर्षमृत्युकरः स्यात् ।

लग्नका स्वामी ग्रह और राशिका स्वामी ग्रह यदि अस्तामित होकर लग्नके छठे आठवें वा बारहवें स्थानमें स्थित हों तब जात बालककी मृत्यु छठे वा आठवें वर्षमें होती है ॥ ९२ ॥

इति लग्नाधिपादारिष्टम् ।

अथ सौम्यग्रहारिष्टम् ।

सौम्याः पष्ठाष्टमगाः पापैर्वक्रोपसंयुतैर्दृष्टाः ।

मासेन मृत्युदास्ते यदि न शुभैस्तत्र संदृष्टाः ॥ ९३ ॥ (५५)

अर्थ—अब शुभ ग्रहोंका आरिष्ट कहते हैं । जन्मसमय यदि शुभग्रह लग्नके छठे वा आठवें स्थानमें होय और उनपर पापग्रहोंका वा वक्र ग्रहोंकी दृष्टि होय और उनके प्रति अन्य शुभ ग्रहोंकी दृष्टि न होय तो जात बालककी एक महीनेके मध्यमें मृत्यु होती है ॥ ९३ ॥

इति सौम्यग्रहारिष्टम् ।

अथ पापादिग्रहारिष्टम् ।

एकः पापोऽष्टमगः शत्रुगेही शत्रुवीक्षितो वर्षात् ।

मारयति नवं प्रसूतं सुधारसो येन पीतोऽपि ॥ ९४ ॥ (५५५)

अर्थ—अब पापग्रहोंका आरिष्ट कहते हैं । यदि एक पापग्रह जन्मलग्नके आठवें स्थानमें स्थित होकर शत्रुग्रहगत होय अथवा इस पापग्रहके ऊपर शत्रुग्रहकी दृष्टि होय तो जात मनुष्य अमृत पीनेसेभी एकवर्षके मध्यमें कालके गालमें जाताहै ९४

होरायाः सप्तमे सौरिहिंबुकस्थश्च भास्करः ।

अस्मिन्योगे तु र्यो जातः सोलपायुर्भवति प्रिये ॥ ९५ ॥

अर्थ—होराधिपातिके सातवें स्थानमें शनिश्चर और चौथे स्थानमें सूर्य होनेसे इस योगमें जिसका जन्म होय उसकी थोड़ी आयु होती है ॥ ९५ ॥

वसुपष्टगते जीवे समसप्तगते जनौ ।

द्वादशस्थो यदा भानुर्वर्षमेकं न जीवति ॥ ९६ ॥

अर्थ—जात बालककी जन्मलग्नसे आठवें वा छठे स्थानमें वृहस्पति समसप्तगत

(५५) सौम्यग्रहारिष्टमाह—सौम्यइति । सौम्याः शुभग्रहाः पष्ठाष्टमे वा उभयत्र वा स्थिताः पापग्रहैः वक्रिग्रहैर्दृष्टाः सन्तः मासेन मृत्युकरा भवन्ति ते यदि शुभग्रहैर्न दृष्टाः शुभदर्शने तु योगभङ्ग इत्यर्थः । एतेन सर्वत्र एव शुभाः पष्ठाष्टमस्थाः यदि म्युरित्यर्थः ।

(५५५) पापग्रहारिष्टमाह—एकइति । एको वलवान् पापः शत्रुग्रहस्थः शत्रुदृष्टोऽष्टमस्थः सन् वापिकेणामृतभोजिनं नरं मारयति एतेन मरणावश्यकत्वं सूचितम् ॥

शनि और चारहवें स्थानमें सूर्य होनेसे यह बालक एकवर्षभी नहीं जीसकता है ९६ ॥
अथाशुभानि ।

समसप्तगतो भौमो लग्ने भास्करचन्द्रकौ ।

गुरुर्भुगुर्यदा पष्टे तदा कष्टं समादिशेत् ॥ ९७ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि मङ्गल सम राशिमें स्थित होकर सातवें होय और लग्नमें सूर्य और चन्द्रमा स्थित होय और बृहस्पति और शुक्र छठी राशिमें स्थित होय तो जात मनुष्य अत्यन्त कष्ट पाता है ॥ ९७ ॥

अपिच ।

अष्टमस्थो शनिकुजौ भास्करः सोमजस्तथा ।

पष्टे भार्गवदेवश्च भवेन्मृत्युस्तदाचिरात् ॥ ९८ ॥

अर्थ-जन्मसमय आठवें स्थानमें शनि, मङ्गल, सूर्य और बुध यदि स्थित होय और छठे स्थानमें शुक्र होय तो जात बालक शीघ्रही यमालयको गमन करता है ९८
अन्यच्च ।

शुभे लग्ने यदा चन्द्रो जातोऽष्टमनिशाकरः ।

शनैश्चरस्तु बन्धुस्यस्तृतीये मासि नश्यति ॥ ९९ ॥

अर्थ-जन्मसमय चन्द्रमा लग्नमें वा लग्नके आठवें स्थानमें स्थित होय और शनैश्चर यदि चोथे स्थानमें स्थित होय तो जात बालककी तीन महिनेके मध्यमें मृत्यु होती है ॥ ९९ ॥

अपरञ्च ।

प्रमदस्था यदा पापाः सौम्या द्वादशमाश्रिताः ।

तदा मृत्युर्भवेज्जातो देवराजसमो यदि ॥ १०० ॥

अर्थ-जन्मसमय पापग्रहगण सातवें स्थानमें और शुभग्रहगण चारहवें स्थानमें स्थित होय तो जात मनुष्य यदि इन्द्रके समान होय तोभी उसकी अकालमृत्यु होती है ॥ १०० ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

पापत्रयगतः सूर्यो गुरुशुक्रविवर्जितः ।

पापिष्टं कुरुते नित्यमल्पायुश्च न संशयः ॥ १ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि सूर्य तीनों पापग्रहोंके साथ होय और उस स्थानमें बृहस्पति वा शुक्र न होय तो जात मनुष्य पापी और थोड़ी आयुवाला होता है ॥ १ ॥

अन्यच्च ।

पापत्रयगतः सूर्यो गुरुशुक्रविवर्जितः ।

पापिष्टं कुरुते नित्यं पण्डितोऽपि भवेद्यदि ॥ २ ॥

अर्थ—जन्मसमय तीनों पापग्रहोंकसाथ सूर्य होय और बृहस्पति और शुक्र उस स्थानमें स्थित न होय तब जात मनुष्य पण्डित होनेसेभी पापिष्ठ होता है ॥ २ ॥

आपिच ।

कण्टकस्थो यदा सौरिः शुक्रग्रहविवर्जितः ।

रवियुक्तो विशेषेण खलो भवति नान्यथा ॥ ३ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि शनि केंद्रस्थानमें स्थित होकर सूर्यके साथमें स्थित होय और शुक्र उस स्थानमें न होय तो जात मनुष्यकी खल (दुष्ट) प्रकृति होती है ॥ ३ ॥

अपरञ्च ।

लग्नचन्द्रव्ययस्थाने तिष्ठेत्पापग्रहो यदि ।

कृपणः स्यात्तदा जातो दाता सति शुभग्रहे ॥ ४ ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्न और चन्द्रमाके मारहवें स्थानमें पापग्रह स्थित होनेसे जात मनुष्य कृपण होता है और शुभग्रह होनेसे दाता होता है ॥ ४ ॥

अन्यच्च ।

चन्द्रसूयगृहे राहुश्चन्द्रसूर्ययुतो यदि ।

(१) मृत्युस्थानगतश्चैव पशुभिर्हन्यते ततः ॥ ५ ॥

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमा वा सूर्यके क्षेत्रमें राहु स्थित होकर यदि चन्द्रमा और सूर्यके साथ होय और यह स्थान जन्मलग्नके आठवें होय तो जात मनुष्यकी पशुद्वारा मृत्यु होती है ॥ ५ ॥

आपिच ।

शत्रुगृहे यदा सौम्यः शत्रुयुक्तो निरीक्षितः ।

पष्टाष्टमगतश्चन्द्रो हन्यते जलजन्तुभिः ॥ ६ ॥

अर्थ—जन्मसमय बुध शत्रुके घरमें होकर शत्रुके साथ होय और उसपर शुक्रकी दृष्टि होय और चन्द्रमा छठे स्थानमें वा आठवें स्थानमें होय तब जात मनुष्यकी जलजन्तु द्वारा मृत्यु होती है ॥ ६ ॥

(१) मृत्युस्थो मदनस्योऽपि इति पाठान्तरम् ।

प्रकारान्तरञ्च ।

मृत्युस्थो यदि वा भामः शत्रुगेही निरीक्षितः । (२)

एष नाशकरो योगो द्विजह्वानात्र संशयः ॥ ७ ॥

अर्थ-जन्मसमय मङ्गल यदि आठवें स्थानमें रहकर शत्रुग्रहके क्षेत्रमें स्थित होय और उसके ऊपर शत्रुग्रहकी दृष्टि होय तो जात मनुष्यकी सर्पद्वारा मृत्यु होतीहै ७

अथ छेदादियोगः ।

भौमक्षेत्रगते लग्ने रविस्तत्र शनश्चरः ।

पापेन संयुतो वापि कर्णच्छेदी भवेन्नरः ॥ ८ ॥

अर्थ-जन्मलग्न यदि मङ्गलका क्षेत्र होय और उसमें पापग्रहके साथ होकर सूर्य और शनैश्चर स्थित होय तो जात मनुष्यके कानमें छेद होताहै ॥ ८ ॥

अन्यथा ।

पापयुक्तो भृगुसुतो रिपुस्थानगतो यदि ।

जीवो भौमेन सदृष्टः कर्णच्छेदी भवेन्नरः ॥ ९ ॥

अर्थ-जन्मसमय पापग्रहके साथ शुक्र यदि छठे स्थानमें स्थित होय और बृहस्पतिके ऊपर मङ्गलकी दृष्टि होय तो जात मनुष्यके कानमें छेद होताहै ॥ ९ ॥

अपिच ।

कंटकस्थो यदा सौरिः शशियुक्तो भवेद्यादि ।

शुभग्रहा न पश्यन्ति खल्लो भवति नान्यथा ॥ १० ॥

अर्थ-जन्म लग्नके केन्द्रस्थानमें यदि चन्द्रमाके साथ शनैश्चर स्थित होय और उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि न होय तो जात मनुष्य खल्ल (थोडा पंगु) होताहै १०

अपरञ्च ।

शत्रुगेहे यदा सौरिः शत्रुयुक्तो निरीक्षितः ।

एकपादकरच्छेदयोगोऽयं परिकीर्तितः ॥ ११ ॥

अर्थ-शनि शत्रुके घरमें रहकर यदि शत्रुके साथ होय वा उसपर शत्रुकी दृष्टि होय तो जात मालकका एक पदच्छेदन और एक करच्छेदन होता है ॥ ११ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

पापत्रययुतः सोमः शत्रुगेहे व्यवस्थितः ।

शुभग्रहा न पश्यन्ति चक्षुर्नाशो भवेद्भ्रुवम् ॥ १२ ॥

अर्थ-जन्मसमय चन्द्रमा यदि तीनों पाप ग्रहोंके साथ शत्रुग्रहके क्षेत्रमें

(२) शत्रुगेही सहेन्दुनेति क्वचित्पुस्तके पाठः ।

स्थित होय और उसके ऊपर शुभ ग्रहकी दृष्टि न होय तो जात मनुष्यके नेत्रोंका नाश हो जाता है ॥ १२ ॥

अपिच ।

तनुस्थानास्थितो भौमः शनिराहुसुरान्वितः ।

नासाच्छेदकरो योगो मुनिभिः परिकीर्तितः ॥ १३ ॥

अर्थ—जन्मलग्नमें मङ्गल स्थित होकर यदि शनि राहु और सूर्यके साथ होय तब जात मनुष्यके नासिकामें छेद होता है ॥ १३ ॥

अन्यथा ।

मृत्युस्थानगतौ भौमः शनिराहुविवर्जितः ।

नासाच्छेदो भवेद्योग इन्द्रवंशोद्भवस्य च ॥ १४ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि आठवें स्थानमें मङ्गल रहकर शनि और राहुयुक्त न होय तब जात मनुष्य इन्द्रके वंशमें उत्पन्न होनेसे भी उसकी नासिकामें छेद होता है ॥ १४ ॥

अपरञ्च ।

अष्टमस्थो यदा सोमो राहुयुक्तो भवेद्यदि ।

शिरसश्छेदयोगोऽयं विष्णुना परिकीर्तितः ॥ १५ ॥

अर्थ—जन्मलग्नके आठवें स्थानमें राहुयुक्त होकर यदि चन्द्रमा स्थित होय तो जात मनुष्यका शिरश्छेद होता है, इस प्रकार विष्णुने कहा है ॥ १५ ॥

अपिच ।

वज्राघातेन सर्पेण मृत्युस्थेऽकौ ज्वरेण वा ।

यमेन नर आक्रान्तस्ताये भूमौ विनश्याति ॥ १६ ॥

अर्थ—जन्म समय लग्नके आठवें स्थानमें यदि सूर्य होय तब जात मनुष्यकी वज्राघातसे, सर्पद्वारा वा ज्वररोगसे पीडित होकर जलयुक्त भूमिमें मृत्यु होती है ॥ १६ ॥

अन्यथा ।

सूर्यः स्वगृहगतः शुभनिधनं निधनस्थः कुरुते ।

अन्यगृहे बहुदुःखं दत्त्वा प्राणानपहन्ति ॥ १७ ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नका आठवाँ स्थान सूर्यका घर होय और उसमें बृह स्थित हो तो जात मनुष्यकी अनायाससे मृत्यु होती है किन्तु अन्यके देशमें स्थित

होकर सूर्य अष्टमस्थानी होनेसे नानाप्रकारके कष्ट पाकर जात मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ १७ ॥

प्रकारान्तरम् ।

मदनस्थो यदा भानुः शनिभौमावलोकितः ।

रिपुगेही विशेषेण कासरोगी न चान्यथा ॥ १८ ॥

अर्थ-जन्मलग्नके सातमे स्थानमें सूर्य स्थित होकर यदि उनपर विशेष करके शनि और मंगलकी दृष्टि होय तो यह स्थान उसका रिपुगृह होता है तो जात मनुष्यको कासरोग होता है ॥ १८ ॥

अपिच ।

प्रतिपद्युत्तरापाढा नवम्यामेव कृत्तिका ।

पूर्वाभाद्रपदाष्टम्यामेकादश्याञ्च रोहिणी ॥ १९ ॥

द्वादश्याञ्च यदाश्लेषा त्रयोदश्यां यदा मघा ।

एभिर्जातो न जीवेत यदि शक्रसमो भवेत् ॥ २० ॥

अर्थ-प्रतिपदा तिथिमें उत्तरापाढा नक्षत्र, होय इसी प्रकार नवमीमें कृत्तिका, अष्टमीमें पूर्वाभाद्रपदा, एकादशीमें रोहिणी, द्वादशीमें आश्लेषा और त्रयोदशीमें मघा नक्षत्र होय तो इन तिथि नक्षत्रयोगमें जिस बालकका जन्म होय, वह इन्द्रके समान होनेसे भी नहीं जीसक्ता है ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ पताकीवेधः ।

तिर्यग्बद्धगता रेखास्तिप्तो देयाः पताकया ।

युताः कार्या वेदविदा सर्वसङ्गतरेखया ॥ २१ ॥

दक्षस्थाद्गतरेखातो रामं मेपाद्यराजयः ।

पञ्चाष्टयुगमविंशाश्च पङ्कदशेन्द्राग्निसागराः ।

कर्कटान्मीनपर्यन्तमङ्गु देया यथाक्रमम् ॥ २२ ॥ (क)

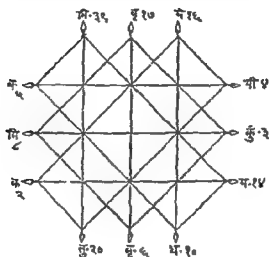
अर्थ-अब पताकीवेधके देखनेकी रीति और उसके लिखनेकी प्रणाली कही जाती है । ऊर्ध्व दिशामें तीन रेखा खींचकर तिर्यग्भावसेभी तीन रेखा रीचनी चाहिये अनन्तर इन सप्तस्त रेखाओंके आगे पताकाका चिह्न बनाकर परस्परका वेध जानना चाहिये । ऊपरकी तीन रेखाओंके मध्यमें दक्षिण दिशाकी रेखाके

(क) “ वेदाग्निमुनिदिकालविशतिद्वयष्टमार्गगाः । मीनादिकर्कटान्ताश्च ह्यद्वा देया यथाक्रमम् ॥ ” इति सारसग्रहे ।

आगेसे बामावर्त्तमें भेषादिके चिह्न रखवे, अनन्तर कर्कमें पांच, सिंहमें आठ, कन्यामें दो, तुलामें बीस, वृश्चिकमें छः, धनमें दश, मकरमें चौदा, कुम्भमें तीन और मीनमें चार इस प्रकारसे अङ्क्योजना करै ॥ २१ ॥ २२ ॥

पाठकगणके सुगमार्थ नीचे पताकीचक्र लिखागया है ।

पताकीचक्रम् ।



बालस्य जन्मकालीनग्रहलग्नमजादियु ।

विन्यस्य चिन्तयेत्प्राज्ञः शुभाशुभं यथाक्रमम् ॥ २३ ॥

शुभदण्डयोगवेधैर्लग्नाद्वालस्य शोभनम् ।

पापदण्डयोगवेधैराश्रयकाद्रिष्टिकालवित् ॥ २४ ॥

अर्थ—बालकके जन्मसमय राशिचक्रके जिस घरमें जो ग्रह होय उनको पताकी चक्रमें रखकर अनन्तर बालकका शुभाशुभ फल जानना चाहिये । यदि बालक शुभ ग्रहोंके दण्डमें उत्पन्न होय और शुभ ग्रह वेधमें होय तो बालकको शुभ होता है और यदि अशुभ ग्रहोंके दण्डमें उत्पन्न होय और अशुभग्रहोंके वेधमें होय अब इस बालककी राशिका अङ्कपरिमित दिन, मास या वर्षमें अरिष्ट होती है ॥ २३ ॥ २४ ॥

बलेऽधिके दिनं मध्ये मासो हनि च हायनम् ।

लग्नस्य दक्षिणे वामे सन्मुखे ग्रहसंस्थिते ॥ २५ ॥

अर्थ—यदि पापग्रह दण्डके स्वामी होकर बलवान् होय तो अङ्कपरिमित दिनमें, मध्यबल होनेसे अङ्कसंख्याक मासमें और हान्यबल होनेसे अङ्कसंख्याक

वर्षमें अगिष्ट प्रदान करते हैं लग्नमें वा लग्नके दक्षिणमें वा वाममें अथवा सन्मुखमें पापग्रह स्थित होनेसे वेध होता है, वेधस्थानमें जो अङ्क होय, उन्ही अङ्क-संख्याक दिनमें, मासमें वा वर्षमें बालकको अरिष्ट होता है ॥ २५ ॥

कर्के मीनधनुभ्याञ्च हरेः कीटघटेन च ।

स्त्रियास्तौलिमृगाभ्याञ्च घटे मीनेन कन्यया ॥ २६ ॥

वृश्चिके कलशे चैव पञ्चास्ये कलशे तथा ।

धनुषो मृगार्कभ्यां मकरे धनुषा स्त्रिया ॥ २७ ॥

घटस्य कीटसिंहाभ्यां मीलनं कार्थितं बुधैः ।

मीने कर्कितुलाभ्याञ्च मीनस्त्रीधनुषा त्वजे ॥ २८ ॥

तुलाकर्कितुलैर्द्वन्द्वे हरेः कीटघटे वृषे ।

सिंहवद्वेध एतेषु वामदक्षिणसन्मुखे ॥ २९ ॥

अर्थ-पताकी वेधमें किस २ राशिके साथ किस २ राशिका वेध होता है अब उसको कहते हैं यथा,—कर्कका मीन और धन राशिके साथ वेध होता है; इसी-प्रकार सिंहका वृश्चिक और कुम्भके साथ, कन्याका तुला मकरके साथ, तुलाका मीन और कन्याके साथ, वृश्चिकका कुम्भ और सिंहके साथ, धनका मकर और कर्कके साथ, मकरका धन और कन्याके साथ, कुम्भका वृश्चिक और सिंहके साथ और मीनका कर्क और तुलाके साथ वेध (मिलन) होता है पण्डितगणने इसप्रकार कहा है । अपर मेष राशिका मीन, कन्या और धनके साथ वेध होता है, इसीप्रकार वृषका सिंह, कुम्भ और वृश्चिकके साथ मिथुनका कर्क, तुला और मकरराशिके साथ वेध होता है । सिंहराशिका जिस प्रकार वाममें, दक्षिणमें और मध्यमें वेध होता है अन्यान्य राशिकाभी उसी प्रकारसे वेध होता है ॥ २६-२९ ॥

पताकीचक्रस्य शुभाशुभविवेचनात्प्रमाणीभूताङ्गपरिमाणम् ।

एकोनाविंशतिः कर्के सिंहे सप्तदशैव तु ।

पट्त्रिंशदवलायान्तु पट्त्रिंशतिस्तुलाधरे ॥ ३० ॥

वृश्चिके सिंहवज्ज्ञेयमूनत्रिंशच्छरासने ।

पट्त्रिंशं मकरे ज्ञेयं कुम्भे सप्तदश स्मृताः ॥ ३१ ॥

नवयुगे तथा मीने मेषे पट्दश एव च ।

वृषे सप्तदश प्रोक्ता युग्मेऽङ्कहरलोचने ॥

त्रितयाङ्कादियं संख्या दिनमासाब्दनिर्णये ॥ ३२ ॥

अर्थ—पताकी वेधचक्रमें पूर्वोक्त तीन २ राशिका वेध होनेसे उन तीनों राशियोंके अङ्कयोग करनेसे जो संख्या होती है उतने संख्यक दिनमें, वा मासमें—अथवा वर्षमें बालकका अरिष्ट होता है । इन तीनों राशियोंके मिलनाङ्कोंमें जो जो संख्या होती है अब उनको कहते हैं । कर्कके १९ ऊनविंशति, सिंहके १७ सप्तदश, कन्याके ३६ षट्त्रिंशत्, तुलाके २६ षड्विंशति, वृश्चिकके १७ सप्तदश, धनके २९ ऊनविंशत्, मकरके २६ षड्विंशति, कुम्भके १७ सप्तदश, मीनके २९ ऊनविंशत्, मेषके १६ षोडश, वृषके १७ सप्तदश, और मिथुनके ३९ ऊनचत्वारिंशत् अङ्क होते हैं ॥ ३०-३२ ॥

एकाङ्काद्विग्रहाङ्काद्वात्रिग्रहाङ्काच्च कुत्रचित् ।

पापदण्डे भवेद्दृष्टिः शुभदण्डे शुभं भवेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त समस्त राशिके अङ्क जोड़ करके किसी स्थानमें एक राशिके अङ्कमें किसी स्थानमें दो राशियोंके अङ्कमें जोड़ करके उसमें और किसी स्थानमें पूर्वोक्त मिलनाङ्क संख्यक मासादिमें पापग्रहके दण्डमें बालक उत्पन्न होनेसे अरिष्ट होता है और शुभ ग्रहके दण्डमें बालकका जन्म होनेसे शुभ होता है ॥ ३३ ॥

अथ पताकीचके ग्रहवेधफलम् ।

राहुकेत्वर्कसारैः पापेर्विद्धो युतोऽशुभः ।

तदन्यैर्युतो विद्धस्तु लग्नराशिः शुभप्रदः ॥ ३४ ॥

अर्थ—जात बालकके लग्नमें वा लग्नके वेधस्थानमें राहु, केतु, सूर्य, शनि वा मङ्गलके स्थित होनेसे उस बालकको अशुभ होता है; और उक्त समस्त ग्रहभिन्न शुभग्रह होनेसे शुभ फल प्राप्त होता है, परन्तु चन्द्रमामें वा चन्द्रमाके वेधस्थानमें अशुभ होनेसे अशुभ और शुभग्रह होनेसे शुभ फल होता है ॥ ३४ ॥

अन्यच्च ।

अशुभे दण्डसंयोगे सर्वत्र पुण्यवर्जिते ।

वालस्य मरणं शीघ्रं यदि पापैः समान्वितम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—जन्मसमय दण्डका स्वामी यदि अशुभ ग्रह होय और उसीका वेध होय और वेधस्थानमें पाप ग्रह होय तो जातक बालककी शीघ्रही मृत्यु होती है ॥ ३५ ॥

अपरञ्च ।

अशुभग्रहदण्डे तु सर्वत्र पापवर्जिते ।

बालस्य कुशलं सर्वं शुभैर्यदि समन्वितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ--पापग्रहोंके दण्डमें जन्म होनेसेभी वेधस्थानमें शुभग्रह यदि होय तब बालकको शुभ होताहै ॥ ३६ ॥

अपिच ।

अशुभो दण्डनाथो हि वेधश्चेत्तेन लभ्यते ।

मरणं तत्र वक्तव्यं बालस्य नान्यथा भवेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ--दण्डका स्वामी यदि पाप ग्रह होय और वेधस्थानमें भी पापग्रह होय तो जात बालककी मृत्यु होती है ॥ ३७ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

पापस्य दण्डमात्रे तु तद्योगो वेधवर्जिते ।

बालस्य कुशलं तत्र शुभैर्यदि समन्वितम् ॥ ३८ ॥

अर्थ--पापग्रहके दण्डमें जन्म होकर पापग्रहका वेध न होय और शुभ ग्रहके साथ दण्डके स्वामीका वेध होय तो जात बालकको शुभ होताहै ॥ ३८ ॥

इति पताकीवेधः ।

अथ पुरुषगणनम् ।

यस्मिन्नक्षे वसेद्भानुस्तदादित्रिणि मस्तके ।

मुखे त्रीणि प्रदेयानि एकैकं स्कन्धदेशयोः ॥ ३९ ॥

द्वेद्वे देये च बाहुभ्यां हस्ताभ्याञ्च द्वयं तथा ।

हृदये पञ्च भानि स्युस्तथैकं नाभिमण्डले ॥ ४० ॥

गुह्ये स्यादेकनक्षत्रं जानुभ्याञ्च द्वयं तथा ।

प्रतिपादे द्वयं कृत्वा जानीयाद्बालजन्मानि ॥ ४१ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ--अब जात पुरुषके गिननेकी रीति कहते हैं । बालकके जन्म समय सूर्य जिस नक्षत्रमें स्थित होय उस नक्षत्रसे तीन नक्षत्रोंको जात मनुष्यके मस्तकमें जानना चाहिये, इसी प्रकार तिसके बाद तीन नक्षत्र मुखमें, दो नक्षत्र स्कन्ध-

देशमें चार नक्षत्र दोनों सुजाओंमें; दो नक्षत्र हाथमें, पांच नक्षत्र हृदयमें, एक नक्षत्र नाभिदेशमें, एक नक्षत्र गुदमें, दो नक्षत्र जानुमें और प्रत्येक पादमें दोदे नक्षत्र योजना करै ॥ ३९-४१ ॥



अथ अङ्गविशेषे जन्मनक्षत्रपतनफलम् ।

स्वल्पायुः पादयोजातो जानुनि स्याद्विदेशगः ।

परदाररतो गुह्ये नर्त्तको नाभिमण्डले ॥ ४२ ॥

हृदये त्वीश्वरो जातो हस्तयोश्चैव तस्करः ।

बाह्वोजातः सुशीलः स्यात्स्कन्धयोर्नृपतिर्भवेत् ।

मुखेजन्मी च मिष्टाशी शिरसि स्यात्स भूपातिः ॥ ४३ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ-जात पुरुषके अङ्गविशेषमें जन्मनक्षत्रपतनका फल कहते हैं । जन्मनक्षत्र पुरुषके दोनों पैरोंमें पडनेसे जात बालककी अल्पायु (चोडीउम्र) होती है; इसी प्रकार जानुदेशमें पडनेसे विदेशगामी, गुह्यमें पडनेसे परदारासक्त, नाभिदेशमें पडनेसे नर्त्तक, हृदयमें पडनेसे धनशाली, हाथमें पडनेसे तस्कर (चोर), सुजाओंमें पडनेसे सुशील, स्कन्ध देशमें पडनेसे नृपति, मुखमें पडनेसे मिष्टान्नभोक्ता, और जात पुरुषके मस्तकमें जन्मनक्षत्र पडनेसे जात बालक भूपाति (राजा) होताहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

इति पुरुषगणनम् ।

अथ बालानां दन्तोद्गमफलम् ।

जातः स दन्तः पितृमातृहन्ता

तातं विहन्त्यात्प्रथमे तु मासे ॥

अम्बां द्वितीये सहजं तृतीये

मासे चतुर्थे शुभकारकः स्यात् ॥ ४४ ॥

मिष्टान्नभोजी सुभगः सुताख्ये

पष्ठे सुखी पण्डितकल्पबुद्धिः ।

ततोऽधिकः स्याद्बलवान्धनाख्ये (१)

मासेऽष्टमे वित्तसुखैर्विहीनः ॥ ४५ ॥

शूरः प्रतापी नवमे मृत्युश्च दशमे तथा । (२)

एकादशे द्वादशे च सुखी च सुभगो भवेत् ॥ ४६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अब जात बालकके दाँत निकलनेका फल कहते हैं—यदि दाँतोंके साथ बालकका जन्म होय तो पिता और माताकी मृत्यु होती है, प्रथम महीनेमें दाँत निकलनेसे बालकके पिताकी मृत्यु होती है; इसी प्रकार दूसरे महीनेमें माताकी, तीसरे महीनेमें दाँत निकलनेसे भाईकी मृत्यु होती है, चौथे महीनेमें शुभ, पाँचवें महीनेमें मिष्टान्नभोजन करनेवाला और धनशाली होता है छठे महीनेमें सुखी और पण्डितके समान, सातवें महीनेमें बलवान् और आठवें महीनेमें बालकके दाँत निकलनेसे द्रव्यहीन और सुखहीन होता है और नववें महीनेमें, दाँत निकलनेसे वीर और प्रतापशाली होता है. दशवें महीनेमें मृत्यु ग्यारहवें और बारहवें महीनेमें दाँत निकलनेसे सुखी और सुभगी होता है ॥ ४४-४६ ॥

अशुभदन्तजननप्रतीकारः ।

अष्टौ पुतलकान्कृत्वा सुगन्धैर्गन्धकैस्तथा ।

स्नातस्सु संक्रमे चापि स्नापयेच्छुक्लपुष्पकैः ॥ ४७ ॥

स्नानं संक्रमणस्याधः शम्भोर्दर्शनमन्ततः ।

होमं विप्रार्चनञ्चैवमशुभे दन्तदर्शने ॥ ४८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अब अशुभ दाँतोंके निकलनेका प्रतीकार कहते हैं । सुगन्धित गन्ध-द्वारा आठ पुतलाओंको बनवाकर संक्रमण कालमें स्नान कियेहुए जलसे सफेद फूलोंके साथ इन पुतलाओंको स्नान करावे तदनन्तर महादेवजीका दर्शन होम और ब्राह्मणोंका पूजन करनेसेही अशुभ दाँतोंका दोष दूर होजाताहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

(१) ततोऽधिकः स्याद्बलवान्गुणादयः इति पाठः ।

(२) “शूरः प्रतापी नवमे च मासे मृत्युश्च दशादशमे तथैकादशे द्वादशे मासि सौख्यं दृष्टोऽपि शान्तः सुतगो भवेत् ॥” इति ग्रन्थान्तरे पाठः ॥

अथारिष्टमङ्गयोगः ।

एकोऽपि केन्द्रभवने नवपञ्चमे वा

भास्वन्मयूखविमलीकृतदिग्विभागः ।

निःशेषदोषमपहत्य शुभं प्रसूतं

दीर्घायुपं विगतरोगभयं करोति ॥ ४९ ॥ (क)

अर्थ—अब अरिष्टमङ्गयोग कहते हैं. अस्तादिदोषराहित कोई एक शुभग्रह यदि जन्मलग्नमें वा लग्नके चौथे, सातवें, दशवें, नववें, अथवा पांचवें स्थानमें स्थित होय तो जात बालकके समस्त अरिष्ट दूर होकर दीर्घायु और रोगभयप्रसूति दूर होते हैं कोई २ आचार्य कहते हैं कि, केवल बृहस्पति उक्त समस्त स्थानोंमें रहनेसेभी यही फल होता है ॥ ४९ ॥

अन्यच्च ।

राहुस्त्रिपष्ठलाभे लग्नात्सौम्यैर्निरीक्षितः सद्यः ।

नाशयति सर्वदुरितं मारुत इव तृणसंघातम् ॥ ५० ॥

अर्थ—जन्मलग्नसे तीसरे, छठे वा ग्यारहवें यदि राहु होय और राहुपर शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तो वायु जिस प्रकार तृणको दूर करदेती है उसी प्रकार जात बालकके सर्व दोष दूर होजाते हैं ॥ ५० ॥

दिवा सूर्यो निशि शशी लग्नस्यैकादशे स्थितः ।

कोटिदोषं निहन्त्याशु गर्गस्य वचनं यथा ॥ ५१ ॥

अर्थ—दिनमें जन्म होनेसे बालकके जन्मलग्नसे ग्यारहवें स्थानमें सूर्य और रात्रिमें जन्म होनेसे बालकके जन्मलग्नसे ग्यारहवें स्थानमें चन्द्रमाके स्थित होनेसे कोटि दोष यह सूर्य और चन्द्रमा दूर करदेते हैं; इस प्रकार गर्गमुनिने कहा है ॥ ५१ ॥

(क) उक्तानां सर्वेषामरिष्टानां मङ्गमाह—एकोऽपीति । एकोऽपि शुभो गुरुर्वा शुको वा बुधो वा भास्वन्मयूखविमलीकृतदिग्विभागः स्फुटकिरणप्रकाशीकृतदिग्विभागः । केन्द्रस्थो नवपञ्चमस्यो वा यदा भवेत् तदा निःशेषदोषं सर्वारिष्टं प्रहत्य दूरीकृत्य प्रसूतं जातं दीर्घायुपं विगतरोगभयं करोति । केचित्तु एकः शुभो गुरुर्वेत्याहुस्तद्वत् एकपदस्य वैयर्थ्यादपि शब्दस्वरसाच्च । यत्तु सारावल्याम् । “सर्वानिमानतिबलः स्फुरदंशुनालो लग्नोपगः प्रशमयेत्सुराजमन्त्री” इति । तदेतद्देश कर्तनपरमिति । अन्येऽरिष्टमङ्गाः सारावल्यामुक्ताः । राहुस्त्रिपष्ठलाभे लग्नात्सौम्यैर्निरीक्षितः सद्यः । नाशयति सर्वदुरितं मारुत इव तृणसंघातम् । शीघ्रोदयेषु सर्वगंगनाविवासेभिः सृते । प्रकृतिरप्येवमारिष्टं विनीयते पृथग्भावान्निरस्यम् ॥ ” इति । प्रकृतिरप्येवमारिष्टेस्तादिदोषराहित्यैरित्यर्थः ।

चन्द्रः सम्पूर्णतनुः सौम्यक्षगतः स्थितश्च शुभस्यांशे ।

प्रकरोत्यरिष्टभङ्गं विशेषतः शुक्रसंहृष्टः ॥ ५२ ॥

अर्थ-चन्द्रमा यदि जन्मसमयमें पूर्णरूपसे शुभग्रहके क्षेत्रमें होय वा शुभ-ग्रहके अंशमें स्थित होय और शुभग्रहकी चन्द्रमापर दृष्टि होय तो निश्चयही अरिष्टभङ्ग होजाताहै ॥ ५२ ॥

सौम्यद्वयान्तर्गतः संपूर्णः स्निग्धमण्डलः शशभृत् ।

निःशेषरिष्टहन्ता भुजङ्गलोकस्य गरुड इव ॥ ५३ ॥

अर्थ-स्निग्धशील सम्पूर्ण चन्द्रमा यदि जन्मसमयमें दो शुभग्रहोंके मध्यमें स्थित होय तो गरुड जिस प्रकार नागोंका नाश करताहै उसी प्रकार जात बाल-कके संपूर्ण अरिष्ट चन्द्रमा विनाश करदेताहै ॥ ५३ ॥

शुक्रः पञ्चसहस्राणि बुधः पञ्चशतानि च ।

लक्षमेकन्तु दोषाणां हन्याच्चैवोदितो गुरुः ॥ ५४ ॥

अर्थ-शुक्रके पांच हजार दोष दूर होते हैं, बुधके पांचसौ दोष दूर होजाते हैं और बृहस्पतिके उदयकालमें लाख दोष दूर होजाते हैं ॥ ५४ ॥

सप्ताष्टमपष्टाः शशिनः सौम्या घ्नन्ति कष्टफलम् ।

पापैरमिश्रचाराः कल्याणघृतं यथोन्मादम् ॥ ५५ ॥

अर्थ-जन्मसमय चन्द्रमाके सातवें आठवें और छठे स्थानमें यदि शुभ ग्रह-गण स्थित होय तो कल्याणघृत जिस प्रकार उन्मादको नष्ट करताहै उसी प्रकार जात बालकके अरिष्टोंका नाश होजाताहै ॥ ५५ ॥

(१) कण्टकस्थो यदा जीवः सप्तमे यदि भार्गवः ।

बुधे च लग्नसंप्राप्ते शतं जीवति बालकः ॥ ५६ ॥

अर्थ-जन्मसमय लग्नके केन्द्रस्थानमें बृहस्पति सातवें स्थानमें शुक्र और बुध लग्नस्थानमें स्थित होय तो जातबालक सौवर्षतक जीताहै ॥ ५६ ॥

तृतीयैकादशे चैव नवमे पञ्चमे भृगौ ।

सप्तमस्य गते जीवे जिवेदेन्दुशतं नरः ॥ ५७ ॥ (२)

अर्थ-जन्मलग्नके तीसरे, ग्यारहवें, नववें वा पांचवें शुक्र और समराशिगत होकर यदि बृहस्पति सातवें होय तो जात बालक सौवर्षतक जीताहै ॥ ५७ ॥

(१) कण्टकस्थः । इति पाठान्तरम् ।

(२) समराशी यदि सप्तमः स्यात्तस्मिन्गते जीव इत्यर्थः ॥

सर्वैर्गगनभ्रमणैर्दृष्टे लग्ने भवेन्महीपालः ।

बलिभिः समस्तसौख्यो विगतभयो दीर्घजीवी च ॥ ५८ ॥

अर्थ—जन्मसमय समस्त बलवान् ग्रहोंकी दृष्टि लग्नपर होनेसे जातबालक गजा होता है, और सर्व प्रकारके सुखोंका भोगनेवाला भवहीन और दीर्घजीवी होता है ॥ ५८ ॥

बुधो वा भार्गवो वापि गुरुर्वा केन्द्रसंस्थितः ।

शतायुर्बलवान्विज्ञो जातो गोत्राधिपो भवेत् ॥ ५९ ॥

अर्थ—बुध, शुक वा बृहस्पति यदि जन्मलग्नके केन्द्रस्थानमें स्थित हो तब जात बालक विज्ञ और गोत्राधिपति होकर सौवर्षपर्यंत जीता है ॥ ५९ ॥

चन्द्रं पश्येद्यदा शुकः शुकं पश्येद्दिवाकरः ।

दीर्घायुः स्वगुणैश्चर्यो धनवांश्चोपजायते ॥ ६० ॥

अर्थ—जन्मसमयमें शुक यदि चन्द्रमाको देखे और सूर्य शुकको देखता होय तो जात बालक दीर्घायुष्मान् और अपने गुणोंसे ऐश्वर्यशाली और धनवान् होता है ॥ ६० ॥

नवमस्थो गुरुभृगू सप्तमस्थः कुजो यदि ।

बुधे लग्नगते च व दीर्घायुश्च भवेत्तदा ॥ ६१ ॥

अर्थ—जन्मलग्नके नवमें स्थानमें बृहस्पति और शुक सातवें स्थानमें मङ्गल और बुध लग्नमें स्थित होनेसे जात बालककी दीर्घायु होती है ॥ ६१ ॥

गुरुलग्ने तथा शुकः समसप्तगतो बुधः ।

चन्द्रश्चैकादशे केन्द्रे आयुः सत्यो जितेन्द्रियः ॥ ६२ ॥ (ॐ)

अर्थ—जन्मलग्नमें बृहस्पति और शुक समराशिस्थ स्थित सातवें स्थानमें बुध और ग्यारहवें वा केन्द्रस्थानमें चन्द्रमाके होनेसे जात बालक दीर्घायुयुक्त सत्य-वादी और जितेन्द्रिय होता है ॥ ६२ ॥

गुरुशुक्रौ शुभैर्दृष्टौ भवेतां केन्द्रगौ यदा ।

तदा रिष्टानि भज्यन्ते दीर्घायुश्च नरो भवेत् ॥ ६३ ॥

अर्थ—जन्मसमय बृहस्पति और शुक लग्नके केन्द्रस्थानमें स्थित हों और उन-पर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि होय तो जात बालकके समस्त आरिष्ट दूर होकर दीर्घायु होता है ॥ ६३ ॥

(•) एकादश इति रात्रिजातपरम् । “दिवा सूर्यो निशि कृशी लग्नश्चैकादशे स्थितः” इति वचनात् ।

नवपञ्चमगो जीवो भृगुः सप्तमगो यदा ।

बुधो लग्नगतश्चैव सुदीर्घायुस्तदा भवेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ—लग्नके नववें पांचवें वा सप्तमराशिगत बृहस्पति वा शुक्र और लग्नस्य बुध होनेसे जातबालक दीर्घायु होता है ॥ ६४ ॥

निधनारिगते चन्द्रे लग्नात्सञ्जायते यदि ।

अथ केन्द्रगते जीवे जीवेदन्दशतं नरः ॥ ६५ ॥

अर्थ—जन्मलग्नसे आठवें वा छठे चन्द्रमा और केन्द्रस्थानमें बृहस्पतिके होनेसे जात बालककी शतवर्षकी आयु होती है ॥ ६५ ॥

समस्तैर्वालिभिः सौम्यैर्लग्नं यदि समीक्षते ।

तदा विगतभीर्नूनं दीर्घजीवी च जायते ॥ ६६ ॥

अर्थ—जन्मसमय बलवान् समस्त शुभग्रह यदि लग्नको सम्यक् प्रकारसे देखते हों तो जात बालक भयहीन और दीर्घजीवी होता है ॥ ६६ ॥

लग्नात्पष्टाष्टगाः सौम्याः पापैर्युतवीक्षिताः ।

जनयन्ति हि निर्भीतिं निरोगं दीर्घजीविनम् ॥ ६७ ॥

अर्थ—जन्मलग्नके छठे वा आठवें स्थानमें शुभग्रहगण होय और पापग्रहके साथ न होय अथवा पापग्रहकी उपर'दृष्टि न होय तो जात बालक निर्भय निरोगी और दीर्घजीवी होता है ॥ ६७ ॥

उच्चस्थोऽपि यदा चन्द्रो गुरुभौमयुतो यदि ।

धनवान्गुणसम्पन्नो दीर्घायुर्मन्त्रवित्ररः ॥ ६८ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि बृहस्पति और मङ्गलके साथ चन्द्रमा अपने उच्च स्थानमें वास करता होय तो जात बालक धनाढ्य गुणवान् दीर्घायुसम्पन्न और मन्त्रज्ञ होता है ॥ ६८ ॥

अथ गुरुचन्द्रयोगः ।

गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे चन्द्रक्षेत्रगते गुरौ ।

गुरुचन्द्रो भवेद्योगो देवानामपि दुर्लभः ॥ ६९ ॥

अर्थ—जन्मसमय बृहस्पतिके क्षेत्रमें (धन वा मीनमें) यदि चन्द्रमा होय और चन्द्रमाके क्षेत्रमें (कर्कराशिमें) बृहस्पति होय तो उसको गुरुचन्द्रयोग कहते हैं यह योग देवताओंकी दुर्लभ होता है ॥ ६९ ॥

अथ जीवयोगः ।

जीवोत्सप्तमगश्चन्द्रोऽप्यथवा जीवसंयुतः ।

जीवयोगोऽयमित्याहुर्ज्योतिःशास्त्रपरायणाः ॥ ७० ॥

अर्थ—जन्मसमय बृहस्पतिसे सातवें स्थानमें चन्द्रमा अथवा बृहस्पति युक्त होय तब उसको ज्योतिर्विन्द पाण्डितगण जीवयोग कहते हैं ॥ ७० ॥

अथ जीवयोगफलम् ।

बहुविभवपरिच्छदोऽथ भोक्ता गुणपरिपूर्णो नृपपूजितः ।

बहुयुवातिरक्तोऽथ दानशीलो भवति चिरायुर्नरो जीवयोगे ॥ ७१ ॥

अर्थ—जीवयोगमें मनुष्य उत्पन्न होनेसे अत्यन्त धनवान् परिच्छद (वस्त्रभूषणादि) सम्पन्न, भोक्ता गुणवान् राजसन्मानित अनेक युवतियोंके साथ प्रीति रखनेवाला दानशील और दीर्घायुयुक्त होता है ॥ ७१ ॥

इति जीवयोगफलम् ।

अपिच ।

सकलरिपुनिहन्ता सर्वसौख्योपभोक्ता

सकलगुणनिधिः स्यात्सर्वलोकेप्रियो हि ॥

सकलकलुषहीनः सर्वविद्यासमर्थो

भवति गुणनिधानो जीवदृष्टे हिमांशौ ॥ ७२ ॥

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमापर बृहस्पतिकी दृष्टि होनेसे जातबालक समस्त शत्रुओंका नाश करनेवाला, समस्त सुखोंका उपभोक्ता, सर्व गुणोंका आधार, समस्त लोकोंका प्रियपात्र, सर्व प्रकारके पापोंसे रहित और सर्वविद्याओंका जाननेवाला होता है ॥ ७२ ॥

अन्यत्र ।

तुङ्गी त्रिकोणी स्वगृही च जीवो युतो भवेद्वा यदि चन्द्रदृष्टः ।

तदा सुवीर्यः सुमतिः सुमूर्तिर्भवेन्नरोऽसौ गजवाजिपूर्णः ॥ ७३ ॥

अर्थ—जन्मसमयमें बृहस्पति चन्द्रमाके साथ होय वा बृहस्पतिपर चन्द्रमाकी दृष्टि होकर यदि तुङ्गस्य, त्रिकोण (नवें वा पांचवें) हो, अथवा अपने घरमें (धन वा मोनमें) स्थित होय तो जातबालक अत्यन्त बलवान्, सुबुद्धिसम्पन्न, सुन्दराङ्गयुक्त और दायी घोडा आदिमा स्वामी (मालिक) होता है ॥ ७३ ॥



अपरञ्च ।

यत्र यत्र स्थितो भौमो गुरुणापि समन्वितः ।

तत्रोच्चं फलमाप्नोति स्यादुच्चं त्रिगुणं फलम् ॥ ७४ ॥

अर्थ-जन्मसमय मंगल बृहस्पतिके साथ होकर जिस किसी राशिमें स्थित होय उसमेंही उच्चफल प्रदान करता है; और यदि बृहस्पतिके साथ उच्चस्थानमें स्थित होय तो उक्त फलका त्रिगुना फल होता है ॥ ७४ ॥

इति रिष्टभगयोगः ।

अथ दारिद्र्ययोगः ।

लग्नस्य दशमे शून्ये रवेरेकादशे तथा ।

चन्द्रस्य चाष्टमे शून्ये त्रिशून्ये च दरिद्रता ॥ ७५ ॥

अर्थ-अब दरिद्रयोग कहते हैं । यदि जन्मलग्नसे दशवें स्थानमें सूर्यसे ग्यारहवें स्थानमें और चन्द्रमासे आठवें स्थानमें यदि शून्य होय अर्थात् कोई ग्रह स्थित न होय तो जातमनुष्य दरिद्र होता है ॥ ७५ ॥

अन्यच्च ।

शशिना सहितो मन्दः शुक्रभौमयुतो यदि ।

तेन दारिद्र्ययोगेन समुद्रमपि शोषयेत् ॥ ७६ ॥

अर्थ-जन्मकालमें शनि ग्रह शुक्र, मङ्गल और चन्द्रमाके साथ होनेसे जात बालकका दारिद्र्ययोग होता है उस दारिद्र्ययोगसे समुद्रभी सूख जाता है भावार्थ यह कि, ऐसे योगसे अतुलधनकाभी नाश होजाता है ॥ ७६ ॥

अथ वंशनाशयोगः ।

रविणा सहितो मन्दो राहुयुक्तो भवेद्यदि ।

वंशनाशकरो योगः कथितो मुनिपुङ्गवैः ॥ ७७ ॥

अर्थ-अब वंशनाशक योग कहते हैं जन्मसमयमें यदि सूर्य, शनि और राहु एक राशिमें स्थित होय तो जात मनुष्यका वंश नाश होजाता है ॥ ७७ ॥

अथ वृक्षमरणयोगः ।

सितासितगृहे भानुर्यदा मदनमृत्युगः ।

सितभौमार्किभिर्दृष्टो वृक्षान्मरणमादिशेत् ॥ ७८ ॥

अर्थ-जन्मसमय सूर्य यदि शुक वा शनिके क्षेत्रमें स्थित होकर लग्नके सातवें

वा आठवें स्थानमें होय और उसके ऊपर शुक्र मङ्गल और शनैश्वरकी दृष्टि होय तो जात मनुष्यकी वृक्षपरसे गिरकर मृत्यु होती है ॥ ७८ ॥

अथ शून्यमृत्युयोगः ।

लग्नपो धर्मपो नीचे दृश्यते च सुरारिणा ।

नेक्षते लग्नपो धर्ममाकाशे मरणं भवेत् ॥ ७९ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि लग्नाधिपति और नवमाधिपति नीच घरमें स्थित होय और राहुकी इन दोनों ग्रहोंके ऊपर दृष्टि होय और लग्नाधिपति धर्मस्थानको न देखता होय तो जातमनुष्यकी आकाशमण्डलमें मृत्यु होती है ॥ ७९ ॥

अथ वर्त्ममृत्युयोगः ।

लग्नपो व्ययपो नीचे नीचस्थग्रहवीक्षिते ।

नेक्षते लग्नपो लग्नं मृत्युः स्यात्पथि बन्धने ॥ ८० ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नाधिपति और द्वादशाधिपति नीचस्थानमें स्थित हों और नीच स्थानमें स्थित ग्रहोंकी दृष्टि होय और लग्नाधिपति लग्नस्थानको न देखता होय तो जातमनुष्यकी मार्गमें बन्धनरूपसे मृत्यु होती है ॥ ८० ॥

अन्यच्च ।

चरे च निधने तीर्थे स्थिरे च भृगुमण्डले ।

व्यात्मके लग्नसंयोगे म्रियते हृद्वर्त्मानि ॥ ८१ ॥

अर्थ—चरराशिमें निधनस्थान होनेसे तीर्थ स्थानमें मृत्यु होती है स्थिर राशि आठवें होनेसे ऊँचे स्थानपरसे गिरकर मृत्यु होती है और व्यात्मक राशि मृत्यु स्थानमें होनेसे बजारमें वा मार्गमें मृत्यु होती है ॥ ८१ ॥

अथ नीकामृत्युयोगः ।

लग्नपो धर्मपो द्वौ तु भवेतां पापसंयुतौ ।

नेक्षते मृत्युपो मृत्युं नीमध्ये मरणं भवेत् ॥ ८२ ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नाधिपति और नवमाधिपति यदि पापग्रहोंके साथ होय और अष्टमाधिपति अष्टमस्थानको न देखता होय तो जात मनुष्यकी नीकामें मृत्यु होती है ॥ ८२ ॥

अथ कारागारेमृत्युयोगः ।

लग्नपो धर्मपो नीचे रिपुयुक्तो भवेद्यदि ।

नेक्षते मृत्युपो मृत्युं कारागारे मृतिर्भवेत् ॥ ८३ ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नका स्वामी और नववें स्थानका स्वामी नीचे घरमें रहकर पाप ग्रहोंके साथमें होय और आठवें स्थानका स्वामी आठवें घरको न देखता होय तब जात मनुष्यकी कारागार (जेलखाना) में मृत्यु होती है ॥ ८३ ॥

अथ गृहे मृत्युयोगः ।

लग्नपो बन्धुपो वापि युतो दृष्टोऽथ खेचरैः ।

नेक्षत मृत्युपो मृत्युं गृहमध्ये मृतिर्भवेत् ॥ ८४ ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नका स्वामी और चौथे स्थानका स्वामी यदि शत्रु ग्रहके साथ हो वा उनपर शत्रुग्रहोंकी दृष्टि होय और आठवें स्थानका स्वामी आठवें स्थानको न देखता होय तो जात मनुष्यकी घरमें मृत्यु होती है ॥ ८४ ॥

अथ सपत्नीकमृत्युयोगः ।

जायेज्ञो मृत्युपो द्वौ तु राजावेकत्र संस्थितौ ।

मृत्युपो वीक्षते लग्नं म्रियते भार्यया सह ॥ ८५ ॥

अर्थ—सातवें स्थानका मालिक और आठवें स्थानका मालिक यदि जन्मसमय एक राशिमें स्थित होंय और आठवें स्थानका मालिक यदि लग्नको देखता होय तो जात मनुष्यकी भार्या (स्त्री) के साथ मृत्यु होती है ॥ ८५ ॥

अपिच ।

लग्नपः स्मरगश्चापि मृत्यौ स्यातामुभौ यदि ।

स्थितौ द्रेक्षाण एकस्मिन्म्रियते भार्यया सह ॥ ८६ ॥

अर्थ—जन्मसमयमें लग्नका मालिक और सातवें स्थानका मालिक यदि आठवें स्थानके एक द्रेक्षाणमें स्थित होय तो जात मनुष्यकी स्त्रीके साथ मृत्यु होती है ॥ ८६ ॥

अन्यच्च ।

मृत्युपो लग्नपश्चापि लग्ने स्यातामुभौ यदि ।

स्थितौ द्रेक्षाण एकस्मिन्म्रियते भार्ययासह ॥ ८७ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि आठवें स्थानका मालिक और लग्नका मालिक जन्म-लग्नके एक द्रेक्षाणमें स्थित हों तो जात मनुष्यकी स्त्रीके साथ मृत्यु होती है ॥ ८७ ॥

अपरश्च ।

आत्मके निधनं यस्य युग्मके निधनेश्वरः ।

सह मृत्युं ब्रजेदेव नारी चेद्व्यभिरीणी ॥ ८८ ॥

अर्थ—जात मनुष्यका यदि आठवें स्थान द्व्यात्मक लग्न होय और युग्म-
राशिमें आठवें स्थानका मालिक स्थित होय तब जात मनुष्यकी भार्या व्यभि-
चारीणी होनेसेभी पतिके साथ मृत्युको प्राप्त होती है ॥ ८८ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

चन्द्रात्सप्तमगः पापो यस्याः शुभयुतो भवेत् ।

सा तु नीचग्रहस्था स्यान्प्रियते पतिना सह ॥ ८९ ॥

अर्थ—जन्मकालमें चन्द्रमाके सातवें स्थानमें स्थित पाप ग्रह यदि शुभग्रह
युक्त होय तो जात स्त्री नीच जातिकीभी होनेसे पतिके साथ मृत्युको प्राप्त
होती है ॥ ८९ ॥

अथ तीर्थमृत्युयोगः ।

धर्माधिपः पश्यति धर्मभावं लग्नाधिपः पश्यति लग्नभावम् ।

मृत्युं यदा पश्यति मृत्युनाथस्तदा सुतीर्थे नियतं मृतिः स्यात् ९० ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नके नववें स्थानका मालिक ग्रह यदि धर्मभावको देखे
लग्नका मालिक ग्रह यदि लग्नभावको देखे और आठवें स्थानका मालिक यदि
आठवें स्थानको देखता होय तो जात मनुष्यकी निश्चयसे तीर्थमें मृत्यु होती है ९०

उच्चगेहगते चन्द्रे दशमे जीववीक्षिते ।

मृत्यौ शुके धने जीवे मृत्युस्तीर्थजलाशये ॥ ९१ ॥

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमा यदि उच्च स्थानमें स्थित होय और बृहस्पति दशवें
स्थानको देखता होय अथवा आठवें स्थानमें शुक्र और धन (दूसरे) स्थानमें
बृहस्पति स्थित होय तो जात मनुष्यकी तीर्थजलमें मृत्यु होती है ॥ ९१ ॥

निधनं गुरुणा युक्तं गुरुणा दृश्यतेऽथवा ।

एवं भृगुसुतेनापि तीर्थे च मरणं भवेत् ॥ ९२ ॥

अर्थ—जन्मलग्नके आठवें स्थानमें यदि बृहस्पति वा शुक्र स्थित हो अथवा
बृहस्पति वा शुक्रकी दृष्टि होय तो जात मनुष्यकी तीर्थस्थानमें मृत्यु होती है ९२

येषां गुरुर्भृगुसुतः शशिनः क्षपेशो

दुश्चिह्नधर्मनिधनाधिपतिं प्रपश्येत् ।

तेषामनन्तधनधर्मसुखानि नित्यं
दीर्घायुरन्तसमये खलु तीर्थलाभः ॥ ९३ ॥

अर्थ-जन्मसमय जिस मनुष्यकी लग्नके तीसरे स्थानमें और नववें स्थानमें
बृहस्पति, शुक्र, बुध और चन्द्रमा स्थित होय अथवा आठवें स्थानके मालि-
कको यह समस्त ग्रह देखतेहों तो वह मनुष्य सर्वदा अत्यन्त धनका मालिक
और अनेक प्रकारके धर्म कार्य कर दीर्घायु लाभकरके अन्तसमयमें तीर्थलाभ
करता है ॥ ९३ ॥

आनृत्यं पितुरादत्ते तीर्थं मरणमेव च ।
नयोत्पितृकुलं पुण्यं बन्धुगे भृगुनन्दने ॥ ९४ ॥

अर्थ-जन्मसमयमें शुक्र लग्नके तीसरे चौथे स्थानमें होनेसे वह मनुष्य पिताको
अनृणी करके पितृकुलका उद्धार करता है और उसकी तीर्थमें मृत्यु होती है ९४ ।

निधननिधननाथो धर्मपो मृत्युपो वा
शुभखगभवनस्थो यस्य वापि प्रपश्येत् ।
निवसति बहुकालं मानयुक्तः सुतीर्थं
विसृजति निजदेहं रामनाम प्रजल्पन् ॥ ९५ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यके जन्मलग्नके आठवें स्थानमें आठवें स्थानका मालिक होय
अथवा नववें स्थानका मालिक और आठवें स्थानका मालिक शुभग्रहके क्षेत्रमें
स्थित हों वा देखतेहों तो वह मनुष्य चिरकालमें सन्मानके साथ तीर्थमें वास-
करके रामनामका जप करते करते तीर्थस्थानमें ही प्राणको छोड़ देता है ॥ ९५ ॥

विधुर्वा सागरे यस्य कुजो वा यस्य युग्मके ।
निधनं पुण्यतीर्थेषु निधनेशो भवेद्यदि ॥ ९६ ॥

अर्थ-जन्मसमय चन्द्रमा यदि चौथे स्थानमें होय अथवा मङ्गल युग्मराशेमें
स्थित होय और मृत्युका मालिक यदि मृत्युस्थानमें होय तो जात मनुष्यकी
तीर्थस्थानमें मृत्यु होती है ॥ ९६ ॥

दशमे रविणा सौम्ये द्वितीये जीवसंयुते ।
मृत्युपो लग्नपो लग्ने मृतिस्तीर्थं निरामये ॥ ९७ ॥

अर्थ-जन्मलग्नके दशवें स्थानमें सूर्यके साथ बुध और दूसरे स्थानमें बृह-
स्पति होनेसे और आठवें स्थानका मालिक और लग्नका मालिक लग्नमें स्थित
होनेसे जात मनुष्यकी तीर्थ स्थानमें मृत्यु होती है ॥ ९७ ॥

मृत्यो दृष्टे जीवशुके लग्ने च सूर्यनन्दने ।

धर्मेशो वीक्षते लग्नं ब्रह्मपुत्रे मृतिर्भवेत् ॥ ९८ ॥

अर्थ—जन्मलग्नके आठवें स्थानमें यदि बृहस्पति और शुक्रकी दृष्टि होय और शनैश्वर लग्नके होय और नववें स्थानका मालिक लग्नको देखता होय तो जातमनुष्यकी ब्रह्मपुत्रमें मृत्यु होती है ॥ ९८ ॥

लग्नेशे ग्रहसंयुक्ते मृत्युस्थे रजनीकरे ।

जीवक्षेत्रगते मृत्यौ मृत्युः पुष्करसंज्ञिते ॥ ९९ ॥

अर्थ—जन्मलग्नका मालिक यदि अन्यग्रहके साथमें होय और चन्द्रमा आठवें स्थानमें होय और आठवाँ बृहस्पतिके क्षेत्र होय तो जातमनुष्यकी पुष्कर तीर्थमें मृत्यु होती है ॥ ९९ ॥

चरे यदि स्यान्निधनाधिनाथस्तस्याधिपः पश्यति चेद्विलग्नम् ।

तदा सुतीर्थे नियतञ्च मृत्युर्धर्माधिपः पश्यति धर्मभावम् ॥ १०० ॥

अर्थ—जन्मसमयमें यदि लग्नके आठवें स्थानका मालिक चर राशिमें होय और लग्नके मालिककी लग्नपर दृष्टि होय और नववें स्थानका मालिक नववें स्थानको देखता होय तो जातमनुष्यकी निरन्तर सुन्दर तीर्थमें मृत्यु होती है ॥ १०० ॥

अथ गङ्गामृत्युयोगः ।

त्रयो ग्रहा यदैकत्र लग्नराशिविवर्जिताः ।

भुक्त्वा च विविधान्भोगान्प्रियते जाह्नवीजले ॥ १ ॥

अर्थ—यदि किसी मनुष्यके जन्मसमय लग्न और राशि भिन्न किसी घरमें तीन ग्रहोंका वासस्थान होय तो वह मनुष्य अनेक प्रकारके भोगोंसे काल व्यतीत करके अन्तसमयमें गङ्गाजीके जलमें उसका मृत्यु होता है ॥ १ ॥

वृषे सूर्ये गुरौ धर्मे लग्नस्थे दैत्यपुङ्गवे ।

मृत्यौ सौम्येक्षिते युक्ते म्रियते जाह्नवीजले ॥ २ ॥

अर्थ—जन्मसमय वृषराशिमें सूर्य, लग्नके नववें स्थानमें बृहस्पति, लग्नमें शुक्र और आठवें स्थानमें बुधकी दृष्टि वा बुधयुक्त होनेसे जातमनुष्यको गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ २ ॥

चन्द्रे कुम्भे हरौ लग्ने भौमक्षेत्रे बृहस्पतौ ।

मृत्युपावेक्षिते धर्मे म्रियते जाह्नवीजले ॥ ३ ॥

अर्थ—जिसका मिहाराशिमें जन्म होय उन मनुष्यके जन्म समय यदि चन्द्रमा

कुम्भराशिमें और बृहस्पति मङ्गलके घरमें स्थित होय और आठवें स्थानका मालिक यदि नववें स्थानको देखता होय तो जात मनुष्यकी मृत्यु गंगाजलमें होती है ॥ ३ ॥

गुरुणा सहिते चन्द्रे मृत्यौ दृष्टे शुभग्रहे ।

लग्नपो मृत्युपो धर्मे म्रियते जाह्नवीजले ॥ ४ ॥

अर्थ-जन्मसमयमें बृहस्पति और चन्द्रमाका एक घरमें वासस्थान होय और आठवें स्थानमें शुभग्रहोंकी दृष्टि होय और लग्नका मालिक और आठवें स्थानका मालिक नववें स्थानमें स्थित होय तो जात मनुष्यकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ ४ ॥

केन्द्रगौ गुरुशुक्रौ तु मृत्यौ दृष्टे शुभग्रहे ।

चरेऽष्टमे गुरो युक्ते म्रियते जाह्नवीजले ॥ ५ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि लग्नके केन्द्रस्थानमें बृहस्पति और शुक्र स्थित होय और आठवें स्थानमें शुभग्रहोंकी दृष्टि होय अथवा नृत्यु स्थान यदि चरराशि होय और उसमें बृहस्पति स्थित होय तो इस मनुष्यकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ ५ ॥

गुरुणा सहितश्चन्द्रो लग्नपो यदि पुण्यगः ।

स्मरपो व्ययपो लाभो मृत्युः स्याज्जाह्नवीजले ॥ ६ ॥

अर्थ-जन्मसमयमें यदि बृहस्पति और चन्द्रमा एक घरमें होय, लग्नका मालिक नववें स्थानमें स्थित होय और सातवें स्थानका मालिक और बारहवें स्थानका मालिक ग्यारहवें स्थानमें स्थित होय तो जात मनुष्य गङ्गाजलमें प्राण त्याग करता है ॥ ६ ॥ ७

लग्नपः पुण्यपश्चापि मृत्यौ स्यातामुभौ यदि ।

स्थितौ द्रेक्काण एकस्मिन्म्रियते जाह्नवीजले ॥ ७ ॥

अर्थ-जन्मकालमें लग्नका मालिक और नववें स्थानका मालिक यदि आठवें स्थानमें एक द्रेक्काणमें स्थित हों तब जात मनुष्यकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ ७ ॥

स्वोच्चस्थे शुक्रजीवे तु द्वादशे भूमिजे गुरौ ।

लग्ने वा शुक्रजीवे तु म्रियते जाह्नवीजले ॥ ८ ॥

अर्थ-जन्मसमय शुक्र और बृहस्पति यदि उच्चस्थानमें हों अथवा बारहवें स्थानमें मंगल और बृहस्पति होय वा लग्नमें शुक्र और बृहस्पति स्थित होय तो जात मनुष्यकी गंगाजलमें मृत्यु होती है ॥ ८ ॥

लग्ने शुक्रे स्मरे जीवे धर्मस्थे रजनीकरे ।

मृत्युं पश्यति लग्नेशो म्रियते जाह्नवीजले ॥ ९ ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नमें शुक्र, सातवें बृहस्पति और नववें स्थानमें चन्द्रमा होय और लग्नका मालिक मृत्यु स्थानको देखता हो तो जात मनुष्यकी गङ्गा-जलमें मृत्यु होती है ॥ ९ ॥

धर्मे गुरौ सचन्द्रे च मृत्युपो वीक्षते मृतम् ।

दशमे जीवशुक्रे तु म्रियते सागरे जले ॥ १० ॥

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमाके साथ बृहस्पति यदि नववें स्थानमें होय और आठवें घरका मालिक आठवें घरको देखता होय अथवा बृहस्पति और शुक्र दशम स्थानमें स्थित हों तो जात मनुष्यकी समुद्रके जलमें मृत्यु होती है ॥ १० ॥

लग्नस्य दक्षिणे चन्द्रे वामे चैव दिवाकरे ।

कृत्वा पुण्यसहस्राणि म्रियते जाह्नवीजले ॥ ११ ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नके दक्षिणभागमें चन्द्रमा और वामभागमें सूर्य होनेसे जातमनुष्य सहस्रपुण्य कर्म करके गंगाजलमें प्राण त्याग करताहै ॥ ११ ॥

पुण्यराशिगतः सूर्यो निधने चन्द्रमा यदि ।

कृत्वा पुण्यसहस्राणि म्रियते जाह्नवीजले ॥ १२ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि सूर्य नववें स्थानमें और चन्द्रमा आठवें स्थानमें स्थित होय तो जातमनुष्य हजारों पुण्य कर्म करके गंगाजलमें मृत्युको प्राप्त होताहै १२

पुण्यराशिगते सौम्ये निधने चन्द्रमा यदि ।

भुक्त्वा च सकलान्भोगान्म्रियते जाह्नवीजले ॥ १३ ॥

अर्थ—जन्मसमय शुभ ग्रह यदि पुण्यराशिमें हों और चन्द्रमा आठवें स्थानमें स्थित होय तो जातमनुष्य अनेक प्रकारके ऐश्वर्यादिकोंको भोग कर अन्तसमय गङ्गाजलमें प्राणत्याग करता है ॥ १३ ॥

मीने कुंभे मृगे चैव कुलीरे च विशेषतः ।

जीवयुक्तेऽथवा दृष्टे हरिपादोदके व्यसुः ॥ १४ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि मीन, कुम्भ, मकर वा कर्क राशिमें बृहस्पति स्थित होय अथवा उक्त समस्त राशियोंमें उसकी दृष्टि होय तो जातमनुष्यकी विष्णु-पादोदक गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ १४ ॥

निधनेशो यदा युग्मे गुरुस्तेन युतो यदि ।

भुक्त्वा च विविधान्भोगान्म्रियते जाह्नवीजले ॥ १५ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि आठवें स्थानका मालिक बृहस्पतिके साथ होकर युग्म राशिमें स्थित होय तो जात मनुष्य अनेक प्रकारके भोगोंको भोगकर अन्तसमय उसकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ १५ ॥

निधनेशो यदा युग्मे गुरुशुक्रावलोकितः ।

कृत्वा पुण्यसहस्राणि म्रियते जाह्नवीजले ॥ १६ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि आठवें स्थानका मालिक युग्मराशिमें होय और उत्तर बृहस्पति और शुक्रकी दृष्टि होय तो जात मनुष्य हजारों पुण्य कर्म करता है और अन्तसमय उसकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ १६ ॥

कर्कटे जीवशुक्रौ च धर्मक्षे चन्द्रमा यदि ।

तस्य भाग्यं विजानीयाद्गङ्गायां मरणं भवेत् ॥ १७ ॥

अर्थ-जन्मसमयमें यदि बृहस्पति और शुक्र कर्क राशिमें हों और चन्द्रमा यदि नववें स्थानमें होय तो उस मनुष्यकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ १७ ॥

(क) बुधादित्यसमो योगो न भूतो न भविष्यति ।

चिरकालं सुखं भुक्त्वा म्रियते जाह्नवीजले ॥ १८ ॥

अर्थ-बुधादित्ययोगके समान दूसरा योग न हुआ और न होय जिस मनुष्यका बुधादित्य योगमें जन्म होय वह चिरकाल सुखोंको भोगकर अन्तसमय उसकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ १८ ॥

विनाशराशौ यदि पुण्यगेहे निजाधिपेनैव विलोकितः स्यात् ।

मृत्यो भवेत्सौम्ययुतोऽपि नूनं प्राणास्त्यजेज्जडुसुतासुनारे ॥ १९ ॥

अर्थ-जन्मसमय आठवें स्थानका मालिक और नववें स्थानका मालिक यदि आठवें स्थान और नववें स्थानको देखते हों और शुभग्रह मृत्यु स्थानमें स्थित हो तो उस मनुष्यकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ १९ ॥

पुण्याधिपः पुण्यगृहे च केन्द्रे केन्द्राधिपैर्योग इहेव नीतः ।

राजाधिराजो गुणिनां वरेण्यो गङ्गाजले सुञ्चति जीवितं सः ॥ २० ॥

अर्थ-जन्मसमय मनुष्यकी लग्नमें नववें स्थानमें नववें स्थानका मालिक और

(क) “निरपेक्षो हि यद्राशौ रविः सौम्येन सयुः । एरुर्वा हि भवेद्योगो बुधादित्यः स एव हि ॥ ” इति बुधादित्ययोगरूपनम् ।

केन्द्रस्थानमें केन्द्रस्थानका मालिक स्थित होय तो वह मनुष्य अत्यन्त गुणवान् और राजाधिराज होकर अन्तसमयमें गंगाजलमें मृत्युको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

चतुर्भिः सप्तभिर्वापि निधनं यदि दृश्यते ।

भुक्त्वा भोगान्भूतियुतानन्ते च जाह्नवीं लभेत् ॥ २१ ॥

अर्थ—जन्मलग्नके आठवें स्थानपर यदि चार ग्रहोंकी वा सात ग्रहोंकी दृष्टि होय तो जात मनुष्य अनेक प्रकारके ऐश्वर्यादिकोंको भोगता है और अन्तसमय गंगाजलमें मृत्यु होती है ॥ २१ ॥

बुधे लग्नगते चैव दशमे रोहिणीपतौ ।

जाह्नव्यां हि तदा मृत्युर्नात्र कार्या विचारणा ॥ २२ ॥

अर्थ—जन्मलग्नमें बुध और लग्नके दशवें स्थानमें चन्द्रमाहोनेसे जात मनुष्यकी निश्चयही गंगाजलमें मृत्यु होती है ॥ २२ ॥

चरराशौ स्थिते सूर्ये लग्नस्थश्चन्द्रमा यदि ।

वसिष्ठादिमुनिवाक्यं गङ्गायां मरणं भवेत् ॥ २३ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि चरराशिमें सूर्य और लग्नमें चन्द्रमा स्थित होय तो जातमनुष्यकी गंगाजलमें मृत्यु होती है; इसप्रकार वसिष्ठादि मुनिमणने कहा है ॥ २३ ॥

धर्मगोहे यदा चन्द्रो बुधशुक्रावलोकितः ।

ते धर्मचारिणो भूत्वा मज्जन्ति सुरदीर्घिकाम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जन्मलग्नके नववें स्थानमें चन्द्रमा होय और उसको बुध और शुक्र देखने हों तो जातमनुष्य धार्मिक होकर अन्तसमय गङ्गालाभ करता है ॥ २४ ॥

पुण्यराशिगतश्चन्द्रः पुष्करे च दिवाकरः ।

कृत्वा पुण्यसहस्राणि त्रियते जाह्नवीजले ॥ २५ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि चरराशिमें चन्द्रमा और स्थिरराशिमें सूर्य स्थित होय (नववीं राशिमें चन्द्रमा और दशवीं राशिमें सूर्य इस प्रकार भी किसी आचार्यने कहा है) तो जातमनुष्य हजारों पुण्यका कर्मकरके गंगाजलमें अन्तसमय प्राण त्यागता है ॥ २५ ॥

अथ काशीमरणयोगः ।

लग्ने जीवे सशुके च मृत्युयुक्ते निशाकरे ।

मृतिं पश्यति लग्नेशो मृतिं काश्यामवाप्नुयात् ॥ २६ ॥

अर्थ-जन्मलग्नमें यदि बृहस्पति और शुक्र स्थित हों और आठवें स्थानमें चन्द्रमा होय और लग्नका मालिक मृत्युस्थानको देखता होय तो जात मनुष्य काशीधाममें मृत्युको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

लग्ने सिंहे शनौ पष्ठे मिथुने जीवसंयुते ।

मृतिं पश्यति लग्नेशो वाराणस्यां मृतिर्भवेत् ॥ २७ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यकी जन्मलग्न सिंह होय, लग्नके छठे स्थानमें शनि होय, मिथुनमें बृहस्पति होय और लग्नका मालिक आठवें स्थानको देखता हो तो जात मनुष्यकी काशीमें मृत्यु होती है ॥ २७ ॥

लग्नेशः पूर्णदृष्ट्या तु मृत्युभावं प्रपश्यति ।

लग्नं वा रात्रिपो मृत्यां काश्यां मृत्युं समादिशेत् ॥ २८ ॥

अर्थ-जन्म लग्नके मालिककी यदि आठवें स्थानमें वा जन्मलग्नमें सम्पूर्ण दृष्टि होय और चन्द्रमा यदि आठवें स्थानमें स्थित होय तो जात मनुष्यकी काशीमें मृत्यु होती है ॥ २८ ॥

सप्तमस्थे जीवशुके दशमे रजनीकरे ।

मृतिं पश्यति लग्नेशो वाराणस्यां मृतिर्भवेत् ॥ २९ ॥

अर्थ-जन्मलग्नके सप्तम स्थानमें यदि बृहस्पति और शुक्र और दशमें स्थानमें चन्द्रमा स्थित होय और लग्नका मालिक आठवें स्थानको देखता होय तो जात मनुष्यकी काशीमें मृत्यु होती है ॥ २९ ॥

दशमे जीवशुक्रो तु मृतिं पश्यति मृत्युपः ।

लग्ने वा लग्नपो भौमः काश्यां मृत्युं समादिशेत् ॥ ३० ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि दशमें स्थानमें बृहस्पति और शुक्र स्थित हों और आठवें स्थानका मालिक आठवें स्थानको देखता होय और लग्नमें लग्नका मालिक वा मङ्गल स्थित होय तो जात मनुष्यकी काशीमें मृत्यु होती है ॥ ३० ॥

जीवेन दृश्यते चन्द्रश्चन्द्रेण दृश्यते गुरुः ।

तदा मृत्युं व्रजेदेव काशीक्षेत्रे न संशयः ॥ ३१ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि बृहस्पतिकी चन्द्रमापर और चन्द्रमाकी बृहस्पतिपर दृष्टि होय तो जात मनुष्यकी काशीमें मृत्यु होती है ॥ ३१ ॥

निधने च स्थितो भौमो बुधक्षेत्रे भवेद्यादि ।

काशीवासो भवेत्तस्य शशी केन्द्रे विशेषतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जन्मलग्नका आठवाँ स्थान यदि बुधका क्षेत्र होय और मङ्गल उस स्थानमें स्थित होय और चन्द्रमाका केन्द्रस्थानमें वासस्थान होय तो जात मनुष्यका काशीमें वास होता है ॥ ३२ ॥

अथ जन्ममरणयोर्मोक्षज्ञानम् ।

पष्ठाष्टमकण्टकगो गुरुश्चे मीनसंज्ञे विलग्नं वा ।

शेषैरवलैर्जन्मानि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः ॥ ३३ ॥ (क)

अर्थ—जन्मसमय वा मृत्यु समय यदि बृहस्पति छटे आठवें लग्नमें चौथे सातवें वा दशवें स्थानमें होकर उच्च स्थानमें स्थित होय अथवा मीनराशिमें होय और अन्य ग्रह हीनबल होय तो जात वा मृतक मनुष्यको मोक्ष प्राप्त होती है इस प्रकार विद्वानोंने कहा है ॥ ३३ ॥

अथ स्त्रियां रूपादिनिरूपणम् ।

स्त्रीपुंसोर्जन्मफलं तुल्यं किन्त्वत्र चन्द्रलग्नस्थम् ।

तद्वलयोगाद्गुराकृतिश्च सौभाग्यमस्तमये च ॥ ३४ ॥ (ख)

अर्थ—अब स्त्रियोंके रूपादिको वर्णन करते हैं स्त्री और पुरुषके जन्मफलके

(क) मोक्षगतिनिर्णयमाह- पठेति । उच्च स्थितो गुरुः पष्ठेऽष्टमे कण्टके केन्द्रे स्थितो यदि जन्मकाले मरणकाले वा स्थातदा ज्योतिर्विदो मोक्षगतिमाहुः । यदि भावसानान्तलग्ने वा इति पाठस्तदा भावसानराश्यन्तो मीनराशिः तस्मिन् लग्ने स्थितो गुरुः । यदि स्थातदा शेषग्रहेरवलैर्जन्मानि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः । अत्र च गुरुश्चो मीनलग्नश्च यदि स्यादिति सौभरे ॥ प्रलापो हेय एव तथा लग्न इति प्रथमान्तनिर्देशस्यैवोचितत्वात् । पञ्चमपष्ठाष्टमकेन्द्रे ग इत्यनेनैव सिद्धे भावसानलग्ने इत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेश्च । तथा बृहज्जातके-गुरुरय रिपुकेन्द्रच्छिद्रगः स्वोच्चसंस्थ उदयति भवनान्त्यसौम्यभागे च मोक्षः । यदि भवति बलेन प्रोत्थितास्तत्र शेषाः प्रलपति यदि जीवस्तस्य निर्वाण-मोक्षः ॥ इति ।

(ख) इदानीं स्त्रीजातकमाह-स्त्रीपुंसोरिति । जन्मफलं स्त्रीपुंसोस्तुल्यं पुंसो यत्फलमुक्तं स्त्रिया अप्येतत् इत्यर्थः । अत्र स्त्रीषु यदुत्तमं च रानयोगादि-तत्तत्पातिषु वाच्यम् । तथाच लघुजातके “पुजन्मफलं यदुत्तमे न स्त्रीषु पातिषु तत्तासाम्” इति । किन्तु चन्द्रलग्नस्थं तद्वलयोगादिति वपुः शरीर शरीरस्य रूपशीलादि ज्ञातव्यं तथाचाकृतिराकारोऽवयवः लग्नचन्द्रस्या ज्ञातव्या तयोर्मध्ये यो बली तद्वलाद्वाच्या-इत्यर्थः । तथा लग्नादस्तासमये सप्तमे सौभाग्यं ज्ञातव्यं पातिश्च ज्ञातव्यः । अत्र केचिद्वग्नवत् चन्द्रादपि स्त्री वाच्यामांत वदन्ति । तत्र केवलं वपुर्मात्रं लग्नचन्द्रस्थमित्युक्तं नान्यत अत्रच सामान्य-

स्थानमें यदि शुभग्रह होय तो उस स्त्रीकीही मृत्यु होजाती है ॥ ३६ ॥

अपिच ।

ओजे लग्नेन्द्रोः स्त्री दुःशीला शील्युता युग्मे ।

शून्ये बले कदर्यः पतिश्चरेऽस्ते प्रवासी स्यात् ॥ ३७ ॥ (ङ)

अर्थ—स्त्रियोंका जन्म ओज अर्थात् अयुग्म लग्नमें होनेसे अथवा जन्मचन्द्रमा

(ङ) चन्द्रलग्नस्थ वपुराकृतिश्चेति यदुक्तं तत्फलमाह—ओज इति । ओजेविषमग्रह-
स्थितयोल्लेखेन्द्रोः सतोः स्त्रीदुःशीला पुरुषप्रकृतिः स्यात् युग्मलग्नेन्द्रोःशीलयुता स्वभा-
वस्था स्यात् मित्रे मिश्रफलमूहनीयम् तथा लघुजातके “युग्मक्षे लगेन्द्रोः प्रवृत्तिस्था
रूपशीलगुणयुक्ता ओजे पुरुषाकारा दुःशीला दुःखिता चैव” इति । अत्रच शुभपाप-
दर्शनात् गुणयुक्ता । गुणहीना च ज्ञातव्या । सप्तमस्थानात्प्रतिज्ञानमाह—शून्य इति । ग्रह-
शून्ये बलरहिते चास्ते सप्तमस्थाने पतिः कदर्यः कापुरुषः स्यात् चरे च सप्तमस्थाने
पतिर्निस्त्वप्रवासी स्यात् अत्रच शुभग्रहदर्शने शुभफलं स्यात् । तथा बृहज्ज्ञानके “शून्ये
कापुरुषोऽबलेऽस्तभवने सीम्यग्रहावीक्षिते क्रूरेऽस्ते बुधमन्दयोश्चगृहे निर्य प्रवासा-
श्रितः” इति । अत्रच सौभरेः प्रलापः प्रहसनमेवोति । अत्र च लग्नस्य यावन्नवांशः सप्तम-
ग्रहस्य तावति नवांशे शुभग्रहसम्यन्धिनि सति सुभगा स्यात् । सप्तमे पापग्रहनवांशे
पापवीक्षिते व्याधियोनिर्दुर्भगा स्यात् । तथा बृहज्ज्ञानके “कौजेऽस्ते हेमे सौरिणाव्याधि
योनिश्चारुश्रोणी वल्लभा मद्गदाश्री ।” अत्र च द्रव्वाणात्मनी पुञ्जान बृहज्ज्ञानके उक्त तन्म
झलय मयोन्यते । “आदिनिभागे मेपम्य कञ्चो गुरुपयवृतः । क्रोधनो रक्तेनश्च
पुमान्कृष्णो दगसदः । मेपे द्वितीये नारी स्यात्तज्जा भक्ष्येषु लोलुपा कुम्भाकृतिर्वाजि-
श्रुती तृपार्त्ता लोहिताकृतिः । मेपे तृतीये कर्माथी दारुणे निर्भयः पुमान् । कलाज्ञः
कपिलः क्रूरः सत्यर्शाचविर्षाजितः ॥ १ ॥ वृषस्य प्रथमे नारी तृपार्त्ता स्यात्पतिव्रता । मूलो-
दरी दग्धपदा स्वल्पकेशी प्रियम्बदा । द्वितीये छागधनस्तृपार्त्ता मलिनाम्बरः । वृष-
मकन्यः कलाभिज्ञः कुशरः सर्वकमर्षु । वृषस्थान्ते हस्तितल्पशरीरः पित्रलः पुमान् । उद्य
पादः मृगमदन्तो मृगलोमाकुलाश्रयः ॥ २ ॥ मियुनप्रथमे नारी कुर्वती कर्म निष्कलम् ।
हीनप्रजोच्छ्रितमुमा सतीरुषान्विता भवेत् । द्वितीये पुरुषः शूरो धनुष्मान्गरुडाननः ।
अन्ते धनुष्माद्युत्पादिरुजो रत्नवानसुधीः ॥ ३ ॥ कर्कशादे हस्तिनायः शूरास्यः
फलाभिभू । कुटिलप्रिहयप्रविः पुरुषो जायते महान् । द्वितीये कर्कशा पञ्चाक्षिता नारी
गनस्थिता । अन्ते प्रियश्चिपीदास्यो नोवाणिन्यपरः पुमान् ॥ ४ ॥ सिंह्राये जम्बुका
कारो मृधकुम्भुरानःस्वनः । मातापितृपरित्यक्तः पुरुषो मलिनाम्बरः । द्वितीये स्वाकृति-
कुष्णाजिनकम्बलधानपुमान् । लताग्रनासी धन्वी च मिहवत्स्याद्गुरासदः । अन्ते पुमाः
वृक्षमुतो वानरोपमचेष्टितः । दीर्घश्मश्रुदण्डधरो मनेच्छुक्षितमूर्धजः ॥ ५ ॥ कन्याये सह
कन्याभिर्गच्छन्ती मलिनाम्बरा । पुष्पप्रकीर्णहृम्बेन लक्षिता कन्यया भवेत् । मध्यस्त-
न्यशिरायामो ऐरावो रोमशः पुमान् । अन्ते गौरी पुत्रहीना धीतपत्रममग्निना ॥ ६ ॥
उलाये मानकुशलतुलान्मृलक्षितः । वीर्यामध्यगतोमारो विस्मिन्त्युत्पन्नो भवेत् ।
मण्ये ह्यपार्त्तमृषितः गृध्रास्यः नरशान्तिनः । अन्ते धनुष्मान्दीर्घास्यो भिषको

अयुग्मगात्रिमें होनेसे वह दुःशीला होती है। मातृवों स्थान ग्रहशून्य वा बलशून्य होनेसे पाति कापुरुष होता है चरगात्रि मातृवों स्थानका होनेसे स्त्रीका पाति नित्य प्रवामी होता है ॥ ३६ ॥

अथ ग्रहाणां गोचरयोगफलवचनम् ।

हरिर्मांसं निशानाथः सपाददिवसद्वयम् ।

पक्षत्रयं भूमिपुत्रो बुधोऽष्टादश वासरान्

वर्षमेकं सुराचार्यश्चाष्टाविंशतिं भृगुः ।

शनिश्चाद्धद्वयं वर्षं स्वर्भानुः सार्द्धवत्सरम् ॥ ३८ ॥

एवं प्रमाणात्सकलाः स्वराशि भुजते ग्रहाः ।

वरुणीप्रगतिश्चेत्स्याद्भौमादि पञ्चकेऽन्यथा ॥ ३९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब ग्रहाके गोचरम रहनेका समय कहते हैं, सूर्य एक राशिमें एक मही-
नेतर रहता है, इसी प्रकार चन्द्रमा मगदो दिन, मङ्गल पैंतालिस दिन, बुध अठारह
दिन, वरुण पैंतीस वर्ष, शुक्र अठ्ठाईस दिन, अनेश्वर अठ्ठाई वर्ष और गुरु डेढ़
वर्षतक एक राशिमें रहता है । ग्रहोंका स्वाभाविक नियम उक्त प्रकारसे एक एक
राशिमें जानना चाहिये, किंतु मङ्गल बुध, वरुण, शुक्र, और शनि इन पाँच ग्रहाकी
प्रगति और शीघ्रगति द्वारा कभी २ उक्त समयकेन्यूनधिक होजाता है ॥ ३८-३९ ॥

गन्तव्यम् ॥ ७ ॥ बुधश्च प्रथमे नारी वस्त्रालङ्कारयुक्ता । स्थानच्युता नदी तीण
रत्न प्राप्ता मनोहरा । मध्ये स्थाने सुख लिप्सुर्नारी कूम्भघटाकृति । अन्ते वृहद्विपीडा
स्यश्चर पथादिभीषण ॥ ८ ॥ धनुष प्रथमे धनी मनुष्यास्योऽश्नपद्वि । मध्ये स्वरूपा
गौरी स्थानादि भद्रासनास्थिता । धनुस्तृतीये गौराङ्ग श्मश्रुता दण्डधारक । वीर्यराज
वधरो विक्रयी पुरुषो भवेत् ॥ ९ ॥ मकरप्रथमो रौद्रमुखो रज्जुधर पुमान् । लोमशो
मकराकारवत् शूराश्नपद्वि । मध्ये कलाजादिविहीनो स्थामला रोहभूषणा । अन्ते धन्वी
द्विर्मुख सपट कम्बलान्वित ॥ १० ॥ रश्मस्य प्रथमे स्व स्नेहसत्त्वाकुलीकृत ।
वीर्यवासा गृध्रास्य स्थिरबुद्धिः पुमान्भवेत् । द्वितीये मूर्ति भाण्डान्या नारी स्थान
लिनाम्बरा । तृतीये श्यामल शर सारामश्रवण पुमान् ॥ ११ ॥ मीनस्य प्रथमे रौद्र
प्रियो भूषणभूषित । स्रग्भाण्डपाणिनीकाभि क्रीडाकृत्पुरुषो भवेत् । द्वितीये सुन्दरी
गौरी कुल यात्री च नौक्या । तृतीये वस्त्रहीन स्याद्वद्व्याकुलितेक्षण । स्त्रीभागे तु
भवेद्गामाधुभागे पुरुषो भवेत् । स्त्रीद्वेष्टाणेऽवले गपि पद्महस्तितदर्शने । भवेत् पुमांस्तथा
नारी श्रीगृहस्थितदर्शने । पुमांसेऽप्यवले गपि गुप्तमेतन्मयोदितम् । अत्रच प्रश्नद्वेष्टा
णानुरूपश्चैव ज्ञातव्यः । तथा “ द्वात्रिंशन्मन्त्रा स्मृता ” इति । ज्ञातृसागरमग्रा
दे दे मुह्यन्ति नैव विद्वान् । मनेषेण यत्न निमित्तज्ञानं सुखतां वृत्तिभिः ” इति ।

अथ ग्रहणां गोचरफलम् ।

तत्रादौ स्वेः ।

स्थानं जन्मानि नाशयेद्विनकरः कुर्याद्वितीये भयम्
दुश्चिक्ये श्रियमातनोति हिवुके मानक्षयं यच्छति ।

दैन्यं पञ्चमगः करोति रिपुहा पष्ठेऽर्थहा सप्तमः

पीडामष्टमगः करोति नितरां कान्तिक्षयं धर्मगः ॥ ४० ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—अथ ग्रहोंके गोचरका फल कहते हैं जन्मराशिमें सूर्य स्थित होनेसे मनुष्यका स्थान भ्रष्ट होजाताहै; इसी प्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे भय, तीसरे स्थानमें श्रीलाभ, चौथे स्थानमें मानहानि, पांचवें स्थानमें दैन्य, छठे स्थानमें स्थित होनेसे शत्रुओंका नाश, सातवें स्थानमें अर्थनाश, आठवें स्थानमें होनेसे पीडा और नववें स्थानमें सूर्य स्थित होनेसे कान्ति क्षय होती है ॥ ४० ॥

कर्म वृद्धि जनकस्तु कर्मगो वित्तवृद्धिकुदथायसंस्थितः ।

द्रव्यनाशजनितामहापदं यच्छति व्ययगतो दिवाकरः ॥ ४१ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—सूर्य जन्म राशिसे उन्नत स्थानमें होनेसे कार्यकी वृद्धि होती है, ग्यारहवें स्थानमें होनेसे सम्पत्तिकी वृद्धि होती है और गोचरके बारहवें स्थानमें सूर्य स्थित होनेसे मनुष्यकी सम्पत्तिका नाश होताहै और घोरतर विपद होती है ॥ ४१ ॥

इति स्वर्गोचरफलम् ।

अथ चन्द्रस्य ।

जन्मन्यर्थं दिशति हिमगुर्वित्तनाशं द्वितीये

दद्याद्रव्यं सहजभवने कुक्षिरोगं चतुर्थः ।

कार्यभ्रंशं तनयगृहगो वित्तलाभञ्च पष्ठे

यूने द्रव्यं युवतिसहितं मृत्युसंस्थोऽपि मृत्युम् ॥ ४२ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—जन्मराशिमें चन्द्रमा स्थित होनेसे मनुष्यको अर्थलाभ होताहै, इसी प्रकार दूसरे स्थानमें वित्तनाश तीसरे स्थानमें होनेसे द्रव्यलाभ चौथे स्थानमें होनेसे उदरमें पीडा होती है पांचवीं राशिमें होनेसे कार्यका नाश छठे स्थानस्थित होनेसे वित्त-

लाभ, सातवें स्थानमें होनेसे द्रव्य और स्त्री प्राप्त होती है और आठवें स्थानमें होनेसे मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ४२ ॥

नृपभयं कुरुते नवमः शशी दशमधामगतस्तु महत्सुखम् ।

विविधमायगतः कुरुते धनं व्ययगतस्तु रुजं सधनक्षयम् ॥ ४३ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—चन्द्रमा जन्मराशिसे नववें स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यको राज्यभय होता है इसी प्रकार दशवें स्थानमें होनेसे अत्यन्त सुख ग्यारहवें स्थानमें होनेसे धनकी वृद्धि होती है और बारहवें स्थानमें चन्द्रमा स्थित होनेसे मनुष्य रोगी होता है और उसके धनका नाश हो जाता है ॥ ४३ ॥

इति चन्द्रस्य गोचरफलम् ।

अथ मङ्गलस्य ।

प्रथमगृहगः क्षोणीसूनुः करोत्यरिजं भयं

क्षययति धनं वित्तस्थाने तृतीयगतोऽर्थदः ।

अरिभयकरः पातालेऽसून्क्षिणोति च पञ्चमो

रिपुगृहगतो धत्ते वित्तं शुचं मदनस्थितः ॥ ४४ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—मङ्गल जन्मराशिमें स्थित होनेसे शत्रुका भय मनुष्यको होता है, इसी प्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे धनका नाश, तीसरे स्थानमें होनेसे अर्थलाभ, चौथे स्थानमें होनेसे शत्रुका भय, पाँचवें स्थानमें होनेसे मृत्यु, छठे स्थानमें होनेसे वित्तलाभ और सातवें स्थानमें मङ्गल स्थित होनेसे मनुष्यको शोक प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

जनयति मरणस्थः शत्रुधारां धराजो

दिशति च नवमस्थः कार्यपीडामतीव ।

शुभमपि दशमस्थो लाभगो भूमिलाभः

व्ययभवनगतोऽर्था व्याध्यनर्थार्थनाशम् ॥ ४५ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—मंगल जन्मराशिसे आठवें स्थानमें होनेसे अद्याघात होता है, इसी प्रकार नववें स्थानमें होनेसे कार्यका नाश दशवें स्थानमें होनेसे भंगल होता है ग्यारहवें

स्थानमें होनेसे पृथ्वीलाम होता है और गोचरके मंगल बारहवें स्थानमें स्थित होनेसे रोग अर्थनाश और अमंगल होता है ॥ ४५ ॥

इति कुजस्य गोचरफलम् ।

अथ बुधस्य ।

बुधः प्रथमधामगो दिशति बन्धमर्थे धनं

वधंरिपुभयान्वितं सहजगश्चतुर्थऽर्थदः ।

अनिर्वृतिफरो भवेत्तनयगोऽरिगः स्थानदः

करोति मदनस्थितो बन्धुविधां शरीरापदम् ॥ ४६ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—जन्मराशिमें बुधके स्थित होनेसे बन्धन होता है इसी प्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे धनलाभ तीसरेमें मृत्युकी शङ्का और शत्रुका भय चौथेमें अर्थलाभ, पाँचवें स्थानमें होनेसे आनन्दका अभाव, छठे स्थानमें प्राप्ति और गोचरके सातवें स्थानमें बुध होनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारकी आरीरिक पीडा होती है ॥ ४६ ॥

अष्टमे शशिसुते धनलब्धिर्धर्मगेऽतिमहती तनुपीडाम् ।

कर्मगे सुखमथायगतेऽर्थदो द्वादशगे भवति वित्तसुलाभः ॥ ४७ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—बुध जन्मराशिसे आठवें स्थानमें होनेसे धनका लाभ होता है इसी प्रकार नववें स्थानमें होनेसे अत्यन्त आरीरिक पीडा दशवें स्थानमें होनेसे सुख ग्यारहवें स्थानमें होनेसे अर्थलाभ और गोचरके बुध बारहवें स्थानमें होनेसे मनुष्यको द्रव्य प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥

इति बुधस्य गोचरफलम् ।

अथ गृहस्पतेः ।

भयं जन्मन्यायों जनयति धनस्थोऽर्थमतुलं

तृतीयोद्भक्तेशं दिशति च चतुर्थोऽर्थविषमम् ।

शुभं पुत्रस्यात्ता शुभमपि च कुर्यादरिगृहे

द्युने भूभूतपूजां धननिचयनाशञ्च निधने ॥ ४८ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—गृहस्पति गोचरके जन्मराशिमें स्थित होनेसे भय होता है इसी प्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे अतुल्य धनका लाभ तीसरे स्थानमें होनेसे आरीरिक श्रेय

चौथे स्थानमें होनेसे धनका नाश पाँचवें स्थानमें होनेमें शुभ, छठे स्थानमें होनेसे अशुभ, मातवें स्थानमें होनेसे गजपृष्ठ और आठवें स्थानमें बृहस्पति स्थित होनेसे मनुष्यके धनका नाश होजाता है ॥ ४८ ॥

धर्मगतो धनवृद्धिकरः स्यात्प्रीतिहरो दशमोऽमरपृष्ठः ॥

स्थानधनानि ददाति स चाये द्वादशगस्तनुमानसपीडाम् ॥ ४९ ॥

इति रत्नकोषे

अर्थ-बृहस्पति जन्मराशिसे नववें स्थानमें स्थित होनेसे धनकी वृद्धि होती है, इसी प्रकार दशवें स्थानमें होनेसे प्रीतिभंग, ग्याहवें स्थानमें होनेसे स्थान और धनप्राप्ति होती है और गोचरमें बृहस्पति बारहवें स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यको मानसिक और शारीरिक पीडा होती है ॥ ४९ ॥

अन्यच्च ।

आद्याष्टमे बन्धुवियोगदुःखमस्ते चतुर्थे धनहानितापम् ॥

पष्ठे च रोगं कलहं तृतीये सर्वस्वनाशं दशमस्तु जीवः ॥ ५० ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, बृहस्पति गोचरमें जन्मराशिमें स्थित होनेसे वा आठवें स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यका बान्धवोंसे वियोग होता है, इसी प्रकार बारहवें वा चौथे होनेसे धनहानि, छठे होनेसे रोग, तीसरे होनेसे कलह और गोचरमें बृहस्पति दशमं स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यका सर्वस्वनाश होजाता है ॥ ५० ॥

इति गुरोगोचरफलम् ।

यथ शुक्रस्य ।

जन्मन्यारक्षयकरो भृगुजोऽर्थदोर्थे ।

दुश्चिक्कयगः सुखकरो धनदश्चतुर्थे ॥

स्यात्पुत्रदस्तनयगोऽरिगतोऽरिवृद्धये ।

शोकप्रदो मदनगोनिधनेर्धदाता ॥ ५१ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ-शुक्र जन्मराशिमें स्थित होनेसे शत्रुहीन होजाता है, इसी प्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे अयलाम, तीसरे स्थानमें होनेसे सुख, चौथे स्थानमें धनलाम, पाँचवें स्थानमें पुत्रलाम, छठे स्थानमें शत्रुकी वृद्धि, मातवें स्थानमें शोक और शुक्र गोचरके आठवें स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यको धन प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥

जनयति विविधाम्बराणि धर्मे ।
 न शुभकरो दशमस्थितस्तु शुक्रः ॥
 धननिचयकरस्तु लाभसंस्थितो ।
 व्ययभवनेऽपि धनागमं करोति ॥ ५२ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—शुक्र जन्मराशिसे नवमे स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारके वस्त्र प्राप्त होते हैं, दशमे स्थानमें होनेसे अशुभ ग्यारहवें स्थानमें होनेसे विपुल धनलाभ होता है और शुक्र बारहवें स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यको धन प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

इति शुक्रस्य गोचरफलम् ।

अथ शनेः ।

वित्तभ्रंशं सदाहं दिनकरतनयो जन्मराशिप्रसन्नः
 चित्ते क्लेशं द्वितीयो रिपुहन्कृतं वित्तलाभं तृतीयः ॥
 पाताले शत्रुवृद्धिं सुतभवनगतः पुत्रभृत्यार्थनाशं
 पृष्ठस्थानेऽर्थलाभं जनयति मदने दोषसंघातमार्किः ॥ ५३ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—शनि जन्मराशिमें स्थित होनेसे वित्तनाश और सन्ताप होता है, इसी प्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे चित्तका क्लेश होता है, तृतीय स्थानमें होनेसे शत्रुका नाश और धन प्राप्त होता है, चौथे स्थानमें स्थित होनेसे शत्रुओंकी वृद्धि होती है, पाँचवें स्थानमें होनेसे पुत्र भृत्य और धनका नाश होजाता है, छठे स्थानमें होनेसे अर्थलाभ होता है और सातवें स्थानमें जनेश्वर स्थित होनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारका अनिष्ट होता है ॥ ५३ ॥

होनेसे मानसिक उद्वेग, ग्यारहवें स्थानमें होनेसे विचलाम और बारहवें स्थानमें
गनैश्वर स्थित होनेसे मनुष्यका अत्यन्त अमंगल होता है ॥ ५४ ॥

इति शनेर्गोचरफलम् ।

अथ राहोर्गोचरफलम् ।

जन्मान्त्यपञ्चवसुरन्ध्रचतुर्द्विसप्त
राशौ स्थितो यदि भवेदसुरः कदाचित् ।

अर्थक्षयं सि्पुभयं बहुकार्यहानिं

रोगप्रवासमरणाग्निभयं करोति ॥ ५५ ॥ इति रत्नकोपे ।

अर्थ राहु गोचरमें जन्मस्थ बारहवें पांचवें आठवें नववें चौथे, दूसरे सातवें
स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यका अर्थक्षय शत्रुभय, बहुकार्यहानि रोग प्रवास
मृत्यु और अग्निका मय होता है ॥ ५५ ॥ इति राहोर्गोचरफलम् ।

अथ केतोर्गोचरफलम् ।

एकादशत्रिदशपष्ठगतोनराणां
सन्मानभोगनृपमानसुखार्थदाता ।

आज्ञाकराश्च पुरुषाः प्रमदाश्च नित्यं

सौख्योदयं दिशति पुण्यचयश्च केतुः ॥ ५६ ॥

इति रत्नकोपे ।

अर्थ-केतु गोचरमें जन्मराशिसे ग्यारहवें तीसरे, दशवें अथवा छठे स्थानमें
स्थित होनेसे मनुष्यको सन्मान भोग गजसन्मान सुख और धन प्राप्त होता है ५६
इति केतोर्गोचरफलम् ।

अथ गोचरफलकालकथनम् ।

दिनकररुधिरौ प्रवेशकाले

गुरुभृगुजौ भवन्स्य मध्यपार्ता ॥ ५७ ॥

रविसुतशशिना विनिर्गमस्थौ ।

शशितनयः फलदस्तु सर्वकालम् ॥ ५८ ॥ (१)

अर्थ-अब ग्रहोंके गोचरफलका समय कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, गुरु
और मंगल राशिके प्रवेशकालमें शुभाशुभ फल प्रदान करते हैं इसी प्रकार बृह-
स्पति और शुक्र मध्यसमयमें, शनैश्वर और चन्द्रमा शेष समयमें और बुध
इति दीपिकायाम् ।

(१) राशित्रिभागात्फल शेषमिति ज्योतिस्तत्ते स्मार्त्तनोक्तम् ।

समस्त समयमेंही शुभाशुभ फल प्रदान करता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

इति गोचरकालफलप्रथमम् ।

अन्यच्च ।

गोचरपीडायामपि राशिर्वलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः ।

पीडां न करोति तथा क्रूरैरेवं विपर्यासः ॥ ५९ ॥ (×)

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—ग्रन्थान्तमें लिखा है कि; मनुष्यकी जन्मराशिसे गोचर पीडित होकर यदि बलवान् शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तो पीडा नहीं होती है अर्थात् जन्मराशिसे जो जो पीडा कही है वह नहीं होसकती है गोचरमें यदि शुभग्रह होय और उनपर शुभग्रहोंकीही दृष्टि होय तो अधिक शुभफल प्रदान करते हैं और पापग्रहोंकी दृष्टि होनेसे गोचरमें शुभग्रह होनेसेभी शुभफल नहीं होता है और गोचरमें पापग्रह होय और जो उनपर पाप ग्रहोंकीही दृष्टि होय तो अत्यन्त अशुभफलही न होता है ॥ ५९ ॥

अथ चन्द्रचारवशाद्गृहशुद्धिकथनम् ।

यादृशेन शशाङ्केन ग्रहः सञ्चरते नृणाम् ।

तादृशं फलमाप्नोति शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ ६० ॥ (❀)

अर्थ—सञ्चारकालमें मनुष्यका चन्द्रमा शुद्ध होनेसे ग्रहोंके गोचरफलके न्यूनता

(×) गोचरपञ्चादमाह—गोचरेति गोचरपीडया सत्या जन्मराशिर्यदि बलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः स्यात्तदा जन्मराशिः पीडां न करोति जन्मराशेः सप्ताशात् या पीडा उक्ता सा न भवतीत्यर्थः । एतच्च गोचरे शुभे सति शुभैर्दृष्टो जन्मराशिरधिक शुभ करोति क्रूरैर्दृष्टो जन्मराशिः शुभोऽपि शुभ न जनयति अशुभश्चेदाधिकमेवाशुभ करोति पापदृष्टः । इति ।

(•) केतुपक्षेरादिनोक्त गोचरस्याष्टवर्गगोचरस्य च द्वयोरेष चन्द्रचारवशेनापवादमाह—यादृशेनेति । चन्द्रजन्तो यः कश्चिद्ग्रहो नृणां यादृशेन चन्द्रेण सञ्चरते तादृशं शुभमशुभं वा फलं नरः प्राप्नोति । शुभफलदेन सप्तमोपचयादिस्थेन चन्द्रेण ग्रहाणां सञ्चारः शुभफलदः । अशुभफलदेन चन्द्रेण सञ्चारोऽशुभ फलद इत्यर्थः । सञ्चरत इति समस्तृतीया युक्त इति रुचादिवादात्मनेपदम् । अत्र कश्चित् “ यादृशेन हिमराशिमालिना सक्रमो भवति तिग्मरोचिषः । तादृशं फलमप्राप्यते नरैः साध्वसां पवि वशेन शीतगोः ॥ ” इति रत्नमालाचनमालोक्य ग्रहो रविरेवेति प्रलपति तदशुद्धं सामान्येन सप्तग्रहाणामेव गोचरस्यसुखं सामान्येनैव तदपवाद उच्यते पश्चाच्च सामान्येनैव ग्रहपताकावारं वक्ष्यति अनौ न रविमात्रस्येति । तथाच राजमार्तण्डे “ आश्रित्य चन्द्रस्य बलाबलानि ग्रहाः प्रयच्छन्ति शुभाशुभानि । मनः समेतानि यथेन्द्रियाणि कर्मण्यनां यान्ति न फलानि । ” यथा च दशाग्रवेशे चन्द्रस्य शुभाशुभेन ग्रहाणां शुभाशुभफलत्वं दर्शयितम् । बृहज्जानने “ मित्रम्योपपन्नमित्रीण मन्त्रे पात्रेऽगम्य स्थित-

धिक कहते हैं । यदि चन्द्रमा भिन्न ग्रहोंके सञ्चारसमयमें मनुष्यका चन्द्रमा गोचरमें शुभ होता है अर्थात् शुक्र और कृष्ण इन दोनों पक्षमें शुभफलप्रदान करता है जन्मराशिसे सातवें तीसरे ग्यारहवें छठे दशवें और जन्मका होनेसे और कृष्णपक्षमें दूसरे पांचवें और नवमस्थानमें चन्द्रमा होय तब ग्रहोंके गोचरमें अशुभ होनेसेभी शुभफल प्रदान करता है और यदि ग्रहोंके सञ्चारसमय चन्द्रमा शुद्ध न होय तो अत्यन्त अशुभ फल होता है और गोचरमें ग्रह शुभ होनेसे यदि सञ्चार कालमें चन्द्रमा शुद्ध होय तो अत्यन्त शुभफल होता है ॥६०॥

अथ तारादिशुद्ध्या ग्रहशुद्धिकथनम् ।

ताराबलादिन्दुरथेन्दुवीर्या दिवाकरःसंक्रममाण उक्तः ॥

ग्रहाश्च सर्वे सवितुर्वलेन महीसुताद्याः क्रमशः प्रशस्ताः ॥६१॥

इति रत्नमालायाम् ।

अर्थ-चन्द्रमाके सञ्चारकालमें ताराशुद्धि होनेसे गोचरमें चन्द्रमा अशुभ होने सेभी शुभफल प्रदान करता है इसी प्रकार सूर्यके सञ्चारसमय गोचरमें चन्द्रमा-शुद्ध होनेसे सूर्य गोचरमें अशुभ होनेसेभी शुभफल प्रदान करते हैं और मंगल बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर इन पांच ग्रहोंके सञ्चार समय यदि नूर्य गोचरमें शुद्ध हो तो गोचरमें यदि उक्त पांचों ग्रह अशुभ होनेसेभी शुभफल प्रदान करते हैं ॥ ६१ ॥

अथ नाक्षत्रिकीदशाफलम् ।

पट्सूर्यस्य दशा ज्ञेया शशिनो दशपञ्च च ।

अष्टावङ्गारके प्रोक्ता बुधे सप्तदश स्मृताः ॥ ६२ ॥

शनैश्चरे दश प्रोक्ता गुरोरेकोनविंशतिः ।

राहोर्द्वादश वर्षाणि भृगोरप्येकाविंशतिः ॥ ६३ ॥

इति सत्याचार्यः ।

अर्थ-अब नाक्षत्रिकीदशा भोगनेका समय कहते हैं सूर्यकी दशाका परिमाण ६ छः वर्षका होता है इसी प्रकार चन्द्रमाकी १५ वर्षकी मंगलकी ५ वर्षकी बुधकी १७ वर्षकी शनैश्चरकी १० बृहस्पतिकी १९ वर्षकी राहुकी १२ वर्षकी और शुक्रकी दशाका परिमाण २१ इक्कीस वर्षका होता है । इसी दशाको अष्टो

—चन्द्रः सफल बोधनानि कुरुते पापानि चातोऽन्यथा । ” इत्यादि रत्नमालावचनन्तु रविसंक्रमणप्रकरणोक्तमेकदेशकीर्तनपरमेव नान्यग्रहस्य चन्द्रचारवशेन शुभाशुभत्वं न भवतीति तस्यार्थ इत्यल बहुना ॥ इति ।

चतुरो दशा कहते हैं कृष्णपक्षमें जात मनुष्यको उक्त दशा द्वारा शुभाशुभ फल जानना चाहिये ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अथ दशानिरूपणम् ।

कृत्तिकादित्रये सूर्यः सोमो रौद्रचतुष्टये ।

मघादित्रितये भौमो बुधो हस्ताच्चतुष्टये ॥ ६४ ॥

अनुराधात्रये सौरिर्गुरुः पूर्वाच्चतुष्टये ।

धानिष्ठादित्रये राहुः शेषे शुक्रः प्रकीर्तितः ॥ ६५ ॥

अर्थ—किस नक्षत्रमें जात मनुष्यको किस ग्रहकी दशा पहिले होती है. अब उसको वर्णन करते हैं यथा; कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिर नक्षत्रमें जात मनुष्यको प्रथम सूर्यकी दशा होती है इसी प्रकार आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रमें चन्द्रमाकी दशा होती है मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें मंगलकी दशा होती है हस्त, चित्रा, स्वाती और विशाखा नक्षत्रमें बुधकी दशा होती है, अनुराधा, जेष्ठा और मूल नक्षत्रमें शनिश्वरकी दशा होती है पूर्वाषाढा उत्तराषाढा अभिजित् (१) और श्रवणनक्षत्रमें बृहस्पतिकी दशा होती है धानिष्ठा शतभिषा और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें राहुकी दशा होती है और उत्तर भाद्रपदा रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रमें जात मनुष्यको पहिले शुक्रकी दशा होती है दशा जाननेके समय देखना चाहिये कि, किस २ नक्षत्रमें किस ग्रहकी दशा होती है प्रत्येक नक्षत्रमें कितनी वर्ष कितने दिनतक दशा रहती है और नक्षत्रका परिमाण कितने दण्ड होता है और जन्मसमयमें इन नक्षत्रोंका भुक्त कितने दण्ड होते हैं इन सबको सूक्ष्म प्रकारसे देखकर दशाकालका भुक्त-भोग्य जानना चाहिये ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

• अथ दशाफलकथनम् ।

सूर्योपपुवभौमाकिंदशातिकष्टदा नृणाम् ।

गुरुश्चन्द्रशुक्राणां यथेप्सितफलप्रदा ॥ ६६ ॥

अर्थ—सूर्य राहु मंगल और शनिकी दशा मनुष्यको अत्यन्त कष्ट देती है और बृहस्पति, बुध, चन्द्रमा और शुक्रकी दशा मनुष्यको अमोघ फल प्रदान करती है ॥ ६६ ॥

(१) उत्तराषाढानक्षत्रके शेष चतुर्थांशका और श्रवणके प्रथम चार दण्डका नाम अभिजित् है बृहस्पतिकी दशाके समयको चार भाग करके एक भाग पूर्वाषाढामें, अन्य तीन भागको व्यतीश करके उत्तराषाढाका और श्रवणका होता है । प्रमाण यथा । “ गुरोर्वर्षे चतुर्मासं पूर्वाषाढिकं भागकम् । अन्यत्रिमासं द्विः कृत्वा दशायां विनियोजयेत् ॥ ” इति सारमंत्रहे ।

अथ दशाफलनिर्णयः ।

आदौ शीर्षोदये राशावन्ते पृष्ठोदये ग्रहाः ।

उभयोदये मध्यस्थाः फलं दद्युर्वलाबलात् ॥ ६७ ॥ (२)

अर्थ—ग्रह शीर्षोदय राशिमें स्थित होनेसे दशाके प्रथमभागमें फल होता है, पृष्ठोदय राशिमें स्थित होनेसे शेष भागमें फल होता है और शीर्षोदय और पृष्ठोदय इन दोनों राशिमें स्थित होनेसे ग्रहगण दशाके मध्यभागमें बलाबलवशाद्वाग शुभाशुभ फल प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥

अथाष्टमचन्द्रादिदशाफलम् ।

अष्टमेन्दोर्दशा मृत्युं बन्धमस्तसितस्य च ।

शुभस्य वक्रिणो राज्यं पापस्य व्यसनाटने ॥ ६८ ॥ (३)

अर्थ—जात मनुष्यकी जन्मलग्नसे आठवें स्थानमें चन्द्रमा स्थित होनेसे चन्द्रमाकी दशामेंही मृत्यु होती है जन्मसमय आठवें स्थानमें जो ग्रह स्थित होय तो इसकी दशामें बन्धन होता है, वकी शुभग्रहोंकी दशामें राज्यप्राप्त होता है और वकी पाप ग्रहोंकी दशामें व्यसन, अटन, विपत्ति और विदेशभ्रमण होता है ॥ ६८ ॥

अथ शिरश्छेदादिकारकदशाकथनम् ।

अङ्गप्रत्यङ्गानां छेदं विदधाति पष्ट शत्रुदशा ।

बूनारिदशा कोणं निधनारिदशा शिरश्छेदम् ॥ ६९ ॥ (४)

अर्थ—जात मनुष्यकी जन्मलग्नसे छठे स्थानमें स्थित लग्नकी मालिकके शत्रु-ग्रहकी दशामें हाथ कान इत्यादि अङ्ग प्रत्यङ्गादिमें छेद होता है, सातवें स्थानमें स्थित लग्नाधिपतिके शत्रुग्रहोंकी दशामें मनुष्य पङ्गु होता है और आठवें स्थानमें स्थित लग्नके मालिकके शत्रुग्रहोंकी दशामें मनुष्यका शिरश्छेद होता है ॥ ६९ ॥

(२) दशापाक फलमाह—आदाविति । शीर्षोदयराशी स्थिता ग्रहा दशादिपाके फल दद्युः । पृष्ठोदयस्यास्तु दशान्तकाले उभयोदयस्थास्तु दशामध्यकाले बलाबलाच्छुभाशुभ-फलं दद्युः ॥ इति ।

(३) अष्टमचन्द्रादि दशावशेनानियतरिष्टमाह—अष्टमेन्दोरिति । अष्टमचन्द्रदशा मृत्युं करोति इति सर्वत्राध्याहारः । अरुगतस्य ग्रहस्य दशा बन्धन करोति वक्रिणः शुभग्रहस्य दशा राज्य करोति वक्रिणः पापग्रहस्य तु दशा व्यसनाटने विपत्ति विदेश भ्रमणे करोति । इति ।

(४) इदानीं छिद्रकारकदशामाह—अङ्गेति । लग्नाव पष्टस्थस्य लग्नाधिपशत्रोर्दशा अङ्गानां हस्तादीनां प्रत्यङ्गानाम् अङ्गुलीकर्णादीनां छेदं विदधाति सप्तमस्थस्य लग्नाधिप शत्रोर्दशा कोणं पङ्गुं करोति अष्टमस्थस्य लग्नाधिपशत्रोर्दशा शिरश्छेदं करोति । इति ॥

अथ दशारिष्टम् ।

कूराशी स्थितः पापः पष्टे च निधने तथा ।

तत्स्थिते नारिणा दृष्टः स्वपाके मृत्युदो ग्रहः ॥ ७० ॥ (५)

अर्थ—मनुष्यकी जन्मलग्नसे यदि छठ वा आठवें पापग्रह स्थितहों और वही स्थान पापग्रहोंका घर होय तब अथ च पापग्रहोंके क्षेत्रमें स्थित उक्त ग्रहोंके शत्रुओंकी उममें दृष्टि होय तब उसी ग्रहकी दशामें मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ७० ॥

अल पापग्रहान्तर्दशाकथनम् ।

पापग्रहदशायान्तु पापस्यान्तर्दशा यदि ।

अरियागे भवेन्मृत्युर्मित्रयागे च संशयः ॥ ७१ ॥ (६)

अर्थ—पापग्रहोंकी दशामें यदि पापग्रहोंकी ही अन्तर्दशा होय और दशाके मालिकके साथ अन्तर्दशाके मालिककी शत्रुता होय तो मनुष्यकी मृत्यु होती है, पापग्रहोंकी दशामें अन्तर्दशाका मालिक पापग्रह होनेसेभी यदि मित्रहों तब मृत्युके समान पीडा होती है ॥ ७१ ॥

अपिच ।

विलग्राधिपतिः शत्रुर्लग्नस्यान्तर्दशांगतः ।

करोत्यकस्मान्मरणं सत्याचार्यः प्रभापते ॥ ७२ ॥ (क)

अर्थ—मनुष्यकी जन्मलग्नके मालिक ग्रहका शत्रु यदि जन्मलग्नके मालिक ग्रहकी अन्तर्दशामें होय तो मनुष्यकी अकस्मात् मृत्यु होती है इस प्रकार सत्याचार्यने कहा है ॥ ७२ ॥

अथ दशान्तर्दशयोरपवादः ।

प्रवेशे बलवान्खेटः शुभैर्वा संनिरीक्षितः ।

सौम्याधिमित्रवर्गस्थो मृत्यवे न भवेत्तदा ॥ ७३ ॥ (ख)

अर्थ—अब दशादेके गिष्टभंग कहते हैं दशा वा अन्तर्दशाके प्रवेशसमय दशाका

(५) पापग्रहदशारिष्टमाह—कूराशी पापग्रहराशी लग्नात् पष्टेऽष्टमे वा स्थितः पापः तत्स्थितेन पापग्रहराशिस्थितेन शत्रुग्रहेण शुभेनाशुभेन वा दृष्टः स्वपाके स्वदशाकाले मृत्यु करोति—इति ॥

(६) अन्तर्दशारिष्टमाह—पापग्रहेति । अत्रपापाः अनि गति भौमाः पापग्रहदशायाम् । अन्यान्यपापग्रहस्य शत्रोस्तर्दशा चेत्तदा मृत्युः पापदशाया पापस्य मित्रस्यान्तर्दशा चेत्तदा संशय इत्यर्थः । इति ।

(क) लग्नान्तर्दशारिष्टमाह—निलग्नैति । न्यटार्यम् । इति ।

(ख) दशान्तर्दशारिष्टमाह—प्रवेश इति । दशाप्रवेशकाले अन्तर्दशाप्रवेशकाले वा

मालिक वा अन्तर्दशाका मालिक ग्रह बलवान् होय वा उसै शुभग्रह देखते हों अथवा अधिमित्रादि शुभग्रहोंके वर्गादिमें स्थित होय तो उसी दशामें मनुष्यको मृत्युके समान पीडा होती है ॥ ७३ ॥

अथ रिष्टप्रतीकारः ।

गोचरे वा विलम्बे वा ये ग्रहा रिष्टसूचकाः ।

पूजयेत्तान्प्रयत्नेन पूजिताः स्युः शुभावहाः ॥ ७४ ॥ (ग)

अर्थ—अब अरिष्टका प्रतीकार कहते हैं मनुष्यके गोचरमें अथवा लग्नमें यदि कोई ग्रह अरिष्ट होय तो यत्नपूर्वक उस ग्रहकी पूजादि करै कारण पूजन करनेसे ग्रह शुभफल करते हैं ॥ ७४ ॥

दशापतिर्वावलवान्स्यात् शुभदृष्टोवाः स्यात् शुभरगें अधिमित्रवर्गे वा स्थितः स्यात्तदा मृत्युरेव न भवेत्किन्तु सशय एव स्यादित्यर्थः । तथा पाकत्नाभिनि लग्न इत्यादिना यदुक्त तस्मिन् योगे साति मृत्युर्न भवेदित्यर्थः । तथाच श्रीपतिः—“दशापतिर्लग्नगतो यदि स्यान्निपट्-दशैकादशगश्च लग्नात् ” इति । एतच्च सावनमानेनेव दशान्तर्दशादिक कार्यं तच्चातीव गुप्त सावनशोधन मया स्वबुद्ध्या स्फुटीकियते । “खलाभ्रनागाष्टकैर्ग्रहायुर्गुण्य नगाभ्रा-क्षिकराहनेत्रैः । निभ्यवर्षादिकलम्बमेतज्ज्ञेय बुधैः सावनशुद्धमायुः ॥” वर्ष प्रतिदिनानि ५ । १० । २९ मास प्रति दण्डाः २६ । दण्डान्प्रति विषलानि १२ । एतत्सावनशुद्ध वर्षमासदिनदण्डात्मकमायुः जन्मकालीनकलियुगवत्सरमासदिनदण्डपलेषु मिश्रयेत् ततो वर्षेषु तावन्मासेषु तावद्दिनेषु तावद्दण्डेषु तावत्पलेषु दशाप्रवेशः ततः एतस्यैव वर्षमासादे-रहर्गणन कृत्वा तावत्कालिकाः सर्वे ग्रहाः कार्याः । लग्न पञ्चवर्गादिकश्च कार्यं ततो विचार्य दशान्तर्दशादिषु शुभाशुभ वदेदेव एतेषु वर्षादिषु सावनशुद्धमन्यदशान्तर्दशादिक निश्चित्यान्यदशाप्रवेशकाल ज्ञात्वा शुभाशुभ वदेत् । अत्र च जन्मकोष्ठया प्रवेशे गृह-प्रवेशे सञ्चारकाले खेटो यदि बलवान् इति सौमैरुन्मादप्रलपितम् । इति ॥

(ग) रिष्टप्रतीकारमाह—गोचर इति । अष्टवर्गाद्युक्तो गोचरो लग्नसम्बन्धियोगजरिष्ट-मानियत दशान्तर्दशारिष्टश्च गोचरयोगदशान्तर्दशाया वा ये ग्रहा रिष्टकारिणः तान् ग्रहान् पूजयेत् प्रयोगानुसारेण पूजाहोमादिक कार्यम् । ततस्ते पूजया होमेन च तुष्टाः शुभावहाः स्युः । एतेन परमायुर्दशान्तर्दशादिकफलमुक्तम् । अत्र यदि चन्द्रो बलवान् तदा नाक्षत्रिकदशा फलसम्पादिनी स्यात् ततो नाक्षत्रिकी दशा पञ्चभिरार्याभिर्मयोच्यते । “अष्टाविंशतिभिर्भस्त्रिभिश्चतुर्भिश्च कृत्तिकाक्रमतः । रविशशिकुजबुधशानयो जीवतमो भार्गवा दशापतयः ॥ रसतिथिवसुभिन्नकाष्ठोर्नावशतिः सूर्यकविशतिवर्षाणि । अनुपातैर्जन्मदशा कार्या नक्षत्रभोगेन ॥ अन्तर्दशाशवर्षैर्दशेशवर्षाणि गुणयित्वा । नवभिर्लब्ध तत्स्यान्मासाद्यन्तर्दशाकालः ॥ अन्तर्दशादिनेभ्यः पष्टया लब्ध यथाक्रम भवति । प्रत्यन्तर श्रुतिगजेन्द्रियनवरसदिद्वमुनीश्वरैर्गुणितम् ॥ दशान्तर्दशाफलमुक्तमेव जातकचन्द्रिकादौ । राहुदशाफलन्तु लिख्यते “राहुदशा कष्टफला तत्र ज्ञासिती शुभौ परेऽनिष्टाः ॥ शुक्रदशायां राहुः शुभदोऽनिष्टप्रदोऽन्यासु ॥ ” इति ।

अथ ग्रहदोषद्रव्यधारणविधिः ।

सूर्यादिदोषशान्त्यै धार्याणि भुजेन ताम्रशंखौ च ।

सकाञ्चनमुक्तारजतत्रपुलोहराजपट्टानि ॥ ७५ ॥ (१)

अर्थ—अब ग्रहोंकी दोषशान्तिके अर्थ धारण करनेका द्रव्य कहते हैं सूर्यके विरुद्ध होनेसे ताम्र धारण करना चाहिये, इसी प्रकार चन्द्रमा विरुद्ध होनेसे शङ्ख, मङ्गल विरुद्ध होनेसे प्रवाल, बुध विरुद्ध होनेसे काञ्चन, बृहस्पति विरुद्ध होनेसे मुक्ता, शुक्र विरुद्ध होनेसे चांदी, शनैश्चर विरुद्ध होनेसे सीसक, राहु विरुद्ध होनेसे लोह और केतुके विरुद्ध होनेसे राजपट्ट (मणिविशेष) धारण करना चाहिये ॥ ७५ ॥

अन्वच ।

माणिक्यं विगुणे सूर्ये वैडूर्यं शशलांछने ।

प्रवालं भूमिपुत्रे च पद्मरागं शशाङ्कजे ॥ ७६ ॥

गुरौ मुक्तां भृगौ वज्रभिन्दनीलं शनैश्चरे ।

राहौ गोमेदकं धार्यं केतौ मरकतं तथा ॥ ७७ ॥ (२)

अर्थ—अब अन्य प्रकारसे कहते हैं । सूर्य विरुद्ध होनेसे माणिक्य धारण करना चाहिये इसी प्रकार चन्द्रमाके विरुद्ध होनेसे वैडूर्यमणि, मङ्गलके विरुद्ध होनेसे प्रवाल, बुधके विरुद्ध होनेसे पद्मराग, बृहस्पतिके विरुद्ध होनेसे मुक्ता, शुक्रके विरुद्ध होनेसे हीरक, शनैश्चरके विरुद्ध होनेसे इन्द्रनील, राहुके विरुद्ध होनेसे गोमेदक और केतुके विरुद्ध होनेसे मरकतमणिको धारण करे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

अपरच ।

सूर्ये ताम्रं विधौ शंखः प्रवालं भूमिनन्दने ।

बुधे च काञ्चनं देयं गुरौ मुक्तां विदुर्बुधाः ॥ ७८ ॥

रजतं भृगुपुत्रे च सूर्यसूनौ त्रपुस्तथा ।

राहौ लोहं राजपट्टं केतौ स्याद्धारणीयकम् ॥ ७९ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—जातकचन्द्रिकामें भी ग्रहोंके दोषोंकी शान्तिके अर्थ धारण करनेके

(१) धार्यधातूनाह—सूर्य इति ताम्र, शंखः, प्रवाल, काञ्चन, मुक्ता, रजतम्, त्रपु, सीसक, लोह, राजपट्ट ग्रहानां दोषे एतानि यथाक्रमेण धार्याणि ॥

(२) यथाशक्ति धार्यगनान्याह—वैडूर्यमिति । गुणाविति । नीलः इन्द्रनीलः वज्र हीरकम् । इति ॥

द्रव्य कहे हैं यथा--सूर्य विरुद्ध होनेसे ताम्र धारण करना चाहिये इसी प्रकार चन्द्रमा विरुद्ध होनेसे शंख, मङ्गल विरुद्ध होनेसे प्रवाल, बुध विरुद्ध होनेसे काञ्चन, वृहस्पति विरुद्ध होनेसे मुक्ता, शुक्र विरुद्ध होनेसे चाँदी, शनैश्चर विरुद्ध होनेसे सीसक, राहु विरुद्ध होनेसे लोह और केतु विरुद्ध होनेसे राजपट्ट (मणिविशेष) धारण करै ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

दोषो न स्याद्ब्रह्माणामशिशिरकिरणे ताम्रामिन्दौ च शंखः

पृथ्वीपुत्रे प्रवालं शशधरतनये शातकुम्भं भुजेन ।

देवाचार्यं च मुक्तामणिरमुरगुरौ सीसकं सूर्यसूनां

राहौ सारं गिरिणां कमलजतनये राजपट्टं विधार्यम् ॥ ८० ॥

अर्थ-राजमार्त्तण्डमें भी ताम्रादि धारण करनेका प्रमाण कहा है जिस मनुष्यके सूर्य विरुद्ध हो वह ताम्र धारण करै तो दोष दूर होजाता है, इसी प्रकार चन्द्रमा विरुद्ध होनेसे शंख धारण करै, मङ्गल विरुद्ध होनेसे प्रवाल, बुध विरुद्ध होनेसे सुवर्ण, वृहस्पति विरुद्ध होनेसे मुक्ता, शुक्र विरुद्ध होनेसे मणि, शनैश्चर विरुद्ध होनेसे सीसक, राहु विरुद्ध होनेसे लोह और केतु विरुद्ध होनेसे राजपट्ट (मणिविशेष) धारण करै तो दोष दूर होता है ॥ ८० ॥ इति राजमार्त्तण्डे ।

अपिच ।

यद्यद्ब्रह्मस्य यद्ब्रह्मं तत्तस्मिन्विषमे स्थिते ।

दद्यात्सत्कृत्य विप्रेभ्यः स्वयञ्च विभूयात्ततः ॥ ८१ ॥

अर्थ-जिस ग्रहके विरुद्ध होनेमें जो द्रव्य धारण करनेको कहा है, वह द्रव्य ग्रहोंकी दोषशान्तिके अर्थ पहिले ब्राह्मणको दान करके देव पीछेसे धारण करना चाहिये ॥ ८१ ॥

अथ ग्रहदोषमूलादिधारणविधिः ।

मूलं धार्यं त्रिशूल्याः सवितरि विगुणे क्षीरिकामूलमिन्दो

जिह्वाहर्भूमिपुत्रे रजनिकरमुते वृद्धदारस्य मूलम् ।

भाङ्ग्या जीवेऽयं शुके भवति शुभकरं सिंहपुच्छस्य मूलं

वाट्यालं चार्कपुत्रेतमसि मलयजं केतुदोषेऽश्वगन्धम् ॥ ८२ ॥ (३)

अर्थ-ग्रहोंके दोषशान्तिके अर्थ जो मनुष्य ताम्रादि धारण नहीं करसके हैं

(३) ग्रहदोषशान्त्यर्थं भुजधार्यमनूयाह-मूलमिति । त्रिशूली विन्धः क्षीरिका प्रसिद्धो वृक्षः अहिनिद्रा नागनिद्रोति वृद्धदागः प्रसिद्धरत्ना तन्मूलमित्य ॥ नार्द्धो ब्राह्मण्यष्टिका सिंहपुच्छा गमनासक इति प्रसिद्धः मलयज चन्दनम् अश्वगन्धम् अश्वगन्धामूल-मित्यर्थः ॥ इति ।

वे मूलादि (वृक्षोंकी जड़) को धारण करे । यथा । सूर्यके विरुद्ध होनेसे बेलकी जड़को धारण करे इसी प्रकार चन्द्रमाके विरुद्ध होनेसे क्षीरिका (खिन्नी) वृक्षकी जड़, मङ्गल विरुद्ध होनेसे नागजिह्वा लताकी जड़, बुधके विरुद्ध होनेसे वृद्धदारु वृक्षकी जड़, वृहस्पतिके विरुद्ध होनेसे ब्राह्मणयाष्टि वृक्षकी जड़, शुक्रके विरुद्ध होनेसे सिंहपुच्छ (चित्रपर्णिका) वृक्षकी जड़, शनैश्चरके विरुद्ध होनेसे वाट्याल (खिरौटी) वृक्षकी जड़, राहुके विरुद्ध होनेसे श्वेतचन्दन और केतुके विरुद्ध होनेसे दोषशान्तिके अर्थ अश्वगन्धा (असगन्ध) वृक्षकी जड़ धारण करना चाहिये ॥ ८२ ॥

अन्यच्च ।

त्रिशूली क्षीरिकामूलं गोजिह्वा वृद्धदारकम् ।

ब्रह्मयष्टी सिंहपुच्छं वाट्यालं चन्दनं सितम् ॥ ८३ ॥

अश्वगन्धं क्रमात्सूर्याद्यादोषोपशान्तये ।

ताम्रादीनामभावे तु स्वयं च दक्षिणे भुजे ॥ ८४ ॥

अर्थ-बुद्धि प्रकाशमें भी लिखा है कि, ग्रहोंकी शान्तिके अर्थ जो मनुष्य ताम्रादिके धारण करनेमें अशक्त हैं अर्थात् नहीं धारण कर सकते हैं वे सूर्य-ग्रहके विरुद्ध होनेसे बेलवृक्षकी जड़ अपनी दहनी भुजामें धारण करे । इसी प्रकार चन्द्रमाके विरुद्ध होनेसे क्षीरिका (खिन्नी) वृक्षकी जड़, मङ्गलके विरुद्ध होनेसे अनन्तमूल (नागफणीकी जड़) बुधके विरुद्ध होनेसे वृद्धदारु वृक्षकी जड़, वृहस्पतिके विरुद्ध होनेसे श्वेत ब्रह्मयष्टिकी जड़, शुक्रके विरुद्ध होनेसे सिंहपुच्छ (चित्रपर्णिका) वृक्षकी जड़, शनैश्चरके विरुद्ध होनेसे वाट्याल (खिरौटी) वृक्षकी जड़, राहुके विरुद्ध होनेसे श्वेतचन्दन और केतुग्रहके विरुद्ध होनेसे मनुष्य अपनी दहनी भुजामें अश्वगन्धा (असगन्ध) वृक्षकी जड़को धारण करे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ इति बुद्धिप्रकाशे ।

अथ ग्रहदोषे स्नानविधिः ।

सिद्धार्थलोभरजनीद्वयमुस्तधान्यं

लामज्जकं सफलिनी सवचा च मांसी ।

स्नानं कुरु ग्रहगणप्रशमाय नित्यं

सर्वे रविप्रभृतयः सुमुखीभवन्ति ॥ ८५ ॥ (ॐ)

अर्थ-अथ ग्रहोंके विरुद्ध होनेसे उनकी शान्तिके निमित्त स्नान कहते हैं संकेद

(•) औषधिस्नान यदुक्तं तदाह-सिद्धार्थेति । सिद्धार्थः श्वेतसपपः रजनीद्वयं हृदि दारुहृदि च धान्यं धान्याकं लामज्जकमुशीरं धारणमूलम् । तथा चामरः । ' स्याद्दर्शनं

सरसों, हल्दी, दारुहल्दी, सुस्ता, नागरमोथा, धनिया, खसकी जड़, पीपल, चच और बालछड़ इन सब चीजोंको जलमें मिलाकर उस जलद्वाग स्नान करनेसे विरुद्ध ग्रहोंका दोष दूर होजाता है ॥ ८५ ॥

इति वशचरेत्यतर्वातिकान्यमुञ्जकुलभूषणभारद्वाजगोत्रत्रिपाठरूपनामकेन पण्डित
वीकेलालात्मजेन श्यामसुन्दरशर्मणा सम्पादिते मापार्थिकाविभूषिते च
ज्योतिषतत्त्वमुधारणे नवधागमनादिजातग्रन्त-
सृतीयस्तरगः ॥ ३ ॥

चतुर्थस्तरङ्गः ।

अथ जातकर्मकथनम् ।

प्राङ्नाभिवर्द्धना (१) त्रुंस्तो जातकर्म विधीयते ।

मन्त्रवत्प्राशनश्चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥ १ ॥

इति मनुः ।

अर्थ-अब जातकर्म कहते हैं भगवान् मनुजीने कहा है कि, बालकके नाडी
छेदनके (नार काटनेके) पूर्वमें जातकर्म करना चाहिये मन्त्रपूर्वक सुवर्णयुक्त
घृत और मधु बालकके मुखमें लगानेका नाम जातकर्म है ॥ १ ॥

अपिच ।

जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म यथाविधि ।

देवादतीतः कालश्चेदतीते सूतकं भवेत् ॥ २ ॥' (२)

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, बालकके जन्मसमय नार कटनेके पहिले
विधिपूर्वक जातकर्म करना चाहिये देवयोगसे पहिले यदि बालकका नार कट-
जाय तो सूतक होजाता है जब एव कालान्तरके सिवाय उक्त बालकका जात
कर्म नहीं होसکتा है ॥ २ ॥ इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अन्यथा ।

मृदुध्रुवचराक्षिप्रभेष्वेपामुदयेऽपि वा ।

वीरग मूलेस्योशीरमक्षिषाम्।रामजक लघुलयमर्दाहेऽष्टराप्ये॥”इति।प्रियगुः फलिनी
मांसी जटामांसीत्यर्थः । एभिर्वस्तुभिर्ग्रहगणप्रशमाय ग्रहदोषोपशमनाय शुभ वाञ्छन्
स्नान कुरु तदा सैरे ग्रहाः निमुखा अपि सुमुखीभवन्ति प्रसन्नमुखा। प्रीता भवन्तीत्यर्थः ।

(१) नाभिवर्द्धनाभिसम्बन्धिनाडीच्छेदनात् । “वर्द्धन छेदनेऽय हे” इत्यमरः ।

(२) सूतिकावासानिलया जन्मदानामदेवताः । तासां यागनिमित्तार्थं शुद्धिर्जन्मनि
वीक्षिता ॥ इति विष्णुधर्मोत्तरे । अत्र यागनिमित्तार्थमित्युपादानात्तत्कर्मण्येव शुद्धिर्ना-
न्यामिन् । इति ॥

गुरुशुक्रेऽथवा केन्द्रे जातकर्म च नाम च ॥ ३ ॥ (+)

अर्थ—ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, उत्तरा-
फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा,
शतभिषा, पुष्य, अश्विनी और हस्तनक्षत्रमें अथवा इन समस्त नक्षत्रोंके मुहूर्तमें
वृहस्पति वा शुक्र केन्द्रस्थानमें स्थित होनेसे जातकर्म और नामकरण
करना चाहिये ॥ ३ ॥ इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अथ नामकरणम् ।

ध्रुवचरमृदुवर्गे वाजिहस्तासमेते

क्षणमुदयमथैषां सत्सु केन्द्रस्थितेषु ।

दिगविशिवशताहे तत्कुलाचारतो वा

शुभदिनतिथियोगे नाम कुर्यात्प्रशस्तम् ॥ ४ ॥ (क)

अर्थ—अब नामकरण कहते हैं—उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा,

(+) इति ज्योतिःशास्त्रोक्त देवात्कालेऽकार्यं वेदितव्यम् । अनुत्कर्षेऽपि नक्षत्रा
दिनियमो न नेमित्तिकस्य निमित्तान्तर्भावित्वेन निरवकाशत्वात् । इति ज्योतिस्तत्त्वे
स्मात्तैनाभिहितम् ॥

(क) नामकरणमाह—ध्रुवेति । ध्रुववर्गे १२ । २१ । २६ । ४ मृदुवर्गे १ । ४ । २७ ।
५ । २७ । चरवर्गे १५ । ७ । २२ । २३ । २४ । अश्विन्यां हस्तायाञ्च । अथ पक्षान्तरे
एषामभावे एषां क्षण मुहूर्तम् उदय लग्न व्याप्य कालकर्मणि द्वितीया एषां मुहूर्तं लग्नं
कृत्वैत्यर्थः । लग्नात्केन्द्रेषु शुभग्रहेषु सत्सु दिग्हे दशाहे अविर्भेदः भेषाद्या राशयो द्वाद-
शेति केचित् । वस्तुतस्तु अविः सूर्यः ‘ अवयः शैलमेपाकाः ’ इत्यमरः । द्वादशेति द्वाद-
शाहे शिवाहे एकादशाहे शतपूरणे दिने तत्कुलाचारतः षष्ठमासादौ वा नाम कुर्यात्
अत्र च दशाह इति विधिवेयर्थ्यवशादाशौचेऽपि कर्तव्यम् । केचित्तु दशाहे गते एका-
दशाहे इति व्याचक्षिरे तदशुद्धम् । यथा राजमार्तण्डे “ दशमे द्वादशके वा शुभवा-
रेऽथवा यथाचारम् ” तथा पारस्करः “ दशस्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता
नाम करोति ” अत्र चानेकमुनिवचने गत इत्यध्याहारो न युज्यते दशम इत्यादौ पूर-
णप्रत्ययवैयर्थ्याच्च । दिग्हे गत इतिवद्द्वादशाहे गत इत्यध्याहारेण न त्रयोदशाहेऽपि
करणप्रमगात् शास्त्रेलाक्योर्विरुद्धता च स्यात् इति । अत्र प्रशस्तमित्यनेन देवताना-
माश्रित्य मङ्गल समाक्षरं सुखोच्चार्य घोषवदक्षरान्तञ्च नाम कार्यम् । यथा पारस्करः
“ हनक्षरचतुर्क्षर वा घोषवदक्षरान्तञ्च नाम कुर्यात् । ओजाक्षर मकठीवान्त नाम स्थि-
हितम् ” इति । तथा राजमार्तण्डे “ नार्यहीनं न वाशस्त नापशब्दयुतं तथा । नामगल्य
न्युपस्यं वा नाम कुर्यात्समाक्षरान्नातिदीर्घं न ह्रस्व वा नातिगुर्वक्षरान्वितम् । सुलोच्चार्यं
च तन्नाम कुर्यान्न प्रणवाक्षरम् । बीमत्सचण्डनाम्नी च कीर्त्तितानिष्टदाहना । ” इति ॥

रोहिणी, स्वाति, चित्रा अनुराधा, मृगशिर, रेवती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा, अश्विनी और हस्त नक्षत्रोंमें अथवा इन समस्त नक्षत्रोंके असम्भव होनेसे इनके मुहूर्तमें लग्न स्थिर करके उसके केन्द्रस्थानमें शुभग्रह होनेसे दशवें बारहवें ग्यारहवें वा शत (सौ) दिनमें अथवा कुलाचारहेतुक पञ्चमासादिमें शुभदिन शुभतिथि और शुभ योगमें बालकका नामकरण करना चाहिये ॥ ४ ॥

आपेच ।

आदौ घोषदक्षरं यवरलान्मध्ये पुनः स्थापये-

दन्ते दीर्घविसर्जनीयरहितं नाम प्रयत्नात्कृतम् ।

ऋक्षे तिष्यक्रशाश्विसौम्यवसुभे चित्राऽनुराधोत्तरे

पौष्णे वादित्तिरोहिणीषु शुभकृतपुंसां समैरक्षरैः ॥ ५ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ-गर्गमुनिने कहा है कि, नामके आदिमें घोषवन्त वर्ण मध्यमें यवरल और अन्तमें दीर्घ वर्ण और विसर्जनीय वर्णको छोड़कर अक्षरोंको मिलाकर नाम रखै पुष्य, हस्त, अश्विनी, मृगशिर, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, उत्तरा-फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, पुनर्वसु और रोहिणी यह समस्त नक्षत्र नामकरणमें शुभ हैं पुरुषका नाम सम (युग्म) अक्षरयुक्त रखना चाहिये ॥ ५ ॥

अन्यच्च ।

नामकरणं स्थिरे लग्ने केन्द्रपञ्चनवमस्थिते सौम्ये ।

ज्यापपष्ठसमाधिष्ठितपापे जीवशुक्रशाश्विसौम्यदिनेषु ॥ ६ ॥

इति नारायणपद्धती ।

अर्थ-नारायणपद्धतिमें लिखा है कि, स्थिरलग्नमें लग्नके केन्द्रस्थानमें पांचवें और नववें शुभग्रह स्थित होनेसे तीसरे ग्यारहवें और छठे स्थानमें पाप ग्रह होनेसे बृहस्पति, शुक्र, सोम और बुधवारमें नामकरण प्रशस्त है ॥ ६ ॥

अपरञ्च ।

उत्तरात्रयरोहिण्यौ श्रवणं स्वातिरश्विनी ।

अनुराधा मृगशिरो रेवती च पुनर्वसुः ॥ ७ ॥

धानिष्ठा शुभदा लग्ने यस्य केन्द्रे शुभग्रहाः ।

शशीज्यसौम्यशुक्राहे नाम कुर्याच्छुभे तिथौ ॥ ८ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमें लिखा है कि, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्र-
पदा, रोहिणी, श्रवण, स्वाति, आश्विनी, अनुगधा, मृगशिर, रेवती, पुनर्वसु
और धनिष्ठा नक्षत्रमें लग्नके केंद्रस्थानमें शुभग्रह होनेसे सोम बृहस्पति, बुध,
और शुक्रवारमें शुभ तिथिमें नामकरण प्रशस्त है ॥ ७ ॥ ८ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य च ।

गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ॥ ९ ॥

अर्थ-नामकरणके समय ब्राह्मणके नामके अन्तमें शर्मा पदका प्रयोगकर करे
इसी प्रकार क्षत्रियके नामके अन्तमें वर्मा, वैश्यके नामके अन्तमें गुप्त और
शूद्रके नामके अन्तमें दासपदका प्रयोग करे ॥ ९ ॥

अथ निष्कामणम् ।

आर्द्राधोमुखवर्जितानुपहतेष्वृक्षेष्वरित्ते तिथौ
वारे भौमशनीतरे षट्तुलाकन्यामृगेन्द्रोदये ।

सहस्रेऽथ चतुर्थमासि यदि वा मासे तृतीये शशि- (ॐ)

न्यक्षणि शुभदे शिशोरभिनवं निष्कामणं कारयेत् ॥ १० ॥

अर्थ-अब निष्कामण कहते हैं-आर्द्रा, आश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा,
विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और जतमिषा इन सब नक्ष-

(×) निष्कामणमाह-आर्द्राति । आर्द्रा अचोभुरागणः १ । ३ । २ । १० । १६ ।
११ । २० । २५ । २४ । एभिर्वर्जितेष्वन्येषु नक्षत्रेष्वनुपहनेषु उत्पातपापग्रहाद्यपीदितेषु
रिक्तावर्जितेषु तिथिषु मंगलशनिव्यतिरिक्तेषु वारेषु कुम्भतुलाकन्यासिंहलग्नेषु शुभग्रहद्वये
तृतीये चतुर्थे वा मासि चन्द्रेऽक्षणि गोचरशुभदेऽपि शिशोर्गृहात् प्रथम निष्कामण
कारयेत् । इति अधोभुरामानि “आश्लेषाद्विषमपित्र्यविशाखयुक्तं पूर्वात्रय शतभिषाच
नवाप्यमूनि । एतान्यधोमुखगणानि शिमानि नित्य विद्यार्थभूमिमिथुनेषु च स्मृतिानि ॥”
चतुर्थे मासीति ऋषेदियुगेंदिनोः । यदाह विष्णुः-“चतुर्थमास्यादित्यदर्शनम्” इति ।
शौनकोऽपि “चतुर्थे मासि पुण्यर्क्षे शुद्धे निष्कामण शिशोः । ” पारस्करः-“चतुर्थे
मासि निष्कामणि सूर्यमुदीक्षयति तच्चतुरिति” इति । मासे तृतीये इति तु चन्द-
गानां गोभिलेन जननानन्तर तृतीयशुक्रपक्षतृतीयायां चन्द्रदर्शनरूपनिष्कामणविधा-
नात् । यथा गोभिलः-“जननाद्यस्तृतीयो ज्योत्स्नस्तृतीयायाम्” इत्यादि । ज्योत्स्नः
शुद्ध पक्षः । अत्रैव कृत्याचेन्तामणिः-स्वस्विपानतोऽर्शशभिनेर्गर्ध्व दापयेत् । इति
ज्योतिस्तत्त्वे ।

त्रोंको छोडकर अन्य समस्त नक्षत्रोंमें औत्पादिक वा पापग्रहोंके पीडा करनेका अधिकार न होनेसे रिक्ताभिन्न-तिथिमें, मङ्गल और शनिभिन्न वारमें, कुम्भ, तुला, कन्या और सिंहलग्नमें (शुभग्रहोंकी दृष्टि होनेसे) चौथे महीनेमें वा तीसरे महीनेमें क्षीण चन्द्रमा न होनेसे और चन्द्रमा गोचरमें शुद्ध होनेसे आनन्द-पूर्वक बालकको घरसे पहिले बाहर निकाले ॥ १० ॥

अपिचं ।

चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ॥ ११ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ-विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि, चौथे महीनेमें बालकको पहिले घरसे बाहर निकालना चाहिये ॥ ११ ॥

अथ ताम्बूलप्राशनम् ।

विगतवरुणनाथाधोमुखान्नभेषु

त्रिभवरिपुगपापैः केन्द्रकोणस्थसौम्यैः ।

विकुजरविज्वारे सार्द्धमासद्वये स्या-

वृषपञ्चपुष्यसौरक्षोदये पूगदानम् ॥ १२ ॥ (१)

अर्थ-अब ताम्बूलदान कहते हैं-आश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और आर्द्रा नक्षत्रोंको छोडकर अन्य नक्षत्रोंमें, लग्नके तीसरे ग्यारहवें और छठे स्थानमें पापग्रह और केन्द्र और त्रिकोण स्थानमें शुभग्रह होनेसे मङ्गल और शनिभिन्न वारमें जन्मदिनसे अढ़ाई महीनेके मध्यमें वृष, मीन, मिथुन, कन्या, मकर और कुम्भ लग्नमें बालकको पहिले ताम्बूल (पान) खिलाना चाहिये ॥ १२ ॥

अथ भृशयुपवेशनम् ।

ब्रह्मोत्तरेन्द्रमृगमैत्रकराश्विनीषु वारेषु सप्तसु विशिष्य कुजस्य वारे ।

(१) अथ ताम्बूलदानमाह-विगतिति । विगतवरुणनाथो यत्राधोमुखे नक्षत्रगणे ८ । ३ । २ । १० । १६ । ११ । २० । २५ आर्द्रा च तदन्येषु भेषु वर्जनद्वयेन शतभि-पाया ग्रहणम् । तथा च राजमार्तण्डे-“ मूलस्वातिधनेन्दुमित्रवरुणन्येष्टाश्विनीरोहिणी पौष्णक्षे रविजीवशुक्रजनीनाथात्मजाना दिने । कन्यामीनच्युमगोसमुदये शस्तेषु चन्द्रादिपुत्रावपूगाशनमिष्यते शिशुजनस्यान्नप्राशनं वापि च ॥ ” तथा “ मूलादितिश्रवण पुष्यकरोत्तरेषु पौष्णाश्विजीवशुक्रजनीकरशस्तेषु । वारेषु जीवशशिसूर्यसितेन्दुजाना ताम्बूल भक्षणविधिः कथितः शिशूनाम् ॥ ” सीमरिणा तु अन्तमोप्यति पाठ कृत्वा अशुभमेव व्याख्यातम् । लग्नातृतीयैकादशपक्षगैः पापैः केन्द्रत्रिकोणगैः शुभैः कुजशनिर्वीजितेषु वारेषु सार्द्धमासद्वये वृषमीनकन्यामिथुनमकरसुम्भलग्ने ताम्बूलदानं प्रशस्तं स्यात् ।

मासेऽथ पञ्चम इह प्रतिमुच्य रिक्तां

शस्तं शिशोर्भवति भूम्युपवेशनं प्राक् ॥ १३ ॥ (२)

अर्थ--अब बालकको पहिले पृथ्वीपर बिठलानेका मुहूर्त कहते हैं--रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, मृगशिर, जनुराधा, हस्त और अश्विनी नक्षत्रोंमें रविप्रभृति सातों वारोंमें विशेषकरके मंगलवारमें, पाचवें महीनेमें रिक्ताभिन्नतिथिमें बालकको पहिले भूमिपर बिठलाना चाहिये ॥ १३ ॥

अथान्नप्राशनम् ।

पूर्वेशान्तकसर्पमूलरहितेष्वक्षेष्वरित्ते तिथौ

पष्टे मासि सितेन्दुजीवदिवसे गोक्षर्क्षमीनोदये ।

केन्द्राष्टान्त्यत्रिकोणभैः शुभयुतैस्त्वैरेव पापोज्झितैः-

हित्वेदुं रिपुरंश्रगं शिशुजनस्यान्नाशनं शोभनम् ॥ १४ ॥ (३)

अर्थ--अब बालकके अन्नप्राशनका मुहूर्त कहते हैं--पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, आर्द्रा, भरणी, आश्लेषा और मूल इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य समस्त नक्षत्रोंमें रिक्ताभिन्न तिथिमें उठे महीनेमें, शुक्र, सोम, बृहस्पति, रवि और बुधवारमें, घृष, मिथुन, कन्या और मीन लग्नमें लग्नके केन्द्रस्थानमें आठवें, बारहवें और त्रिकोणमें शुभ ग्रहोंके होनेसे और लग्नके उक्त समस्त स्थानोंमें पापग्रह न होनेसे लग्नसे छठे ओर आठवें चन्द्रमाको छोड़कर, बालकका अन्नप्राशन करना चाहिये ॥ १४ ॥

अपिच ।

एकादश्याञ्च सप्तस्यां द्वादश्यां पञ्चपर्वसु ।

बलमायुयंशो हन्याच्छिशूनामन्नभक्षणम् ॥ १५ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ--दीपिकामें लिखा है कि, एकादशी, सप्तमी, द्वादशी और पञ्चपर्वमें बाल-

(२) प्रथम शिशोः पृथिव्यामुपवेशनमाह- ब्रह्मेति स्पष्टोऽर्थः ।

(३) अन्नप्राशनमाह- पूर्व इति । पूर्वाज्यमाद्रा भरणी आश्लेषामूलम् एतद्वाजितेष्वन्येषु नक्षत्रेषु सितेन्दुजीवदिवस इत्युपलक्षणं गनिबुधवारोऽपि यथा राजमातेण्डे “ वारं प्विन्दुजमार्गवेन्दुदिनकृद्वाचस्पतीनां शिशोरन्नप्राशनमङ्गलं मिथुनगोमीनोदये शोभनम् । ” तथा सागरव्यास “ दीप्तानलः कमलवन्मुदिने मनुष्यो मन्दानलः शशिरगो च कुजे रुजार्तः ॥ वीधे वली विपुलभोगसुरा सुरेभ्यः शुक्रेतिविश्रमयुतस्त्यमिते गतासु- । ” इत्यनेन सोमवारे विधिनियेषधो अरुणाच्चन्द्रस्य पूर्णक्षीणत्वभेदेन यस्त्वापन्नमिति । गोवृषः शर्शु बुधग्रहम् इति मिथुनस्य गोमीनश्च एतस्मिन्क्षेत्रे लग्नात्केन्द्राष्टमाद्वाशनवपचमराशिभिः शुभग्रहयुते सद्भिस्तेरेव केन्द्राष्टान्त्यत्रिकोणभैः पापवाजितैः शिशोरन्नप्राशनं कार्यम् लग्नात् पष्ठाष्टमग चन्द्रवर्जयित्वात्यर्थः । एतन्न कृष्णपक्षे न वर्तव्यम् ।

कको अन्न खिलानेसे उस बालकका बल आयु और यश नष्ट होजाता है ॥ १५ ॥
पञ्चपर्वकथनम् ।

अष्टमी पौर्णमासी च अमावास्या चतुर्दशी ।

पञ्च पर्वाण्यमून्याहुरार्याः संक्रमणं रवेः ॥ १६ ॥ दीपिकायाम् ।

अर्थ-अष्टमी, पूर्णिमा, अमावास्या, चतुर्दशी और सूर्यकी संक्रान्तिको पण्डित गण पञ्चपर्व कहते हैं ॥ १६ ॥

अन्यच्च ।

ततोन्नप्राशनं पष्ठे मासि कार्यं यथाविधि । (×)

अष्टमे वाथ कर्त्तव्यं यद्रेष्टं मङ्गलं कुले ॥ १७ ॥ ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, बालकका अन्नप्राशन छठे महीनेमें विधिपूर्वक करना चाहिये, आठवें महीनेमेंभी हो सक्ता है अथवा जिनके पूर्वापर जिस प्रकार कुलका नियम है, उसी समयमेंही अन्नप्राशन होसक्ता है किन्तु स्मार्त्तभट्टाचार्यने ज्योतिस्तत्त्वमें छठे महीनेकोही मुख्य समय कहा है वर्त्तमान पण्डित मण्डलीके मध्यमेंभी अनेक पण्डितोंका यही मत है, परन्तु कोई २ विद्वान् आठवें महीनेकोही मुख्य समय कहने हैं ॥ १७ ॥

अपरञ्च ।

अन्नस्य प्राशनं कार्यं मासि पष्ठेऽष्टमे बुधैः ।

स्त्रीणान्तु पञ्चमे मासि सप्तमे प्रजगौ मुनिः ॥ १८ ॥

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, बालकका अन्नप्राशन छठे वा आठवें महीनेमें करना चाहिये-और कन्याका अन्नप्राशन पांचवें वा सातवें महीनेमें करे, इस प्रकार मुनियोंने कहा है ॥ १८ ॥ इति कृत्यचिन्तामणौ ।

प्रकारान्तरञ्च ।

द्वादशीसप्तमीनन्दारिक्तासु पञ्चपर्वसु ।

बलमायुर्यशो हन्याच्छिशूनामन्नभक्षणम् ॥ १९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, द्वादशी, सप्तमी, प्रतिपदा, एकादशी, पष्ठी,

यथा राजमार्तण्डः-पष्ठे मासि शुभे चन्द्रे पक्षे वाप्यासितेति । अन्नस्य प्राशनं कुर्याद्विनाय प्रथमं शिशोः ॥ ” इति ॥

(×) पष्ठ इति मुख्यकल्पः असमयस्य क्षेमायोगादिति न्यायात् इति ज्योतिस्तत्त्वे स्मार्तेनाभिहितम् ।

रिक्तातिथि और पंचपर्वमें बालकको अन्नप्राशन करनेसे उसका बल आयु और यशका नाश होता है ॥ १९ ॥

अन्यच्च ।

पष्ठे मासि निशाकरे शुभकरे रिक्तेतरे वा तिथौ
सौम्यादित्यसितेन्दुर्जविदिवसे पक्षे च कृष्णेतरे ।
प्राजेशादितिपौष्णवैष्णवयुगैर्हस्तादिपट्कोत्तरैः—(क)
राग्नेयाप्यतिपिञ्चभैश्च नितरामन्नादिभक्ष्यं शुभम् ॥ २० ॥

इति भुजबलभीमे ।

अर्थ—भुजबलभीमने लिखा है कि, छठे महीनेमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे रिक्ताभिन्न तिथिमें बुध, रवि, सोम, और वृहस्पतिवारमें, शुक्लपक्षमें, रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, आश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, उत्तराषाढशुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, कृत्तिका, शतभिषा और मघा नक्षत्रमें बालकका अन्नप्राशन शुभ होता है अन्नप्राशनमें विद्ध ऋक्ष (दशयोगभंग) देखना चाहिये ॥ २० ॥

अपरश्च ।

वृषद्वन्द्वधनुर्मीनकन्यालग्नेऽन्नभक्षणम् ।
त्रिकोणाष्टकयुग्मान्त्यग्रहायदत्तया फलम् ॥ २१ ॥ (ख)

अर्थ—वृष, मिथुन, धन, मीन और कन्या लग्नमें अन्नप्राशन करना चाहिये किन्तु इन सब लग्नोंके मध्यमें जिस २ लग्नमें बालकको अन्न खिलावे उसके नववें, पांचवें, आठवें, दूसरे और बारहवें स्थानमें जो ग्रह जिस प्रकारसे स्थित हों उसी प्रकार फल होता है अर्थात् शुभ ग्रहोंके होनेसे शुभ फल और पापग्रहोंके होनेसे अशुभ फल होता है ॥ २१ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

दुष्टः शशधरो लग्नात्पष्टाष्टमस्थोऽन्नभक्षणे ॥ २२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, अन्नप्राशनमें लग्नसे छठे और आठवें चन्द्रमा दृष्ट होना है अतएव छठे और आठवें चन्द्रमाको परित्याग करना चाहिये ॥ २२ ॥

इत्यन्नप्राशनम् ।

(क) युगेति—प्राजेशादौ ग्रहैकसम्बध्यते । अत्रापि तिथ्यादिभिर्द्वयैश्च विवर्जयेत् ।

(ख) यदत्तया फलीति शुभयोगे शुभफलं पापयोगेऽशुभफलमित्यर्थः ॥

अथ चूडाकरणम् ।

चूडा माघादिपटके लघुचरमृदुभे मैत्रहीने सशक्रे
नानंशे सत्सु केन्द्रेष्वशुभगगनगैर्वृद्धिगैर्विष्णुबोधे ।

नो रिक्ताद्यष्टपष्ठान्त्यतिथिषु नयमाराह्युग्माब्दमासे

नो जन्मक्षेन्दुमासे विधत्कुजशशिनक्षलम्पर्कशुद्धौ ॥ २३ ॥ (ग)

अर्थ-अथ चूडा करणका मुहूर्त्त कहते हैं-माघसे आदि लेकर छः महीनोंमें पुष्य, आश्विनी, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, मृगशिर, रेवती और ज्येष्ठा नक्षत्रमें, ग्रहोंके अनंश दिनमें अर्थात् संक्रान्तिभिन्नादिनमें केन्द्रस्थानमें शुभग्रह और तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें पापग्रह होनेसे हरिश्चयनाभिन्न कालमें, रिक्ता, प्रतिपदा, अष्टमी, पष्टी और पूर्णिमाको छोड़कर अन्य तिथियोंमें, शुक्लपक्षमें, शनि मंगलको छोड़कर अन्य वारोंमें, युग्म वर्षमें युग्म मास, जन्म नक्षत्र, जन्मके चन्द्रमा और जन्मके महीनेको छोड़कर अन्य महानिम तुला, मेष, वृश्चिक, कर्क और सिंह लग्नको छोड़कर अन्य लग्नोंमें सूर्य शुद्ध होनेसे चूडाकर्म करना चाहिये ॥ २३ ॥

(ग) चूडाकरणमाह-चूडेति । माघादिषु मासेषु चूडा कार्या अत्र च पटसख्याश्रवणाच्चेदपि चडा काया । चैत्रनिषेधस्तु नित्यक्षौरपरः । तथा च वक्ष्यते । ‘ नेष्टो हरीज्यभवनोपगतोऽत्र सूर्यः ’ इति । लघुगणः । ८ । १ । १३ । चरणः १५ । ७ । २२ । २३ । २४ । मैत्रहीने अनुराधावर्जिते मृदुगणे १४ । ५ । २७ । सशक्रे ज्येष्ठायाश्चेत्यर्थः । नानंशे ग्रहेर्निर्देशकृते दिने चूडा कार्या इत्यर्थः । केन्द्रेषु शुभग्रहेषु सत्सु गगनगो ग्रहः अशुभगगनगैरशुभग्रहेर्वृद्धिगैरुपचयस्येः सद्भिः विष्णुबोधे च चूडा कार्येत्यर्थः । तथाच राजमार्तण्डे-“क्षौरक्षेपु कुलोद्भवेन विधिना चूडा विधेया बुधैर्लग्नस्ये भृगुजे चतुष्टयगते जीवेऽथवा बोधने । मन्दाकारावनिनन्दनैश्च शशिना क्षीणेन युक्तेषु च लाभारातिवृत्तीय भेषु विहिते राशयुद्धमे सर्वदा ॥ ” इति । सौमरिणा तु अशुभिर्गगनगैर्दशमस्येः वृद्धिगैरेकादशस्थैरिति प्रलपितम् । विष्णुबोध इत्यनेनापाठेपि हरिश्चयनानन्तरं न कर्तव्यमित्यर्थः । रिक्तातिथी आद्ये प्रातिपदि अष्टम्यां पष्ठयाचान्त्यतिथौ पूर्णिमास्याश्च न चूडा अमावस्यायान्तु कृष्णपक्षे विधानाभावादेव निषेधः । तथा च राजमार्तण्डे-“ चन्द्रे च सप्तोपचयाद्यसंस्थे तिवावरिक्तेऽपि च शुक्लपक्षे । प्राचीमुक्तः सौम्यमुखोऽपि भूत्वा कर्मान्नरः क्षौरमतुक्तस्ये ” इति । नयमाराह्युग्माब्दमासी शनिभगलवारे न चूडा तथा सुविवारेऽपि दोषः । तत्रापि प्रतीकारानन्तरं कार्यामिति । राजमार्तण्डे-“ धार्गिशशक्रः शनिशकाराणां शरे प्रशस्तं मुनयो वदन्ति । क्षौर दिने तीक्ष्णरुचेश्च चैत्रमासेऽथवा सद्भिर्हिते हुताशे ” ॥ अथ युग्माब्दे युग्ममासे च न चूडा । अत्र विंशदिनात्मकमासव्यवस्थायां युग्मविचारः कथः । तथा जन्मादौ सावनो मत इति तथा जन्मनक्षत्रे जन्मचन्द्रे

चूडाकर्मद्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।

प्रथमेऽब्दे (✽) तृतीये वा कर्तव्यं स्मृतिचोदनात् ॥ २४ ॥

इति मनुः ।

अर्थ—भगवान् मनुने कहा है कि; ब्राह्मणादि सबकोही पहिले वर्षमें वा तीसरे वर्षमें बालकका चूडाकर्म (मुंडन) करना चाहिये ॥ २४ ॥

अयुग्माऽब्दे तथा मासि चूडा भौमशनीतरे ।

अर्केन्दुकालशुद्धौ च जन्ममासेन्दुभेतरे ॥

रिक्तादशाष्टमीपष्टीप्रतिपद्वर्जिते सिते ॥ २५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अयुग्मवर्षमें, अयुग्ममहीनेमें मंगल और शनिवारको छोड़कर अन्य चारोंमें सूर्य चन्द्रमा और कालशुद्धि होनेसे, जन्मका महीना, जन्मका चन्द्रमा और जन्मके नक्षत्रको छोड़करके रिक्ता अमावस्या, अष्टमी, पष्टी और प्रतिपदा तिथिका छोड़कर अन्यातिथियोंमें शुक्लपक्षमें बालकका चूडाकर्म (मुण्डन) कराना चाहिये ॥ २५ ॥

पष्ठ्यष्टमीपञ्चदशी पक्षद्वयचतुर्दशी ।

अत्र सन्निहितं पापं तैले मांसे भगे क्षुरे ॥ २६ ॥ (१)

इति दक्षः ।

अर्थ—दक्षमुनिने कहा है कि, पष्टी, अष्टमी, पूर्णिमा और दोनों पक्षोंकी चतुर्दशी इन समस्त तिथियोंमें तैल लगानेसे, मांस, खानेसे स्त्रीगमन करनेसे और क्षीरकर्म करानेसे (हजामत बनवानेसे) पातक लगता है ॥ २६ ॥

मेपसिंहतुलाकर्किकृत्तिकेतरलग्नके ।

जन्ममासे च न चूडा कार्या । विषट्कुजशशिनश्चलग्नेष्वस्तुलाकुजर्क्षमेपश्विकी । चन्द्रर्क्षे कर्कटः । इनः सूर्यः तद्वह सिंहः । एतद्व्यतिरिक्ते लग्ने गोचरशुद्धे स्त्री चूडा कार्या । इति ॥

(x) नात्र अशक्तस्य क्षेमायोगादिति न्यायात्प्रथमाब्दस्य प्राधान्यं किन्तु तृतीयाब्दस्य तथा च ' चूडाकार्ये तृतीयाब्दः सर्वगृह्यादिसम्मतः । तत्कालेऽशीचवृद्धश्च मुख्य इत्यवगम्यते ' इति स्मार्ताः । शस्त्रलिखिते । " तृतीयवर्षे चूडाकरणं पञ्चमे वा " " पुत्रचूडाकृते माता यदि सा गर्भिणी भवेत् । शलेण मृत्युमाप्नोति तस्माच्चौलं विन-जयेत् । स्नोमातंगि गर्भिण्या चूडाकर्म न कारयेत् । पञ्चनर्पात्प्राक्तदूर्ध्वं गर्भिण्यामपि कारयेत् । गर्भे मातुः कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म तु । पचमासादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥ इति ग्रन्थान्ते ।

(१) मामान्यनो दोषमाह—पष्ठ्यष्टमीति ।

श्रवणादित्रयस्वातिचित्रापुष्याश्विचन्द्रभे ।

आदित्यरेवतीहस्तज्येष्ठामूले च चौडकम् ॥ २७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, मेष, सिंह, तुला, कर्क और वृश्चिक, इन लग्नोंको छोड़कर अन्य लग्नोंमें श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, स्वाती, चित्रा, पुष्य, आश्विनी, मृगशिर, पुनर्वसु, रेवती, हस्त, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रमें चौडकर्म (मुंडन) कराना चाहिये ॥ २७ ॥

क्षौरं प्रशस्तं मृगचापकन्याकुम्भेषु मीने मिथुने वृषे च ।

लग्ने धनं बुद्धिविवर्द्धनञ्च शेषेषु रोगो भयमर्थनाशः ॥ २८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, मकर, धन, कन्या, कुम्भ, मीन, मिथुन और वृषलग्नोंमें हजामत बनवानेसे धन और बुद्धिकी वृद्धि प्राप्त होती है । उक्त लग्नोंमें न बनवानेसे रोग, भय और द्रव्यका नाश होजाता है ॥ २८ ॥

पौष्णाश्विपुष्यवसुवासववासुदेव-

ब्रह्माकंचन्द्रवरुणादितिचित्रभेषु ।

वारेषु सोमबुधवाक्पतिभार्गवाणां

क्षौरं करोति कुशलं खलु मानवानाम् ॥ २९ ॥ (२)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, रेवती, आश्विनी, पुष्य, धनिष्ठा, श्रवण, रोहिणी, हस्त, मृगशिर, शतभिषा, पुनर्वसु और चित्रा नक्षत्रमें, सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्रवारमें मनुष्यको क्षौरकर्म करानेसे (हजामत बनवानेसे) मङ्गल होता है ॥ २९ ॥

सूर्ये दक्षिणमार्गगामिनि हरौ सुप्ते निरंशे रवौ

क्षीणे शीतरुचौ महीजयमयोर्वारे निशासन्ध्ययोः ।

मुक्तेऽभ्यक्ततनौ निषिद्धसमयेऽलङ्कारयुक्ते शिशौ

क्षौराद्रोगभयं वदन्ति यवना मृत्युं तथान्ये जगुः ॥ ३० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, दक्षिणायनमें, हरिजयनमें, संक्रान्तिमें

(२) अत्रापि तिथ्यादीन्दिमृस वर्जयेदिति स्मार्त्ताः ।

क्षीण चन्द्रमार्गे, मङ्गल और शनिवारमें, रात्रि और सन्ध्याकालमें भोजनके अन्तमें अभ्यंग अर्थात् तेल लगाकर और निषिद्ध कालमें अलङ्कार (आभूषण) पहनकर हजामत बनवानेसे रोगभय होता है, इसप्रकार यवनमुनिका मत है किन्तु अन्यान्य मुनियोंके मतसे इस समय वा उक्त प्रकारसे हजामत बनवानेमें मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ३० ॥

मानं हरेत्क्षौरमिहायुषोर्कः शनैश्चरः पञ्च कुजस्तथाष्टौ ।

आचार्यभृग्विन्दुबुधाः क्रमेण (❀) दद्युर्दशैकादशसप्तपञ्च ॥ ३१ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्तण्डमें लिखा है कि रविवारमें हजामत बनवानेसे सम्मानहानि और आयुःक्षय होता है, रविवारमें हजामत बनवानेसे जो दोष कहा है शनिवारमें बनवानेसे उससे पंच गुण दोष और मंगलवारमें बनवानेसे उससे अठगुना दोष होता है बृहस्पतिवारमें हजामत बनवानेसे दशगुण शुभफल होता है । इसी प्रकार शुक्रवारमें ग्यारह गुण, सोमवारमें सप्तगुण और बुधवारमें हजामत बनवानेसे पंचगुण शुभ फल होता है ॥ ३१ ॥

अन्यथा ।

माघादिपट्टके (१) समये विशुद्धे हरौ प्रबुद्धे शुभदे खरांशौ ॥

वर्षत्रये वाप्यथ पञ्चमे वा चूडा च कार्या प्रथमं शिशूनाम् ॥ ३२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, माघसे आदि लेकर छः महीनोंके मध्यमें शुद्धकालमें, श्रीहरिके जाग्रत्समयमें, सूर्य शुद्ध होनेसे, तीनवर्षमें वा पांच वर्षमें बालकका चूडाकर्म (मुण्डन) करवै ॥ ३२ ॥

उत्तरवर्त्मानि सवितरि चूडाकरणं जगुः शुभं यवनाः ।

चैत्रे मासि दिवाकरवारे शिशिसन्निधाने च ॥ ३३ ॥

इति भोजराजः ।

अर्थ-भोजराजाने कहा है कि, उत्तरायणके मध्यमें चैत्रमासमें रविवारमें आग्नि सन्निहितमें चूडाकर्म होसक्ता है इस प्रकार यवनमुनिका मत है किन्तु चैत्रके महीनेमें रविवारमेंही चूडाकर्म प्रशस्त है ॥ ३३ ॥

(×) जवादिवारें क्षौरं प्रशस्तमिति स्मार्तनोक्तम् ।

(१) माघादिपट्टक इत्युपपादनात् चत्रऽपि चूडाकरणे रविवार एव इति हृदयानन्दः ।

जन्मक्षौं जन्ममासे च युग्ममासे च वत्सरे ।

न कुर्यात्प्रथमं क्षौरं विशेषाच्चैत्रपौषयोः ॥ ३४ ॥ (+)

इति गर्गः ।

अर्थ-गर्गमुनिने कहा है कि, जन्मके नक्षत्रमें जन्मके महीनेमें, युग्ममहीने और युग्मवर्षमें विशेषकरके सौर चैत्र और पौषके महीनेमें बालकका प्रथम क्षौरकर्म न कराना चाहिये । चूडाकर्ममें दशयोगमङ्ग, युतवेध और यामित्र-वेधका विचार करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अथ नित्यक्षौरम् ।

चूडोदितक्षमुदयः क्षण एव चैपा-

मिष्टौ बुधेन्दुदिवसौ क्षुरकर्मशुद्धौ ।

नेष्टौ हरीज्यभवनोपगतोऽत्र सूर्यः

कालाविशुद्धिरहितं त्वितरत्पुरावत् ॥ ३५ ॥ (❀)

अर्थ-अथ नित्य क्षौरकर्मको कहते हैं । चूडाकर्ममें कहे हुए नक्षत्रोंमें वा चूडा कर्मके नक्षत्रोंके मुहूर्तमें लग्न करके बुधवार अथवा सोमवारमें कालशुद्धिको छोड़कर चूडाकर्मोक्त सभी नित्य क्षौरकर्ममें प्रशस्त है ॥ ३५ ॥

न स्नानमात्रगमनोत्सुकभूपिताना-

मभ्यक्तभुक्तरणकालनिरासनानाम् ॥

सन्ध्यानिशाशनिकुजार्कदिनेषु रिक्ते

क्षौरं हितं प्रतिपदाह्नि तथैव विष्ट्याम् ॥ ३६ ॥

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ-नित्य क्षौरके विषयमें राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, स्नानके अन्तमें

(+) पुत्रकन्ययोस्तु चैत्र मासि ज्येष्ठपुत्रकन्ययोस्तु मार्गे ज्येष्ठस्य दशाहाभ्यन्तरे च चूडादिनिषेधो विवाहप्रकरणे उक्तः चूडाया दशयोगमङ्गयुतयामित्रवेधा निवार्याः ।

(•) नित्यक्षौरमाह-चूडा इति । चूडोक्तनक्षत्र तदप्राप्तावेष्टा चूडोक्तनक्षत्राणा क्षणो मुहूर्त्तमेव उदयो रश्मि वा स्यात् बुधेन्दुदिवसौ नित्यक्षुरकर्मशुद्धाविष्टौ अन्ये पञ्च वारा निषिद्धाः । तथा पशुप्रतिदीपिकायाम् । " शुक्रः शुक्रक्षय कुर्यान्मानं हन्ति गुरोर्दिनम् । शनी भीमे भवेद्रोगो मनस्तापो खेदिने ॥ " अत्र नित्यक्षौरे हरिः सिंह इज्यभवन धनु-मानौ एषु गतः सूर्यो नेष्टः भाद्रपौषचैत्रमासेषु क्षौरं न कार्यमित्यर्थः । अत्राप्यशक्ता-वग्निसाक्षिक कृत्वा कर्त्तव्य तथा-" क्षौरं दिने तीक्ष्णरुचेस्तु चैत्रमासेऽथवा सन्निहिते हुताग्ने " इति । पुरावचूडाकरणवत् अन्यत्सर्वं ज्ञातव्यम् । तच्च कालाविशुद्धिरहितं

यात्रा करके आभूषण पहिनेके बाद तैल लगाकरके भोजन करनेके बाद रण-
समयमें निरशनमें, सन्ध्याकालमें और रात्रिमें, ज्ञानि, मङ्गल और रविवारमें,
रिक्ता, प्रतिपदा और विष्टि मद्रामें क्षौरकर्म करानेसे अमङ्गल होता है ॥ ३६ ॥

चूडोदिते तथा ऋक्षे बुधेन्दुदिवसे नरः ।

नित्यक्षौरं प्रकुर्वीत जन्ममासे विवर्जयेत् ॥ ३७ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ—ज्योतिषसारमें लिखा है कि, चूडोदित नक्षत्रोंमें बुध और सोमवारमें
क्षौरकर्म प्रशस्त है, किन्तु जन्मके महीनेको छोड़देवें ॥ ३७ ॥

प्राचीमुखः सौम्यमुखोऽपि भूत्वा

कुर्यान्नरः क्षौरमनुत्कटस्थः ॥ ३८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, मनुष्य हजामत बनवानेके समय पूर्व वा
उत्तरको मुख करके कोमल आसनपर बैठे ॥ ३८ ॥

उत्तरात्रितययाम्यरोहिणीरौद्रसर्पपितृभेषु चाग्निभे ।

श्मश्रुकर्म सकलं विवर्जयेत्(क)प्रेतकार्यमपि बुद्धिमान्नरः ॥ ३९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्र-
पदा, भरणी, रोहिणी, आश्लेषा, आर्द्रा, मघा और कृत्तिका नक्षत्रमें श्मश्रुकर्म
(क्षौरकर्म) और प्रेतकार्यको बुद्धिमान् मनुष्य परित्याग करे ॥ ३९ ॥

चन्द्रशुद्धिर्यदा नास्ति तारायाश्च विशेषतः ।

अक्षौरिभेऽपि कर्तव्यं चन्द्रचन्द्रजयोर्दिने ॥ ४० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, क्षौर विषयमें विद्धनक्षत्र होनेसे यदि
चन्द्रमाशुद्धि और ताराशुद्धि न होय तो भी सोमवारमें और बुधवारमें क्षौर
हो सक्ता है ॥ ४० ॥ (ख)

—नित्यक्षौरे शुक्रादिकालाशुद्धिदोषो नास्तीत्यर्थः । अत्र शुक्लकृष्णपक्षव्यवस्था नास्ति
किन्तु पूर्वोक्ततिथिमात्रनिषेधः । इति ।

(क) प्रेतकार्यं पतितप्रेतसम्प्रदानकदासीघटदानविषयकमिति स्मार्त्ताः ।

(ख) इस ध्वनका तात्पर्य यह है कि, निषिद्ध नक्षत्रमें भी यदि चन्द्रशुद्धि और
ताराशुद्धि होय तो क्षौरकर्ममें दोष नहीं होता है और सोमवार और बुधवार सर्वाप-
वादक है ।

मानं क्षौरं गुरुहन्ति शुक्रं शुक्रो धनं रविः ।

आयुरङ्गारको हन्ति सर्वं हन्ति शनैश्चरः ॥ ४१ ॥

इति ज्योतिर्मन्त्रे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, बृहस्पतिवारमें हजामत बनवानेसे मानहानि होती है, इसी प्रकार शुक्रवारमें शुक्र (वीर्य) का नाश होता है, रविवारमें धनकी हानी होती है मङ्गलवारमें आयु क्षय होता है और शनिवारमें हजामत बनवानेसे मनुष्यका मान, बल, धन और आयुका नाश होता है ॥ ४१ ॥

अन्यच्च ।

रवौ दुःखं सुखं चन्द्रे कुजे मृत्युर्बुधे बलम् ।

मानं हन्ति गुरोर्वारं शुक्रे पुत्रक्षयो भवेत् ।

शनी च सर्वं दोषास्त्युर्ध्वयेत्क्षौरकर्मणि ॥ ४२ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, रविवारमें क्षौर करानेसे दुःख होता है इसी प्रकार सोमवारमें सुख, मङ्गलमें मृत्यु, बुधमें बलकी वृद्धि, बृहस्पतिवारमें मानहानि, शुक्रमें पुत्रनाश और शनिवारमें क्षौर करानेसे समस्त दोष होते हैं । अन एव उक्तं समस्त निषिद्ध वारोंमें क्षौरकर्म न करावे किन्तु सामवेदी मङ्गलवारमें, यजुर्वेदी शुक्रवारमें और ऋग्वेदी बृहस्पतिवारमें क्षौरकर्म कगमक्ता है, व्यवहार भी इसी प्रकार है ॥ ४२ ॥

देवकार्ये पितृश्राद्धे स्वेरंशपरिक्षये ।

क्षौरकर्म न कुर्वीत जन्ममासे च जन्मभे ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिषतत्त्वम् ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि देवकार्यमें, श्राद्धके दिनमें, संक्रान्तिमें जन्मके महीनेमें और जन्मके नक्षत्रमें क्षौरकर्म न कराना चाहिये ॥ ४३ ॥

आज्ञया नरपतिर्द्विजन्मनां दारकर्ममृतसूतकेषु च ।

बन्धमोक्षमसदीक्षणेऽपि क्षौरमिष्टमाखिडेपु चोडुपु ॥ ४४ ॥

इति श्रीपतिरत्नमालायाम् ।

अर्थ-श्रीपतिकी रत्नमालाग्रन्थमें लिखा है कि, विवाहमें, मृतशोच और जननाशोचके अन्त दिनमें, जेलखानेमेंसे छूटनेमें और यज्ञदीक्षामें, राजा और ब्राह्मणोंकी अनुमति (आज्ञा) से समस्त नक्षत्रोंमें ही क्षौरकर्म होमका है ॥ ४४ ॥

केशवमानर्त्तपुरं पाटलिपुत्रं पुरीमहिच्छत्राम् ।

दितिमदितिश्च स्मरतां क्षौरविधौ भवति कल्याणम् ॥ ४५ ॥

इति बृहद्गार्ग्यमुनिः ।

अर्थ—बृहद्गार्ग्यमुनिने कहा है कि, केशव, आनर्त्तपुर, अहिच्छत्रापुर, दिति और अदिति इनके नामका स्मरण करनेसे क्षौरकर्ममें मङ्गल होता है ॥ ४५ ॥

श्मश्रुकर्म कारयित्वा नखच्छेदमनन्तरम् ॥ ४६ ॥

इति वराहपुराणे ।

अर्थ—वराहपुराणमें लिखा है कि, हजामत बनानेके बाद नाखून कटाना चाहिये ॥ ४६ ॥

अथ कर्णवेधः ।

नो जन्मेन्दुभमासरविजक्ष्माजाहसुताच्युते
शस्तेऽकै लघुविष्णुयुगममृदुभस्वात्युत्तरादित्यर्भः ॥

सौम्यैरुयायत्रिकोणकण्टकगतैः पापैस्त्रिलाभारिगै-

रोजेऽब्दे श्रुतिवेध इज्यसितभे लग्ने च काले शुभे ॥ ४७ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अथ कर्णवेध (कर्ण छिदनेका) मुहूर्त्त कहते हैं । दीपिकामें लिखा है कि, जन्मचन्द्रमा, जन्मनक्षत्र और जन्मके महीनेको छोड़ अन्यमें गवि, शनि, मङ्गल वारको छोड़कर अन्य वारोंमें श्रीहरिके जाग्रत्कालमें सूर्य शुद्ध होनेसे पुष्य, आश्विनी, हस्त, श्रवण, धनिष्ठा, चित्रा, अश्लेषा, मृगशिर, रेवती, स्वाति, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और पुनर्वसु नक्षत्रमें, लग्नके तीसरे, ग्यारहवें, नववें पांचवें और केन्द्रस्थानमें शुभ ग्रह होनेसे और तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें पाप ग्रह होनेसे अयुष्मवर्षमें धन, मीन, वृष, और तुला लग्नमें शुद्ध कालमें बालकका कान छिदवाना चाहिये ॥ ४७ ॥

यदापत्यद्वयं तिष्ठेत्सम्भवोऽथ परस्य च ।

पट्कर्णं तं विजानीयाद्वाहितं त्रयस्य च ॥ ४८ ॥

• कर्णवेधमाह—नोजन्मेति । शुभे काले शुद्धकाले योगोऽब्दे अयुष्मवर्षे श्रुतिवेधः कर्तव्यः । अत्र निषेधमाह । जन्मचन्द्रे जन्मनक्षत्रे जन्ममासे सूर्यश्रुतिमङ्गलयोगेषु च शुभेऽच्युते हरिशयने न कर्तव्यमित्यर्थः । विधिमाह शस्तेऽकै मोक्षशब्देऽकै लघु गणे ८ । १ । १३ । निष्णुयुग्मे २२ । २३ मृदुगणे १४ । २७ । ५ । २७ । ग्यात्यामुत्तम त्रये १२ । २१ । २६ आदित्यमे पुनर्त्तसौ इज्यसितभे शुभशस्त्रे धनुर्भागे त्रये तुरायां च कार्यमित्यर्थः । शेषे सुगमम् ।

इत्याशङ्क्य द्वयोर्मध्ये शुचिर्यस्याथ वत्सरे ।

कर्णवेधो हिततस्स्य नात्र ज्येष्ठविचारणा ॥ ४९ ॥

पट्कर्णोत्पत्तिमाशङ्क्य भानोः शुद्ध्या समेऽपि च ।

कर्णवेधे न दोषः स्यादन्यथा मरणं भवेत् ॥ ५० ॥ (❀)

इति माण्डव्यादिषु ।

अर्थ-जिसके दो पुत्र हं और दोनोंमेंसे एककामो कर्णवेध नहीं हुआ है और इसी अवस्थामें एक पुत्र और होनेकी सम्भावना है तब उसको पट्कर्णवेध कहते हैं, पट्कर्णवेध होनेसे तीनोंका अमङ्गल होता है पट् हो सक्ता है इस शङ्काकरके वर्तमान दोनों पुत्रोंके मध्यमें उसी वर्षमें जिसके सूर्यादि शुद्धि होय उसकाही कर्णवेध करावे इसमें ज्येष्ठादिक्रमका विचार न करे पट्कर्णकी शङ्कासे सूर्य शुद्धि होनेसेही कर्णवेध कराना चाहिये इसमें युग्मवर्षका विचार न करे उक्त प्रकार कर्णवेध न करानेसे ज्येष्ठपुत्रकी मृत्यु होती है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

न जन्ममासे न च चैत्रपौषे न युग्मवर्षे न हरौ प्रसुप्ते ।

रवौ न दुष्टे न च कृष्णपक्षे न जन्मभे कर्णविधिः प्रशस्तः ॥ ५१ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्तण्डमें लिखा है कि, जन्मके महीनेमें, सौर चित्र और सौर पौषमें युग्मवर्षमें, श्रीहरिक अयनकालमें, सूर्य गोचरमें अशुद्ध होनेसे कृष्णपक्षमें और जन्मनक्षत्रमें कर्णवेध नहीं होता है ॥ ५१ ॥

सूर्येऽनुकूले शशिनि प्रशस्ते तारावले चन्द्रविवर्द्धपक्षे ।

अयुग्मवर्षे शुभाद् शिशूनां कर्णस्य वेधं मुनयो वदन्ति ॥ ५२ ॥

अर्थ-ज्योतिःसाम्प्रदाय लिखा है कि, गोचरमें सूर्यशुद्धि, चन्द्रशुद्धि, और ताराशुद्धि होनेसे शुक्लपक्ष और अयुग्मवर्षमें बालकोंका कान उड़ाना चाहिये, मुनिगणोंने इस प्रकार कहा है ॥ ५२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

स्वात्यश्विनीहस्तपुनर्वसौ च चन्द्रेऽनुकूले गुरुशुक्रवारे ।

कर्णस्य वेधो बुधवासरे वा पुष्येन्दुचित्रादरिरेवतीषु ॥ ५३ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-ज्योतिःसाम्प्रदाय लिखा है कि, स्वाति, अश्विनी, हस्त, पुनर्वसु, पुष्य

(*) मरण ज्येष्ठस्य इति हृदयानन्द । अत्रापि दृश्ययोगमनो विचार्य । “ ज्येष्ठे विवाहे च व्रते पुत्रयने तथा । प्राशने चाद्यनृदायां शिष्टमन्नं रिजयेत् ॥ ” इति वचनात् ।

मृगशिर, चित्रा, श्रवण और रेवती, नक्षत्रमें, बृहस्पति, शुक्र और बुधवारमें गोचरमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे बालकोंका कान छिदाना चाहिये ॥ ५३ ॥

अन्यच्च ।

अश्विनी रेवती चैव हस्तश्चित्रा पुनर्वसुः ।

धनिष्ठा मृगशुष्याश्च श्रवणं मैत्रमेव च ॥ ५४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, अश्विनी, रेवती, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, धनिष्ठा, मृगशिर, पुष्य, श्रवण और अनुराधा नक्षत्रमें बालकोंका कान छिदाना चाहिये ॥ ५४ ॥

स्थिरे चैवाथ लग्ने च चापे नृमिथुने तथा ।

कर्णवेधं प्रकुर्वीत बालानां शुभदं वरम् ॥ ५५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, स्थिर अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक कुम्भ, लग्ने धन और मिथुनमें बालकोंका कान छिदाना चाहिये ॥ ५५ ॥

कर्णवेधव्रते कुर्याद्दुद्भागस्थिते रवौ ।

दक्षिणाशास्थिते भानौ नैव कुर्यात्कथञ्चन ॥ ५६ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ—गर्गमुनिने कहा है कि, कर्णवेध और उपनयन उत्तरायणमें ही करना चाहिये उक्त दोनों कार्य कभी दक्षिणायनमें न करे ॥ ५६ ॥

इति कर्णवेधः ।

अथ विद्यारम्भः ।

लघुचरशिवमूलाधोमुखत्वाद्गण-

शशिषु च हरिवोधे शुक्रजीवार्कवारे ।

उदितवति च जीवे केन्द्रकोणेषु सौम्यै-

रपठनदिनवर्जं पाठयेत्पञ्चमेऽब्दे ॥ ५७ ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अथ विद्यारम्भका मुहूर्त्त कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, पुष्य, अश्वि-

(ग) विद्यारम्भमाह-लघुचर इति । पञ्चमे वर्षे रविजीवशुक्रवारे शिशु पाठयेत् । अन्यस्मिन् वारे दोषमाह राजमातृष्टे—“प्रजार्शुमशुकेषु मृत्युर्नन्दमर्हजयोः । महनी जडता चन्द्रे बुधे

नी, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, आर्द्रा, मूल, आश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा, विशाखा, पूर्वाषाढ्युनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, चित्रा, रेवती और मृगशिर नक्षत्रमें, श्रीहरिके जाग्रत्समयमें शुक्र बृहस्पति और रविवारमें बृहस्पतिके उदयमें केन्द्र और त्रिकोणस्थानमें शुभ ग्रह होनेसे अनध्यायका दिन परित्याग करके पांचवें वर्षमें बालकको विद्यारम्भ कराना चाहिये ॥ ५७ ॥

संप्राप्ते पञ्चमे वर्षे अप्रसुप्ते जनादर्न ।

पृष्ठीं प्रतिपदश्चैव वर्जयित्वा तथाष्टमीम् ॥ ५८ ॥

रिक्तां पञ्चदशीश्चैव सौरिभौमादिने तथा ।

एवं सुनिश्चिते काले विद्यारम्भंतु कारयेत् ॥ ५९ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ- विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि पांचवें वर्षमें, श्रीहरिके जाग्रत्समयमें, पृष्ठी, प्रतिपदा, अष्टमी, रिक्ता, पूर्णिमा और अमावस्याभिन्न तिथिमें और शनि मङ्गलभिन्न वारमें बालकको विद्यारम्भ करावै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

विद्यारम्भे गुरुः श्रेष्ठो मध्यमौ भृगुभास्करौ ।

मरणं शनिभौमाभ्यामविद्या बुधसोमयोः ॥ ६० ॥ (ॐ)

इति मदनपारिजाते ।

अर्थ-महनपारिजात ग्रन्थमें लिखा है कि विद्यारम्भमें बृहस्पतिवार ही श्रेष्ठ है, शुक्र और रविवार मध्यम हैं और शनि, मङ्गल वारमें विद्यारम्भ करनेसे मृत्यु

—दानभियोगिता” ॥ अनुदिते जीवे विद्यारम्भो न कार्यः । केन्द्रत्रिकोणे च स्थितेः शुभै-
रपठनदिन वर्जयित्वा पाठयेदित्यर्थः । अस्वाध्यायो राजमार्त्तण्डे उक्तः । “वीषादित्रिषु मासेषु
कृष्णे चैषाष्टकात्रयम् । एका ज्ञेयाश्विने मासि हायनश्चतुरष्टकः । अष्टका तु समुद्दिष्टा सप्त-
म्यादितिधित्रये । नाभीधीनात्र शास्त्राणि वर्जयेद्भूतबन्धनम् । या काचित्प्रतिपद्विद्धा प्रेत-
पक्षेऽथवा गते । या तु कोजागरे याते चैत्रकल्याः परेऽपि या । चतुर्मास्यसमाप्ती च द्वितीया
या भवेत्तिथिः । सर्गास्वेतास्वनध्यायः पुराणेः परिकीर्तितः । अष्टमी हन्त्युपाध्याय शिष्यं
हन्ति चतुर्दशी । अमा राकोभय हन्ति प्रतिपत्सु न कीर्तयेत् ॥ सन्ध्यायां गजंते मेघे
शास्त्रचिन्ता करोति यः । चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विधा यशो बलम् ॥ चन्द्रसूर्योपरागे
तु पर्वस्वाशौचकादिषु । पापोत्पातहते चाहि अनध्यायो गलग्रहे । उत्पातो भूकम्पोल्ला-
पातादि गलग्रह उक्तस्तत्रैव । आरम्भानन्तर यत्र प्रत्यारम्भो न सिध्यति । गर्गादिमु-
नयः सर्वे तमोः राहुर्गलग्रहः ॥ अष्टमी सप्तमीभिद्धा त्रयोदश्या चतुर्दशी । प्रतिपदा
द्वितीया च गलग्रह उदाहृतः ॥ ” शेष सुगममिति ।

(•) एतद्वचनं धनुर्विद्यापरमिति केचित् । इति हृदयानन्दः ।

होती है और बुध और सोमवारमें विद्यारम्भ करनेसे विद्याहीन (मूर्ख) होता है ॥ ६० ॥

विद्यारम्भः सुरगुरुसितज्ञेष्वाभीष्टार्थदायी
कर्तुश्चायुश्चिरमपि करोत्यंशुमान्मध्यमोऽत्र ।

नीहारांशौ भवति जडता पञ्चता भूमिपुत्रे

छायासूनावपि च मुनयः कीर्तयन्त्येवमाद्याः ॥ ६१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, गृहस्थाति शुक्र और बुधवारमें विद्यारम्भ करनेसे अभीष्ट लाभ और आयुकी वृद्धि होती है इसी प्रकार रविवारमें मध्यम, सोमवारमें मूर्खता प्राप्त होती है, मंगलवारमें और जनिवारमें विद्यारम्भ करनेसे पञ्चत्व प्राप्त होता है इस प्रकार मुनियोंने कहा है ॥ ६१ ॥

द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी दशमी तथा ।

द्वादश्यां स्मृतिशास्त्रज्ञ एकादश्यां भवेद्गुणी ॥ ६२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी और दशमी तिथिमें विद्यारम्भ करे, द्वादशी तिथिमें स्मृतिशास्त्र पढ़नेको प्रारम्भ करे और एकादशी तिथिमें विद्यारम्भ करनेसे मनुष्य गुणवान् होता है ॥ ६२ ॥

न सप्तमत्रयोदश्यां नानध्याये (१) गलग्रहे ।

अभ्यासश्चाशुचिः पष्ठ्यां जन्मेन्दौ नेति चापरे ॥ ६३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, त्रयोदशी अनध्याय और गलग्रहोंमें

(१) अनध्यायस्तु—“शुचौ दशम्या सह पूर्णिमासौ मघौ नभस्ये च तिथिस्मृतीषा ।
स्यादाश्विने या नभमी तयोर्जे सपूर्णमा द्वादशिकाय चैत्री ॥ ज्येष्ठी च फाल्गुन्यथ सप्तमी
स्यान्माघे च पौषस्य च रुद्रसग्या । मन्वन्तरादिविशदेऽथ कृष्णे नभोऽष्टमी फाल्गुनदर्श-
सरया ॥ द्वादशी शुक्लगापाठमापमार्गोर्जफाल्गुने । प्रतिपत्पूर्णमादश्वतुर्दशपटमी सदा ।
तिथिष्वेनास्वनध्यायो विपुशायनयोरपि । प्रतिपत्पलमात्रेण कलामात्रेण चाष्टमी । दिन
दूषयने सर्वं सुरा गव्यघट यथा । त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिवद्विगुरुपन्थुः । ग्रहणे
च तथा प्रातः मन्ध्यागर्जे त्वहर्निशम् । पशुमण्डकनरुल्लभाहिमानांगमृषिकैः ।
गतेऽन्तरे त्वहोग्रश्च शिष्टे च गृहमागने । आर्द्राद्यषादगे मूर्धे उपह पृथ्वी रज-
मला । चमृताचीति सज्जन्तस्त्वाध्याय तत्र वर्जयेत् । न बीजमपन कुर्याद्वलानां वाहनं
तथा । वेदानां पाठमतन वर्जयेद्विमत्रयम् । न म्याध्यायः यपटरागेन देवपितृप्रजनम् ।

विद्यारम्भ न करना चाहिये, पष्ठी तिथिमें विद्यारम्भ करनेमें भार्याहीन आर अशुचि होता है, जन्मके चन्द्रमामेंमी विद्यारम्भ न करे ऐसाभी किसी २ आचार्यने कहा है ॥ ६३ ॥

पुण्याद्रामूलमाश्लेषादस्तचित्रमृगस्तथा ।

विद्यारम्भे प्रशस्यन्ते पूर्वान्नितयमेव च ॥ ६४ ॥

इति ज्योतिष्मन्त्रे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, पुष्य, आर्द्रा, मूल, आश्लेषा, इस्त, चित्रा, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा और पूर्वामाघपदा नक्षत्रमें विद्यारम्भ करना चाहिये ॥ ६४ ॥

रवेर्गुरोर्भृगोर्लग्ने तत्स्थेऽर्केपीन्दुवृद्धितः ।

गुर्वर्केन्दूडुशुद्धौ च विद्यारम्भः प्रशस्यते ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिष्मन्त्रे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, सिंह धन, मीन, वृष और तुला लग्नें और मिह और तुलाको छोड़कर अन्य समस्त राशियोंमें सूर्य स्थित होनेमें, शुक्र पक्षमें, वृहस्पति, रवि, चन्द्र और ताराशुद्धि होनेमें विद्यारम्भ करे ॥ ६५ ॥

प्राङ्मुखो गुरुरासीनः पश्चिमाभिमुखं शिशुम् ।

पाठयेत्प्रथमं शिष्यमनघ्याये विवर्जिते ॥ ६६ ॥

इति ज्योतिःसारमन्त्रे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमन्त्रमें लिखा है कि, गुरु पूर्वदिशाको मुख फाके बैठे और बालकको पश्चिम दिशामें मुख करके अनघ्यायवर्जित दिनमें प्रथम विद्यारम्भ करवे ॥ ६६ ॥

प्राङ्मुखो गुरुरासीनो वरुणाभिमुखं शिशुम् ।

अध्यापयेच्च प्रथमं द्विजाशीर्भिः प्रपूजितम् ॥ ६७ ॥

इति बृहस्पतिः ।

अर्थ-बृहस्पतिने कहा है कि, गुरु पूर्वको मुख करके बैठे और ब्राह्मणोंकी पूजा कराकर बालकको पश्चिम दिशामें मुख करके प्रथम विद्यारम्भ कराना चाहिये ॥ ६७ ॥ इति विद्यारम्भः ।

अथोपनयनम् । (क)

जीवाकैन्दूडुशुद्धा हरिशयनवह्निर्भास्करे चोत्तरस्थे

स्वाध्याये वेदवर्णाधिप इह शुभदे क्षौरभे नादितौ च ।

शुक्राकैज्यक्षलमे रविमदनतिथी प्रोज्झ्य पष्ठाष्टमेन्दुं (ख)

नो जीवास्तातचारेऽर्कसितगुरुदिने कालशुद्धौ व्रतं स्यात् ॥ ६८ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अथ उपनयनका सुदूत कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, बालक

(क) “ गृह्योक्तकर्मणा येन समीपं नीयते गुरोः । बाला वेदाय तद्योगं बालोपनयनं विदुः ॥ ” इत्युपनयनलक्षणम् ॥

(ख) उपनयनमाह-जीवाकैति । रवि शुक्रगुरुवारं व्रतमुपनयनं स्यात् जीवाकैन्दू-
शुद्धौ गोचरे जीवशुद्धौ रविशुद्धौ चन्द्रशुद्धौ ताराशुद्धौ च हरिशयन त्यक्त्वा उत्तरस्थे
भास्करे उत्तरायणे सतीत्यर्थः । स्वाध्यायदिने अस्वाध्यायः प्रागुक्तः वक्ष्यते च तथा ग्रह-
णाकालबृष्ट्यादिषु न कर्तव्यम् । राजमासंष्टे-“ग्रहे रवीन्दो रजनीप्रकल्पे केतून्मोल्का
पतनादिदोषे । व्रते दशाहानि वदन्ति तज्जा वर्ज्यानि सप्ताहमपि प्रयाणे ॥ पोषादिचतुरो-
मासान्मोक्ता वृष्टिकालजा । व्रत यात्रादिक तत्र वर्जयेत्सप्तवासरात् । अत्र यदि कर्ह-
माह्वा वसुधा स्यात्तदेव दोषः । तथा तत्रैव “ वृष्टिः करोति दोष तावन्नाकालसन्मवा-
राजः । यावन्न भवति गमने नरपशुचरणांकिना वसुधा ॥ ” वेदवर्णाधिप इति शुभदे गोचर-
शुभदे वेदाधिप ऋग्वेदाधिपतिरित्यादिना प्रागुक्तः वर्णाधिपश्च ब्राह्मणे शुक्रवागीशाधि-
त्यादिनोक्तः । क्षौरभे शूटोदितनक्षत्रे तत्र च नादितौ पुनर्वसु वर्जयित्वा इत्यर्थः । तथा-
पुनर्वसो कृतो विप्रः पुनः मस्कारमहति । शुक्राकैज्यक्षलम् इति शुक्ररविगुरुहं लग्ने बृ-
हस्पतिहं धनुर्मानलग्न इत्यर्थः । अत्र च गुरुयोगादेवातिगुणः राजमासंष्टे-“जीवोदये जी-
वगृहोदये वा जीवाशकै जीवसमीक्षने वा। अल्पशूनोऽपि व्रतबन्धनेषु वागीशतुल्यो भवति
द्विजेन्द्रः ” रविमदनतिथीसप्तमीत्रयोदश्यो वर्जयित्वा परदिने प्रत्यारम्भाभावादिभ्यर्थः ।
लग्नात् पष्ठाष्टमं चन्द्र प्रोज्झ्य त्यक्त्वा तथा जीवास्ते जीवातिचारे न कर्तव्यः । काल-
शुद्धा उपनयनं स्यादिति कालशुद्धिस्तु द्विविधा मलमासशुक्रास्तादिदोषाभावान्शुद्धि-
पशुद्धिः तत्र वर्षशुद्धिरुक्ता राजमासंष्टे । “ गमोष्टमेऽष्टमे वाग्दे पञ्चमे नवमेऽपि वा ।
कार्यं विप्रस्य राज्ञस्तु दशाब्दे द्वादशे विशः । द्विजस्य षोडशाहपात्राजो द्वाविंशतेः
परम् । चतुर्विंशच्च वैश्यस्य सावित्रीपतनं भवेत् ॥ ” अत्र जन्ममासादौ शुभपक्षे चातिवि-
फलं यथा राजमासंष्टे-“ जन्मोदये जन्मसु तारकासु ” इत्यादि ॥ इति ।

गोचरमें बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा और ताराशुद्धि होनेसे श्रीहरीके जयनामित्र कालमें, उत्तरायणमें, स्वाध्यायके दिनमें वेदका मालिक और वर्णका मालिक गोचरमें शुभ होनेसे पुनर्वसुको छोड़कर चूडाकर्मके समस्त नक्षत्रोंमें, वृष, तुला, सिंह, धन और मीन लग्नमें, सप्तमी और त्रयोदशीको छोड़कर अन्य तिथियोंमें, लग्नके छठे और आठवें चन्द्रमाको छोड़करके बृहस्पतिके अस्त और आतिचार द्वारा अशुद्ध काल न होनेसे सूर्य, शुक्र और बृहस्पतिवारमें काल-शुद्धि होनेसे उपनयन (यज्ञोपवीत) करना चाहिये ॥ ६८ ॥

अन्यथा ।

स्वार्ताशुद्धयनाश्विमित्रकरभे पौष्णेज्यचित्राहारि-

पिन्दौ (❀) तोयपत्तौ भगेऽदितिसुते भाद्रद्वये सागरे ।

केन्द्रस्थे भृगुजेऽङ्गिरःशशिसुते चन्द्रे च तारे शुभे

कर्त्तव्यं व्रतकर्म मंगलतिथौ वाराः सिताकैज्यकाः ॥ ६९ ॥

इति भुजबलभीमकृत्यचिन्तामण्योः ।

अर्थ-भुजबलभीममें और कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, स्ताति, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, अश्विनी, अनुराधा, हस्त, रेवती, पुष्य, चित्रा, श्रवण, मृगशिर, शत-भिषा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा और पूर्वा-पादा नक्षत्रमें केन्द्रस्थानमें शुद्ध बृहस्पति और शुभ स्थित होनेसे, शुक्र, रवि और बृहस्पतिवारमें, शुभ तिथिमें, बालकका चन्द्रमा और ताराशुद्धि होनेसे यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ६९ ॥

अथ प्रशस्तमासकथनम् ।

माघे द्रविणशीलाढ्यः फाल्गुने च दृढव्रतः ।

चैत्रे भवति मेधावी वैशाखे कोविदो भवेत् ॥ ७० ॥

ज्येष्ठे गहननीतिज्ञ आपाढे क्रतुभाजनः ।

शेषेऽप्येतेषु रात्रिः स्यान्निषिद्धं निशि च व्रतम् ॥ ७१ ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, माघके महीनेमें यज्ञोपवीत होनेसे बालक धनवान् होता है इसी प्रकार फाल्गुनमें होनेसे व्रतके रखनेवाला, चैत्रमें मेधावी, वैशाखमें पाण्डित, ज्येष्ठमें अत्यन्त नीतिशास्त्रके जाननेवाला और आपाढके महीनेमें यज्ञोपवीत होनेसे वह बालक याज्ञिक होता है, उक्त महीनोंके (•) तोयपतिः शतभिषा, अदितिसुत उत्तराफाल्गुनी, सागर-पूर्वापादा, व्रतकर्म उपनयनम् इति ज्योतिस्त्रत्ते स्मार्तन व्याख्यातम् ।

सिवाय अन्य महीनोंमें देवताओंकी रात्रि होती है उनमें यज्ञोपवीत न करना चाहिये ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अथ प्रशस्ताप्रशस्ततिथ्यादिकथनम् ।

(१) अनध्यायश्च रिक्ताश्च पष्टीश्च परिवर्जयेत् ।

चैत्रकृष्णद्वितीयायां तिसृष्वेवाष्टकासु च ॥ ७२ ॥

मागे च फाल्गुने चैव आपादे कार्तिके तथा ।

पक्षयोर्माघमासस्य द्वितीयां परिवर्जयेत् ।

नाकालवृष्टौ कुर्वीत व्रतबन्धशुभक्रियाम् ॥ ७३ ॥

इति भुजबलभीमे ।

अर्थ-भुजबलभीममें लिखा है कि, अनध्याय, रिक्तातिथि, पष्टी, चैत्र महीनेके कृष्णपक्षकी द्वितीया, तीनों अष्टका और अग्रहायण, फाल्गुन, आपाद, कार्तिक और माघके महीनेकी दोनों पक्षोंकी द्वितीयाको छोड़कर यज्ञोपवीत करना चाहिये और अकाल वृष्टिमें भी यज्ञोपवीत आदि मङ्गल कार्यको न करे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

आपे च ।

स्मृतियुक्ताननव्यायान्सप्तमीश्च त्रयोदशीम् ।

पक्षयोर्माघमासस्य द्वितीयां परिवर्जयेत् ॥ ७४ ॥ (क)

इति गर्गः ।

अर्थ-गर्गमुनिने कहा है कि, स्मृतियोंमें कहे हुए अनाध्याय, सप्तमी, त्रयोदशी और माघके महीनेकी दोनों पक्षोंकी द्वितीयाको यज्ञोपवीतमें परित्याग करे ॥ ७४ ॥

अन्यथा ।

द्वितीया पञ्चमी चैव दशम्येकादशी तथा ।

व्रतारम्भे प्रशस्ता स्यादन्या स्यादधमा स्मृता ॥ ७५ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमें लिखा है कि, द्वितीया, पञ्चमी, दशमी और एकादशी

(१) “कार्तिकस्याश्विनस्यापि फाल्गुनापादयोरपि । कृष्णपक्षे द्वितीयायामनध्यायं विद्वेषाः ।” इति श्रीपनिर्व्यवहारासमुच्चये ॥

(क) चैत्रशुक्लतृतीया, आपादशुक्लदशमी मन्वन्तरादित्वेन निषिद्धा वेशाखशुक्ल-तृतीया युगादित्वेन निषिद्धेति स्मार्त्ताः । “उदगयने आपूर्यमाणे पक्षे कल्याणनक्षत्रे शूद्रोपनयनगोदानविवाहाः” इत्याश्वलायनवचनादुपनयने शूद्रपक्ष एव विहितः । “कर्णवेधे विवाहे च व्रते पुसवने तथा । प्राशने चायशूद्रायां विद्रुमक्षं विजनेयेत्” इति

तिथि उपनयन (यज्ञोपवीत) में प्रशस्त हैं. और उक्त तिथियोंके सिवाय अन्य तिथियोंको अधम कहा है ॥ ७५ ॥

अपरञ्च ।

तृतीयैकादशी ग्राह्या पञ्चमी द्वादशी तथा ।

द्वितीयायाञ्च मेधावी भवेदर्थवलान्वितः ॥ ७६ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, तृतीया, ' एकादशी, पञ्चमी, द्वादशी और द्वितीया तिथिमें उपनयन होनेसे बालक मेधावी होता है ॥ ७६ ॥

पष्ठ्यामशुचिरभार्यो रिक्तासु बहुदोषभाक् ॥ ७७ ॥

अर्थ-पष्ठी तिथिमें यज्ञोपवीत होनेसे अशुचि और भार्याहीन होता है और रिक्तातिथिमें अनेक प्रकारके दोष होते हैं अतएव उक्त दोनों तिथियोंमें यज्ञोपवीत न करना चाहिये ॥ ७७ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

माघपक्षके जन्ममासे शुक्लपक्षे तथैव च ।

गुर्वर्ककालशुद्धौ च तथोपनयनं स्मृतम् ॥ ७८ ॥ (❀)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, माघसे आदि लेकर छः महीनोंके मध्यमें, जन्मके महीनेमें, शुक्लपक्षमें, गोचरमें बृहस्पति और सूर्य शुद्ध होनेसे यज्ञोपवीत करे ॥ ७८ ॥

अन्यञ्च ।

गुरौ शुके रवां वारे तामगानां कुजेऽपि च ।

उपनयनं प्रकुर्वीत दिनादिप्रहरद्वये ॥ ७९ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमें लिखा है कि, बृहस्पति, शुक्र और रविवारमें दिनके पूर्वार्द्धमें यज्ञोपवीत करना चाहिये । तामवेदी मङ्गलवारमें भी यज्ञोपवीत कर सके है ॥ ७९ ॥

—वचनादत्रापि दशयोगमद्भो विचार्यः । व्रते च मरणमिति वचनात् युतनेधोऽपि इति स्मार्त्तनोक्तम् ।

(•) शुचिर्नैव गुरुर्हस्यं वषं प्राप्तेऽष्टमे यादि । चित्रे मासि गते भानौ तस्योपनयनं विदुः ॥ ॥ इति ग्रन्थान्तरे ।

अपिच ।

क्षिप्रश्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिपूर्वाराद्रोर्कविद्वरुसितेन्दुदिनेव्रत स्यात् ८०

इति मुहूर्तचिन्तामणी ।

अर्थ-मुहूर्तचिन्तामणिमें लिखा है कि, पुष्य, अश्विनी, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, आश्लेषा, स्वाति, पुनर्वसु (×) श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और आर्द्रानक्षत्रमें, रवि, बुध, वृहस्पति शुक्र और सोमवारमें यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ८० ॥

अपरञ्च ।

चन्द्रतारानुकूल्ये च (१) ग्रहाब्देऽपि शुभे तथा ।

पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति ॥ ८१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, चन्द्र, तारा और अन्य ग्रहगोचरमें शुद्ध होनेसे आठवें वर्षमें बालकका यज्ञोपवीत करे । पुनर्वसु नक्षत्रमें यज्ञोपवीत करनेसे उसका फिरसे यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ८१ ॥

अथ जन्मलप्रादिप्रशंसा ।

जन्मोदये जन्मसु तारकासु मासेऽथवा जन्मनि जन्मभे वा ।

व्रतेन विप्रो न बहुश्रुतोऽपि विद्याविशेषैः प्रथितः पृथिव्याम् ८२ ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, जन्मलग्नमें, जन्म नक्षत्रमें, जन्मके महीनेमें और जन्मकी राशिमें यदि बालकका यज्ञोपवीत होयतो वह बालक अल्प-विद्यावान् होनेसे भी अत्यन्त विद्याद्वारा पृथिवीमें स्यात् होता है ॥ ८२ ॥

शुक्ले पक्षे शुभस्थे शशिनि दिनकरे देवपूज्ये च सम्भ-

ग्वारे भानोः सितस्य त्रिदशपतिगुरोश्चात्तरे तीक्ष्णरश्मौ ।

हस्तश्चित्राश्विशक्रादिति वसुवरूपापेन्द्रतिष्येन्दुपाणि-

स्वातिपुष्याहतासु स्मृतमुपनयनं चौडमाद्यञ्च शस्तम् ॥ ८३ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावलि ग्रन्थमें लिखा है कि, शुक्लपक्षमें गोचरमें चन्द्र सूर्य

(×) पुनर्वसु नक्षत्रमें क्षत्रिय और वैश्यका यज्ञोपवीत होसक्य है ।

(१) ग्रहाब्दे इम शब्दका अर्थ किसी २ ने नवम वर्षमें किया है ।

(२) अथ यज्ञे पुनर्वसोरुपादानां क्षत्रियवैश्योपनयनविषयमेव ।

और बृहस्पति शुद्ध हानेसे, रवि, शुक्र और बृहस्पति वाग्में, उत्तरायणमें, हस्त, चित्रा, आश्विनी, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, धनिष्ठा, श्रवणि, पुष्य, मृगशिर, रेवती और स्वाति नक्षत्रमें यज्ञोपवीत और आय (प्रथम) चूडाकर्म प्रशस्त है ॥ ८३ ॥

शाखाधिपे बालिनि केन्द्रगतेऽथवास्मिन्

वारेऽस्य चोपनयनं कथितं द्विजानाम् ।

नीचस्थितेऽरिगृहगेऽथ पराजिते वा

जीवे भृगावुपनयः स्मृतिकर्महीनः ॥ ८४ ॥ (क)

इति कृत्यचिन्तामणा वात्स्यः ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणि ग्रन्थमें वात्स्यमुनिने कहा है कि, शाखाके मालिक जो तीन ग्रह यदि बलवान् होय अथवा केन्द्रके स्थानमें स्थित होय तो शाखाके मालिकके वारमें यज्ञोपवीत प्रशस्त है. और बृहस्पति नीच घरमें होय वा शुरुके घरमें होय अथवा दोनोंके मध्यमें कोई ग्रह पराजित होय और उसमें यज्ञोपवीत किया जाय तो वह बालक स्मार्त्तकर्मका अधिकारी नहीं होता है। किसी २ आचार्यने कहा है कि, शाखाका मालिक बलवान् होय वा केन्द्रस्थानमें स्थित होय और कोई न होय तो शाखाके मालिकके वारमें यज्ञोपवीत होसका है। सामवेदियोंका मङ्गलवारमें यज्ञोपवीतका व्यवहार है. स्मार्त्तब्रह्मचार्यने भी इसी प्रकार कहा है ॥ ८४ ॥

नीचस्थानगते जीवे भार्गवेऽरिगृहं गते ।

व्रतकर्म न कुर्वीत तयोरेव पराजये ॥ ८५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, बृहस्पति नीच घरमें स्थित होनेसे वा शुरु शुकके घरमें होनेसे अथवा दोनोंके मध्यमें जो कोई ग्रह पराजित होय तो यज्ञोपवीत न करना चाहिये ॥ ८५ ॥

माघादिमासपट्टकेषु शार्ङ्गिणः शयनावधि ।

चूडाकर्म प्रकुर्वन्त मुनयो व्रतमेव च ॥ ८६ ॥

इति भोजराजः ।

अर्थ—राजा भाजन कहा है कि, माघ महीनेसे आदि लेकर छः महीनोंमें श्रोहारिके जाग्रत्समयमेंही चूडाकर्म और यज्ञोपवीत करना चाहिये इस प्रकार मुनियोंने कहा है ॥ ८६ ॥

(क) साम्प्रदेशानां पुनरावेष्ट्युपनयनमिति स्मार्त्तनोक्तम् ।

रात्रिभागः समाख्यातः खरांशोर्दक्षिणायनम् ।

व्रतबन्धादिकं तस्माच्चूडाकर्म च वर्जयेत् ॥ ८७ ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, दक्षिणायनमें देवताओंकी रात्रि होती है अतएव उसमें यज्ञोपवीतादि और चूडाकर्म न करना चाहिये ॥ ८७ ॥

विप्रस्य क्षत्रियस्यापि मौञ्जी स्यादुत्तरायणे ।

दक्षिणे च विशां कार्यं नानध्याये (१) न संक्रमे ।

अनध्यायेऽपि (२) कुर्वीत यस्य नैमित्तिकं भवेत् ॥ ८८ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ-गर्गमुनिने कहा है कि, ब्राह्मण और क्षत्रियका यज्ञोपवीत उत्तरायणमें करै वैश्यका यज्ञोपवीत दक्षिणायनमेंभी होसक्ता है किन्तु अनध्याय और संक्रान्तिको छोडदेवै और यदि प्रायश्चित्त करके यज्ञोपवीत होय तो ब्राह्मणादि वर्णोंका अनध्यायमें दक्षिणायनमें और कृष्णपक्षमें वह यज्ञोपवीत होसक्ता है किन्तु एक दिन (×) परित्याग करनेसेही निषिद्धदिन छूटता हो तो उसी दिन करे ॥ ८८ ॥

शुक्रास्तादिसमये उपनयनादिनिषेधकथनम् ।

अस्तंगते दैत्यगुरौ गुरौ वा ऋक्षेऽपि वा पापयुतेऽप्यनुक्ते ।

व्रतोपनीतो दिवसे प्रणाशं प्रयाति देवैरपि रक्षितो यः ॥ ८९ ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, शुक्र वा बृहस्पति अस्तगत हो वा पापग्रहोंके साथ होकर यदि किसी राशिमें स्थित हों तो और तिथि नक्षत्रादि अनुक्त दिनमें जिसका यज्ञोपवीत होय वह मनुष्य देवरक्षित होनेसेभी गमालयको जाता है ॥ ८९ ॥

(१) “चातुर्मास्यद्वितीयामु मन्वादिषु शुभादिषु । अष्टकामु च सक्रान्त्या शयने बाधने हरेः । आपादफाल्गुनोर्जेषु या द्वितीया विधुक्षये । चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः प्रवदन्ति महर्षयः । सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आश्विने दशमी तथा । चतुर्थी द्वादशी माघ एताः सोपपदास्तथा । अनध्याय प्रवृत्तौ तथा सोपपदामु च ॥” इति ग्रन्थान्तरे ।

(२) अपिना दक्षिणायनकृष्णपक्षयोः समुच्चयः । नैमित्तिकः प्रायश्चित्तरूपमिति मलमासतस्ये रमात्तनोक्तम् ।

(×) एष दिनस्थोपवासेन गमायितुं शक्यत्वादिति रमात्ताः ।

ऋक्षैकमन्दिरगतौ यदि जीवभानू
शुक्रोऽस्तगः सुखैकगुरुश्च सिंहः ।
नारभ्यते व्रतविवाहगृहप्रतिष्ठा
क्षौरादिकर्म गमनागमनंच धीरैः ॥ ९० ॥

इति काश्यपः ।

अर्थ-काश्यपने कहा है कि, एक राशिमें एकही नक्षत्र युक्त होकर यदि बृहस्पति और सूर्य स्थित होय अथवा शुक्र अस्तगत होय वा बृहस्पति सिंह राशिमें होय तो पण्डितगण यज्ञोपवीत, विवाह, ग्रहप्रतिष्ठा, चूडादि कर्म और गमनागमन परित्याग करै ॥ ९० ॥

एकराशिगतौ स्यात्तामेकक्षविषये यदि ।

गुर्वादित्यौ तदा त्याज्या यज्ञोद्वादादिकाः क्रियाः ॥ ९१ ॥

इति काश्यपः ।

अर्थ-काश्यपने कहा है कि, एक राशिमें एक नक्षत्रयुक्त होकर यदि गुर्वादि-त्ययोग होय तो उसमें यज्ञ विवाह और यज्ञोपवीतादि न करना चाहिये ॥ ९१ ॥

यात्रां चूडां विवाहं श्रुतिविवराविधिं ग्रामसन्नप्रवेशं

प्रासादीद्यानहर्म्यान्सुरनवभवनारम्भविद्याप्रदानम् ।

मौज्जीबन्धं प्रतिष्ठां मणिवरकनकाधारणकुर्वते ये

मृत्युस्तेपाश्च सिंह गुरुदिनकरयोरेकराशिस्थयोश्च ॥ ९२ ॥

इति हारीतः ।

अर्थ-हारीतने कहा है कि, बृहस्पति और सूर्य यदि सिंहराशिमें स्थित होय वा अन्य किसी राशिमें एक नक्षत्रयुक्त होकर दोनों (बृहस्पति और सूर्य) स्थित होय तो यात्रा, चूडा, विवाह, कर्णवेध, ग्रामप्रवेश, गृहप्रवेश, प्रासादारम्भ, उद्यानारम्भ, हर्म्यारम्भ, देवगृहारम्भ, विद्याप्रदान, यज्ञोपवीत, प्रतिष्ठा, श्रेष्ठ-माणिक्यधारण और स्पर्णालङ्कारादि धारण न करना चाहिये उक्त विष्टकालमें उपरोक्त समस्त कार्योंके करनेसे उसकी मृत्यु होती है ॥ ९२ ॥

नीचस्थः सिंहो वा यदि भवति गुरुः सूर्यरश्मौ च लीनः

संयुक्तो वा यदि स्याद्दशशतघृणिना क्षीणरूपोऽथ बालः

यात्रा गेहं विवाहो व्रतममरगृहं यज्ञचूडादि सर्वं
वापी चोद्यानकूपं न भवति शुभदं यद्यदिष्टञ्च लोके ॥९३॥

इति रत्नावल्याम् ।

अर्थ—रत्नावली ग्रन्थमें लिखा है कि, बृहस्पति यदि नीचस्थानमें स्थित होय, सिंह राशिमें होय, सूर्यके साथमें होय, अस्तगत होय अथवा बाल्यावस्थाको धारण करे तो उसमें यात्रा, गृहारम्भ, विवाह, यज्ञोपवीत, देवगृहारम्भ, यज्ञ, चूडाकर्म, वापी (गवडी) खुदना बगीचा लगाना और कुआँ खुदना और अन्यान्य मङ्गलकार्य न करना चाहिये ॥ ९३ ॥

सर्वं कार्यं न कुर्वीत गुरौ सिंहेऽस्तगेऽपि च ।

व्रतदीक्षे न कुर्वीत तमोयुक्ते बृहस्पतौ ॥ ९४ ॥

इति भोजनदेवः ।

अर्थ—राजा भोजने कहा है कि, बृहस्पति सिंह राशिमें स्थित होय वा अस्तगत होय तो उसमें मङ्गलकार्य न करना चाहिये और राहुयुक्त होनेसे यज्ञोपवीत और दीक्षादान न करे ॥ ९४ ॥

उल्कापाते भुवः कम्पे ह्यकालवर्षगर्जिते ।

वज्रकेतुद्रमोत्पाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ९५ ॥

प्रयाणन्तु त्यजेत्क्षत्रः सत्तरात्रमतः परम् ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्यजेत्कर्म त्रिरात्रकम् ।

शूद्रस्त्यक्त्वा चैकरात्रं सर्वकर्म समाचरेत् ॥ ९६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, उल्कापतनमें, भूकम्पमें, अकाल वर्षण वा गर्जनमें, वज्रपातमें, घूमकेतुके उदयमें, अन्य प्रकारसे उत्पातोंमें, चन्द्रग्रहणमें और सूर्यग्रहण होनेसे क्षत्रिय सात रात्रि परित्याग करके यात्रा करे और ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके कर्ममात्रमें ही तीन रात्रि परित्याग करनी चाहिये किन्तु शूद्रको एक रात्रि छोड़कर समस्त कर्मोंमें अधिकार है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

ग्रहणे विशेषः ।

प्रयाणे सत्तरात्रं स्यात्त्रिरात्रं व्रतवन्धने ।

एकरात्रं परित्यज्य कुर्यात्पाणिग्रहं ग्रहे ॥ ९७ ॥

इति पराशरः ।

अर्थ—पराशरने लिखा है कि, ग्रहण होनेसे सात दिनपर्यन्त यात्रा परित्याग

करनी चाहिये तीन रात्रियोंके बाद यज्ञोपवीत करे और आपत्कालमें विवाह एक रात्रिके बाद ही करसक्ता है ॥ ९७ ॥

कम्पे राजनि सप्ताहो ब्राह्मणानां त्र्यहस्तथा ।

(*) शूद्रस्यार्द्धदिनं प्रोक्तं सर्वकार्येषु वै भृगुः ॥ ९८ ॥

इतिभृगुः ।

अर्थ-भृगुने कहा है कि, भृकम्पादि होनेसे क्षत्रिय सात दिन ब्राह्मण तीन दिन और शूद्र (आपद्दिपयम्) अर्द्ध दिन परित्याग करके समस्त मङ्गल कार्य करे ॥ ९८ ॥

नो सन्ध्यागर्जते प्राहुर्व्रतोपनयनं बुधाः ।

न च वृष्टावथाकाले वृष्टावासतवासरान् ॥ ९९ ॥ (*)

इति व्यासः ।

अर्थ-व्यासने कहा है कि, सन्ध्यागर्जनमें और अकालवृष्टिमें यज्ञोपवीतादि न करना चाहिये इस प्रकार पण्डितोंने कहा है परन्तु तीन दिन क्रमसे वृष्टि होनेसे शेष दिनसे सात दिनतक अकाल होता है ॥ ९९ ॥

तथाच ।

एकेनाह्ना चैकदिनं द्वितीयेन दिनत्रयम् ।

तृतीयेन तु सप्ताहं त्यजेदकालवर्षणे ॥ १०० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

* अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, अकालवृष्टि एक दिन होनेसे उसी दिन अकाल होता है, इसी प्रकार क्रमानुसार दो दिन होनेसे शेष दिनसे तीन दिन अकाल होता है और क्रमानुसार तीन दिन अकालवृष्टि होनेसे शेष दिनसे सात दिनपर्यन्त अकाल होता है ॥ १०० ॥

आकालिकीं वृष्टिमवेक्ष्य गन्ता पदं न गच्छेच्छुभमात्मनीच्छत् ।

क्षौरं व्रतञ्चापि शुभाभिलाषी कदापि नैवं मनसापि कुर्यात् ॥ १ ॥

इति श्रीपतिव्यवहारनिर्णये ।

अर्थ-श्रीपतिमहाचार्यने स्वकृत व्यवहारनिर्णय ग्रन्थमें लिखा है कि, अकाल

(*) शूद्रस्यापद्दिपयम् । कम्प इत्युपलक्षण ग्रहणादावप्येवमेता एवैकत्र पठितत्वात् इति स्मार्ताः ।

(*) आसतवासरानित्यत्र उपस्थितत्वाद्वाष्टिकालमादाय सप्ताहगणना (वृष्ट्युत्तरमेव सप्ताहत्यागः) एतद्वचनं तु तृतीयोद्दिष्टवर्षणकालवृष्ट्युत्तरमेवाप्येवम् । अतः “ दिने नैकदिनं त्र्याज्यं द्वितीयेन दिनत्रयम् । तृतीयेन च सप्ताहं त्यजेदकालवर्षणे ” इति न्यायरत्नपरिग्रहीतज्ञात्रयेऽपि दिनेन दिनवृत्तिवर्षणेन । एव द्वितीयेनेत्यादौ शेषम् ।

वृष्टिको देखकर अपनी कुशल चाहनेवाला मनुष्य एकपदभी गमन न करे
अर्थात् यात्रा निषिद्ध है और मंगल आभिलाषी मनुष्य क्षौर (चूडाकर्म) वा
यज्ञोपवीतादिको मनमें भी न विचारै अर्थात् उक्त समस्त कार्योंका निषेध है । १ ।

आवैशाखाद्भुजगवनिताचुम्बनायासखिन्नो

देवो दैत्यप्रमथनपटुर्यावदेकान्तशान्तः ।

अम्भःशय्यापरिगततनुयौगनिद्रामुपैति

तावदृष्टेः समय उचितो ब्रह्मणा भाषितोऽयम् ॥ २ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमें लिखा है कि, दैत्योंके नाशकरनेवाले विष्णु-
मगवान् सर्पवनिता (स्त्री) के चुम्बनसे पारिश्रान्त होकर (थककर) क्लान्ति
(यकावट) दूरकरनेके निमित्त जलशय्यामें जबतक सोतेहुए वैशाखके महीनेसे
उसी समय तक अकालवृष्टिका समय होता है ॥ २ ॥

अकालन्तु ततो वृष्टेर्यावद्वाह्निमहोत्सवः ॥ ३ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमें लिखा है कि, श्रीहरिके उत्थानसे दोलपूणि-
मापर्यन्त वृष्टि होनेसे उसको अकालवृष्टि कहते हैं अकालवृष्टिमें श्रीहरिके
उत्थान समयसे शयनकालपर्यन्त प्रथम पक्षको पारित्याग करना चाहिये पौषादि-
चार महीने वा श्रीहरिके उत्थानसमयसे दोलपूणिमातक द्वितीयपक्ष आपत्विष-
यमें और पौषादि दो महीने अत्यन्त आपद्विषयमें त्याज्य हैं [अकालवृष्टिको
विवाहमकरणमें कालशुद्धिके प्रसङ्गमें उत्तम प्रकारसे कहा है पाठकगण
उसको देखलेंगे] ॥ ३ ॥

अथानध्यायकथनम् ।

प्रतिपत्पञ्चपर्वाणि कृष्णा पौषस्य सप्तमी ।

चैत्रे कृष्णद्वितीया च नवमी शुक्लगाश्विने ॥ ४ ॥

द्वे द्वितिये सहोमाघोर्जापादाश्विनफाल्गुने ।

द्वादशी शयनोत्थानपरिवर्त्तेषु या भवेत् ॥ ५ ॥

मन्वादयो युगाद्याश्च ह्यशोचप्रेतपक्षको ।

अनध्यायोऽत्र कर्त्तव्य इति वेदाविदां स्मृतिः ॥ ६ ॥

अहं कुर्यादनध्यायमम्बुवाच्युपरागयोः ।

सन्ध्यागर्जश्राद्धभुक्तिभूकम्पादावहर्निशम् ॥ ७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब अनध्यायोको कहते हैं, ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, प्रतिपदा, पञ्चपर्व पौषकी कृष्णा सप्तमी, चैत्रकी कृष्ण द्वितीया, आश्विनकी शुक्ला नवमी, आग्रहायण, माघ, कार्तिक, आपाद, आश्विन और फाल्गुनके महीनेकी दोनों पक्षाकी द्वितीया, श्रवण, उत्थान और पार्श्वपरिवर्त्तन द्वादशी, मन्वन्तरादि, युगादि, अशौच और प्रेतपक्ष इन समस्तदिनोंमें अनध्याय होता है, यह वेदके जाननेवालोंका मत है और अम्बुवाची और ग्रहणमें तीन दिन, सन्ध्यागर्जनमें और श्राद्धाभोजनमें एक दिन और भूकम्पादि होनेसे भी एक दिनका अनध्याय होता है ॥ ४-७ ॥

व्रतेऽह्निपूर्वसन्ध्यायां (क) वारिदो यदि गर्जति ।

व्रतं तत्र तु (ख) नैव स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ८ ॥

अर्थ-व्रतके दिनमें (यज्ञोपवीतके दिनमें) पूर्वसन्ध्यामें, मेघके गर्जनेसे उपनयन न करना चाहिये मुनिगणोंने इस प्रकार धर्मको स्थापित किया है ॥ ८ ॥

कार्तिकस्याश्विनस्यापि फाल्गुनापाढयोरपि ।

कृष्णपक्षे द्वितीयायामनध्यायं विदुर्बुधाः ॥ ९ ॥

इति श्रीपतिव्यवहारसमुच्चये ।

अर्थ-श्रीपतिके व्यवहारसमुच्चयमें लिखा है कि, कार्तिक, आश्विन, फाल्गुन और आपादके कृष्णपक्षकी द्वितीयाको पण्डितोंने अनध्याय कहा है ॥ ९ ॥

युगाद्येषु युगान्तेषु तथा मन्वन्तरादिषु ।

सन्ध्यागर्जेऽकालशुद्धौ विद्यारम्भं न कारयेत् ॥ ११० ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमें लिखा है कि, युगके आदिकी तिथि (१)

(क) पूर्वादिने सायसन्ध्यागर्जने परादिने व्रतनिषेध इति मेथिलमतम् । पूर्वपदमत्र परसन्ध्याव्यावर्त्तक स्वरूपाख्यानपर वेति स्मार्त्ताः ।

(ख) “ तद्दिनं स्यादनध्यायं व्रतं तत्र न कारयेत् ” इति परार्द्धं भीमपराक्रमे ।”

(१) युगाद्यामाह- “ वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां कृत युगम् । कार्तिके शुक्लपक्षे तु त्रेताय नवमेऽहनि । अथ भाद्रपदे कृष्णत्रयोदश्यान्तु द्वापरम् । माघे च पौर्णमास्यां वै घोर कलियुग स्मृतम् । युगारम्भास्तु तिथयो युगाद्यास्तेन विश्रुताः ” इति ब्रह्मपुराणम् ।

युगके अन्तर्को तिथि मन्वन्तरा (२) सन्ध्यागर्जन और अकालशुद्धिमे विद्यारम्भ (वेदारम्भ) न करना चाहिये ॥ ११० ॥

अयने विधुये चैव शयने बोधने हरेः ।

अनध्यायोऽत्र कर्त्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु ॥ ११ ॥

अर्थ-अयन संक्रांति, विधुव संक्रान्ति, श्रीहरिका शयनकाल बोधनकाल और मन्वन्तर और युगाद्या इन सबको अनध्याय कहते हैं ॥ ११ ॥

अयोपनयनकालः ।

गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।

राशामेकादशे सैके (×) विशामेके यथाकुलम् ॥ १२ ॥ (❀)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब उपनयनका काल कहते हैं । उद्योतिपतत्त्वमें लिखा है कि, गर्भाष्टममें (१) अथवा आठवें वर्षमें ब्राह्मणके बालकका यज्ञोपवीत होना चाहिये और धन्निबका ग्यादश्वें वर्षमें और वैश्यका बारहवें वर्षमें यज्ञोपवीत होना चाहिये अथवा कुलकी रीतिसे जितनी वर्षोंमें यज्ञोपवीत होवा होय तो उस समयमें भी होसक्ता है ॥ १२ ॥

विप्रस्य षोडशाद्वर्षाद्वाज्ञोद्वाविंशतेः परम् ।

वैश्यस्याष्टिकादब्दात्सावित्रीपतनं भवेत् ॥ १३ ॥

इति मार्कण्डेयः ।

अर्थ-मार्कण्डेय मुनिने कहा है कि, ब्राह्मणको सोलह वर्षके बाद क्षत्रियकी

(२) अथ मन्वन्तराः । “अथयुग्मशुक्लरत्नमी द्वादशी कार्तिकी तथा । तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च । फाल्गुनस्याप्यमावस्या पोषस्यैकादशी तथा ॥ आपादस्यापि दशमी तथा माघस्य सप्तमी ॥ आश्विनास्याष्टमी कुम्भा तथापादस्य पूर्णिमा । कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठी षष्ठ्यदशी मिता । मन्वन्तरादयस्त्रेता दत्तस्याश्वयत्तिकाः ” इति भविष्यमत्स्यपुराणयोः । अत्र अमावस्याष्टमीव्यतिरिक्ताः शुक्ल पुनः २ नस्तथापदोपादानादुपक्रमोपमहारयोः शुक्लत्वातीर्त्तनाच्च । कामधेनो- “ तृतीया चैत्रमासस्य ” इति । उत्पत्तौ तु - “ तृतीया चैत्रमासस्य ” इति लिखितम् । अत्र पादद्वये श्रीपतिरत्नमालायाम् । “अथयुग्मशुक्लरत्नमी द्वादश्युज्ज्वलं मघो तृतीया च” इति पादचैत्रतृतीया आह्वय श्रीदत्तोऽप्येवम् । इति लिखितत्वे गमार्ताः ।

(+) एकादशे मेरे द्वादशे । “ गर्भाष्टमेकादशे गजो गर्भातु द्वादशे विशः ” इति दत्तानन्तरश्रवणम् ।

(•) “देशानुशिष्ट कृत्तर्धर्ममग्न्य स्नानोत्तमम् नहि सन्त्यजेच्च ” इति वामनपुराणम् ।

(१) जन्मसु गिनकर छः वर्ष तीन महीने बाद जो गर्भाष्टमाह कहते हैं ॥

बाईस वर्षके बाद और वैश्यकी चौबीस वर्षके बाद सावित्री पतन होता है ॥ १३ ॥

पोडशाब्दे हि विप्रस्य राजन्यस्य द्विविंशतिः ।

विंशतिः सचतुर्थी च वैश्यस्य परिकीर्तिता ॥

सावित्री नातिवर्त्तत अत ऊर्ध्वं निवर्त्तते ॥ १४ ॥ (+)

इति विष्णुस्मृतौत्तरे ।

अर्थ-विष्णुधर्मोत्तरमे लिखा है कि, सोलहवर्षतक ब्राह्मणका यज्ञोपवीत होसक्ता है, इसी प्रकार क्षत्रियका बाईस वर्षतक और वैश्यका चौबीस वर्षतक यज्ञोपवीत होनेका समय होता है, किन्तु उक्त समयके बाद सावित्री पतन होजाती है ॥ १४ ॥

आपोडशाच्च द्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरात् ।

ब्रह्मक्षत्रविंशं काल औपनायनिकः परः ॥ १५ ॥ (क)

इति याज्ञवल्क्यः ।

अर्थ-याज्ञवल्क्यने कहा है कि, ब्राह्मणका सोलह वर्षतक क्षत्रियका बाईस वर्षतक और वैश्यका चौबीस वर्षतक यज्ञोपवीतका समय है ॥ १५ ॥

औपनायनिकः कालः परः पोडशवार्षिकः । (ख)

द्वाविंशतिः परोऽन्यस्य स्याच्चतुर्विंशतिः परः ॥ १६ ॥

इति व्यासः ।

अर्थ-व्यासने कहा है ब्राह्मणका सोलह वर्षतक, क्षत्रियका बाईस वर्षतक और वैश्यका चौबीस वर्षतक यज्ञोपवीतका समय है ॥ १६ ॥

पतिता यस्य सावित्री दशवर्षाणि पञ्च च ।

(+) आभ्यां (मार्कण्डेयविष्णुधर्मोत्तरवचनाभ्यां) पोडशवर्षाण्यपरि यमेन पञ्चदशवर्षोपरि यत्पतनमभिहितं तद्वर्भजन्मप्रभृति गणनाभ्यामविरुद्धं तथा च कृत्यचिन्तामणौ माण्डव्यः । “ व्रतबन्धविवाही च वत्सरपरिकल्पनमाहुराचार्याः । आधानपूर्वमेके प्रसूतिपूर्वं सदान्ये तु ” एव च व्यासमार्कण्डेयादिवाग्यैः सावयतया न्यायसिद्धतया च आपोडशादित्यादौऽभिधिध्यर्थतैः । अत्रापि वर्षगणना सामनेनैव । यत्तु द्विजानामुपक्रम्य पेठीनसिबचनम् । “ द्वादशपोडशविंशतिश्चेदनीता अरुद्धकाला भवन्ति ” इति । तद्द्वादशवर्षाण्यपरि प्रत्यवायार्त्पत्वज्ञापनपरमिति जल्पपाण्युपाध्यायाः । अत्र महाव्याहृतिहोमप्रायश्चित्त तदुत्तर ब्राह्म्यप्रायश्चित्तमिति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तेनाभिहितम् ।

(क) अत्र याज्ञवल्क्यवचने आड* अभिविध्यर्थत्तम् । मर्यादाभिधिसिन्दहे कार्यान्वितत्वेनाभिविधेरेव वचनत्वादिमिति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तेनोक्तम् ।

(ख) परोन्त्यः पोडशवर्षाण्यपरि पोडशवर्षं व्याप्य भूतस्थित इति यावत् । इति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तेनोक्तम् ।

ब्राह्मणस्य विशेषेण तथा राजन्यवैश्ययोः ।

प्रायश्चित्तं भवेदेषां प्रोवाच वदतां वरः ॥ १७ ॥ (ग)

इति यमः ।

अर्थ-यमने कहा है कि, ब्राह्मणका पन्द्रहवर्षके मध्यमें सावित्रीग्रहण अर्थात् यज्ञोपवीत न होय और क्षत्रिय वैश्यकामी पूर्वोक्त समयमें यज्ञोपवीत न होय तो प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ १७ ॥

आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिरिच्यते ।

आद्विंशच्च क्षत्रस्य आचतुर्विंशतेर्विशः ।

अतःपरं नोपनेयो व्रात्यः संस्कारहीनकः ॥ १८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, सोलह वर्षतक ब्राह्मण सावित्री अर्थात् गायत्रीमें अधिकारी होसक्ता है इसी प्रकार बाईस वर्षतक क्षत्रिय और चौबीस वर्षतक वैश्य गायत्रीका अधिकारी होसक्ता है, किन्तु उक्त समयके बाद यज्ञोपवीत नहीं होसक्ता है व्रात्य और संस्कारहीन होजाता है ॥ १८ ॥ मार्कण्डेय, विष्णुधर्मोत्तर, याज्ञवल्क्य और यम प्रभृतिके वचनोंका अर्थ अनेक प्रकारसे होसक्ता है अर्थात् किसी वचनमें सोलहवर्षतक यज्ञोपवीतका विधान है और वचनान्तरमें पन्द्रह वर्षके बाद यज्ञोपवीतका निषेध है, अतएव उक्त सब वचनोंकी मीमांसाके निमित्त स्मार्त्तमहाचार्यने विषयभेदे (गर्भग्रहण और जन्म समयसे गिनकर) विधि और निषेधको सार्थक किया है, " गर्भग्रहणसे सोलह वर्षके मध्यमें यज्ञोपवीतका विधान और जन्मसे पन्द्रह वर्षके बाद यज्ञोपवीतका निषेध है " इस प्रकार मीमांसा करी है ॥

इति उपनयनम् ।

अथ समावर्तनम् ।

तृतीयलाभारिगतैरसौम्यैः केन्द्रत्रिकोणोपगतैः शुभैश्च ।

चूडोदितक्षादिविलग्रयोगैर्मौजीविमोक्षः शुभदोद्विजानाम् १९ ॥ (*)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब समावर्तनका मुहूर्त्त कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, लग्नके तीसरे (ग) पूर्वोक्तविष्णुधर्मोत्तरवचने षोडशवर्षस्योपनयनाद्गता अत्र यमवचने तदनङ्गता प्रतीयते अनयोर्गर्भजन्मप्रभृतिगणनाभ्यामविरुद्धता । इति ज्योतिस्तत्त्वे स्मार्त्तेन व्याख्यातम् ।

(+) समावर्तनमाह-तृतीयेति । चूडाकरणोक्तेषु नक्षत्रादिषु चूडोक्तलग्नयोगे च आदिशब्दातिव्यासादिचूडावज्जातव्यमित्यर्थः । मौजीविमोक्षः समावर्तनम् । शेषं सुगमम् ।

ग्यारहवें और छठे स्थानमें पापग्रह होनेसे और केन्द्र और त्रिकोणस्थानमें शुभ ग्रह होनेसे चूड़ोदित नक्षत्र, वार, तिथि, योग और लग्नादिमें ब्राह्मणोंका मौजी-विमोक्षण शुभ होता है ॥ १९ ॥

भौमभानुजयोर्वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते ।

(१) तारा चन्द्रविशुद्धौ च समावर्तनमिष्यते ॥ १२० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, मंगल और शनिवारमें उपनयनोक्त नक्षत्रमें तारा और चन्द्रमा शुद्ध होनेसे समावर्तन होता है ॥ १२० ॥

इति समावर्तनम् ।

अथाग्निग्रहणम् ।

वह्निग्रहं कुजगुरुज्ञदिनेश्वारे

माघादिपट्सु च मृदुध्रुववह्निभेषु ।

कुम्भाजभांशकविलग्नमशुद्धकालं

लग्नस्थशीतगुप्तितौ च विहाय कुर्यात् ॥२१॥ (२)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अथ अग्निग्रहणका मुहूर्त कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, मंगल, गृह-स्पति, बुध और शनिवारमें, माघसे आदि लेकर छः महीनोंमें चित्रा, अनुराधा-मृगशिर, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी और कृत्तिका नक्षत्रमें, कुम्भ भेष और जलराशिके उदय समय और नवांशमेव लग्नमें शुद्ध लग्नमें चन्द्रमा और शुक न होनेसे अग्नि ग्रहण करना चाहिये ॥ २१ ॥

अथ धनुर्विचारम् ।

आदितिगुरुयमार्कस्वातिपिज्याग्निचित्रा

ध्रुवहरिवसुमूलाश्वीन्दुभाग्यान्तभेषु ।

(१) कालचन्द्रविशुद्धौ चेत्यपि पाठान्तरम् ।

(२) अग्निग्रहणपरिक्षायान्तु विशेषमाह-वह्निग्रहमिति । मङ्गलगुरुशनिवारेषु माघादिपट्सु मृदुध्रुवगणकृत्तिकासु कुम्भस्थाजस्य च जलजराशिरशक नवांश लग्नश्च त्यक्त्वा अशुभकालं शुक्रास्तादि त्यक्त्वा वह्निग्रहण कुर्यात् । शेष सुगमम् । इति ।

विशनिशिशिवुधाहे विष्णुबोधे विषौपे

सुसमयतिथियोगे चापविद्याप्रदानम् ॥२२॥ (*)

अर्थ-अब धनुर्विद्यारम्भ करनेका सुहृत् कहते हैं । पुनर्वसु, पुष्य, भरणी, हस्त, स्वाती, मघा, कृत्तिका, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्र-पदा, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, आश्विनी, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी और रेवती, नक्षत्रमें शनि सोम और बुधवारको छोड़कर अन्यवारोंमें श्रीहारेके बोधमें पौष और चैत्रभिन्न महीनोंमें कालाशुद्धि होनेसे रिक्ताभिन्न शुभतिथि और योगादिमें धनुर्विद्याका प्रारम्भ करना चाहिये ॥ २२ ॥

अथ मोक्षदीक्षा (संन्यास ग्रहणम्) ।

जीवाकेंन्दुशुद्धौ ध्रुवमृदुगणभे चोत्तरस्थे दिनेशे

प्रव्रज्येशे सुवीर्ये स्थिरभवनविलग्नस्थितेऽकैज्यवारे ।

प्रव्रज्याख्येषु योजेज्यशुभगनगैर्वीर्यहर्नैः सुवीर्ये (क)

जीवे धर्मे स्मरे वा स्थिरभवननवांशोदये मोक्षदीक्षा ॥२३॥

अर्थ-अब मोक्षदीक्षा अर्थात् संन्यासके ग्रहण करनेका सुहृत् कहते हैं बृहस्पति रवि, चन्द्र और नक्षत्र गोचरमें शुद्ध होनेसे उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती नक्षत्रमें, उत्तरायणमें, प्रव्रज्याधिप ग्रह बलवान् स्थिर लग्नमें होनेसे रवि वा बृहस्पति वारमें, प्रव्रज्याख्य योगमें पापग्रह बलहीन होनेसे बलवान् बृहस्पति नवमें वा सातवें स्थानमें होनेसे स्थिर राशिके उदयमें अथवा नवांशमें संन्यासको ग्रहण करे ॥ २३ ॥

(+) धनुर्विद्यारम्भमाह-अद्वितीति । ध्रुवो वगणः १२ । २१ । २६ । ४ भाग्ये पूर्वोफाल्गुनीत्यर्थः । शनिबुधचन्द्रवारस्त्यक्त्वा विष्णुबोधे हरेरुत्थाने विषौपे पौषं त्यक्त्वा चापविद्यादानं कुर्यात् । पौष इत्युपलक्षणं चैत्रश्च । यथा राजमार्तण्डे-“हरी सुधे तथा पौषे चैत्रे वाप्यसितेतरौ । शशिसौम्यशनेवारे धनुर्विद्या न शस्यते ” सुसमये कालशुद्धौ सुतियो अरिक्ते तियो सुयोगे च कार्यमित्यर्थः ।

(क) मोक्षार्थदीक्षामाह-जीवाकंति । जातकचन्द्रिकादौ तापसबुद्धेनादिना प्रव्रज्येषा उत्ता येन वा प्रव्रज्या कार्या तदीश्वरे बलवति स्थिरलग्ने स्थिते सति प्रव्रज्यायोगे च रविचन्द्रजीविशुद्धौ च ध्रुवमृदुगणनक्षत्रेषु माषादिषट्के स्थिरभवने विलग्न रविगुरुवारे प्रव्रज्यायोगेऽशुभग्रहेष्वेव तत्रस्थेर्बलहीनैः रात्रिः स्ववीर्यं बलवति जीवे नवमे सप्तमे वा स्थिते स्थिरनवांशोदये च मोक्षदीक्षा निहितेत्यर्थः । शेषं मुगमम् ।

अथ नृपाभिषेकः ।

पुष्टैः शुक्रेन्दुजीवैर्ध्रुवलघुबलभिद्विष्णुमैत्रेन्दुपौष्णैः

सल्लग्नैः पाकजन्मोदयपतिषु विरन्ध्रारिगेन्द्रावसौम्यैः ।

त्र्यायारिस्थैरथाष्टव्ययग्रहरहितैः सद्ग्रहेः केन्द्रकोणे

वीर्याढ्ये क्षत्रियेशे सुदिनतिथिशुभेन्दौ नृपस्याभिषेकः ॥ २४ ॥ (ख)

अर्थ-अब राजाके अभिषेकका सुहृत् कहते हैं, शुक्र, चन्द्रमा और बृहस्पति पूर्ण बलवान् होनेसे, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, अश्विनी, हस्त, ज्येष्ठा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती नक्षत्रमें तत्कालीन दशाधिपति जन्मराश्यधिपति और जन्मलग्नाधिपति सब शुभग्रह होनेसे गोचरमें छटे और आठवें स्थानको छोड़कर चन्द्रमा स्थित होनेसे तीसरे ग्यारहवें और छटे स्थानमें पापग्रह न होनेसे आठवें और बारहवें स्थानमें शुभ ग्रह न होनेसे क्षत्रियेश ग्रह (जिस जातिका अभिषेक होय उसी जातिका मालिक ग्रह) बलवान् होकर केन्द्रस्थानमें स्थित होनेसे शुभ ग्रहोंक वारमें, शुभ तिथिमें, शुभ योगमें, गोचरमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे राजाका अभिषेक करना चाहिये ॥ २४ ॥

अथ नववस्त्रपरिधानम् ।

ब्रह्मानुराधवसुतिष्यविज्ञाखहस्त-

चित्रोत्तराश्वपवनादितरेवतीषु ।

जन्मर्क्षजीवबुधशुक्रादिनोत्सवादा-

धार्यं नवं वसनमीश्वरविप्रतुष्टौ ॥ २५ ॥ (ग) इति दीपिकायाः ।

अर्थ-अब नया वस्त्र (कपडा) पहिननेका सुहृत् कहते हैं दीपिकामें लिखा

(ख) राज्याभिषेकमाह-पुष्टैरिति । शुक्रेन्दुजीवैः पुष्टैः स्फुटकिरणजालैः ध्रुवलघुगणादिनक्षत्रे सल्लग्नैः शुभग्रहस्य लग्ने पाकजन्मोदयपतिषु सल्लु पाकपतिस्तत्कालीनदशेशः जन्मराश्यधिपो जन्म लग्नाधिपतिश्च तेऽपि चतुर्थः । विरन्ध्रारिगेन्दौ तत्काललग्नाष्टमपष्टवर्जिते चन्द्रे त्र्यायारिस्थिरसौम्यैः पापैः शुभैर्वाऽऽयाष्टमरहितैः बलवति क्षत्रियेशे केन्द्रे त्रिकोणे च स्थित इति क्षत्रिय- इत्युपलक्षणं योऽभिषिच्यते तज्जात्यधिप इत्यर्थः । सुदिनतिथिशुभेन्दोर्विति सुदिने शुभग्रहवारे सुतियो रिक्ताहीने तिथौ सुयुक्तौ सुतियो गोविष्कुम्भादिः सुयुतेऽपि नदी गोचरशुभे चन्द्रे नृपाभिषेकः कार्यः । इति ।

(ग) नववस्त्रपरिधानमाह-ब्रह्मोति । रोहिण्यादिनक्षत्रेषु जन्मनक्षत्रे जन्मादिने जीव-बुधशुक्रवारो अनुक्तवारनक्षत्रे विवाहाद्युत्सवे ईश्वरविप्रतुष्टौ च नवशुक्र धार्यम् । यथा राजमार्त्तण्डे-“रविणा पुत्र्यते वस सोमे शोकजलनयम् । अद्भारके भयेन्मृत्युः सर्वं हन्ति शनैश्चरे । भोक्तुर्न्याम्यंरं शस्त्रमृक्षेऽपि गुणवर्जिते । निगृहे गजसन्माने ब्राह्मणा-नाञ्च सम्मतौ” इति ।

मुक्ता (मोती) दन्तनिर्मित भूषण सुवर्ण और विद्रुम (मृगा) मणि प्रभृति स्त्री और पुरुष दोनोंको ही धारण करना चाहिये किन्तु पतिका हित चाहने-वाली स्त्री तीनों उत्तरामें, रोहीणीमें, पुष्यमें और पुनर्वसुमें, रत्न प्रवाल (मृगा) मणि और शङ्खको धारण न करे ॥ ३१ ॥

अन्यच्च ।

रेवत्यश्विधनिष्ठासु हस्तादिपञ्चकेषु च ।

शङ्खविद्रुममुक्तानां परिधानं प्रशस्यते ॥ ३२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्याति, विशाखा और अनुराधा नक्षत्रमें शंख विद्रुम और मुक्ताको धारण करे ॥ ३२ ॥

अपरश्च ।

गुरुबुधसितवारे शोभनस्थे शशाङ्के

पितृकरवसुचित्रामैत्रपौष्णोत्तरासु ।

कनकरजतरत्नं शङ्खमुक्ताप्रवालं

शुभदमिह समग्रं धार्यमाणं मनुष्यैः ॥ ३३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, बृहस्पति, बुध और शुक वारमें चन्द्रमा शुभ होनेसे मघा, हस्त, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा, नक्षत्रमें सोना, चांदी, रत्न, शंख मोती और मृगोको मनुष्य धारण करे ॥ ३३ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

धारयेन्न च रोहिण्यां भर्तुर्नीवनकांक्षिणी ।

विष्टियोगे च रिक्तायां शनिभौमदिने तथा ॥ ३४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रोहिणी नक्षत्रमें, विष्टिमद्रामें, रिक्ता तिथिमें और मङ्गलवारमें पतिका जीवन चाहनेवाली स्त्रीको शंखादि धारण न करना चाहिये ॥ ३४ ॥

आपिच ।

अस्तंगते भृगुसुते शयने च विष्णौ
जन्माष्टचापझपगे च खौ न दध्यात् ।
रित्तेन्दुहीनदिवसे न च विष्टियोगे
शङ्खादिरत्नवसनं युवती न दध्यात् ॥ ३५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, शुक्रास्तमें अर्थात् अशुद्धि कालमें श्रीह-
रिके शयनकालमें, गोचरमें, जन्मस्थानमें और आठवें सूर्यमें चैत्र और पौषके
महीने रित्ता अमावास्या और विष्टि भद्रा तिथिमें युवतीगणको शंख रत्नादि
और नवीन वस्त्र धारण करना चाहिये ॥ ३५ ॥

अथ नवशय्याद्युपभोगः ।

मेत्रेन्दुपौष्णपितृभादितिवाजिचित्रा-
हस्तोत्तरात्रयहरीज्यविधातृभानि ।
एतेष्वभीष्टशयनासनपादुकादि-
सम्भोगकार्यमुदितं मुनिभिः शुभाहे ॥ ३६ ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब नवीन शय्यादिके प्रथम उपभोगका मुहूर्त कहते हैं दीपिकामें
लिखा है, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, मघा, पुनर्वसु, अभिनी चित्रा, हस्त,
उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, श्रवण, पुष्य और रोहिणी, नक्ष-
त्रमें शुभवार और शुभ तिथ्यादिमें नवीन शय्यापर नवीन आसनपर, और नवीन
पादुकादिपर चढ़ाना चाहिये ॥ ३६ ॥

अन्यथा ।

हरिकरमरुदनुराधाविधातृपौष्णोदितिद्वयोत्तरेभे ।
भोजनविधिश्चयसासनभोगारम्भो हिताय ॥ ३७ ॥

इति चिन्तामणी हारतः ।

अर्थ-चिन्तामणि ग्रन्थमें हारत मुनिने कहा है कि, श्रवण, हस्त, स्वाति,
अनुराधा, रोहिणी, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और

(क) शय्यादीनां प्रथमभोगमर्ह-मेत्रेति । आद्य प्रथममुपभोग कुर्यादित्यर्थः ।
शेषं सुगमम् । इति ।

हे कि, रोहिणी, अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, विशाखा, हस्त, चित्रा, उत्तराषा-
ढगुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी, स्वाति, पुनर्वसु और रेवती नक्ष-
त्रमें बृहस्पति, बुध और शुक्रवारमें नवीन वस्त्र पहनना चाहिये. और विवाहादि
उत्सव कार्यमें जन्मनक्षत्रमें, जन्मदिनमें अनुक्त वार और अनुक्त नक्षत्रमें ब्राह्मण
और ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये नये वस्त्रको पहनसक्ता है ॥ २५ ॥

अन्यथ ।

सूर्ये चालपधनं व्रणं शशिदिने क्लेशं सदा भूमिजे
वस्त्राणां बहुधा बुधे सुखगुरौ सौख्यं सदा धारणे ।

नानाभोगयुतं प्रमोदशयनं दिव्याङ्गना भार्गवे

मन्दे रोगयुतं सदा च कलहो वस्त्रे धृते नूतने ॥ २६ ॥

अर्थ—अथ अन्य प्रकारसे नवीन वस्त्र पहिननेका दिन कहते हैं, रविवारके
दिन नया वस्त्र पहिननेसे दरिद्री होता है, इसी प्रकार सोमवारमें मनुष्यको व्रण-
रोग होता है, मंगलवारमें क्लेशी होता है, बुध और बृहस्पतिवारमें अनेक प्रका-
रसे सुखी होता है, शुक्रवारमें अनेक प्रकारका भोगी, सुनिद्रा और उत्तम स्त्रीका
पती होता है और शनिवारमें नवीन वस्त्र पहिननेसे रोगी और सर्वदा कलहका-
रक होता है ॥ २६ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

धनिष्ठारोहिणीहस्तविशाखोत्तरभाद्रकाः ।

पुष्यः पुनर्वसुः स्वातिश्चित्राश्विनी च रेवती ॥

नववस्त्रपरीधानमेतेषु शुभदं भवेत् ॥ २७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, धनिष्ठा, रोहिणी, हस्त, विशाखा
उत्तराभाद्रपदा, पुष्य, पुनर्वसु, स्वाति, चित्रा, अश्विनी और रेवती नक्षत्रमें
नवीन वस्त्रको पहिनना चाहिये ॥ २७ ॥

अपरञ्च ।

अनिष्टेष्वपि ऋक्षेषु शस्तमन्त्रधारणम् ।

उद्गाहराजसन्माने ब्राह्मणानाञ्च सम्मतो ॥ २८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, विवाहमें या राजसन्मानके समयमें

अनुक्त नक्षत्रमेंभी ब्राह्मणोंकी आज्ञासे नवीन वस्त्रको पहिन सक्ता है ॥ २८ ॥

अथ वस्त्रक्षारसंयोगनिषेधः ।

मन्दमङ्गलपष्टीषु द्वादश्यां श्राद्धवासरे ।

वस्त्राणांक्षारसंयोगे दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ २९ ॥

इति स्मृतिसारे ।

अर्थ-अब वस्त्र प्रक्षालनमें निषिद्ध समय कहते हैं, स्मृतिसारमें लिखा है कि शनिवारमें और मङ्गलवारमें, पष्टी और द्वादशी तित्थिमें, और श्राद्धके दिनमें, वस्त्रोंको क्षारसंयोगसे प्रक्षालन करनेसे अर्थात् घोबीसे धुलानेसे सात कुल दग्ध हो जाते हैं ॥ २९ ॥

अन्यच्च ।

संक्रान्त्यां पक्षयोरन्ते द्वादश्यां श्राद्धवासरे ।

वस्त्रं न पीडयेत्तत्र नच क्षारे तु योजयेत् ॥ ३० ॥

अर्थ-संक्रांतिके दिनमें, अमावसमें, पूर्णिमामें, द्वादशीमें और श्राद्धके दिनमें वस्त्र निष्पीडन और क्षारसंयोग न करना चाहिये ॥ ३० ॥

अथ रत्नशंखादिधारणम् ।

पुण्यार्कादितिपित्र्यमित्रशशभृद्विस्तध्रुवत्वाष्ट्यु

मुक्तादन्तसुवर्णविद्रुममणीन्दध्याद्विबोधे हरेः ।

पुष्टेन्दौ समये शुभे ध्रुवसुराचायांदितीशोऽङ्गना

ना रत्नं विभृयात्प्रवालकमणीञ्छङ्खं हिता स्वामिने ३१ ॥ (❀)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब रत्नादि शङ्ख धारण करनेका शुद्दर्त्त कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, मघा, अनुराधा, मृगशिर, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरामाद्रपदा, रोहिणी और चित्रा नक्षत्रमें श्रीहारके जाग्रत्समयमें

(•) अलङ्कारपरिधानमाह-पुष्येति । पुष्यादिदिननक्षत्रेषु मुक्ताहरितदन्तप्रवालादीनि हरिवोधे पुष्टेभ्ये स्फुटकिरणे गुरौ कालशुद्धे शुभवारे शुभचन्द्रे दध्यात् परिदध्यात् अत्रैव योगे स्वामिने हिता भर्तुः कुशलकारिणी ध्रुवगणे पुष्यपुनर्वसोः शंस रत्नादींश्च न दध्यात् अदितिरीशो यस्य पुनर्वसुरित्यर्थः । रोहिण्युत्तरात्रयपुष्यपुनर्वसूँश्च वर्जयित्वा उक्तेषु विधिषु शंखादीनि दध्यादित्यर्थः । राजमातृष्टे “ पौष्णेन्द्राश्विधानिप्रासु हस्तादिषु च पञ्चसु । शंसविद्रुममुक्तानां परिधान स्त्रिया भवेत् ॥ ” इति ।

उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें भोजन करनेका आसन (पाटा) नवीन शय्या (खाट) पर भोग और नवीन आसनपर बैठनेसे मङ्गल होता है ॥ ३७ ॥

अपरञ्च ।

हस्तादितिब्रह्मगुरुत्तरेषु पौष्णाश्विभूलेन्दुभचित्रभेषु ।

(१) वारेषुजीवेन्दुसितेन्दुजानां शय्यासनादीनिहितप्रदानि ॥ ३८ ॥

इति श्रीपतिसंहितायाम् ।

अर्थ--श्रीपतिसंहितामें भी लिखा है कि, हस्त, पुनर्वसु, रोहिणी, पुष्य, उत्तराषाढा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती आश्विनी, भूल, मृगशिर और चित्रानक्षत्रमें बृहस्पति, सोम, शुक्र और बुधवारमें नवीन शय्या और नवीन आसनको ग्रहण करना चाहिये ॥ ३८ ॥

प्रकारान्तञ्च ।

अनुराधामृगशिरारेवती चोत्तरात्रयम् ।

हस्तचित्रामघापुष्यश्रवणानि पुनर्वसुः ॥ ३९ ॥

रोहिणी नवशय्यायां नवद्रव्यासनादिषु ।

प्रशस्ता नवपीठादौ सम्भोगे ग्रहविद्वदेत् ॥ १४० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, उत्तराषाढा, हस्त, चित्रा, मघा, पुष्य, श्रवण, पुनर्वसु और रोहिणी नक्षत्रमें नवीन शय्या, नवीन द्रव्य, नवीनआसन और नवीन पीठादि (पिढियादि) का सम्भोग प्रशस्त है, ग्रहोंके जाननेवाले विद्वानोंने इस प्रकार कहा है ॥ ३९ ॥ १४० ॥

इति नवशय्याद्युपभोगः ।

अथ गजाधारोदणम् ।

पौष्णाश्विनीपवनवारुणवासुदेव

चित्रादितिश्रवणहस्तसुरेज्यभेषु ।

वारे च जीवशशिसूर्यसितेन्दुजाना-

मारोहणं गजतुरङ्गरथेषु शस्तम् ॥ ४१ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ--अब गजादिपर चढ़नेका मुहूर्त कहते हैं-दीपिकामें लिखा है कि, रेवती,

(१) ' वारेन्दुजीवेष्वसितेन्दुजानाम् ' इति पाठान्तरम् ।

आश्विनी, स्वाति, शतभिषा, धनिष्ठा, चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण, हस्त और पुष्य नक्षत्रमें बृहस्पति सोम, रवि, शुक्र और बुधवारमें हाथी, घोडा और रथ आदि-पर चढना चाहिये ॥ ४१ ॥

अन्यच्च ।

पुष्यश्रविष्ठाश्विनिसौम्यभेषु पौष्णानिलादित्यकराह्वयेषु ।

सवारुणक्षेपु बुधैःस्मृतानि सर्वाणि कार्याणि तुरङ्गमानाम् ॥ ४२ ॥

अर्थ-पुष्य, धनिष्ठा, आश्विनी, मृगशिर, रेवती, स्वाति, पुनर्वसु, हस्त और शतभिषा नक्षत्रमें अश्वसम्बन्धीय समस्त कार्य करे ॥ ४२ ॥

अपरञ्च ।

पुष्यहस्ताश्विनीपौष्णधनिष्ठाभूलवारुणे ।

स्वात्यादित्येऽश्वकार्यं सन्न रिक्ताकुजवासरे ॥ ४३ ॥

अर्थ-पुष्य, हस्त, आश्विनी, रेवती, धनिष्ठा, मूल, शतभिषा, स्वाति और पुनर्वसु नक्षत्रमें रिक्ताको छोडकर अन्य तिथियोंमें और मंगलको छोडकर अन्य वारोंमें अश्वसम्बन्धीय कार्य करे ॥ ४३ ॥

अथ गजवाजिक्रियादन्तकल्पनक्रियानिषेधः ।

स्ववरुणगुरुपार्श्वस्येषु भौमार्किंवारे

सुतिथिकरणतागचन्द्रयोगोदयेषु ।

शुभमिभहयकार्यं चाथ सुप्ते मुरारौ

गुरुगृहगतभानौ कल्पयेन्नेभदन्तान् ॥ ४४ ॥ (अ)

अर्थ-अब हाथी और घोडेके केशच्छेदनादिका सुहृत् कहते हैं, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य और पार्श्वमुख नक्षत्रोंमें, मङ्गल और शनिवारमें, शुभ तिथि, शुभ करण, शुभ तारा, शुभचन्द्रमा और शुभलग्नमें हाथी और घोडेको जिह्वाका मार्जन रक्तमोक्षण केशच्छेदनादि चिकित्सा और प्रथम दमन प्रशस्त है. किन्तु उक्त योगके होनेसेभी श्रीहरिके शयनकालमें वा सौरचैत्र अथवा पीपके मही-नेमें हाथीका दन्तमार्जन और भूषणादि क्रिया न करना चाहिये ॥ ४४ ॥

(अ) गजवाजिक्रियामाह-स्वरुणेति । स्व धनिष्ठा वरुणः शतभिषा गुरुः पुष्ये एषु पार्श्वस्याग्रेषु १७ । १८ । ५ । १३ । १४ । १५ । २७ । ७ । इमहयकार्यं हस्तयश्वकार्यं प्रत्यब्द जिह्वामार्जनरक्तमोक्षणसुरच्छेदनादिचिकित्सा प्रथमदमनश्चकार्यम् । अत्रैव योगे हरिशयने शुभग्रहे स्त्री चैत्र पीपे इमदन्तान् हस्तिदन्तान् न कल्पयेत् दन्तमार्जन-शुषादिकं न कार्यमित्यर्थः । शेषं सुगमम् । इति ।

अथ नवदोलाधारोहणम् ।

उग्रेन्दुमूलाहिशिवाग्निवर्जं शस्तेन्दुतारातिथिलग्नयोगे ।

विष्टिक्षमापुत्रयमाहवर्जं दोलादिकारोहणमाद्यमिष्टम् ॥ ४५ ॥ (आ)

अर्थ—अब नवीन दोलादिमें चढनेका मुहूर्त्त कहते हैं, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी, मृगशिर, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा, और कृत्तिकाभिन्न नक्षत्रमें चन्द्र और तारा शुद्ध होनेसे शुभतिथि शुभ लग्न और शुभयोगमें विष्टि भद्रा तिथि मंगल और शनिवारको छोड़कर अन्य तिथिवारोंमें नवीन दोलादिमें पहिले चढना चाहिये ॥ ४५ ॥

अथ खड्गादिधारणम् ।

मूलेन्दुपूर्वात्रययाम्यपित्र्यशक्राग्निसर्पानलशूलिनश्च ।

खड्गादिसंधारणमेपु कुर्यात्तिथौ विलग्नै च शुभे शुभाहे ॥ ४६ ॥ (+)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब खड्गादिके धारण करनेका मुहूर्त्त कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, मूल, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, मघा, विशाखा, आश्लेषा, कृत्तिका और आर्द्रा नक्षत्रमें शुभतिथि शुभलग्न और शुभदिनमें खड्गादिको धारण करना चाहिये ॥ ४६ ॥

इति खड्गादिधारणम् ।

अथ क्रयविक्रयनक्षत्राणि ।

यमाहिशक्राग्निहुताशपूर्वा नेश क्रये विक्रयणे प्रशस्ताः ।

पौष्णाश्विचित्राशतविष्णुवाताः क्रये हिते विक्रयणे निषिद्धाः ४७ ॥ (*)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब क्रयविक्रयके नक्षत्रोंको कहते हैं—दीपिकामें लिखा है कि, भरणी, आश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र द्रव्यादिक्रयमें प्रशस्त नहीं हैं, किन्तु विक्रयमें प्रशस्त हैं, रेवती, अश्विनी, चित्रा, शतभिषा, श्रवण और स्वाति नक्षत्र क्रयमें प्रशस्त हैं, किन्तु विक्रयमें प्रशस्त नहीं हैं ॥ ४७ ॥

(आ) नवदोलारोहणमाह—उग्रेन्द्राति । उग्रगणादिनक्षत्रवर्जिते विष्टिमङ्गलशनिवारवर्जं दोलाद्यादिवाहनागरोहणमाद्यमिष्टं शस्तं शेषं सुगमम् ।

(+) खड्गादिधारणमाह—मूलेति । शूली आर्द्रा खड्गादीनां खड्गचर्मपत्राद्यस्त्राणां धारणं कुर्यात् । शेषं सुगमम् ।

(*) क्रयविक्रयनिषिद्धारमाह—यमेति । शक्राग्निसमुद्भूतो विशाखा शेषं स्पष्टार्थम् ।

अथ ऋणप्रयोगः ।

आजं यमद्वन्द्वमद्वित्रयञ्च शक्रत्रयं वातयुगं महेशः ।

कार्यो न चैतेषु धनप्रयोगो मृदौ गणे ग्राह्यमृणं न देयम् ॥ ४८ ॥ (३)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अथ धनप्रयोगादिका निषेध कहते हैं-दीपिकामें लिखा है कि, पूर्वाभा-
द्रपदा, भरणी, कृत्तिका आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा,
स्वाति, विशाखा और आर्द्रा नक्षत्रमें न ऋण देना और न ऋण लेना चाहिये।
चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती नक्षत्रमें ऋण लेना चाहिये किन्तु ऋण
देनेका निषेध है, इन नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें ऋण देना चाहिये ॥ ४८ ॥

इति ऋणप्रयोगः ।

अथ नृपदर्शनम् ।

ध्रुवमृदुलध्रुवर्गे वासवे विष्णुदेवे

विजुजरविजवारे केन्द्रकोणेषु सत्सु ।

द्वितनुवृषभपञ्चास्यादये चन्द्रशुद्धौ

सुतिथिकरणयोगे दर्शनं भूमिपानाम् ॥ ४९ ॥ (४)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अथ राजाके देखनेका सुहृत् कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि उत्तरा-
फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरामाद्रपदा, राशिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर,
रेवती, पुष्य, अश्विनी, हस्त, ज्येष्ठा और श्रवण नक्षत्रमें मङ्गल और शनिको
छोड़कर अन्य बारोंमें केन्द्र और त्रिकोणमें शुभग्रह होनेसे द्वात्मक, वृष और
सिंह लग्नमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे शुभतिथि शुभरुग्ण और शुभ योगमें राजाका
दर्शन करना चाहिये ॥ ४९ ॥

इति राजदर्शनम् ।

अथ नाट्यारम्भः ।

अनुराधा धनिष्ठा च पुष्यहस्तात्रयं तथा ।

(१) ऋणदानग्रहणनिषेधमाह-आजमिति । आज २९ यमद्वन्द्व २ । ३ अद्वित्रयम्
९ । १० । ११ । शक्रत्रयं १८ । १९ । २० वातयुग १९ । १६ महेश आर्द्रा ६ महेशमी-
शसहितमिति सीमरेः प्रलापः । एतेषु नक्षत्रेषु ऋणप्रयोगः ऋणग्रहणं दानञ्च न कर्तव्यम् ।
मृदुगणे तु १४ । १७ । ९ । २७ । ऋणग्रहणं कार्यं न तु देयमित्यर्थः ।

(+) राजदर्शनमाह-ध्रुवेति । ध्रुवगणे मृदुगणे लघुगणे ज्येष्ठा श्रवणयोश्च मङ्गल-
शनिवारवर्जिते केन्द्रत्रिकोणेषु सत्सु शुभग्रहेषु द्वात्मकलग्ने वृषसिंहलग्ने च
भूमिपानां दर्शनं कार्यमित्यर्थः ।

ज्येष्ठावारुणपौष्णे च नाट्यारम्भे शुभो गणः ॥ १५० ॥ (१)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब नृत्यगीतादिकका मुहूर्त्त कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, ज्येष्ठा, शताभिषा और रेवती नक्षत्रमें नृत्य गीतादिकका आरम्भ करे ॥ १५० ॥

इति नाट्यारम्भः ।

अथ करग्रहणम् ।

तीक्ष्णोग्रवह्नीतरभेषु लग्ने शीर्षोदये भानुदिने शुभाहे ।

कुर्यादनुक्तानि समीहितानि करग्रहारम्भमपि प्रजाभ्यः ॥ ५१ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ—अब प्रजासे करग्रहण करनेका मुहूर्त्त कहते हैं—ज्योतिःसारमें लिखा है कि, आश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी और कृत्तिका इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य समस्त नक्षत्रोंमें, सिंह कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ, मिथुन और मीन लग्नमें रविवारमें और शुभ ग्रहके वारमें प्रजासे कर लेना चाहिये ॥ ५१ ॥

अथ वास्तुलक्षणम् ।

स्निग्धा स्थिरा सुरभिगुल्मलतासुगन्धा

शस्ता प्रदक्षिणजला च निवासभूमिः ॥

नेष्टा विपर्ययगुणा कचकर्करास्थि-

वल्मीककण्टकिविभीतकसंकुला च ॥ ५२ ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब वास्तुभूमिका लक्षण कहते हैं—दीपिकामें लिखा है कि, स्निग्धा

(१) नाट्यारम्भं विहितनक्षत्रगणमाह—अनुराधोति स्पष्टार्थम् इति ।

(क) वास्तुलक्षणमाह—स्निग्धोति । स्निग्धा स्तिमिता स्थिरा पराधिका-राशुपद्रवराहिता सुरभिर्गुल्मलता यत्र सा सुगन्धा प्रशस्तगन्धा प्रदक्षिणमुदारं प्रशस्तजलं यत्र गंभीर प्रशस्तजलेत्यर्थः । “ दक्षिणे सरलो दारो ” इत्यमरः । तथाच “ धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वेद्यस्तु पथमः । पथ यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत् ” यदा नद्यादौ प्रदक्षिण जल वहति ईदृशी निवासभूमि शस्तेत्यर्थः । एताद्विपर्ययगुणा रुक्षा पराधिका-राशुपद्रववशेन चञ्चला वृक्षादिवर्जिता दुर्गन्धा निर्जला घामजलघाहिनी वा निवासभूमि-नै कर्तव्येत्यर्थः । केशकर्करास्थिवल्मीकैः कण्टकयुक्तवृक्षैः शात्मल्यादिभिर्विभीतकं गृहेदेति यत्न प्रसिद्धिः । तेन संकुला व्याप्ता नेष्टेत्यर्थः । तथा पशुपतिदीपिकायाम् “ वर्जयेत्पृथतोऽ-

स्थिर अर्थात् पराधिकारजन्य उपद्रवराहित, सुगन्धि गुल्मलतादिद्वारा परिवेष्टित, प्रशस्तजलाशयसे युक्त इस प्रकारकी भूमि वासोपयोगी होती है, उक्तप्रकारके गुण न होकर यदि केश, कर्करास्थि, वल्मीक, कण्टकयुक्त वृक्ष और बहेडा वृक्षमय भूमि होय तो इस भूमिमें कभीभी वास नहीं करना चाहिये ॥ ५२ ॥

अथ वास्तुभूमिप्रवक्तव्यम् ।

पूर्वपुत्रो वृद्धिकरो धनदश्चोत्तरः पुत्रः ।

दक्षिणे मृत्युदश्चैव धनहा पश्चिमपुत्रः ॥ ५३ ॥ (१)

अर्थ-वास्तु भूमिकी पूर्वादिशामें निम्न होनेसे वंशकी वृद्धि होती है इसी प्रकार उत्तरदिशामें निम्न होनेसे धनकी वृद्धि होती है, दक्षिणमें निम्न होनेसे मृत्यु होती है और पश्चिममें निम्न होनेसे धनकी हानि होती है ॥ ५३ ॥

अथ वास्तुभूमेः पूर्वादिदिक्षु जलाशयकथनम् ।

प्रागादिस्थे सलिले सुतहानिः शिखिभयं रिपुभयञ्च ।

—अथ पक्ष च दक्षिणे तथा । षट्क्ष पश्चिमे भागे उत्तरे चाप्युदुम्बरम् ” तथा—“निशा नीली पलाशश्च चित्रा श्वेतापराजिता । कोविदारश्च सर्पत्र सर्वं निघ्नन्ति मङ्गलम् ” निशा दाहहरिद्रा । तत्र पोडश प्रकार वास्तु । यथा राजमार्तण्डे—“ आयत चतुरस्रश्च वृत्त भद्रासन तथा । चक्र विषमबाहुश्च त्रिकोण शकटाकृति । दण्ड प्रभरसस्थान मुरजश्च बृहन्मुखम् । व्यजन कर्मपृष्ठश्च धनुः शूर्पश्च पोडश । आयते मुनिदिप्रोक्त चतुरस्रे नवाष्टकम् । तिथिजपोदश वृत्ते भद्रे रुद्रदिनाकरो । आयते सिद्धयः सन्नाशचतुरस्रे धनागमः । भद्रासने कृतार्थश्च वृत्ते पुष्टिविवर्धनम् । चक्रे दारिद्र्यमेरोक्त शोको विषम बाहुके । वृषाद्रीतित्रिकोणे स्याच्छकटे च धनक्षयः । नश्यन्ति पशवो दण्डे प्रणये लोचनक्षनिः । मुरजे ध्रियते भार्या अर्थनाशो बृहन्मुखे । व्यजने वित्तनाशः स्यात्कूर्मे बन्धनपीडनम् । शूर्पे धान्यक्षय विद्याज्ञापे चौरभय भवेत् । ” तथा—“गजराजिष्ठय कुर्याद्विस्ताराद्विगुणायता । तथा वास्तुनिर्णये, “ हलेन चालयेद्वास्तुगोष्ठं तत्र ॥ कारयेत् । गोमूत्र गोमयाभाञ्च पूत वास्तु भवेद्दुःखम् । शोषयेद्वास्तुपर्यन्तं गृहस्थानं प्रयत्नतः । तदा तत्र गृहं कुर्याद्वास्तुनां शोषने वृत्ते । शोषने प्राप्यते रत्नं ताम्रादि प्राप्यते यदा । मुक्तोविदुमवत्र वा विपुलं शुभमादिशेत् । शोषने स्वर्णरोप्यादाह्वयन्ते विपुलं शुभम् । पद्मरागादि सप्त्राय लभन्ते विपुलां श्रियम् । कार्यासनीजतूपश्च वल्मीक कण्टः तथा । अस्थिभस्मनराश्चो न वेशश्च शर्करां त्यजेत् । न कोणे च गृहं कुर्यान्नाप्यन्ते नापि मध्यतः । नयमे प्रविभागे तु गृहं कुर्याद्विषक्षणम् ।

(१) वास्तुनां पूर्वादिक्रमेण प्रवृत्तिः पूर्वप्रतः पूर्वभागे नीचः, यथा पूर्वभागे जल निःसरति वास्तुनां पूर्वमप्रता वृद्धिकरी, उत्तरमप्रता धनदा, दक्षिणमप्रता मृत्युदा, पश्चिममप्रता धनहानिकरी । राजमार्तण्डे—“स्यादुन्नतिः पूर्वन्ते नराणां वास्तो धनं दक्षिणभागमुद्धे । क्षयो धनानां चिन्ते प्रतीच्यामुच्चे विनाशो भवमुत्तरेण । ” उत्तरेणोच्चे-रुत्तरमुद्धे अर्थादक्षिणमप्रता इत्यर्थः ।

स्त्रीकलहः स्त्रीदौष्ट्यं नैस्वं वित्तात्मजविवृद्धिः ॥५४॥ (२)

अर्थ—वास्तुभूमिके पूर्वदिशामें जलाशय होनेसे पुत्रकी रानि होती है। इसी प्रकार उत्तर दिशामें होनेसे अग्निका भय, शत्रुका भय और स्त्री कलहकारिणी होती है। पश्चिमदिशामें होनेसे भार्या दुश्चरित्रा और पुत्रहीना होती है और वास्तस्थानसे दक्षिण दिशामें जलाशय होनेसे वित्त और पुत्रादिकोंकी वृद्धि होती है ॥ ५४ ॥

अथ पुष्करिण्यागमः ।

पुष्योमैत्रकरोत्तरस्ववरुणत्रहाम्बुपित्र्येन्दुभैः

शस्तेऽकै शुभवारयोगतिथिषु क्रूरेष्ववीर्येषु च ।

पुष्टेन्दौ जलराशिगे दशमगे शुक्रेशुभांशोदये । (३)

प्रारम्भः सलिलाशयस्य शुभदो जीवेन्दुशुक्रोदये ॥ ५५ ॥

अर्थ—अब पुष्करिणी (नदी) के बनवानेका सुदृष्ट कहते हैं—पुष्य, अनु-
राधा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, धनिष्ठा, शतभिषा,
रोहिणी, पूर्वाषाढा, मघा और मृगशिरा, नक्षत्रमें गोचरमें सूर्य शुद्ध होनेसे,
शुभवारमें शुभयोगमें और शुभ तिथिमें क्रूरग्रह बलहीन होनेसे पूर्णचन्द्रमा
जलज राशिमें (×) स्थित होनेसे लग्नके दशम स्थानमें शुक्र होनेसे, धन मीन
कर्क वृष और तुला लग्नमें, शुभग्रहोंके नवांशमें नदी खुदवाना चाहिये ॥ ५५ ॥

अथ पुष्करिण्यादिप्रतिष्ठा ।

प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते (१) चोत्तरायणे ।

आपाद्वेद्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च ॥ ५६ ॥

ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदे तथा ।

(२) वास्तुभूमेः प्रागवष्टितस्यजलस्य यथाक्रमं कुरुमाह—प्रागादिरय इति
स्पष्टार्थः । एतेनोत्तरेशानयोजनं कर्त्तव्यमित्यर्थः ।

(३) पुष्करिण्यागममाह—पुष्यादिद्वादशनक्षत्रेषु शस्ते स्त्री शुभग्रहस्य वारे शुभ
तिथौ शुभयोगे पापग्रहेषु बलहीनेषु सत्सु पूर्णचन्द्रे जलराशिस्थिते सति शुक्रे च दशम-
स्थे जीवेन्दुशुक्रोदये धनुर्मानसः संवत्सुरालग्रे शुभांशोदये शुभग्रहस्य नवांशोदये सलि-
लाशयस्थागम शुभदो भवान् । अग्निनीलनगपुत्रो जलराशयानिधेमाह । राजमातंष्टे-
“आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति वृष । नित्यं स व्रजेति भयं दाहं वा
मानसं प्रायः । नैर्ऋतकोणे चालशयं गनिना जयश्च वायव्ये ” जीवेन्दुशुक्रोदये द्रव्यं
जीवेन्दु पुष्टोदय इति चेद्विद्वदनि ।

(×) कर्क, मीन, कुम्भ और मकरांशोंमें शेषादंशों जटजगशि कहते हैं ।

(१) अतीते प्राप्ते मध्यस्थप्राप्त्यर्थत्वादिति ज्योतिषरत्नोद्गातं नोक्तम् ।

हस्ताश्विनीरेवती च पुष्यौ मृगशिरस्तथा ।

अनुराधा तथा स्वाति प्रतिष्ठादिषु शस्यते ॥ ५७ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ—अब पुष्काणिष्यादिकी प्रतिष्ठाका सुदृष्ट कहते हैं, मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, शुक्रपक्षमें, उत्तरायणमें, पूर्वाषाढा, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरामाद्रपदा, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वामाद्रपदा, हस्त, अश्विनी, रेवती, मृगशिर, अनुराधा और स्वाति नक्षत्रमें प्रतिष्ठा करना चाहिये ॥ ५६-५७ ॥

अपिच ।

प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया पञ्चमी तथा ।

दशमी त्रयोदशी चैव पौर्णमासी च कीर्तिता ॥ ५८ ॥

सोमो बृहस्पतिश्चैव शुक्रश्चैव तथा बुधः ।

एते सौम्यग्रहाः प्रोक्ताः प्रतिष्ठायागकर्मणि ॥ ५९ ॥

इति भविष्यपुराणे ।

अर्थ—भविष्यपुराणमें लिखा है कि, प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, दशमी त्रयोदशी और पौर्णिमा तिथिमें सोम, बृहस्पति, शुक्र और बुध इन सब शुभ ग्रहोंके वारोंमें प्रतिष्ठा और यागादिकर्म प्रशस्त हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

अपरञ्च ।

मैत्रोत्तरापुष्यधनिष्ठधातृषिव्याशुगक्षं वरुणे शुभेकं ॥

वारं जशुकेन्दुबृहस्पतीनां शुभप्रदा स्यात्सरसां प्रतिष्ठा ॥ १६० ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—दीपिकामें लिखा है कि, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरामाद्रपदा, पुष्य, धनिष्ठा, रोहिणी, मघा, स्वाति और शतभिषा नक्षत्रमें गोचरमें सूर्य शुद्ध होनेसे, बुध, शुक्र, सोम और बृहस्पतिवारमें सरौवर (तालाब) की प्रतिष्ठा शुभदायक होती है ॥ १६० ॥

अथ वृक्षादिरोपणम् ।

वारुणमूलविशाखासौम्यध्रुवहस्तपुष्यपौष्णेषु ।

तरुगुल्मलतादीनामारोपणं शस्तम् ॥ ६१ ॥ (क)

अर्थ—अब वृक्षादिके बोनेका सुदृष्ट कहते हैं, शतभिषा, मूल, विशाखा, मृग-

(क) वृक्षाद्यरोपणमाह— वारुणेति । आरामे-उद्याने भाव्यर्थस्य भूतवत्त्वात् निमित्त-सप्तमी वा आरामार्थमित्यर्थः । शेष मुगममिति ।

स्त्रीकलहः स्त्रीदौष्ट्यं नैस्वं वित्तात्मजविवृद्धिः ॥५४॥ (२)

अर्थ—वास्तुभूमिके पूर्वदिशामें जलाशय होनेसे पुत्रकी हानि होती है। इसी प्रकार उत्तर दिशामें होनेसे अग्निका मय, शत्रुका मय और स्त्री कलहकारिणी होती है। पश्चिमदिशामें होनेसे भार्या दुश्चरित्रा और पुत्रहीना होती है और वास्तवस्थानसे दक्षिण दिशामें जलाशय होनेसे वित्त और पुत्रादिकोंकी वृद्धि होती है ॥ ५४ ॥

अथ पुष्करिण्यारम्भः ।

पुष्योमैत्रकरोत्तरस्ववरुणब्रह्माम्बुपित्र्येन्दुभैः

शस्तेऽर्के शुभवारयोगतिथिषु क्रूरेष्वर्षेषु च ।

पुष्टेन्दौ जलराशिगे दशमगे शुके शुभांशोदये । (३)

प्रारम्भः सलिलाशयस्य शुभदो जीवेन्दुशुक्रोदये ॥ ५५ ॥

अर्थ—अथ पुष्करिणी (नदी) के बनवानेका सुदृत्त कहते हैं—पुष्य, अश्लेषा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, धनिष्ठा, शतभिषा, रोहिणी, पूर्वाषाढा, मघा और मृगशिरा, नक्षत्रमें गोचरमें सूर्य शुद्ध होनेसे, शुभवारमें शुभयोगमें और शुभ तिथिमें क्रूरग्रह बलहीन होनेसे पूर्णचन्द्रमा जलज राशिमें (×) स्थित होनेसे लग्नके दशममें शुक्र होनेसे, धन मीन कर्क वृष और तुला लग्नमें, शुभग्रहोंके नवांशमें नदी खुदवाना चाहिये ॥ ५५ ॥

अथ पुष्करिण्यादिप्रतिष्ठा ।

प्राप्य पक्षं शुभं शुक्रमतीति (१) चोत्तरायणे ।

आपाढेऽद्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च ॥ ५६ ॥

ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदे तथा ।

(२) वास्तुभूमेः पूजायष्टदिग्स्थजलस्थ यथाक्रम फलमाह—प्रागादिस्थ इति स्पष्टार्थः । एतेनोत्तरेशानयोजनं कर्त्तव्यमित्यर्थः ।

(३) पुष्करिण्याारम्भमाह—पुष्यादिद्वादशनक्षत्रेषु शस्ते स्वी शुभग्रहस्य वारे शुभ तिथौ शुभयोगे पापग्रहेषु बलहीनेषु सप्त पूर्णचन्द्रे जलराशिस्थिते सति शुके च दशमस्थे जीवेन्दुशुक्रोदये धनुर्मीनकर्कटवृषतुलालग्नौ शुभांशोदये शुभग्रहस्य नवांशोदये सलिलाशयस्याारम्भः शुभदोः स्यात् । अग्निर्नैऋतवायुकोणे जलाशयनिषेधमाह । राजमार्तण्डे—“आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति वृष । नित्यं स करोति मय दाह वा मानस प्रायः । नैऋतकोणे बालशय वनिताशयश्च वायव्ये ” जीवेन्दुशुक्रोदय इत्या जीवेन्दु पुनोदय इति केचिद्वदन्ति ।

(×) कर्क, मीन, कुम्भ और मकरराशिके शेषार्द्धनो जलजराशि कहने हैं ।

(१) अतीति प्राप्ते गत्यर्थस्यप्राप्त्यर्थत्वादिति ज्योतिस्तत्त्वोपमानोक्तम् ।

सिद्धि होती है इसी प्रकार दक्षिणादिशामें औदुम्बर वृक्ष, पश्चिमदिशामें पीपल और उत्तर दिशामें पाकड़का वृक्ष होनेसे मङ्गल होता है; किन्तु यह समस्त वृक्ष विपरीतदिशामें होनेसे अमङ्गल होता है ॥ ६४ ॥

अपरञ्च ।

शोभना दाडिमाशोकपुन्नागविल्वकेसराः ।

रक्तपुष्पाद्रयं राज्ञः क्षीरिणा च पशोर्भयम् ।

कण्टकारिभयं कुर्याद्रहभेदञ्च शाल्मलिः ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, दाडिम, अशोक, पुन्नाग, विल्व और केशरका वृक्ष घरमें लगानेसे मङ्गल होता है । और रक्तपुष्पका वृक्ष घरमें छानेसे राजभय होता है । इसी प्रकार क्षीरिवृक्षसे पशुभय, काँटेदार वृक्षसे भय और शाल्मलीका वृक्ष घरमें लगानेसे गृहविच्छेद होता है ॥ ६५ ॥

अथ वास्तुभूम्यनारोपणवृक्षकथनम् ।

धवखदिरपलाशा निम्बखजूरजम्बू-

सरललकुचचिञ्चाकाञ्चनस्थूलशिम्बाः

कलिविटापिकापित्थैरण्डधतूरपथ्या

विदिधति धनहानि सप्तपर्णः सुही च ॥ ६६ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—जिन वृक्षोंको घरमें न लगाना चाहिये- अब उनको कहते हैं,—दीपिका में लिखा है कि, धव, खदिर, पलाश, नीम, खजूर, जाम, सरल, लकुच, तैलुल, काञ्चन, स्थूलशिम्ब, बहेडा, कपित्थ, धतूरा, हरीतकी, सप्तपर्ण और मनसा इन समस्त वृक्षोंको घरमें लगानेसे धनकी हानि होती है ॥ ६६ ॥

अथ गृहारम्भः ।

आदित्ये तूलकर्कक्रियमिथुनघटालिस्थिते सत्समेतैः

केन्द्राष्टान्त्यैरसौम्यैस्त्रिभवारिपुगतैः स्वस्थिरग्राम्यलघ्ने ।

भेषु स्वाराष्ट्रविशाखादितिफणिदहनोप्रेतरेष्वर्कशुद्धौ

वेश्मारम्भः शुभः स्यात्सुतिथिशुभविधौ भौमसूर्येत्तरोहि ॥ ६७ ॥ (x)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब घर बनानेका मुहूर्त कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, सौर कार्तिक

(x) गृहारम्भमाह—आदित्य इति सूर्ये तूलाकर्कटमेमिथुनरम्भशुभग्रहस्थिते—

शिर, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, हस्त पुष्य और रेवती नक्षत्रमें वृक्ष, गुल्म और लतादिको लगाना चाहिये ॥ ६१ ॥

अथ गृहप्रशस्तवृक्षारोपणम् ।

पूगश्रीफलनारिकेललवलीजम्बीरकण्टाफला--

श्रूतादाडिमनागरंगमधुकारम्भाशिरीषामलाः ।

जातीचम्पकमल्लिकावकुलकाः शोभाजनः पाटलो

देवाशोकजयन्तिका तगरिका नित्यं श्रियं कुर्वते ॥ ६२ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-घरमें कौनसे वृक्ष लगाना चाहिये अब उनको कहते हैं-दीपिकामें लिखा है कि, सुपारी, श्रीफल (गोला) नारिकेल, लवनी (नोना) जामुन, कांडाल, आम, दाडिम, नारङ्गी, नींबू, मधुपर्णी, केला, शिरीष, आमला, जाती, चम्पक, मल्लिका, वकुल, सैजना, पाटल, देवदारु, अशोक, जयन्ती और तगर इन सब वृक्षोंको घरमें लगानेसे श्रीकी वृद्धि होती है ॥ ६२ ॥

अपिच ।

जम्बीरपूगपनसात्रककेतकीभि-

जातीसरोजतगरत्वचमल्लिकाभिः ।

यन्नारिकेलकदलीदलपाटलाभि-

र्युक्तं तदाश्रमपदं श्रियमातनोति ॥ ६३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, जामुन, सुपारी, कांडाल, आम, केतकी, जाती, पद्म, तगर, दालचिनी, मल्लिका, नारिकेल, कदली और पाटल इन सब वृक्षोंको जो मनुष्य घरमें लगाता है उसके घरमें लक्ष्मी वास करती है ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

भवनस्य वटः पूर्वं जातः स्यात्सार्वाकामिकः ।

ओदुम्बरस्तथा यामे वारुणे पिप्पलः शुभः ॥

पृक्षश्चोत्तरतो धन्यो विपरीतो विपर्यये ॥ ६४ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-दीपिकामें लिखा है कि, घरकी पूर्वादिगामें वटका वृक्ष होनेसे कामना

सिद्धि होती है इसी प्रकार दक्षिणदिशामें औदुम्बर वृक्ष, पश्चिमदिशामें पीपल और उत्तर दिशामें पाकडका वृक्ष होनेसे मङ्गल होता है; किन्तु यह समस्त वृक्ष विपरीतदिशामें होनेसे अमङ्गल होता है ॥ ६४ ॥

अपरञ्च ।

शोभना दाडिमाशोकपुन्नागविल्वकेसराः ।

रक्तपुष्पाद्रयं राज्ञः क्षीरिणा च पशोर्भयम् ।

कण्टकारिभयं कुर्याद्ब्रह्मेदञ्च शाल्मलिः ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, दाडिम, अशोक, पुन्नाग, विल्व और केशरका वृक्ष घरमें लगानेसे मङ्गल होता है । और रक्तपुष्पका वृक्ष घरमें लगानेसे राजभय होता है । इसी प्रकार क्षीरवृक्षसे पशुभय, काँटेदार वृक्षसे भय और शाल्मलीका वृक्ष घरमें लगानेसे गृहविच्छेद होता है ॥ ६५ ॥

अथ वास्तुभूम्यनारोपणवृक्षकथनम् ।

धवखदिरपलाशा निम्बखजूरजम्बू-

सरललकुचचिञ्चाकाञ्चनस्थूलशिम्बाः

कलिविटपिकपित्थेरण्डधतूरपथ्या

विदिधति धनहानिं सप्तपर्णः सुही च ॥ ६६ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—जिन वृक्षोंको घरमें न लगाना चाहिये. अब उनको कहते हैं,—दीपिका में लिखा है कि, धव, खदिर, पलाश, नीम, खजूर, जाम, सरल, लकुच, तैतुल, काञ्चन, स्थूलशिम्ब, बहेडा, कपित्थ, धतूर, हरीतकी, सप्तपर्ण और मनसा इन समस्त वृक्षोंको घरमें लगानेसे धनकी हानि होती है ॥ ६६ ॥

अथ गृहारम्भः ।

आदित्ये तृलकर्कक्रियमिथुनघटालिस्थिते सत्समेतैः

केन्द्राष्टान्त्यैरसौम्यैस्त्रिभवारिपुगतैः स्वस्थिरग्राम्यलघ्ने ।

भेषु स्वाराष्ट्रविशाखादितिफणिदहनोपेतरेष्वर्कशुद्धौ

वेङ्मारम्भः शुभः स्यात्सुतिथिशुभविधौ भौमसूर्येत्तरोहि ॥ ६७ ॥ (x)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब घर बनानेका मुहूर्त कहते हैं, दोपिकामें लिखा है कि, सौर क्रांतिक

(x) गृहारम्भमाह—आदित्य इति।सूर्ये तृलकर्कटमेमिथुनरुम्भशुभस्थिराशस्थिते—

श्रावण, वैशाख, आपाढ, फाल्गुन और अग्रहायण मासमें, लग्नका केन्द्र आठवें और बारहवें स्थानमें शुभग्रह होनेसे, तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें पापग्रह स्थित होनेसे अपनी जन्मलग्नमें और वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ मिथुन, तुला और कन्या लग्नमें और धनलग्नके पूर्वार्द्धमें ज्येष्ठा, विशाखा, पुनर्वसु, आश्लेषा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा और भरणी इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें मंगल और रविवार भिन्न वारमें गोचरमें सूर्य शुद्ध होनेसे शुभतिथिमें घर बनवानेकी निहको लगावे ॥ ६७ ॥

अथ गृहारम्भे निषिद्धानिषिद्धमासादिकथनम् ।

चैत्रे व्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः ।

वैशाखे धनरत्नानि ज्येष्ठे मृत्युस्तथैव च ॥ ६८ ॥

आषाढे धनरत्नानि पशुवर्जमवाप्नुयात् ।

श्रावणे काञ्चनं पुत्रान्धानि भाद्रपदे तथा ॥ ६९ ॥

पत्नीनाश इषे मासि कार्तिके धनधान्यभाक् ।

मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम् ।

माघे चाग्निभयं विद्यात्फाल्गुने काञ्चनं सुतान् ॥ ७० ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ—अब घर बनवानेके महीनोंका फल कहते हैं—मत्स्यपुराणमें लिखा है कि चैत्रके महीनेमें घर बनवानेसे रोगी होता है, इसी प्रकार वैशाखके महीनेमें धन रत्नादिका लाभ होता है, ज्येष्ठमें मृत्यु होती है और आषाढके महीनेमें भी धन रत्नादिका लाभ होता है, किन्तु उसके घरमें पशु नहीं पाला जाता है और श्रावणके महीनेमें काञ्चन और पुत्र लाभ होता है, भाद्रपदमें हानि होती है, आश्विनमें स्त्रीकी मृत्यु होती है कार्तिकमें धनधान्यका मालिक होता है, अम-

काशिक श्रावणवैशाखाषाढफाल्गुनमार्गशीर्षेऽपि त्वयः। लग्नस्य केन्द्राष्टमद्वादशैः। शुभग्रह-समेतैः पौषे तृतीयेकादशपष्ठस्यैः स्वकीयजन्मलग्ने स्थिरलग्ने वृषसिंहवृश्चिककुम्भलग्नेषु ग्राम्यलग्ने मिथुनतुलाघटकन्यायनुःपूर्वार्धलग्नेषु ज्येष्ठादिवाजितेष्वन्येषु भेषु गोचरशुद्धे खौ सुतियो शुभचन्द्रे च मङ्गलशिवगतेषु वेशारम्भः शुभः स्यात् । अत्र च भौमसूर्येति पापवारोपलक्षणं तेन शनिवारोऽपि निषेधः । यथा राजमार्तण्डे—“स्वावग्निः कुजे नाशः शशिन्यर्थः शनी भयम् । सुरज्ये मार्गवे सीम्ये गृहमाय मनोहरम् ” तथा तत्रैव “सीम्यानां दिवसेऽथ पापवर्जिते योगे ” । तथा गर्गः—“बुधे लाभस्तथारोग्यं मरणं भास्वरात्मजे” इति । प्रवेशे तु शनिवार विहित एव “स्थाप्यं समाप्य क्रतुशुपकाष्टं वेशम-प्रवेश गजवाहनश्च” इत्यादिलिखितपशुपतिदीपिकानचनात् ।

हायणमें अन्नका मालिक होता है, पीपमें चोरोंका भय होता है, माघमें अग्निका भय होता है और फाल्गुनके महीनेमें घर बनवानेसे काश्चन और पुत्र लाभ होता है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ १७० ॥

वैशाखश्रावणापाढमार्गफाल्गुनकार्तिकाः ।

सुप्रशस्ता गृहारम्भे भार्यापुत्रसमृद्धिदाः ॥ ७१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि-वैशाख, श्रावण, आपाढ, अग्रहायण, फाल्गुन और कार्तिकके महीनेमें घर बनवानेसे स्त्री, पुत्र और धनादि द्वारा सुख प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

आदित्यभौमवर्ज्यास्तु सर्वे वाराः शुभावहाः ।

प्रासादेऽप्येवमेव स्यात्कूपवापीषु चैव हि ॥ ७२ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ-मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, रवि और मङ्गलवारको छोड़कर अन्य समस्त वारोंमें गृह, प्रासाद, कूप और वापी बनवानेसे शुभ फल होता है ॥ ७२ ॥

शुक्लपक्षे भवेत्सौख्यं कृष्णे तत्स्करतो भयम् ॥ ७३ ॥

अर्थ-शुक्लपक्षमें घर बनवानेसे सुख होता है और कृष्णपक्षमें बनवानेसे चौरका भय होता है ॥ ७३ ॥

प्रतिपदि गृहं कृत्वा दुःखमाप्नोति मानवः ।

अथनाशो भवेत्पष्ठ्यामेकादश्यां विघट्टनम् ॥ ७४ ॥

पञ्चम्यां चौरभीतिः स्यादशम्यान्तु नृपाद्भयम् ।

पौर्णमास्यां चार्थनाशो भार्यानाशस्तथैव च ॥ ७५ ॥

इति ज्योतिःसारमग्नह ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, प्रतिपदा तिथिमें घर बनवानेसे दुःख होता है इसी प्रकार पष्ठिमें धनका नाश होता है, एकादशीमें अनेक प्रकारके विघाट पञ्चमीमें चौरका भय होता है, दशमीमें राजाका भय होता है और पूर्णिमा तिथिमें घर बनवानेसे अर्थ हानि और स्त्रीकी मृत्यु होती है ७४॥७५॥

अश्विनीरोहिणीमूलमुत्तरत्रयमिन्दुभम् ।

स्वातिहस्तानुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ॥ ७६ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ-मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, अश्विनी, रोहिणी, मूल, उत्तराफाल्गुनी,

उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, मृगशिर, स्वाति, हस्त और अनुराधा नक्षत्रमें घर बनवाना चाहिये ॥ ७६ ॥

वज्रव्याघातशूलेषु व्यतीपातेतिगण्डके ।

विष्कुम्भगण्डपरिषवर्जं योगेषु कारयेत् ॥ ७७ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ-वज्र, व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड, विष्कुम्भ, गण्ड और परिष योगको छोड़कर अन्य योगोंमें घरको बनवावै इस प्रकार मत्स्यपुराणमें कहा है ॥ ७७ ॥

चन्द्रादित्यबलं लब्ध्वा लग्नं शुभनिरीक्षितम् ।

स्तम्भोच्छ्रायादि कर्तव्यमन्यत्र परिवर्जयेत् ॥ ७८ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ-मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, गोचरमें चन्द्रमा और सूर्य शुद्ध होनेसे और शुभ ग्रह लग्नको देखता होय तो तमो स्तम्भरोपण करै किन्तु सूर्य और चन्द्रमा शुद्ध न होय और पापग्रह लग्नको देखते हैं तो स्तम्भरोपण न करना चाहिये ॥ ७८ ॥

आदित्येज्यभरोहिणीमृगशिरश्चित्राधनिष्ठोत्तरा

षौष्णीविष्णुशतानुराधपवनैः शुद्धैः सुतारान्वितैः ।

सौम्यानां दिवसेऽथ पापरहिते योगे विरक्ते तिथौ

विष्टित्यक्तदिने वदन्ति मुनयो वेदमादिकार्यं शुभम् ॥ ७९ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्तण्डमें लिखा है कि, हस्त, पुष्य, रोहिणी, मृगशिर, चित्रा, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, श्रवण, शतमिषा, अनुराधा और स्वाती नक्षत्रमें ताराशुद्धि होनेसे, शुभग्रहोंके वारमें, शुभयोगमें रिक्ता और मद्रामित्र शुभतिथिमें गृहारम्भ शुभदायक होता है ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ ७९ ॥

उग्रं विशाखामदितिश्च शक्रं भुजङ्गमाग्निश्च विहाय गेहम् ।

ग्राम्यस्वलग्नस्थिरमंदिरेषु कुर्याच्छुभैर्भुक्तनिरीक्षितेषु ॥ ८० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा,

मघा, भरणी, विशाखा, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, आश्लेषा और कृत्तिका इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनके पूर्वार्द्धमें और अपनी जन्मलग्नमें और स्थिर (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ) लग्नमें शुभग्रह होंय ग्रहोंकी दृष्टि होय तो घर बनवाना चाहिये ॥ १८० ॥

नवग्रहा भवेयुश्च यदि केन्द्रत्रिकोणगाः ।

दोषस्तदा क्षयं याति तमः सूर्योदये यथा ॥ ८१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब लग्नके दोषनाशक योग कहते हैं-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, नवग्रह यदि लग्नके केन्द्रस्थानमें और त्रिकोणमें स्थित होंय तो सूर्योदयसे जिस प्रकार अन्धकारका नाश होजाता है उसी प्रकार लग्नके समस्त दोष दूर होजाते हैं ॥ ८१ ॥

कुम्भाजालिकुलारितौलिमिथुनूस्थाकं कुजाकैतर

वारे भद्रजये तिथौ शुभरवौ स्वग्राम्ययुग्मोदये (१)

भेषूग्रादितिशक्रपावकविशाखासर्पभिन्नेषु च

प्रारम्भः शुभदो गृहस्य शुभरात्रिशर्क्षयोगेष्वपि ॥ ८२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, सार फाल्गुन, वैशाख, अग्रहायण, श्रावण, कार्तिक और आपादके महीनेमें, मङ्गल और रविवारको छोड़कर अन्य वारोंमें द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी, त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीया तिथिमें, सूर्य शुद्ध होनेसे अपनी जन्मलग्नमें, और ग्राम्य और स्थिर लग्नमें पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, कृत्तिका, विशाखा और आश्लेषा इन नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें, चन्द्रमा और तारा शुद्ध होनेसे शुभ योगमें घर बनवाना चाहिये ॥ ८२ ॥

अथ नक्षत्रशुद्धिचा वासगृहनिर्णयः ।

कृत्तिकाद्यास्तु पूर्वादौ सप्तसप्तोदिताः क्रमात् ।

यदिश्यं यस्य नक्षत्रं तस्य तत्र गृहं शुभम् ॥ ८३ ॥ (क)

अर्थ-अब नक्षत्रशुद्धिद्वारा वासस्थान घरका स्थान निर्णय करते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, कृत्तिकादि सात नक्षत्र पूर्वादि चारों दिशामें गये, घरके

(१) वचनान्तरेकषाक्यत्वाद् यग्मोदये स्थिरलग्ने इत्यर्थः ।

(क) सप्तनक्षत्रक्रमेण पूर्वादिषु चतुर्दिशु गृहस्थानमाह-कृत्तिकेति । पूर्वादी दिशि

मालिकका जन्मनक्षत्र जिस दिशामें पड़े उसी दिशामें घर बनवानेसे शुभदायक होता है ॥ ८३ ॥

अथ नागशुद्ध्या गृहस्थाननिर्णयः ।

पूर्वादिषु शिरः कृत्वा नागशेते त्रिभिस्त्रिभिः ।

भाद्राद्यैर्वामपार्श्वेन तस्य क्रोडे गृहं शुभम् ॥ ८४ ॥ (ख)

इति दीपिकायाम् ।

अथ—नागशुद्धिद्वारा घरका स्थान कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, भाद्रादि-
करके तीन २ महानेमें पूर्वादिक्रमसे मस्तक रखकर नाग वामपार्श्वमें शयन
करता है इस नागके वामपार्श्वमें (क्रोडदेशमें) घर बनवानेसे शुभदायक
होता है ॥ ८४ ॥ अपिच ।

वास्तुप्रमाणेन तु गात्रकेण वामेन शेते खलु नित्यकालम् ।

त्रिभिस्तु मासैः परिवृत्य भूमौ तं वास्तुनागं प्रवदन्ति सिद्धाः ८५

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, वास्तुपरिमित गात्रविशिष्ट नाग सर्वदा

—कृत्तिकाया सप्त सप्त ताराः क्रमाद्बुदिताः तत्र च यदिश्यं यदिक्स्थित यस्य नक्षत्रस्या-
त्तस्य तत्र दिशि गृहं शुभं स्यात्तत्र च विशेषमाह—गर्गः—“ ध्वजं पूर्वगृहं प्रोक्तमाग्नेय्या
धूममुच्यते । सिंहन्तु दक्षिणागारं नैऋत्यां स्वगृहं तथा । वृषस्तु पश्चिमागारं वायव्यां
स्वरेभ्य च । उत्तरन्तु गङ्गागारं ध्वाक्षमैशानकं गृहम् ” राजमार्तण्डेऽप्येवम् । तथा पशु
पातिदीपिकायाम्—“ गृहमष्टविधं प्रोक्तं पूर्वादिषु यथाक्रमम् । ध्वजो धूमश्च सिंहश्च श्वा
वृषः खर एव च । गजे ध्वाक्षस्तथैतानि स्थानानि क्रमतो विदुः ॥ ” एतेन राशिचक्रवद्भागं
कृत्वा पूर्वादितो ध्वजादिस्थानं प्ररुल्य नैऋतेनैशानयोराग्नितायोश्च मध्ये दण्डद्वयं दत्त्वा
स्पृष्टमध्यभागं दण्डस्पर्शनञ्च विहाय चतुर्दिक्षु गृहं कार्यम् । तथाच राजमार्तण्डे—“ न
कोणेषु गृहं कुर्यात्त मध्ये नान्त एव च । तथा नवपदे भागे ज्ञात्वा गेहश्च कारयेत् ” ।
ध्वजादिस्थानानां फलमाह—गर्गः—“ ध्वजे विभूतिर्मरणश्च धूमे सिंहे जयः श्वा च करो-
त्पनर्यम् । भोगो वृषे रोगं घनक्षयो खरे पुष्टिर्भजे काकपदे च दुःखम् । ”

(ख) नागशुद्ध्या गृहस्थानमाह पूर्वादिष्विति । भाद्राद्यैस्त्रिभिस्त्रिभिर्मासैः पूर्वा-
दिषु चतुर्दिक्षु शिरः कृत्वा वामपार्श्वेन नागः शेते भाद्रादिमासत्रये पूर्वशिरा अग्निकोणा-
मिमुखः दक्षिणक्रोडः उत्तरपृष्ठः पश्चिमपृष्ठः शेते तदा अस्थक्रोडे दक्षिणे सिंहस्थाने
शुभं गृहमित्यर्थः । एवमन्यत्रापि दिक्षु बोद्धव्यम् । यथा पशुपातिदीपिकायाम् । “ प्राच्यां
दिशि शिरोन्यस्य नागो माद्रपदादिषु । याम्यां मार्गादिमासेषु वारुण्यां फाल्गुनादिषु ।
कोवेर्षां वामपार्श्वेन शेते ज्येष्ठादिषु त्रिषु । क्रोडे तु क्रियेते नित्यं हिताय सदनं बुधैः । न
शिः पृष्ठपृच्छे तु आत्मनः शुभमिच्छता ” तथा गर्गः—“ भाद्रादिषु च मासेषु कर्त्तव्यं
सिंहमन्दिरम् । वृषागारं तु कर्त्तव्यं मार्गशीर्षादिषु त्रिषु । फाल्गुनादिषु मासेषु गङ्गागा-
रन्तु कारयेत् । ध्वजागारन्तु कर्त्तव्यं ज्येष्ठमासादिषु त्रिषु ” इति ।

वाम पार्श्वमें सोता है, तीन २ महीनेके बाद उक्त वास्तुनागका मस्तक क्रमसः पूर्वादि दिशामें होता है, सिद्धगणोंने इस प्रकार कहा है ॥ ८५ ॥

अन्यच्च ।

भाद्रादिके वासवदिविछराः स्या-
न्मार्गादिकेषु त्रिषु याम्यमूर्धा ।

प्रत्यविछराः स्यात्खलु फाल्गुनादौ
ज्येष्ठादिकौबेरशिराः स नागः ॥ ८६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-उद्योतिपतत्त्वम् लिखा है कि 'भाद्रादि तीन महीनेमें वास्तुनाग पूर्व-दिशामें मस्तक रखकर सोते हैं, इसी प्रकार अग्रहायणादि तीन महीनेमें वास्तुनाग दक्षिणमें शिर रखकर सोते हैं, फाल्गुनादि तीन महीनेमें पार्श्वमें शिर रखकर वास्तुनाग सोते हैं और ज्येष्ठादि तीन महीनेमें उत्तर दिशामें शिर रखकर वास्तुनाग सोते हैं ॥ ८६ ॥

अथ नागशीर्षादौ गृहकरणफलम् ।

स्वामिनो हि भवेन्मृत्युर्नागमूर्ध्नि गृहे कृते ।

पुत्रस्य च कलत्रस्य नागगृष्टे गृहे कृते ।

पुच्छे चार्थक्षयं विद्यात्क्रोडे गृहे समृद्धिवान् ॥ ८७ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अथ नागके शिरादिमें घर बनवानेका फल कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि नागके शिरमें घर बनवानेसे घरके मालिककी मृत्यु होती है, इसी प्रकार पृष्ठ (पीठ) में घर बनवानेसे पुत्र और स्त्रीकी मृत्यु होती है, पुच्छदेशमें घर बनवानेसे अर्थकी हानि होती है और नागके क्रोडदेशमें घर बनवानेसे घरका मालिक समृद्धिशाली होता है ॥ ८७ ॥

अपिच ।

मूर्ध्नि खाते भवेन्मृत्युः पृष्ठे स्यात्सुतमार्ययोः ।

जघनेऽर्थक्षयं विद्यात्सर्वसम्पत्तयोदरे ॥ ८८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-उद्योतिपतत्त्वमें लिखा है कि, वास्तुनागके शिरमें मकान बनानेसे घरके मालिककी मृत्यु होती है, इसी प्रकार पृष्ठ (पीठ) में घर बनानेसे पुत्र और

खीका मृत्यु होती है, जौवमें बनानेसे धनकी हानि होती है और क्रोडदेशमें घर बनानेसे सर्व सम्पत् प्राप्त होती है ॥ ८८ ॥

अथैकशालादिव्यवस्था ।

एकं नागोरुसंशुद्धौ द्वे चेदक्षिणपश्चिमे ।

त्रिशालं पूर्वतो हीनं कार्यं वा सौम्यवर्जितम् ॥ ८९ ॥

केचिदक्षिणभागे तु वदन्त्येकं गृहं बुधाः ॥ ९० ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब एकसे आदि लेकर घर बनवानेको कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, वास्तुभूमिमें नवीन एक घर बनाना हो तो नाग और नक्षत्र शुद्धिमें बनावे दो घर बनाना हों तो वास्तुके दक्षिण और पश्चिम भागमें बनावे, तीन घर बनाना हो तो पूर्व दिशाको अथवा उत्तर दिशाको परित्याग करके घर बनाना चाहिये, किमी २ आचार्यका मत है कि, जो एक मात्र घर बनाना हो तो वास्तुके दक्षिणांशमें ही बनाना चाहिये ॥ ८९ ॥ ९० ॥

अपिच ।

ऐशान्यां देवशालास्यादाग्नेय्याञ्च महानसम् ।

अवस्करन्तु नैर्ऋत्या वायव्यां कोशमन्दिरम् ॥ ९१ ॥

अर्थ—उद्योतिपतत्त्वमें लिखा है कि, ईशानकोणमें देवगृहको बनावे, इसी प्रकार आग्निकोणमें रसोईका स्थान बनावे, नैर्ऋत कोणमें मलमूत्रादि परित्याग करनेका स्थान बनावे और वायुकोणमें धन रखनेका स्थान बनाना चाहिये ॥ ९१ ॥

अन्यच्च ।

कर्ककुम्भहरिनक्रगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि ।

तोलिमेपवृषश्चिकषाते दक्षिणोत्तरमुखानि कुर्यात् ॥ ९२ ॥

(क) एकादिगृहव्यवस्थाभाह—एकमिति । एकं गृह नागोदशुद्धौ यस्यां दिशि स्वकीयजन्मनक्षत्रं तदिशि नागोदशुद्धिः कर्त्तव्या नास्त्यत्र दिङ्मनियमः । यदि द्वे गृहे स्यातां तदा दक्षिणपश्चिमयोरेकत्र कर्त्तव्ये नान्यत्र । किन्त्वत्रापि नागोदशुद्धौ मुख्यं गृहं कर्त्तव्यमित्यर्थः । त्रिशालं पूर्वतो हीनम् उत्तरतो वा हीनं कर्त्तव्यं न कदापि दक्षिण पश्चिमहीनं कर्त्तव्यमित्यर्थः । यथा “ याग्याहीनं त्रिशालञ्च वित्तनाशकरं भवेत् । अवस्करञ्च परयाहीनं वैरकरं महत् ” विशेषमाह राजमातङ्गदे—“ ऐशान्यां देवनिलयमाग्नेय्याञ्च महानसम् । अवस्करन्तु नैर्ऋत्या वायव्यां कोशमन्दिरम् ” महानसं पाकशाला अवस्करं मलमूत्रपुरीषोत्सर्गशाला—इति ।

अन्यथा यदि करोति दुर्मतिर्व्याधिशोकधनहानिमथुते ।
मीनचापमिधुनाङ्गनागते कारयेन्न गृहमेव भास्करे ॥ ९३ ॥

इति भोजवचनम् ।

अर्थ-राजा भोजने कहा है कि, सौर श्रावण, फाल्गुन, माद्रपद और माघके महीनेमें पूर्व पश्चिमाभिमुखका घर बनावे, और कार्तिक, वैशाख ज्येष्ठ, अग्रहा-यणके महीनेमें दक्षिण और उत्तरमुखका मकान बनवाना चाहिये, घरका मालिक यदि बुद्धिहीन होकर इसके अन्यथा बनावे तो उसको रोग, शोक और धनकी हानि होती है, सौर चैत्र, पौष, आपाद और आश्विनके महीनेमें कमी भी घरको न बनवावे ॥ ९१ ॥ ९३ ॥

अपराध ।

न प्रधानं गृहारम्भं कुर्यात्पौषे शुचावपि ।
यदि कुर्यात्सोऽचिरेण महतीमापदं व्रजेत् ॥ ९४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि प्रधान घर बनानेमें पौष और चैत्र मही-नेको छोड़देवे जो मनुष्य पौष और चैत्रके महीनेमें घर बनवाते हैं उनको शीघ्रही आपदायें घेरलेती हैं ॥ ९४ ॥

प्रकारान्तरः ।

निषिद्धेऽपि हि काले तु स्वानुकूले शुभे दिने ।
तृणवस्त्रगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते ॥ ९५ ॥

इति महामारते ।

अर्थ-महामारतमें लिखा है कि, निषिद्ध कालमें यदि शुभदिन होय और उसमें सूर्य चन्द्रमादि अनुकूल होय तब तृण और वस्त्र घर बनवानेमें महीनेका दोष ग्राह्य नहीं होता है ॥ ९५ ॥

अधिच ।

पूर्णिमातोऽष्टमी यावत्पूर्वास्यां वर्जयेद्गृहम् ।
उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्यादिचतुर्दशीम् ॥ ९६ ॥
अमावस्याष्टमीमध्ये पश्चिमास्यं विवर्जयेत् ॥
नवमीतश्च याम्यास्यं यावच्छुक्लचतुर्दशीम् ॥ ९७ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्तण्डमें लिखा है कि, पूर्णिमासे कृष्णपक्षकी अष्टमीतक पूर्वास्यां घर न बनवाना चाहिये इसी प्रकार कृष्णपक्षकी नवमीसे कृष्णपक्षकी चतुर्दशी

तक उत्तरास्य घरका निषेध है और अमावास्यासे शुक्लपक्षकी अष्टमीतक पश्चि-
मास्य घरको न बनवावे और शुक्लपक्षकी नवमीसे शुक्लपक्षकी चतुर्दशीतक
दक्षिणास्य गृह बनवानेका निषेध है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अथ देवगृहारम्भे विशेषः ।

यस्य देवस्य यः कालः प्रतिष्ठाध्वजरोपणे ।

गर्तापूरशिलान्यासे शुभदस्तस्य पूजितः ॥ ९८ ॥ (क)

इति देवीपुराणे ।

अर्थ—अब देवगृह (टाकुरद्वारा) बनवानेका मुहूर्त कहते हैं, देवीपुराणमें
लिखा है कि, जिस देवताकी प्रतिष्ठा और ध्वजरोपणके विषयमें जो काल
विहित है उस देवताके मन्दिर बनवानेमें वही काल शुभदायक होता है ॥ ९८ ॥

अपेक्ष ।

चैत्रेऽथ फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माघवेऽपि वा ।

माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥ ९९ ॥ (ख)

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ—मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, चैत्र, फाल्गुन, वैशाख और माघ इन
महीनोंमें सब देवताओंकी प्रतिष्ठा शुभदायक होती है ॥ ९९ ॥

अन्यथा ।

महिषासुरहन्त्याश्च प्रतिष्ठा दक्षिणायने ॥ २०० ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ—देवीपुराणमें लिखा है कि, महिषासुरनाशिनी मगवती दुर्गादेवीकी
प्रतिष्ठा दक्षिणायनमें करनी चाहिये ॥ २०० ॥

अपरञ्च ।

गृहेषु यो विधिः प्रोक्तो विनिवेशप्रवेशयोः ।

एव विदुषा कार्या देवतायतनेऽपि ॥ १ ॥ (ग)

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, पूर्वमें जो सब विषय घर बनवानेमें कहे

(क) यस्य देवस्य प्रतिष्ठाध्वजरोपणे यः कालः शुभदस्तस्य गर्तापूरशिलान्यासे स
कालः पूजित इत्यर्थः ।

(ख) प्रतिष्ठासमुच्चये—‘ज्येष्ठापादकयोर्वापि’ इत्युक्तेरापादे दक्षिणायनेऽपि दुर्गाप्र-
तिष्ठाऽभिहिता ।

(ग) एतत्तु मासव्यतिरिक्तशुभचन्द्रादिविषयम् । अन्यथा प्रसूक्तविरोधापत्तेरिति
ज्योतिरतत्त्वे स्मर्त्तव्याभिहितम् ।

हैं उनमेंसे महीनोंको छोड़कर शुभ चन्द्रादि और नक्षत्रप्रभृति सभी देवमन्दिरके बनवानेमें प्रशस्त हैं ॥ १ ॥

अथ तृणकाष्ठादिसञ्चयनिषेधः ।

छेदनं संग्रहश्चैव काष्ठादीनां न कारयेत् ।

श्रवणादौ बुधः पट्टे न गच्छेदक्षिणां दिशम् ॥

नाहरेत्तृणकाष्ठानि न कुर्याद्वद्वन्धनम् ॥ २ ॥ (घ)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब घण्टेके लिये तृणकाष्ठादिसञ्चय करनेका निषेध कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, श्रवणसे आदि लेकर छः नक्षत्रोंमें पाण्डितमण घर बनानेके अर्थ काष्ठादिका छेदन वा संग्रहण न करें और उक्त छः नक्षत्रोंमें दक्षिणको जाना भी न चाहिये विशेष करके इन सब नक्षत्रोंमें तृणआहण और दृढ बन्धनकी सर्वदा परित्याग करें ॥ २ ॥

अपि च ।

अग्निदाहो भयं शोको राजपीडा धनक्षयः ।

संग्रहे तृणकाष्ठानां कृते द्रविणपञ्चके ॥ ३ ॥

अर्थ—धनिष्ठासे आदि लेकर पाँच नक्षत्रोंमें तृणकाष्ठादिका संग्रह करनेसे वा दृढ बन्धन करनेसे अग्निदाह, भय, शोक, राजपीडा और धनका नाश होता है ॥ ३ ॥

अथ वास्तुग्रहकरणकथनम् ।

ध्वजो धूमश्च सिंहश्च वा वृषः खर एव च ।

गजः काकपदश्चैव स्थानान्यष्टौ च वास्तुनि ॥ ४ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब वास्तुग्रहकरण कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, ध्वजा, धूम्र, सिंह,

(घ) श्रवणादिपट्टके काष्ठादिछेदननिषेधमाह—छेदनमिति । काष्ठादीनां तृणादीनां छेदन संग्रह समानयनञ्च श्रवणादौ रेवत्यन्ते नक्षत्रपट्टके न कारयेत् तथा श्रवणादिपट्टके दक्षिणदिश न गच्छेत् । तथा राजमातृण्डे—“ छेदनं तृणकाष्ठानां सहतञ्च विशेषतः । भूतिकामो न कुर्वीत पट्टकेन श्रवणादिना ॥ ” अत्रोत्तराषाढाशेषपादो दोष इति लोकाचारस्तत्रैव युक्तिः उत्तराषाढायाः शेषपादे श्रवणतारा तिष्ठति तत्सम्पर्कात्तत्र दोष इति । यथा सूर्यसिद्धान्ते तारानिर्णयाध्याये । “ आप्स्यस्यैवाभिजिष्मन्ते वैश्वान्ते श्रवणस्थितः ” इति । “ वात्मीको भूपिरो नागो व्याघ्रचौराग्निज भयम् । रेवत्यो भिमिता लङ्का तेन दग्धा हनुमता ” इति सारसंग्रहे । “ वक्षितस्तरराजानो भूपिको भशकः फणी ” इति सत्कृत्यमुक्तायत्याम् । इति ॥

श्वान वृष, खर, गज और काकपद इन आठोंको वास्तुका स्थान कहने हैं ॥ ४ ॥

अपिच ।

चतुरस्रं कृतं वास्तु सूत्राभ्यां तीर्यगूर्ध्वतः ।

कोणसूत्रद्वयेनापि विभजेदष्टधा ततः ॥

ईशानतो ध्वजाद्याः स्युस्तत्र वेश्मफलं यथा ॥ ५ ॥

अर्थ—वास्तुभूमिको चतुरस्र करके तीर्यग्वृ और ऊर्ध्व भागमें दो रेखा खींचे, अन्तर दो कोणके अंकित करनेसेही आठभागमें विभक्त होजाता है, अनन्तर ईशान कोणसे ध्वजादि गिनना चाहिये, फलको नीचे लिखते हैं ॥ ५ ॥

अन्यच्च ।

ध्वजे विभूतिर्मरणञ्च धूम्रे सिंहे यशः श्वानकरोत्यनर्थम् ।

वृषे च भोगी खरदेहपीडा सिद्धिर्गजे काकपदे च मृत्युः ॥ ६ ॥

अर्थ—अब ध्वजादिका फल कहते हैं । ध्वजाके स्थानमें घर बनानेसे ऐश्वर्य प्राप्त होता है इसी प्रकार धूम्रस्थानमें बनानेसे मृत्यु होती है, सिंहमें बनानेसे यशका लाभ होता है, श्वानमें बनानेसे अनर्थ होता है, वृषमें बनानेसे भोगी होता है, खरमें बनानेसे देहकी पीडा होती है, गजमें बनानेसे सिद्धि प्राप्त होती है और काकपदमें मकान बनानेसे घरके मालिककी मृत्यु होती है ॥ ६ ॥

अपरञ्च ।

पूर्वद्वारं गवां स्थानं कुर्याद्द्वारं तु पश्चिमम् ।

गजे सिंहे न कुर्वीत गृहस्थः पशुवृद्धये ॥ ७ ॥

अर्थ—गोशालाकी द्वार पूर्वमें वा पश्चिममें करना चाहिये, पशुवृद्धिकी इच्छा करनेवाले गृहस्थ गजमें वा सिंहमें पशुओंका घर न बनावे ॥ ७ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

वास्तु षोडशविधं तत्रायतादिचतुष्कं प्रशस्तम् ।

चक्रादिद्वादशप्रकारं निषिद्धम् ॥ ८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे हृदयानन्दः ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहनामक ग्रन्थमें हृदयानन्दने कहा है कि वास्तु सोलह प्रकारके हैं तिनके मध्यमें आयतादि चार प्रकारके प्रशस्त हैं और चक्रादि द्वादश प्रकारके निषिद्ध हैं ॥ ८ ॥

आपेच ।

आयते सिद्धयः सर्वाश्चतुरस्रे धनागमः ।

भद्रासने कृतार्थत्वं वृत्ते पुष्टिविवर्द्धनम् ॥ ९ ॥

अर्थ-आयतवास्तुमें सर्वार्थ सिद्धि होती है। इसी प्रकार चतुरस्र वास्तुमें धन प्राप्त होता है, भद्रासनमें कृतार्थता और वृत्त वास्तुमें पुष्टिकी वृद्धि होती है ॥ ९ ॥

अयामतादिलक्षणम् ।

आयते मुनिदिक्प्रोक्तं चतुरस्रे नवाष्टकम् ।

तिथिस्रयोदशं वृत्ते भद्रे रुद्रदिवाकरे ॥ २१० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब आयतादि वास्तुके लक्षण कहते हैं, ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि दश दण्ड (क) दीर्घमें सात दण्ड प्रस्थमें जो भूमि होय उसको आयत कहते हैं, नौ दण्ड दीर्घमें और आठ दण्ड प्रस्थमें जो भूमि होय उसको चतुरस्र कहते हैं, पांचदण्ड दीर्घ और त्रयोदश दण्ड प्रस्थको वृत्त कहते हैं और द्वादश दण्ड परिमित दीर्घ और एकादश दण्डपरिमित प्रस्थ इस प्रकारकी भूमिको भद्रासन कहते हैं ॥ २१० ॥

अथ वास्तुनक्षत्रकथनम् ।

प्रस्तारदैर्घ्ययोर्मानं (ख) त्रिभं चैकेन वर्जितम् ।

हरेर्द्वै सप्तविंशेन शेषनृक्षन्तु वास्तुनः ॥ ११ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-आठ हस्त परिमाण दण्ड द्वारा वास्तुभूमिको नापनेसे दीर्घ और प्रस्थमें जितने दण्ड होंय उनको मिलाकर तिथुना करनेसे जितने संख्यक अंक होंय उन अंकोंको तीन भागमें विभक्त करें और तीन भागमेंसे एक भागको छोड़ दें । अनन्तर शेष दोनों भागोंमें जितने अंक होंय उनको सत्ताईससे भाग करनेसे ही वास्तुके नक्षत्र जाने जाते हैं ॥ ११ ॥

अथ वास्तुराशिकथनम् । (×)

अश्विन्यादित्रयमेवे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम् ।

(क) अष्टहस्तदण्डेन गृहमापनम् । यथा-“वसुहस्तो भवेद्दण्डो वाटी तेनेव माप-येत् । चतुर्हस्तेन वा स्वरूपा मापयेदिच्छया बुधः ” इति ज्योतिःसारसंग्रहे हृदयानन्दः ।

(ख) मान दण्डमानमित्यर्थः ।

(×) नक्षत्रानुरोधेन राशितः कन्यावरयोस्त्रि गृहपुरुषयोर्वेदकशुद्धिर्ज्ञेया । इति ज्योतिःसारसंग्रहे हृदयानन्दः ।

मूलादित्रितयं चापे द्वौ द्वौ तु नवराशिषु ॥ १२ ॥

इति ज्योतिःसारसारसंग्रहे ।

अर्थ—अथ वास्तुभूमिकी राशिका निर्णय करते हैं ज्योतिःसारसंग्रह नामक ग्रन्थमें लिखा है कि, अश्विनी, मरणी और कृत्तिका इन नक्षत्रोंमें मेष राशि होती है, मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रोंमें सिंह राशि होती है, मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा, इन नक्षत्रोंमें धन राशि होती है, और शेष नौ राशियाँ दो दो नक्षत्रोंमें होती हैं, वास्तुभूमिकी राशि और वास्तुके मालिककी राशिसे “कन्या और वरकी राशिसे विवाहप्रकरणमें जिस प्रकार योचक शुद्धि कही है ” उसी प्रकार देखना चाहिये ॥ १२ ॥

अथ गृहारम्भे लोकपालादिपूजा ।

बलिभिः पुष्पधूपाद्यैर्लोकपालानथ ग्रहान् ।

पूजयेत्क्षेत्रपालांश्च कूरभूतांश्च वाह्यतः ॥ १३ ॥ (१)

अर्थ—घर बनवानेके समय लोकपालादिकी पूजा कहते हैं पूजोपहार पुष्प और धूपादि द्वारा लोकपाल नवग्रह और क्षेत्रपाल गणकी पूजा करे और घरके बहिर्देशमें कूरभूतगणोंकी पूजा करनी चाहिये ॥ १३ ॥

अथ गृहारम्भे ब्रह्मादिपूजा ।

कुशपुष्पैस्तथा लाजैस्तिलतण्डुलमिथितैः ।

ब्राह्मणं वास्तुपुरुषं तद्देशस्थांश्च देवताः ॥ १४ ॥

अर्थ—ब्रह्मा, वास्तुपुरुष और उस देशमें वास करनेवाले समस्त देवताओंकी पुष्प, तिल और तिल तण्डुल मिलाकर रखसे पूजा करे ॥ १४ ॥

(१) गृहारम्भकाले लोकपालादिपूजा श्लोकद्वयेनाह—बलिभिरिति । कुशपुष्पैरिति च । पुष्पधूपाद्यैर्बलिभिः पूजोपहारैरित्यर्थः । वाह्यतः गृहस्थानयाहो कूरभूतान् पूजयेत् । तद्देशस्थास्तद्देशग्रामेष्वधिपदेवना इत्यर्थः । शेषं सुगमम् । अत्र विशेषमाह गणैः—“पूजयेत्समाप्तोप्य चतुर्भुजसमुत्तमम् । गन्धपुष्पादिभिर्लक्ष्मीं श्रीसूक्तेन प्रपूजयेत् । इन्द्रादिलोकपालांश्च स्वर्वादिभ्यः घटे यजेत् । जष्टी वसुधैव कुटुम्बकम् । मातृकाश्च प्रपूजयेत् । अनन्त वास्तुपुरुषं कूर्मं पृथ्वीं ग्रहाग्रवम् । वास्तुकिं तक्षकञ्चैव कबेरुं कुण्डिकं तथा । पद्मञ्च शरपूटञ्च महापद्मं घनञ्चयम् । पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्नौमानष्टीं प्रयत्नतः । हस्तमात्रमिति गर्तं सप्तत्रयं सहस्रं चयम् । वास्तोष्पते निमन्त्रेण दद्याद्दूर्घं घटान्मुनिभिः । ततः पृथिव्यै कूर्माय अनन्ताय पृथक् पृथक् । ओं वसुधैव हिमगर्भासि शेषमथोपरिशाधिनि । तत्र पृष्ठे दद्याम्येतद्गृहाणार्घ्यं परित्रि मे । ओं सरलश्चणमम्पत्र मयं शक्यमथाकृते । स्थानं देहि गृहं कर्तुं विष्णुर्भूषितमोऽस्तुते । ततोऽनन्ताय । ओं हिमकुन्दमृणादाम् नामानन्तं महाफणिम् । स्थानं देहि गृहं कर्तुं गृहाणार्घ्यं नमो नमः” ॥

पूर्वादिचतुर्दिक्षु गृहबन्धध्रुवः ।

पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वाममेकादयो ध्रुवाः ।

प्रस्तारस्याथ दैर्घ्यस्य तत्र वैकसमन्विताः ॥ १५ ॥ (क)

अर्थ-अब पूर्वादि चारों दिशाओंके गृहबन्धके ध्रुवांकको कहते हैं वामावर्त्तसे क्रमानुसार प्रत्येका परिमाण पूर्वादि चारों दिशाओंमें एकादि अंक ध्रुवांक होता है अर्थात् पूर्वमें एक, उत्तरमें दो, पश्चिममें तीन और दक्षिणमें चार और दीर्घका परिमाण पूर्वादिक्रमसे वामावर्त्तमें एकाधिक एकादि अंक ध्रुवांक होता है अर्थात् पूर्वमें दो, उत्तरमें तीन, पश्चिममें चार और दक्षिणमें पांच ॥ १५ ॥

अथ वायव्यादिचतुष्कोणे गृहबन्धध्रुवकथनम् ।

वामं वातादिकोणेषु ध्रुवाः प्रस्तारदैर्घ्ययोः ।

एकाद्याः स्वेच्छया (*) सर्वे कार्या वेदसमन्विताः ॥ १६ ॥ (ख)

अर्थ-वामावर्त्तमें वायव्यादि चारों कोनोंमें प्रत्येके परिमाणमें एकादि अंक और दीर्घके परिमाणमें एकादि अङ्कके योग करनेसे जो परिमाण होता है उसकोही ध्रुवाङ्क कहते हैं ॥ १६ ॥

अथ गृहाणामायकथनम् ।

व्यासेन गुणिते दैर्घ्ये वसुभिर्विहते ततः ।

यच्छेपमायं तद्विद्यात्पूर्वादिभवनाएके ॥ १७ ॥ (ग)

अर्थ-अब घरकी आयका ज्ञान कहते हैं, प्रत्येको हस्तपरिमित अंकद्वारा दीर्घके हस्त परिमित अंकको गुणकरके आठसे भाग करनेमें जो अंक शेष बचे उनकोही पूर्वादि आठों कोनोंकी आय जानना चाहिये ॥ १७ ॥

(क) गृहबन्धनस्य व्यवस्थामाह-पूर्वादिध्विति । पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वाम विपरीतेन पूर्वोत्तरक्रमेणैकादयः प्रस्तारस्य ध्रुवाः एक पूर्वं द्वावत्तरं त्रयः पश्चिमायां चत्वारो दक्षिणस्याम् । अथ दैर्घ्यस्य ध्रुवास्त एव पूर्वोत्तरक्रमेणैकादयः एकयुक्ताः द्वौ पूर्वं त्रयः उत्तरे चत्वारः पश्चिमे पञ्च दक्षिणे । इति ।

(*) उभयतः स्वेच्छयानुरूपतश्चतुःसस्यादानेन ध्रुवशुद्धिश्च इति दीपिकायां मूलम् ।

(ख) वायव्यादिकोणेषु गृहबन्धस्य व्यवस्थामाह-वाममिति । वातादिकोणेषु वामे विपरीतेन वायुनैर्ऋताग्नीशानक्रमेण प्रस्तारदैर्घ्ययोस्त एवोक्ता एकाद्या ध्रुवाः प्रस्तारे एको द्वौ त्रयश्चत्वारः दैर्घ्ये एकसमन्विता द्वौ त्रयश्चत्वारः पञ्च इत्यर्थः । अथ सर्वे एवाष्टगृहध्रुवाः प्रस्तारे दैर्घ्ये च स्वेच्छया वेदसमन्विताः कार्याः युक्तयनुरूप यावद्विष्यो गृहाः शोभन्ते तावद्विश्वतुर्भिर्विहता ध्रुवाः कार्या इत्यर्थः ।

(ग) गृहायज्ञानमाह-व्यासेनेति । व्यासेन प्रस्तारहस्तप्रमाणेन दैर्घ्ये दैर्घ्यहस्तप्रमाणे पुरितेऽष्टाभिर्विहते सति यच्छेषं तिष्ठति तदायं विद्यात् । यथा पशुपतिदीपिका-

अथ गृहाणां सामान्यनक्षत्रकथनम् ।

तस्माद्वाचसपुणादैर्घ्यात्पुनर्मङ्गलताडितात् ।

त्रिघनेन हृताच्छेषं नक्षत्रं तस्य वेदमनः ॥ १८ ॥ (घ)

अर्थ—अब घरके सामान्य नक्षत्रोंको कहते हैं । प्रस्थांकद्वारा गुणित दीर्घ परिमित अंकको पुनः आठसे पूरण करे अनन्तर सत्ताईससे भाग करनेमें जो अङ्क शेष बचे उनकोही उस घरके नक्षत्र जानना चाहिये ॥ १८ ॥

अथ गृहाणामायज्ञानमायव्ययफलञ्च ।

वसुशिष्टं यदा जातं नक्षत्रं भवति व्ययः ।

व्ययाधिकं न कर्तव्यं गृहमायाधिकं शुभम् ॥ १९ ॥ (ङ)

अर्थ—पूर्वाक्तवचनके अनुसार घरके नक्षत्र निर्णय करके उनको आठसे भाग करनेमें जो अङ्क शेष बचे उनको व्यय कहते हैं दीर्घ और प्रस्थके परिमित अङ्कोंको मिलानेसे जो अङ्क हो उनको पिण्ड कहते हैं उक्त पिण्डाङ्कको आठसे गुणकरके बारहसे भाग करनेमें जो अंक शेष बचे उनको आय कहते हैं, आयके अंकोंसे व्ययके अंक अधिक होनेसे घरको न बनवावे और यदि व्ययके अंकोंसे आयाङ्क अधिक होय तभी घर बनवाना चाहिये ॥ १९ ॥

—याम् “आयामेन च ये हस्ताः प्रस्तारेण च तान्गुणेत् । अष्टाभिर्मागमाहृत्य शेषमाय प्ररूपयेत् ।

(घ) गृहस्य नक्षत्रज्ञानमाह—तस्मादिति । तस्मादुक्ताद्वयासप्रमाणपूरितात् दीर्घ-प्रमाणात् पुनरपि मङ्गलेनाष्टभिस्ताडितात्परितात् त्रिघनेन मत्तविशत्या हृतात् यच्छेष स्यात्तस्य वेश्मनो नक्षत्र स्यात् यथा राजमार्तण्डे—“पिण्डमष्टगुण कृत्वा त्रिघनेन विभाजयेत् । शेष नक्षत्रमादिष्ट कृत्तिकादिव्यवस्थया ” पिण्डमुक्त तत्रैव “आयामसगुणितो विस्तारहस्ताः पिण्डम् ” इति ।

(ङ) गृहाणां व्ययज्ञानमाह—वसिति । तस्माद् व्यासगुणितादिति वचनोक्त त्रिघनेन हृताच्छेषमङ्कं यन्नक्षत्रसङ्कक आधात तद्वसुशिष्टं अष्टहृतेषु व्ययं स्यात् । यथा पशुपतिदीपिकायाम् । “पिण्डमष्टगुण कृत्वा त्रिघनेन विभाजयेत् । शेष नक्षत्रमादिष्ट मष्टाभिर्हरणाद्ययः ” इति । ततश्च व्ययाधिकं न कर्तव्यम् । “आयाधिकन्तु शुभं समं सम् ” इति । केनचित् आयोद्विज्ञानप्रकारान्तरेणोक्तम् । यथा “गृहभूमिसमाहृतपिण्ड-पट वसुलोचनरन्ध्रगजैर्गुणितम् । गविभूधराशिशयोगद्वत भजनव्यवस्थितिः प्रक्षपदम् ” अस्मार्थ—गृहभूमिप्रमाणस्य समाहन प्रस्तारदीर्घ्याभ्याम् अन्योऽन्येन पूरित पिण्डपट पिण्डसंज्ञकम् । यथा राजमार्तण्डे—आयामसगुणितो विस्तारहस्तः पिण्डमिति तत्र पिण्डे पृथक्पृथक् स्थानेषु पृथक् कृत्वा वसुलोचनरन्ध्रगजैर्गुणितं यथामग्य द्वादशसप्तार्धशत सप्तार्धशतिभिर्हृतेषु गृहस्थाय व्यवस्थितनिर्वाणेषु स्युः । यथाक्रमम् । अन्येऽस्यार्थं न बुद्ध्या अन्यथा व्याचक्षते तद्वयम् । एतत् प्रकारमात्र देवात्मापि दृश्यते किन्तु ग्रन्थानामतमेव राजमार्तण्डादीनां बहूनां सम्मन सप्रमाणम् । इति ।

अथ गृहाणां नक्षत्रव्यवस्था ।

प्रत्यग्दक्षिणयोर्भेद्रविणाद्यं विदक्षु दहनादि ।

पूर्वोत्तरयोर्गृहयोरश्विन्यादीनि भानि स्युः ॥ २२० ॥ (१)

अथ—अब गृहनक्षत्रोंके विषयमें विशेष कहते हैं । पश्चिम और दक्षिण दिक्स्थित घरके नक्षत्र धनिष्ठादि होते हैं, इसी प्रकार विदिकस्थित (कोणस्थित) घरोंके नक्षत्र कृत्तिकादि होते हैं, और पूर्व और उत्तरदिक्स्थित घरके नक्षत्र अश्विन्यादि होते हैं ॥ २२० ॥

अथ शल्योद्धारादि कथनम् ।

सुनिश्चितां मन्दिरभूमिमादौ निखाय तोयावधि यत्नतस्ताम् ।

कुर्याद्विशल्यामथवा नृमानं खात्वाथवा प्रश्रवशाद्विधिज्ञः ॥ २१ ॥

दूर्वाप्रवालाक्षतपुष्पपाणिः शुचिः शुचिं देवविदं नमिष्व ।

पृच्छेद्विनीतो मधुरस्वरेण शल्यस्य तत्त्वं भवने तदीशः ॥ २२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अब शल्योद्धारादि कहते हैं, ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, घर बनानेके अर्थ भूमि स्थिर करके जितनी खोदनेसे जल दिखलाई देवै उतनीही खोदें अथवा मनुष्यकी बराबर खोदकरके, घरका मालिक शुद्ध होकर दूर्वा, प्रवाल, अक्षत, तण्डुल और पुष्प, हाथमें लेकर देवज्ञको नमस्कार करके बिनयपूर्वक मधुर वाक्यसे शल्यके वृत्तान्तकी जिज्ञासा करनी चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥

ततः प्रश्नादिमो वर्णः सन्धार्यो यत्नतोऽथवा ।

क्रमात्पुष्पनदीदेवफलानां ब्राह्मणादितः ॥ २३ ॥

प्रणवो धरणीधारिणी करा च तदनन्तरम् ।

न भूत्यै नम इत्येव मन्त्रो वह्निप्रियान्तकः ॥ २४ ॥

मन्त्रेणानेन कठिनमिभिमन्त्र्य विभाजयेत् ।

नवधा सदनक्षेत्रं तथा पश्चाद्विलेखयेत् ॥ २५ ॥

(१) प्राप्तस्य गृहनक्षत्रस्य व्यवस्थामाह—प्रत्यागात् । पश्चिमदक्षिणगृहयोर्नक्षत्र द्रविणाद्य धनिष्ठाद्य स्यात् धमिष्ठामारभ्य गणयेदित्यर्थः । विदक्षु कोणस्थग्रहाणां दहनादि कृत्तिकादि स्यात् पूर्वोत्तरग्रहयोरश्विन्यादीनि नक्षत्राणि स्युः । एतत् नक्षत्रज्ञानं चक्ष्यमाणव्ययज्ञानार्थं ग्रहपतितक्षत्रेण सार्द्धं विवाहवद्योत्कनाडनक्षत्रादिशुद्धया शुभाशुभज्ञानार्थञ्चेति बोद्धव्यमिति ।

वक्चतएहाः शपया नव चेतप्रश्राक्षराणि जायन्ते ।

प्रागादिकोष्टनवके वर्णास्ते शल्यमाख्यान्ति ॥ २६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अथ—अनन्तर देवज्ञ क्रमानुसार घरके मालिकके प्रश्रका आद्यक्षर द्वारा शल्य है वा नहीं तिसको देखै । प्रश्रके विषयमें ब्राह्मणादिक्रमसे द्रव्यादि ग्रहण करना चाहिये, उसका नियम इस प्रकारसे है कि, ब्राह्मण पुष्प, क्षत्रिय, नदी, वैश्य, देवता और शूद्रको फल ग्रहण करै; तदनन्तर प्रणवका उच्चारण करके “धरणी” इत्यादि मन्त्रद्वारा कठिनी अर्थात् खडि अभिमन्त्रित करके उसके द्वारा गृह-भूमिको नौ अंश (भाग) में विभक्त करै । अनन्तर व, क, च, त, ए, ह, श, प य इन नौ अक्षरोंके मध्यमें जो वर्ण प्रश्रका अक्षर होय उसको पूर्वोक्त नौ कोठोंमें पूर्वोदिक्रमसे विन्यस्त करके शल्यको जानना चाहिये ॥ २३-२६ ॥

प्रश्ने वकारः पुरतो नरास्थि ब्रवीति शल्यं मरणप्रदायि ।

क्षोणीशदण्डोरगहेतुमृत्युप्रदं ककारः खरशल्यमग्रौ ॥ २७ ॥

याम्यां चकारः पुवगास्थिवेष्मप्रभोर्विनाशावहमाह शल्यम् ।

रक्षोदिशि श्वास्य गृहस्थितानां महद्भयं वक्ति सुनिश्चितं ताः २८

एः पाशिदिश्यस्थि शिशोर्ब्रवीतिमृत्युं प्रवासाद्गृहमेत्य शल्यम् ।

हा वायुकोणे नररूपमस्थि दारिद्र्यमित्रक्षयकृद्विधत्ते ॥ २९ ॥

धनपदिशिशकारः प्राह विप्रास्थि वित्त-

क्षयकृदथ पकारो वक्ति ऋक्षास्थि शम्भौ ।

तदिह कुलविनाशं गोधनानाञ्च हानिं

वितरति गृहनाथस्यापि गुप्तस्य देवेः ॥ २३० ॥

यो मध्यभागेभ्यसितं कपालं कालायसञ्चायकुलक्षयाय ।

यत्नादपास्यान्यधुना प्रमाणं सर्वत्र तथ्यं कथयामि शल्ये ॥ ३॥

अथ—पूर्वोक्त प्रश्रका पहिला अक्षर ‘व’ होनेसे पूर्व दिशामें घरके मालिकका मृत्युदायक मनुष्यास्थि होताहै इसी प्रकार प्रश्रका अक्षर ‘क’ होनेसे राजदण्ड अथवा सर्पदंशनद्वारा मृत्युप्रद गर्दभस्थि अग्निकोणमें, ‘च’ दक्षिणदिशामें पानरास्थि घरके मालिकका विनाश कर्ता है, ‘त’ नैऋतकोणमें कुत्तेकीस्थि मर्दयजनक होताहै, ए पश्चिम दिशामें बालकास्थिरूप शल्य प्रवाममें मृत्युदायक

होता है, ' ह ' वायुकोणमें मनुष्यके सर्वावयवकी आस्थि दारिद्र्यप्रद और बान्धवोंका नाश करनेवाला होता है, ' ज ' उत्तर दिशामें ब्राह्मणास्थि धनका नाशकारक होता है, ' प ' ईशान कोणमें भल्लूकास्थि देवताओंकी रक्षा होनेसेभी घरके मालिका नाश करनेवाला और गोधनादि विनाशक होता है और ' य ' मध्यभाग नृकपालरूप शल्य घरके मालिकका और उसके वंशका नाश करनेवाला होता है । अत एव यत्नपूर्वक उक्त प्रकार शल्य वास्तुभूमिसे उखाड़ करके पृकान्तमें करना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३३० ॥ ३१ ॥

अथ दिग्विशेषे शल्यस्थितिकथनम् ।

इन्द्रक्षोजलेशाने शल्यं सार्द्धकरे कटौ ।

वह्न्यन्तककुबरेषु पुरुषे मध्यवातयोः ॥ ३२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अथ दिग्विशेषमें शल्यकी स्थिति निर्णय करते हैं, ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, पूर्व, नैर्ऋत, पश्चिम और ईशान कोणमें डेढ़ हाथ भूमिके मध्यमें शल्य होता है, और अग्निकोणमें, दक्षिणमें और उत्तर दिशामें कटिपरिमित भूमिके मध्यमें शल्य होता है और मध्यस्थानमें और वायुकोणमें पुरुष परिमित भूमिके मध्यमें शल्यका स्थान होता है ॥ ३२ ॥

अपिच ।

पुरुपाधःस्थितं शल्यं न गृहे दोषदं भवेत् ।

प्रासादे दोषदं शल्यं भवेद्यावज्जलान्तकम् ॥ ३३ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ-देवीपुराणमें लिखा है कि, पुरुषप्रमाण भूमिके निम्नमें स्थित शल्य घरके मध्यमें दोषकारक नहीं होता है, किन्तु मनुष्य परिमित भूमिके मध्यमें स्थित शल्यही घरके मध्यमें दोष कारक होता है, और जलान्तक शल्य प्रासादमें (अट्टालिका प्रभृतिमें) दोषकारक होता है ॥ ३३ ॥

अन्यच्च ।

गृह्वारम्भेऽपि कण्डूतिः स्वाम्यङ्गे यदि जायते ।

शल्यं त्वपनयेत्तत्र प्रासादे भवनेऽपि वा ॥ ३४ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ-देवीपुराणमें लिखा है कि, घर बनावानेमें यदि घरके मालिकका शरीर खुजलाय तो जानना चाहिये कि घरमें वा प्रासादमें शल्य है, अतएव यह शल्य जिस प्रकारसे निकलसके उसमें अवश्यही यत्न करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अथ गृहारम्भे हस्तप्रमाणम् । (१)

स्यामिहस्तप्रमाणेन धर्मपत्नीकरेण वा ।

मापयेद्गर्भमात्रं तु गृहकर्मणि कोविदः ॥ ३५ ॥

अर्थ—अब घर बनवानेमें हाथका प्रमाण कहतेहैं, घरके मालिकके हाथमें
अथवा धर्मपत्नीके हाथसे घरको नापना चाहिये ॥ ३५ ॥

अथ गृहारम्भे सूत्रादीनामारोपणस्यानम् ।

ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेये स्तम्भारोपणम् ।

द्वारं नवमभागे तु कार्यं वामात्प्रदक्षिणम् ॥ ३६ ॥ (२)

अर्थ—गृहारम्भमें ईशान कोणमें सूत्रपात करे, आग्निकोणमें स्तम्भ रोपण
और वाम वर्त्तन क्रमानुसार अष्टमभागके एकमागका द्वारकरे ॥ ३६ ॥

अथ गृहस्य वामस्य द्वारकरणव्यवस्था ।

तृतीयतुर्ययोः प्राच्यां याम्ये तुर्येऽथ पश्चिमे ।

(१) हस्तोऽप्यत्र रुकोऽप्युक्तममध्यमांगुल्यप्रपर्यन्तम् । “ मध्यमांगुलीरूर्ध्वयोर्मध्ये
प्रामाणिकः कारः ” इत्यभिमुक्तस्मरणादिति कल्पनरुतरत्नाकरौ । इति स्मार्त्तेनोक्तम् ।

(२) सूत्रादारोपणमाह—ईशान इति । ईशानकोणे सूत्रपातः कार्यः अग्निकोणेत्य-
र्थादिक दत्त्वा गते स्तम्भारोपणञ्च स्तम्भे वास्तुपुरुषं पूजयित्वा पठेत् । “ ओं यथाचलो
गिरिर्भरुहिंमवाश्च यथाचलः । शुभप्रदमहास्तम्भ तथा त्वमचलो भव ” अत्र च मासा-
दिविलम्बे पुनः कर्त्तव्यमिदम् तथा—“ मासान्तरे द्युनारम्भे ईशानारोपण पुनः ” इति
गृहद्वारआष्टभागीकृतस्य गृहस्यैकभागे वक्ष्यमाणश्लोकेन विशिष्योक्ते कर्त्तव्यम् । तच्च
ग्रहस्य वामपार्श्वत्वारप्रदक्षिणक्रमेण कर्त्तव्यमेतदुक्त भवति निर्गच्छतः पुंसो वामभागो
गृहस्य वामपार्श्वः । तदादित आरभ्य प्रदक्षिणक्रमेणाष्टौ भागान्कृत्वा वक्ष्यमाणश्लोकै-
कभागिकद्वार कार्यमित्यर्थः । इति । वामात्प्रदक्षिण वामाभेक्षया प्रकृत दक्षिणम् । तथा
च दक्षिणेऽधिकांशं स्थापयित्वा द्वारं कुर्यादित्यर्थः । विस्तागश्लिष्टगुणोन्नाय द्वारं तुर्या-
न्तया गृहे ” इति हृदयानन्दः ।

(३) पूर्वोदिदिशु स्थितानां, गृहाणामष्टभागीकृतानां द्वागव्यवस्थामाह—तृतीयेति ।
प्राच्यां दिशि स्थितस्य गृहस्य तृतीयचतुर्थभागयोर्द्वारं शुभद् दक्षिणदिशि स्थितस्य
गृहस्य चतुर्थभाग द्वाग् शुभद् पश्चिमगृहस्य चतुर्थपञ्चमभागयोर्द्वारं शुभद् । उत्तरगृह-
स्य पञ्चमतृतीयचतुर्थभागेषु द्वारं शुभदमिति एतदेव व्यक्ताकृत्योक्त राजमार्तण्डे—
“ अनलमय स्त्रीनम् प्रभूतधनतो नरेन्द्रसायुज्यम् । क्रोधपरतावृत्तत्वं क्रोधे चोदं च पूर्वण ।
अल्पसुखत्वं प्रेक्ष्य नीचत्वं भक्ष्यपालसुतशब्दिः । रोद स्वनिधनमधन सुतवीर्यञ्च याम्येन ।
सुतपीडारिपुशुद्धिर्धनसुतनाशः सुतायबलसम्पत् । धनसम्पन्नपतिमय धनक्षयो रोग इत्य-
परे । एधवन्धी रिपुशुद्धिर्धनसुतलाभः ममरनगणमम्पत् । पुत्रधनातिपरं भीम्येन दोष-
त्रिया निःस्पृहः ” इति ।

तुर्यपञ्चमयोः पञ्चत्रिंशत्तुर्येऽपि चोत्तरे ॥ ३७ ॥

अर्थ-किस दीवालके कितने अंशमें घरका दरवाजा लगावै अब उसको वर्णन करते हैं, पूर्वदिशाके घरमें तीसरे अथवा चौथे भागके एकभागमें द्वार करना चाहिये, इसी प्रकार दक्षिण दिशाके घरके चौथे भागमें दरवाजा शुभ होता है, पश्चिमदिशाके घरका चौथे वा पाँचवें भागके एकभागमें दरवाजा लगावै और उत्तरदिशाके घरका पाँचवें तीसरे वा चौथे भागके एक भागमें दरवाजा लगाना चाहिये ॥ ३७ ॥

अथ गृहारम्भे सूत्रच्छेदादिदोषकथनम् ।

सूत्रच्छेदे भवेन्मृत्युः कीले चावाङ्मुखे महात्रोगः ।

गृहनाथस्यपतीनां स्मृतिलोपे मृत्युर्वादेश्यः ॥ ३८ ॥ (क)

अर्थ-घर बनवानेके समयमें सूत्रादि छिन्न होनेसे जो फल होता है अब उसको वर्णन करते हैं सूत्र छिन्न होनेसे घरके मालिककी मृत्यु होती है कीलेके उखड़नेसे महारोग होता है और घरके नापनके समयमें यदि गिनती भूलजाय तो घरके मालिककी और घर बनानेवालेकी मृत्यु होती है ॥ ३८ ॥

अथ गृहार्घ्यदानोपस्थापितकुम्भभंगमादिदोषः ।

स्कन्धाच्च्युते शिरोरुग्गलोपसर्गोऽपवर्जिते कुम्भे ।

भग्नेऽपि च कर्मिणः कराच्च्युते गृहपतेर्मृत्युः ॥ ३९ ॥ (ख)

अर्थ-अब अर्घ्यके निमित्त स्थापित घटभंगआदि होनेसे जो दोष होता है उसको कहते हैं जल आते समयमें कुम्भ स्कन्धदेशसे स्वालित होनेमें घरके मालिकके शिरमें पीडा होती है, स्थापित कुम्भ किसी प्रकार अधोमुख होनेसे गलेमें रोग होता है घट भग्न होनेसे कुम्हारकी मृत्यु होती है और यदि कुम्भ हाथसे गिरजावे तो घरके मालिककी मृत्यु होती है ॥ ३९ ॥

अथ सूत्रदाने कुब्जादिदर्शनानिषेधः ।

कुब्जं वामनकं भिक्षुं वैद्यं रोगात्तरानापि ।

(क) सूत्रच्छेदादिफलमाह-सूत्रेति । सूत्रे छिन्ने गृहपतेर्मृत्युः स्यात् आरोपिते कीलेके सूत्राकर्षणेवाङ्मुखे उत्पादिते वा महात्र रोगः स्यात् । मानकाले हस्तप्रमाणस्य स्मृतिलोपे भ्रान्ते गृहिणः कर्मिणश्च मृत्युः स्यात् ।

(ख) अर्घ्याद्योपस्थापितस्य कलशस्य भग्नादिफलमाह-स्कन्धादिति । जलानयनसमये स्कन्धाच्च्युते कुम्भे साति गृहपतेः शिरोरुग् अर्घ्यार्योपस्थापिते कुम्भे अपवर्जिते किञ्चिदासङ्गादिना पतितत्वादवाङ्मुखे गृहपतेर्गलोपसर्गो गलरोगः स्यात् शेष सुगममिति ।

दर्शने सूत्रकाले तु संत्यजेत्क्षेमहेतवे ॥ २४० ॥ (ग)

अर्थ—घर बनवानेके समय कुब्जादि दर्शनमें सूत्रपातादिक निषेध कहते हैं वरका मालिक यदि मङ्गलकी इच्छा करे तो घरके सूत्रपात समयमें कुब्ज, चामन, भिक्षुक, वैद्य और रोगी मनुष्यका दर्शन न करे ॥ २४० ॥

अथ सूत्रदानकाले हुलहुलादिश्रवणफलम् ।

श्रुतौ हुलहुलानाञ्च मेघानां गर्जितेन च ।

गजानामपि हंसानां ध्वनितं धनदं भवेत् ॥ ४१ ॥ (घ)

अर्थ—सूत्रपातसमयमें हुलहुलि ध्वनि (छियोंके मङ्गलजनक मुखकी ध्वनि) मेघोंकी गर्जना और हाथी और हंसकी ध्वनि श्रवण गोचर होनेसे धनप्रद होता है ॥ ४१ ॥

इति गृहारम्भः ।

अथ गृहप्रवेशः ।

(ङ) ज्येष्ठापुनर्वसुवर्जं गृहारम्भोदितञ्च यत् ।

तत्सर्वं चिन्तयेद्देशमप्रवेशे देवचिन्तकः ॥ ४२ ॥

अर्थ—अब गृहप्रवेशका मुहूर्त कहते हैं, जेष्ठा और पुनर्वसु, नक्षत्रको छोड़करके जो गृहारम्भोक्त नक्षत्र हैं उनमेंही गृहप्रवेश करना चाहिये इस वचनमें ज्येष्ठा और पुनर्वसु वर्जित इस व्यर्थ निषेधसे गृहप्रवेशमें उक्त दोनों नक्षत्र प्रशस्त हैं ॥ ४२ ॥

अपि च ।

हस्तेपुण्यपुनर्वसौशतभिषाज्येष्ठास्वस्थो धातुमे ।

(ग) सूत्रपातादिकाले कुब्जादिदर्शननिषेधमाह—कुब्जामिति । स्पष्टायम् ।

(घ) सूत्रदानकाले हुलहुलादि श्रुतिफलमाह—श्रुताविति । हुलहुलानां स्त्रीकपोलध्वनीनां मेघगर्जितस्य श्रुतौ सत्यां धन स्यात् । शेषं सुगमम् । राजमातृण्डे । “ सूत्रे विस्तार्यमाणे तु दासोऽग्निर्गोद दृश्यते । नरो वा वोढकारूढो छमेद्राज्यं न संशयः । शतशूर्यादिनिर्घोषे वसतिर्विपुल्य गृहे । योपिता कम्पकार्णा च क्रीडिते यित्तवर्द्धनम् ।

(ङ) ज्येष्ठादितिभ्यां संपुक्तमित्यपि पाठान्तरमस्ति तदा व्यक्त एवार्थः । गृहप्रवेशमाह—ज्येष्ठोत् । गृहारम्भोक्तं यदिधान तत्सर्वं ज्येष्ठापुनर्वसुं च वर्जयित्वा गृहप्रवेशे देवज्ञो योजयेत् । अयमर्थः । अत्र ज्येष्ठापुनर्वसुर्लोनिषेध उक्तः । अत्र निषेधस्य निषेधादिभिरिति अतो ज्येष्ठा पुनर्वसुः गृहप्रवेशः कार्यः । कश्चित्तु ज्येष्ठापुनर्वसुं वर्जयित्वा सामान्यनक्षत्रं यत् अन्यच्च गृहारम्भोक्तं यत् तत्सर्वं योजयेत् । तत्र । ज्येष्ठापुनर्वसुः पार्श्वस्थगणोक्तेन गृहप्रवेशे विहितत्वात् । तथाच राजमातृण्डे—“ज्येष्ठा पुण्य पुनर्वसु शतभिषा स्वाती तथा रोहिणो रेवत्युत्तरमघ्रं हरिष्टगी मूलापनिष्ठाकरः । कम्पा कुम्भ मृगालिस्तिह मिथुनस्थश्चादिराशुद्रमे क्षारा जीव सुषांशु-सौम्यमृगुजा धेनुमप्रवेशे हिनाः ” इति ।

रेवत्युत्तरविष्णुभाग (१) शशभृन्मूलेधनिष्ठासु च ॥

कन्याकुम्भवृषाणिसिंहमिथुनेष्वृक्षोदयेऽर्केशुभे

शुक्रेज्येन्दुजशीतरश्मिदिवसे वेश्मप्रवेशः शुभः ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, शतभिषा, ज्येष्ठा रोहिणी, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, मृगशिर, मूल और धनिष्ठा नक्षत्रमें, कन्या, कुम्भ, वृश्चिक, सिंह और मिथुन लग्नें, गोचरमें सूर्य शुद्ध होनेसे शुक्र गृहस्पती, बुध और सोमवारमें गृहप्रवेश शुभ होता है ॥ ४३ ॥

अन्यच्च ।

सकलं हन्ति सा रिक्ता देवैरपि विनिन्दिता ।

इति वचनात्तिथिस्तु रिक्ताभिन्न एव ॥ ४४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे हृदयानन्दः ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रह ग्रन्थमें हृदयानन्दने कहा है कि, रिक्तातिथिमें कर्म नष्ट होता है, विशेषकरके देवताओंनेभी रिक्ता तिथिकी निन्दा करी है, अतएव रिक्ता भिन्न तिथिमेंही गृहप्रवेश करना चाहिये ॥ ४४ ॥

अपरञ्च ।

स्थाप्यं समाप्यं क्रतुयूपकाष्ठं गृहप्रवेशो गजवाजिवन्धः ।

ग्रामे प्रवेशो नगरे पुरे वा दिने प्रशस्तानि शनैश्चरस्याऽ४५ ॥

अर्थ—यज्ञीय यूपकाष्ठका स्थापन वा विसर्जन, गृहप्रवेश हाथी और घोड़े आदिका प्रथम खरीदना, ग्राममें वा नगरमें प्रवेशकरना इन सब कार्योंमें शनि वार प्रशस्त है ॥ ४५ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

गोपुच्छविन्यस्तकरः प्रविशेच्च गृहं गृही ।

अनुलिप्तः सुखी सखी सपत्नीकस्तथैव च ॥ ४६ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ—विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि, चन्दनादिको लम्बाकर हर्षचित्तसे पुष्पोंकी मालाको धारण करके घरका मालिक पत्नीके साथ गौकी पूँछ पकड़कर घरमें प्रवेश करे ॥ ४६ ॥

(१) भागशशभृदित्यत्र भागशशभृदिति पाठो न्याय्य एव । भाग भगोदेवता अस्थेति पूर्वाफाल्गुनस्त्यर्थः । उग्रगणत्वेन पूर्वाफाल्गुन्या गृहारम्भे वर्जनादिति साप्रदायिकाः ।

अथ गृहप्रवेशविधिः ।

कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदल-

पुष्पफलापशोभम् । दत्त्वा हिरण्यवसनानि तथा

द्विजेभ्यो माङ्गल्यशान्तिनिलयं निलयं विशेषे ॥ ४७ ॥ (❀)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब गृहप्रवेशकी विधि कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, घरका मालिक ब्राह्मण और दध्यक्षत (दही और चावल) आम्रकी शाखा, पुष्प, और फलसे उपशोभित पूर्णकुम्भको आगे करके ब्राह्मणको सुवर्ण और वस्त्रादि दान कस्के नवीन घरमें प्रवेश करै ॥ ४७ ॥

अथ पारावतादिपोषणम् ।

पारावतमयूराश्च शुका वै सारिकास्तथा ।

गृहस्थेन सदा पोष्या आत्मनः श्रेय इच्छता ॥ ४८ ॥

इति महाभारते ।

अर्थ—महाभारतमें लिखा है, गृहस्थ मनुष्य अपने मङ्गलकी इच्छा करै तो पारावत (कबूतर) मयूर (मोर) शुक (तोता) और सारिका (मयना) को सर्वदा खिलावै ॥ ४८ ॥

सूर्यास्तात्परं गवादीनां गृहाद्गृहिनिष्कासननिषेधः

गोगजाश्वाविशालासु तत्पुरीषस्य निर्गमम् ।

अस्तं गते न कर्त्तव्यं देवदेवे दिवाकरे ॥ ४९ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ—मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, भगवान् सूर्यदेवके अस्त होजानेपर गाय हाथी, घोड़ा और बकरी इनको घरके बाहर न निकालना चाहिये ॥ ४९ ॥

गृहपार्श्वेनिषिद्धवृक्षाः ।

वर्जयेत्पूर्वतोऽश्वत्थं पुशं (❀) दक्षिणतस्तथा ।

न्यग्रोधमपरादेशादुत्तराच्चाप्युदुम्बरम् ॥ २२० ॥

इति गोभिलः ।

अर्थ—गोभिलने कहा है कि, घरके पूर्व दिशामें पीपल, दक्षिणमें पाकड़,

(*) गृहप्रवेशविधिमाह—कृत्वेति । अग्रतो ब्राह्मणान् कृत्वा दध्यादिशोभित पुष्प कुम्भं चामे कृत्वा पूजितद्विजेभ्यो हिरण्य वस्त्राणि दत्त्वा माङ्गल्यकर्मणः शान्तिरर्मणश्च निलयं स्थानं गृहं प्रविशेत् । (+ श्चः पर्यन्तः ।

पश्चिममें वट और उत्तरमें उदुम्बरके वृक्षको पारित्याग करे ॥ २५० ॥

फलम् ।

अश्वत्थोऽग्निभयं कुर्यात्पुशो ब्रूयात्प्रमायुकान् ।

न्यग्रोधो राजसंपीडां कुक्ष्यामयमुदुम्बरः ॥ २५१ ॥

इति गोभिलः ।

अर्थ-घरकी पूर्वदिशामें पीपलका वृक्ष होनेसे आग्निका भय होता है, दक्षिणमें पाकडका वृक्ष होनेसे पित्तकी वृद्धि होती है, पश्चिममें वटका वृक्ष होनेसे राजपीडा होती है और घरके उत्तरमें गूलरका वृक्ष होनेसे उदरामय रोग होता है ॥ २५१ ॥

इति वंशावरेल्यांतर्वैतिकां न्यकुञ्जकुलभूषणमारद्वाजगोत्रे त्रिपाठ्युपनाम-
केन पण्डित बैकेलालात्मजेन श्यामुन्दरशर्मणा सम्पादिते भाषाटीका
विभूषिते च ज्योतिषतत्त्वसुधारणवे जातककर्मादि
गृहप्रवेशान्तश्चतुर्थस्तरङ्गः ।

पञ्चमस्तरङ्गः ५.

अथ देवताघटनम् ।

ध्रुवलघुमृदुवर्गे वारुणे विष्णुदैवे मरुदादिति धनिष्ठे

शोभने वासरे च ॥ त्रिदशमदनजन्मैकादशे

ज्ञातिरश्मौ विबुधकृतिरभिष्टा नाडिनक्षत्रहीने ॥ १ ॥ (क)

अर्थ-अथ देवताओंकी प्रतिमा बनानेका शुद्धत कहेते हैं-उत्तराफालगुनी, उत्तराषाढा, उत्तरामाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, आश्विनी, हस्त, चित्रा, अश्लेषा, शतभिषा, श्रवण, स्वाति, पुनर्वसु और धनिष्ठा नक्षत्रमें, शुभ-ग्रहोंके वारमें गोचरमें चन्द्रमा तीसरे, दशवें, सातवें, जन्मका अथवा ग्यारहवें स्थानमें स्थित होनेसे, नाडी नक्षत्रहीन दिनमें देवताओंकी प्रतिमाको निर्माण करना चाहिये ॥ १ ॥

(क) देवताघटनमाह-श्रुतेति । विष्णुदेवो यस्य स विष्णुदेवः श्रवणः शोभने वासरे शुभग्रहस्य वारे जन्मराशेः सकाशात् त्रिदशमजनन्मैकादशस्य जन्मादिनाडीनक्षत्रहीने च चन्द्रे विबुधकृतिर्देवताकरणमिष्टा । इति ।

अथ सामान्यदेवताप्रतिष्ठा ।

शस्तेन्दौ माघपक्षे शुभदिवसतिथौ गोगुरुशुक्लजलग्ने
वित्तद्वन्द्वहियुग्मादितिहयभरणीयुग्विशालान्येषु ।

क्षीणं पष्ठाष्टमेन्दुं हरिशयनमसद्युक्तलग्नञ्च हित्वा

केन्द्रे जीवे च शुक्रे त्रिभवरिषुगृहेऽस्तसु देवप्रतिष्ठा ॥ २ ॥ (ख)

अर्थ-अथ सामान्यदेवताओंकी प्रतिष्ठाका सुदूर्घ्व कहते हैं-गोचरमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे, माघादि छः महीनोंके मध्यमें, शुभग्रहोंके वारमें, शुभतिथिमें, वृष, धन, मीन, मिथुन और कन्यालग्नमें, धनिष्ठा, शताभिषा, आश्लेषा, मघा, पुनर्वसु, आश्विनी, भरणी, कृत्तिका और विशाखा इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें, लग्नके छठे आठवें और क्षीण चन्द्रमाको छोड़कर, श्रीहरिका शयनसमय और पापयुक्त लग्नको परित्याग करके केन्द्रस्थानमें बृहस्पति और शुक्र स्थित होनेसे और तीसरे ग्यारहवें और छठे स्थानमें पापग्रहोंके होनेसे देवताओंकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ २ ॥

आपेच ।

प्रतिष्ठा सर्वदेवानां केशवस्य विशेषतः ।

उत्तरायण आपत्ते शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥

कृष्णपक्षे च पञ्चम्यामष्टम्याञ्चैव शस्यते ॥ ३ ॥

इति व्यवहारसमुच्चये ।

अर्थ-व्यवहारसमुच्चय ग्रन्थमें लिखा है कि, उत्तरायणमें, शुक्लपक्षमें, शुभ दिनमें और कृष्णपक्षकी पञ्चमी और अष्टमीतिथिमें सब देवताओंकी प्रतिष्ठा करी जासक्ती है, किन्तु विशेषकरके उक्त दिनोंमें विष्णुकीही प्रतिष्ठा प्रशस्त है ॥ ३ ॥

अन्यथा ।

युगादावयने पुण्ये कर्त्तव्यं विषुवद्वये ।

चन्द्रसूर्यग्रहे वापि दिने पुण्येऽथ पर्वसु ॥ ४ ॥

(ख) सामान्यदेवताप्रतिष्ठामाह-शस्तेन्दाविति । गोचरशुद्धे चन्द्रे माघादौ पक्षे च मासि शुभवारे शुभतिथौ वृषधनुर्मानमिथुनकन्यालग्ने वित्तद्वन्द्व धनिष्ठाशताभिषा आदि-युग्मेऽष्टेषामघायाम् अदितिः पुनर्वसुः हयोऽश्विनी भरणी गुरु भरणी कृत्तिका विशाखा एतदन्येषु भेषु लग्नात् पष्ठाष्टमस्थं चन्द्रं क्षीणचन्द्रञ्च हित्वा हरिशयनं पापयुक्तलग्नञ्च हित्वा एतैर्येकादशपक्षेषु पापेषु देवप्रतिष्ठा कार्या । इति ।

या तिथि (×) र्यस्य देवस्य तस्यां वा तस्य दक्षिणे ।
गृह्यागमविशेषेण प्रतिष्ठा मुक्तिदायिनी ॥५॥

इति भुजबलभीमपराक्रमे ।

अर्थ-भुजबलभीमपराक्रमे लिखा है कि-युगादिमें, दोनों अयन संक्रान्तिमें, दोनों विषुव संक्रान्तिमें चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें पुण्याहमें, पर्वके दिनमें और जिस देवताकी जो तिथि कही है उसमें और टीक्षा देनेके दिनमें अपनी अपनी गृह्याक्त प्रतिष्ठा मुक्तिकी देनेवाली होती है ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ वासुदेवप्रतिष्ठा ।

प्राजेशवासवकरादितिभाशिनीपुष्यौष्णामरेष्यशशिं (✽)

भेषु तथोत्तरासु ॥ कर्तुः शुभे शशिनि केन्द्रगते च जीवे ।

कार्या हरेः शुभतिथौ विधिवत्प्रतिष्ठा ॥ ६ ॥ (क)

अर्थ-अथ विष्णुभगवान्की प्रतिष्ठाका मुद्रार्च कहते हैं रोहिणी, ज्येष्ठा, हस्त, पुनर्वसु, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिर उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तरामाद्रपदा नक्षत्रमें कर्त्ताके गोचरमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे बृहस्पति केन्द्रस्थानमें होनेसे शुभतिथिमें विष्णुभगवान्की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ६ ॥

हरेः प्रतिष्ठायां तिथिशेषकथनम् ।

द्वादश्येकादशीराका शुक्ले शुक्ले च पञ्चमी ।

अष्टमी च विशेषेण प्रतिष्ठायां हरेः शुभा ॥ ७ ॥ (ख)

अर्थ-विष्णुकी प्रतिष्ठामें तिथिविशेष कहते हैं, द्वादशी, एकादशी, पूर्णिमा,

(+) प्रतिपद्वनदस्योक्ता पवित्रारोहणे तिथिः ।

श्रिया देव्या द्वितीया च तिथीनामुत्तमा स्मृता ॥ १ ॥

तृतीया तु भवान्याश्च चतुर्थी तत्सुतस्य च ।

पञ्चमी सोमराजस्य षष्ठी प्रोक्ता गुह्यस्य च ॥ २ ॥

सप्तमी भार्गवस्योक्ता दुर्गायाश्चाष्टमी तिथिः ।

मातृणां नवमी प्रोक्ता दशमी वासुदेवस्तथा ॥ ३ ॥

एकादशी ऋषाणाञ्च द्वादशी चक्रपाणिनः ।

त्रयोदशी त्वनङ्गस्य शिवस्य च चतुर्दशी ॥ ४ ॥

मम चापि मुनिश्रेष्ठ पूर्णिमासी तिथिः स्मृता ॥ ५ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे ।

(×) अश्विनीश इति पाठान्तरम् ।

(क) विष्णुप्रतिष्ठामाह-प्राजेशेति । प्राजेशो रोहिणी आदितिभ पुनर्वसुः अम-
रेष्यः पुष्यः लग्नादकेन्द्रस्थे जीवे शेष स्पष्टमिति ।

(ख) हरिप्रतिष्ठाया तिथिविशेषमाह-द्वादशीति । राका पूर्णिमा पञ्चमी अष्टमी
च पक्षद्वयेऽपि शस्ता इत्यर्थः ।

दोनों पक्षोंकी पञ्चमी और अष्टमी इन सब तिथियोंमें विष्णुकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

अथ महेशादिप्रतिष्ठा ।

पुष्याश्विश्चक्रभगदैवतवासवेपुसौम्यानिलेशमघ
रोहिणिमूलहस्ते ॥ पौष्णानुराधहरिभेषु पुनर्वसौ च
कार्याभिषेकतरुभूतपतिप्रतिष्ठा ॥ ८ ॥ (ग)

अर्थ—वृक्ष और शिवादिकी प्रतिष्ठाका सुहृत् कहते हैं. पुष्य, अश्विनी, ज्येष्ठा, पूर्वाफाल्गुनी, धनिष्ठा, मृगशिर, स्वाति, आर्द्रा, मघा, रोहिणी मूल, हस्त, रेवती, अनुराधा, श्रवण और पुनर्वसु नक्षत्रमें अभिषेक, वृक्षकी प्रतिष्ठा और शिवकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

अथ परीक्षाकरणम् ।

नो शुक्रास्तेऽष्टमेकं गुरुसहितरवौ जन्ममासेऽष्टमेन्दौ
विष्टौ मासे मलारूपे कुजशनिदिवसे जन्मतारासु चाथ ।
नाडीनक्षत्रहीने गुरुरविजनीनाथताराविशुद्धौ
प्रातः कार्या परीक्षा द्वितनुचरगृहांशोदये शस्तलग्ने ॥ ९ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब परीक्षा करनेका सुहृत् कहते हैं—दीपिकामें लिखा है कि, शुक्रके अस्त न होनेसे और गोचरमें सूर्य आठवें न होय, शुक्रादित्ययोग, जन्ममास, अष्टमचन्द्रमा, विष्टि, (मद्रा) मलमास, मङ्गल और शनिवार, जन्मतारा और नाडीके नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें, वृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा और तारा शुद्ध होनेसे आत्मक और चरलग्नके नवांशमें प्रशस्त लग्नमें प्रातःकालके समय परीक्षा करनी चाहिये ॥ ९ ॥

अपिच ।

नाष्टम्यां न चतुर्दश्यां प्रायश्चित्तपरीक्षणे ।
न परीक्षा विवाहश्च शनिभौमदिने तथा ॥ १० ॥

इति व्यवहारचिन्तामणौ ज्योतिषतत्त्वे च ।

अर्थ—व्यवहारचिन्तामणिग्रन्थमें और ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, अष्टमी

(ग) वृक्षादिप्रतिष्ठा—पुष्येति । भगदैवत पूर्वाफाल्गुनी वसुः देवतमस्येति वासवो धनिष्ठा अभिषेकपुष्ता तरुभूतपति प्रतिष्ठा कार्या शिवाभिषेकः तरुप्रतिष्ठा भूतपति प्रतिष्ठा च भूतपतिमहेशस्तस्य प्रतिष्ठा कार्या एवं पुष्करिणीसेतुमठादिप्रतिष्ठा शेष स्पष्टम् । इति । अत्रैव योगाभिषेकतरुभूतपतिप्रतिष्ठायाः पठन्ति ।

और चतुर्दशी तिथिमें प्रायश्चित्त और परीक्षा निषिद्ध है, शनि और मङ्गलवारमें विवाह और परीक्षा न करनी चाहिये किसी २ आचार्यके मतसे शनि और मङ्गलवारमें प्रायश्चित्तकाभी निषेध है ॥ १० ॥

अथ दीक्षाग्रहणम् ।

ध्रुवमृदुनक्षत्रगणो रवि शुभवारं सत्तिथौ दीक्षा ।

स्थिरलग्ने शुभचन्द्रे केन्द्रे कोण शुभे गुरौ धर्मे ॥ ११ ॥ (✽)

अर्थ-अथ दीक्षा ग्रहण करनेका सुहृत् कहते हैं-उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवतीनक्षत्रमें रवि, सोम, बुध, बृहस्पति और शुकृवारमें, शुभतिथिमें, स्थिरलग्नमें, चन्द्रमा शुद्ध होनेसे लग्नके केन्द्रस्थानमें और त्रिकोणमें शुभग्रह होनेसे और बृहस्पतिके नववें स्थानमें स्थित होनेसे दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये ॥ ११ ॥

अथ दीक्षाया मासकथनम् ।

मधुमासे भवेदुःखं माघवे रत्नसञ्चयः ।

मरणं भवति ज्येष्ठे आपाठे बन्धुनाशनम् ॥ १२ ॥

समृद्धिः श्रावणे नूनं भवेद्भाद्रपदे क्षयः ।

प्रजानामाश्विने मासि सर्वतः शुभमेव हि ॥ १३ ॥

ज्ञानं स्यात्कार्तिके सौख्यं मार्गशीर्षे भवत्यपि ।

पौषे ज्ञानक्षयो माघे भवेन्मेधाविवर्द्धनम् ॥

फाल्गुनेऽपि विवृद्धिः स्यान्मलमासं विवर्जयेत् ॥ १४ ॥

इति दीक्षामलमासतत्त्वयोः ।

अर्थ-अथ दीक्षाग्रहण करनेके महीनोंका फल कहते हैं-चैत्रके महीनेमें दीक्षा ग्रहण करनेसे दुःख प्राप्त होता है । इसी प्रकार वैशाखमें रत्नोंका सञ्चय, ज्येष्ठमें मरण, आपाठमें बान्धवोंका नाश, श्रावणमें समृद्धिलभ, भाद्रपदमें प्रजाका नाश, आश्विने सर्वप्रकारसे शुभ, कार्तिकमें सुख, अग्रहायणमें भी सुख, पौषमें ज्ञानका नाश, माघमें मेधाकी वृद्धि और फाल्गुनके महीनेमें मन्त्रग्रहण करनेसे शुभ होता है किन्तु इन महीनोंके मध्यमें जो किसी महीनेमें मलमास होय तो उसमें दीक्षा ग्रहण न करना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

(*) दीक्षाग्रहणमाह-ध्रुवेति । रविवारे शुभग्रहवारे च गोचरशुभे चन्द्रे लग्नात् केन्द्र-त्रिकोणे शुभग्रहे नमस्ये गुरौ दीक्षा कार्येत्यर्थः । दीक्षानिचारस्तु तन्त्रप्रसिद्धत्वान्न-लिखितः । इति ।

अथ दीक्षायाः वारादिकथनम् ।

गुरौ रवौ दिने (१) शुक्रे कर्त्तव्यं बुधसोमयोः ।

अश्विनीरोहिणी (२) स्वातिविशाखाहस्तभेषु च ।

ज्येष्ठोत्तर (३) त्रयेष्वेवं कुर्यान्मन्त्राभिषेचनम् ॥ १५ ॥

इति मलमासतत्त्वे ।

अर्थ—अथ दीक्षाग्रहण करनेके वारादि कहते हैं—मलमासतत्त्वमें लिखा है कि, बृहस्पति, रवि, शुक्र, बुध और सोमवारमें अश्विनी, रोहिणी, स्वाति, विशाखा, हस्त, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तमाभाद्रपदा नक्षत्रमें मन्त्र-ग्रहण करना चाहिये ॥ १५ ॥

अपिच ।

शुक्लपक्षे च कृष्णे वा दीक्षा सर्वसुखावहा ।

पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा ।

त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा ॥ १६ ॥

इति दीक्षातत्त्वे ।

अर्थ—दीक्षातत्त्वमें लिखा है कि—शुक्लपक्षमें वा कृष्णपक्षमें दीक्षाग्रहण करनेसे सुख होता है. पूर्णिमा, पञ्चमी, द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदशी और दशमी तिथिमें दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये ॥ १६ ॥

पञ्चाङ्गशुद्धिदिवसे सोदये शशितारयोः ।

गुरुशुक्रोदये शुद्धलगे द्वादशशोधिते । (✽)

चन्द्रातारानुकूल्ये च शस्यते सर्वकर्म च ॥ १७ ॥

इति दीक्षातत्त्वे ।

अर्थ—दीक्षातत्त्वमें लिखा है कि—तिथि, वार, नक्षत्र, करण, योग और चन्द्रमा

(१) 'गुरौ रवौ शनी सोमे कर्त्तव्यं बुधशुक्रयोः' । इति पाठान्तरम् ।

(२) 'अश्विनी भरणी स्वाति' इति पाठान्तरम् ।

(३) 'ज्येष्ठोत्तराद्विजयोश्चैव' इत्यपि दीक्षातत्त्वे पाठान्तरम् ।

(४) पञ्चाङ्गशुद्धिदिवसे तिथिवारनक्षत्रकरणयोगशुद्धिदिवसे । तथा च महाकपिल पञ्चरात्रम् । एव नक्षत्रातिथ्यादी करणे योगवासरे । मन्त्रोपदेशो गुरुणा साधकस्य शुभा-
वहः । सोदये शशितारयोरिति जन्मचन्द्रायतारयोरानुकूल्यसहिते गुरुशुक्रोदये गुरुशु-
क्रान्तसप्तमि एतत्तु समयशुद्धान्तरोपलक्षणम् द्वादश शोधिते द्वादशाशशोधिते इति
मलमासतत्त्वे स्मार्त्तनाभिहितम् ।

जन्मतारा शुद्ध होनेसे कालशुद्धिमें, शुद्ध लग्नके द्वादशांशमें सब कर्मही प्रशस्त हैं अतएव इसमें दीक्षाग्रहण करनी चाहिये ॥ १७ ॥

सूर्यग्रहणकालेन समानो नास्ति कश्चन ।

तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥ १८ ॥

न मासतिथिवारादिशोधनं सूर्यपर्वणि । (१)

ददातीष्टं गृहीतं यत्तस्मिन्काले गुरोर्नृषु ॥

सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनायासेन सेव्यतः ॥ १९ ॥

इति दीक्षातत्त्वे ।

अर्थ—दीक्षातत्त्वमें लिख है कि—सूर्य ग्रहणके समान दूसरा कोई समय नहीं है, इस समयमें जो कार्य करे उसका अनन्त फल होता है और संक्रान्तिमें भी मास, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण प्रभृतिका शुद्ध अशुद्ध विचार नहीं होता है उक्त समयमें गुरुके निकटसे इष्टमन्त्र ग्रहणकरनेसे अनायासमेंही सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ १८ ॥ १९ ॥

रोहिणीश्रवणार्द्रा च धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् ।

पुष्या शतभिषाकाँ (२) च दीक्षानक्षत्रमुच्यते ॥ २० ॥

इति धीरतन्त्रे ।

अर्थ—धीरतन्त्रमें लिखा है कि—रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य, शतभिषा और हस्तनक्षत्र दीक्षाविषयमें प्रशस्त हैं ॥ २० ॥

योगाश्च प्रीतिरायुष्मान्सांभाग्यः शोभनो धृतिः ।

वृद्धिर्धुवः सुकर्मा च साध्यः शुक्रश्च हर्षणः ॥ २१ ॥

वरीयांश्च शिवः सिद्धो ब्रह्म इन्द्रश्च षोडश ।

शुभानि करणानि स्युर्दीक्षायां तु विशेषतः ।

शकुन्यादीनि विष्टिश्च विशेषेण विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

इति रत्नावल्याम् ।

अर्थ—रत्नावलीग्रन्थमें लिखा है कि—प्रीति, आयुष्मान्, सांभाग्य, शोभन,

(१) “ अमा वे सोमवारे च भोमवारे चतुर्दशी । चतुर्थ्यद्वावारे च सूर्यपर्वशतेः समा ”

(२) अर्को हरतः ॥

धृति, वृद्धि, ध्रुव, सुकर्मा, साध्य, शुक्र, हर्षण, वरीयान्, सिद्ध, ब्रह्मा और ऐन्द्र इन सोलह योगोंमें, शकुनि, चतुष्पाद, नाग, किंस्तुघ्न और विष्टि भिन्न-करणमें दीक्षाकर्म प्रशस्त है ॥ २१ ॥ २२ ॥

कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां पूर्वपञ्चादिने तथा ॥ २३ ॥ ❀

अर्थ--कृष्णपक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी तिथि और प्रतिपदासे पञ्चमातिक तिथियोंमें दीक्षाकर्म प्रशस्त है ॥ २३ ॥

रविसंक्रमणे चैव सूर्यस्य ग्रहणे तथा ।

अत्र लग्नादिकं किञ्चिदविचार्य कथञ्चन ॥ २४ ॥

इति ज्ञानमालायाम् ।

अर्थ--ज्ञानमालामें लिखा है कि--संक्रान्तिमें और सूर्यग्रहणमें दीक्षाग्रहण करनेसे लग्नादि कुछ भी नहीं देखा जाता है ॥ २४ ॥

यद्वेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः ।

न तिथिर्न व्रतं होमो न स्नानं न जपक्रिया ।

दीक्षायां कारणं किन्तु स्वेच्छावासे तु सद्गुरो ॥ २५ ॥

इति तत्त्वसागरे ।

अर्थ--तत्त्वसागरमें लिखा है कि, जिस समय इच्छा होय वही गुरुकी आज्ञासे क्रमानुसार मन्त्रको ग्रहण करसक्ता है। तिथि, व्रत, होम, स्नान और जपादि कुछभी दीक्षामें कारण नहीं है, केवल सद्गुरुकी इच्छानुसारही मन्त्रग्रहण करना चाहिये ॥ २५ ॥

शिष्यत्रिजन्मदिवसे संप्राप्ते विपुवायने ।

सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे तन्तुदामनपर्वणोः (+)

मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत् ॥ २६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि--शिष्यके त्रिजन्मदिनमें, विपुवसंक्रान्तिमें और अयनसंक्रान्तिमें, महातीर्थमें, सूर्य और चन्द्र ग्रहणमें, श्रावणी पूर्णिमामें और चैत्रशुक्र चतुर्दशी तिथिमें मन्त्रग्रहण करनेसे मास, नक्षत्र, तिथ्यादिका विचार नहीं होता है ॥ २६ ॥

इति स्मार्तधृतदीक्षाकालः ।

(•) कृष्णपक्षे इति शेषः ।

(+) तन्तुपर्व परमेश्वरोपरि तद्दानति-ः श्रावणा पूर्णिमा । दामनपर्व्य मर्दनमञ्जन तिथिश्चैत्रशुक्र चतुर्दशीति स्मार्तनाभिहितम् ।

अथ तन्त्रसारोक्तदीक्षाकालकथनम् ।

तत्र मासनिर्णयः ।

मन्त्रारम्भस्तु चैत्रे स्यात्समस्तपुरुषार्थदः ।

वशाखे रत्नलाभः स्याज्ज्येष्ठे तु मरणं भवेत् ॥ २७ ॥

आषाढे (अ) बन्धुनाशः स्यात्पूर्णायुः श्रावणे भवेत् ।

प्रजानाशो भवेद्भाद्रे आश्विने रत्नसञ्चयः ॥ २८ ॥

कार्तिके मन्त्रासिद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथा भवेत् ।

पौषे तु शत्रुपीडा स्यान्माघे मेधाविवर्द्धनम् ।

फाल्गुने सर्वकामाः स्युर्मलमासं विवर्जयेत् ॥ २९ ॥ (आ)

इति गीतमीये ।

१. अर्थ-अब तन्त्रशास्त्रकी रीतिसे दीक्षा ग्रहण करनेके महीनोंको कहते हैं-गीतमी तन्त्रमें लिखा है कि, चैत्रके महीनेमें गोपालका मन्त्र ग्रहण करनेमें समस्त पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं वैशाखमें मन्त्र ग्रहण करनेसे रत्न प्राप्त होते हैं इसी प्रकार ज्येष्ठमें मन्त्रग्रहण करनेसे मृत्यु होता है, आषाढमें बान्धवोंका नाश होता है. आश्विनमें रत्नोंका सञ्चय होता है, कार्तिकमें और अग्रहायणमें मन्त्रासिद्धि होजाती है, पौषमें शत्रुद्वारा पीडा होती है, माघमें मेधाकी वृद्धि होती है और फाल्गुनके महीनेमें मन्त्रके ग्रहणकरनेसे सम्पूर्ण कामना पूर्ण होती है, किन्तु मलमासके महीनेमें मन्त्रको ग्रहण न करना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

अपिच ।

मन्त्राद्यारम्भणं मेघे धनधान्यप्रदं भवत् ।

वृषे मरणमाप्नोति मिथुनेऽपत्यनाशनम् ॥ ३० ॥

कर्कटे सर्वसिद्धिः स्यात्सिंहे मेधाविनाशनम् ।

कन्या लक्ष्मीप्रदा नित्यं तुलायां सर्वसिद्धयः ॥ ३१ ॥

(अ) 'ज्येष्ठे मृत्युप्रदा चैव आषाढे सुखसम्पदः' इति योगिनीहृदयात् आषाढे दीक्षाग्रहणे निन्दा श्रीविद्यायां नास्ति ।

(आ) चैत्रे तु गोपालविषय गीतमीयोक्तत्वात् यथा " मधुमासे भवेद्दीक्षा दुःखाय मरणाय च " इति वचनात्प्रान्यत्र । अत्र च मासः सौर एव 'सोरे मासि शुभा दीक्षा न चान्द्रे न तारके' इति गीतमीयात् ।

वृश्चिके स्वर्णलाभः स्याद्वनुमानविनाशकः ।

मकरः पुण्यदः प्रोक्तः कुम्भो धनसमृद्धिदः ।

मीनो दुःखप्रदो नित्यमेवं मासविधिक्रमः ॥ ३२ ॥

इति वैशम्पायनसंहितायाम् ।

अथ-वैशम्पायन संहितामें लिखा है कि-वैशाखमें मंत्रग्रहण करनेसे धनधान्यका लाभ होता है, इसी प्रकार ज्येष्ठमें मृत्यु होती है-आषाढमें सन्ततिका नाश होता है-श्रावणमें सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, भाद्रपदमें मेधाका नाश होता है, श्रावणमें दीर्घायु होती है, भाद्रमें सन्ततिका नाश होता है आश्विनमें लक्ष्मीकी वृद्धि होती है, कार्तिकमें सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, मकरमें स्वर्णलाभ होता है, पौषमें मानहानि होती है, माघमें पुण्यका सञ्चय होता है, फाल्गुनमें धन मिलता है और चैत्रके महीनेमें मन्त्रग्रहण करनेसे सर्वदा दुःख भागी होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अथ दीक्षायास्तिथिनिर्णयः ।

प्रतिपदि कृता दाक्षा ज्ञानकाशकरी मता ।

प्रतिपत्तिर्द्वितीयायां (१) तृतीयायां शुचिर्भवेत् ॥ ३३ ॥

चतुर्थ्यां वित्तनाशः स्यात्पञ्चम्यां बुद्धिवर्धनम् ।

षष्ठ्यां ज्ञानक्षयं सौख्यं लभते सप्तमीदिने ॥ ३४ ॥

अष्टम्यां बुद्धिनाशः स्यान्नवम्यां वपुषः क्षयः ।

दशम्यां राजसौभाग्यमेकादश्यां शुचिर्भवेत् ॥ ३५ ॥

द्वादश्यां सर्वांसिद्धिः स्यान्नयादश्यां दरिद्रता ।

तिर्यग्योनिश्चतुर्दश्यां शनिर्मासावसानके ॥ ३६ ॥

पक्षान्ते धर्मवृद्धिः स्यादस्वाध्यायं (२) विवर्जयेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ-अथ दीक्षाका तिथिनिर्णय कहते हैं-प्रतिपत्ति तिथिमें मन्त्रग्रहण करनेसे ज्ञानका नाश होता है, इसी प्रकार द्वितीयां प्रतिपत्ति (लाभ) होता है, तृतीयां पवित्रता प्राप्त होती है, चतुर्थीमें अयका नाश होता है, पञ्चमीमें बुद्धि बढ़ती है षष्ठीमें ज्ञानका नाश होता है सप्तमीमें सुख प्राप्त होता है, अष्टमीमें बुद्धिका नाश होता

(१) द्वितीयायां नवेऽज्ञानम् इत्यपि पाठः ।

(२) “सन्ध्यागर्जितनिर्घोष भक्कम्पोल्कानिपातने । एतानन्याश्च दिग्साभ्युत्थान-
न्परिषर्जयेत् ॥”

है नवमीमें देहका नाश होता है, दशमीमें राजसौभाग्य प्राप्ति होती है, एकादशीमें पवित्रता प्राप्त होती है, द्वादशीमें सर्व सिद्धियां करतलगत होजाती हैं, त्रयोदशीमें दरिद्रता प्राप्त होती है, चतुर्दशीमें तिर्यग्योनि प्राप्त होती है, अमावास्यामें नाश होजाता है और पूर्णिमातिथिमें मन्त्रग्रहणकरनेसे धर्मकी वृद्धि होती है, किन्तु उक्त तिथि यदि मासविशेषमें वा अन्य किसी कारणसे अस्वाध्यायमें निन्दित होय तो उसमें मन्त्रग्रहण न करना चाहिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अपिच ।

द्वितीया पञ्चमी चैव षष्ठी चैव विशेषतः । (क)

द्वादश्यामपि कर्त्तव्यं त्रयोदश्यामथापि वा ॥ ३८ ॥

इति रामार्चनचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ-द्वितीया, पञ्चमी, षष्ठी, द्वादशी और त्रयोदशी तिथिमें मन्त्रग्रहण करे किन्तु इनके मध्यमें विशेष यही है कि, षष्ठी और त्रयोदशी तिथि विष्णुक मन्त्र-ग्रहण करनेमेंही अशस्त है, इस प्रकार रामार्चनचन्द्रिकामें लिखा है ॥ ३८ ॥

अन्यच्च ।

पञ्चमी सप्तमी षष्ठी द्वितीया पूर्णिमा सिता ।

त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा ॥ ३९ ॥

इति सनत्कुमारतन्त्रे ।

अर्थ-सनत्कुमारतन्त्रमें लिखा है कि, पञ्चमी, सप्तमी, षष्ठी, द्वितीया, पूर्णिमा और शुक्लपक्षकी त्रयोदशी और दशमी तिथिमें मन्त्रग्रहण करना चाहिये उक्त समस्त तिथियोंमें मन्त्रग्रहण करनेसे सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण होती हैं ॥ ३९ ॥

अपरञ्च ।

चतुर्थी पञ्चमी चैव चतुर्दश्यष्टमी तथा ।

तिथयः शुभदाः प्रोक्ता दीक्षाग्रहणकर्मणि ॥ ४० ॥ (ख)

इति तन्त्रान्तरे ।

अर्थ-तन्त्रान्तरमें लिखा है कि-चतुर्थी, पञ्चमी, चतुर्दशी और अष्टमी तिथि दीक्षाविषयमें शुभदायक होती हैं, किन्तु इनके मध्यमें विशेष यही है कि, चतुर्दशी

(क) इति यत् षष्ठीत्रयोदशीविधानं तद्विष्णुविषयं रामार्चनचन्द्रिकाभूतत्वात् । इति कृष्णानन्दः ।

(ख) अत्र वचने चतुर्दश्यष्टमीति शक्तिविषयश्चतुर्थी तु गणेशविषय तत्सत्त्वोक्तत्वात् । इति तन्त्रसारे कृष्णानन्दः ॥

और अष्टमी तिथि शक्तिदीक्षामें प्रशस्त हैं और चतुर्थी तिथिमें गणेशका मन्त्र-
ग्रहण करनेसे शुभफल प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

प्रकारान्तरः ।

शुक्लपक्षस्य दशमी सप्तमी च विशेषतः ।

निन्द्या सदैव पष्ठी स्यादिति शैवागमान्तरे ॥ ४१ ॥

अर्थ-शुक्लपक्षकी दशमी, सप्तमी और पष्ठी तिथि दीक्षाविषयमें निन्दित हैं
इस प्रकार शैवागममें लिखा है अतः एवं इन सब तिथियोंमें शिवमन्त्र ग्रहण न
करना चाहिये ॥ ४१ ॥

अथ दीक्षायाः वारनिर्णयः ।

रविवारे भवेद्वित्तं सोमे शान्तिर्भवेत्किल ।

आयुरङ्गारके हन्ति तत्र दीक्षां विवर्जयेत् ॥ ४२ ॥

बुधे सौन्दर्यमाप्नोति ज्ञान स्याच्च बृहस्पतो ।

शुके सौभाग्यमाप्नोति यशोहानीः शनैश्चरे ॥ ४३ ॥

इति तन्त्रान्तरे ।

अर्थ-दीक्षाके वार कहते हैं-तन्त्रान्तरमें लिखा है कि, रविवारमें मन्त्रग्रहण
करनेसे धन प्राप्त होता है, इसी प्रकार सोमवारमें शान्ति प्राप्त होती है, मङ्गलवारमें
आयुका नाश होता है, बुधवारमें सौन्दर्य प्राप्त होता है, बृहस्पतिवारमें ज्ञान प्राप्त
होता है, शुक्रवारमें सौभाग्यकी प्राप्ति होती है और शनिवारमें मन्त्रग्रहण करनेसे
यशकी हानि होती है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ दीक्षायाः नक्षत्रनिर्णयः ।

अश्विन्यां सुखमाप्नोति भरण्यां मरणं ध्रुवम् ॥

कृत्तिकायां भवेद्दुःखी रोहिण्यां वाक्पातिर्भवेत् ॥ ४४ ॥

मृगशीर्षे सुखावाप्तिरार्द्रायां बन्धुनाशनम् ।

पुनर्वसौ धनाढ्यः स्यात्पुष्ये शत्रुविनाशनम् ॥ ४५ ॥

आश्लेषायां भवेन्मृत्युर्मघायां दुःखमोचनम् ।

सौन्दर्यं पूर्वफाल्गुन्यां प्राप्नोति च न संशयः ॥ ४६ ॥

ज्ञानं चोत्तरफाल्गुन्यां हस्तायाश्च धनी भवेत् ।

चित्रायां ज्ञानासिद्धिः स्यात्स्वात्यां शत्रुविनाशनम् ॥ ४७ ॥

विशाखायां सुखं चानुराधायां वन्धुवर्द्धनम् ।

ज्येष्ठायां सुतहानिः स्यान्मूलायां कीर्तिवर्द्धनम् ॥ ४८ ॥

पूर्वाषाढोत्तराषाढे भवेतां कीर्तिदायिके ।

श्रवणायां भवेदुःखी धनिष्ठायां दरिद्रता ॥ ४९ ॥

बुद्धिः शतभिषायां स्यात्पूर्वभाद्रे सुखी भवेत् ।

सौख्यञ्चोत्तरभाद्रे च रेवत्यां कीर्तिवर्धनम् ॥ ५० ॥

अर्थ—अब दक्षिणे नक्षत्र कहते हैं—अश्विनी नक्षत्रमें मन्त्रग्रहण करनेसे सुख प्राप्त होता है इसी प्रकार भरणीमें मृत्यु होती है, कृत्तिकामें दुःख होता है, रोहिणीमें बृहस्पतिके दुःख होता है, मृगशिरमें सुख होता है, आर्द्रांमें बुद्धिका नाश होता है, पुनर्वसुमें धन प्राप्त होता है, पुष्यमें शत्रुओंका नाश होता है, आश्लेषांमें मृत्यु होती है मघामें दुःखकी शान्ति होती है, पूर्वाफाल्गुनीमें सौंदर्यलाभ होता है, उत्तराफाल्गुनीमें ज्ञानका उदय होता है, हस्तमें धनप्राप्ति होती है चित्रामें ज्ञानकी सिद्धि होती है, स्वातिमें शत्रुओंका नाश होता है विशाखामें सुख प्राप्त होता है, अनुराधामें बान्धवोंकी वृद्धि होती है. ज्येष्ठामें सुतकी हानि होती है, मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढामें कीर्तिकी वृद्धि होती है, श्रवणमें दुःख होता है, धनिष्ठामें दरिद्रता प्राप्त होती है, शतभिषामें बुद्धिकी वृद्धि होती है पूर्वाभाद्रपदामें और उत्तराभाद्रपदामें सुख प्राप्त होता है और रेवती नक्षत्रमें मन्त्र ग्रहण करनेसे प्रतिष्ठा बढ़ती है ॥ ४४-५० ॥

अपिच ।

आर्द्रायां कृत्तिकायाञ्च मन्त्रारम्भः प्रशस्यते ।

यदीशस्य कृशानोर्वा मन्त्रारम्भौ यथाक्रमात् ॥ ५१ ॥

अर्थ—आर्द्रा और कृत्तिका नक्षत्रमें मन्त्रको ग्रहण न करै, किन्तु आर्द्रा नक्षत्रमें शिवमन्त्र और कृत्तिकानक्षत्रमें अग्निके मन्त्रको ग्रहण करना चाहिये ॥५१॥

अपरञ्च ।

अश्विनीभरणीस्वतिविशाखाहस्तभेषु च ।

ज्येष्ठोत्तरात्रये चैवं कुर्यान्मन्त्राभिषेचनम् ॥ ५२ ॥ (×)

अर्थ—अश्विनी, भरणी, स्वाति, विशाखा, हस्त, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरा-

(+) इति ज्येष्ठा भरण्योर्विधानं तदगस्त्यसहितोक्तत्वात् ।

पौषे च नवमा शुक्ला माघे शुक्ला चतुर्थिका ।

फाल्गुने नवमा (क) शुक्ला चैत्रे कामचतुर्दशी ॥६२॥ (ख)

इति रत्नावल्याम् ।

अर्थ—अब निषिद्ध मासादिमें तिथिविशेषकी प्रशस्तता कहते हैं—भादोंकी पष्ठी तिथि, आश्विनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी, अग्रहायणके शुक्लपक्षकी तृतीया, पौषकी शुक्लनवमी, माघके शुक्लपक्षकी चतुर्थी, फाल्गुनके शुक्लपक्षकी नवमी और चैत्रमासके शुक्लपक्षकी (काम) चतुर्दशी तिथि, मन्त्रग्रहणमें प्रशस्त हैं अर्थात् उक्त सब तिथियोंमें मासादिका विचार नहीं होता है ॥ ६१॥ ६२ ॥

अन्यथा ।

“वैशाखे चाक्षया चैव ज्येष्ठे दशहरा तिथिः ।

आषाढे नवमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥ ६३ ॥

एतानि देवपर्वाणि तीर्थकोटिफलं लभेत् ।

अत्र दीक्षा प्रकर्तव्या न मासञ्च परीक्षयेत् ॥ ६४ ॥

न वारं न च नक्षत्रं न तिथ्यादिकदूषणम् ।

न योगकरणं चैव शंकरेणेति भाषितम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—अब देवपर्वको वर्णन करते हैं—वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, (अक्षय्य तृतीया) ज्येष्ठका दशहरा, (शुक्लपक्षकी दशमी) आषाढके शुक्लपक्षकी नवमी और श्रावणके कृष्णपक्षकी पञ्चमी इन (नागपञ्चमी) सब तिथियोंको देवपर्व कहते हैं, उक्त सब तिथियोंमें पुण्यकर्म करनेसे कीर्त्तिकीर्त्तिका फल प्राप्त होता है और यह सब तिथियें दीक्षाविषयमें अतिप्रशस्त हैं इनमें दीक्षाग्रहण करनेसे मासपरीक्षा नहीं होती है और वार, नक्षत्र, तिथि, योग और करण इनके विचार करनेकी भी प्रयोजन नहीं होता है इस प्रकार देवादिदेव महादेवजीने कहा है ॥ ६३-६५ ॥

चैत्रे त्रयोदशी शुक्ला वैशाखैकादशी सिता ।

ज्येष्ठे चतुर्दशी कृष्णा आषाढे नागपञ्चमी ॥ ६६ ॥

श्रावणैकादशी भाद्रे रोहिणी सहिताष्टमी ।

आश्विने च महापुण्या महाष्टम्यप्यभीष्टदा ॥ ६७ ॥

(क) फाल्गुने दशमी शुक्लोति पाठः ।

(ख) चैत्रे कामत्रयोदशी इति कचित्पाठः ।

कार्तिके नवमी शुक्ल मार्गशीर्षे तथा सिता ॥

पष्ठी चतुर्दशी पौषे माघेऽप्येकादशी सिता ॥

फाल्गुने च सिता पष्ठी चेति कालविनिर्णयः ॥ ६८ ॥

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी (कामत्रयोदशी) वैशाखके शुक्लपक्षकी एकादशी, ज्येष्ठके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, आपाढकी नागपञ्चमी (कृष्णपक्षकी पञ्चमी) श्रावणकी एकादशी, भाद्रोंकी रोहिणी युक्त अष्टमी (जन्माष्टमी) आश्विनकी महाष्टमी (शुक्लपक्षकी अष्टमी) कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी (जगद्धात्री नवमी) अग्रहायणके शुक्लपक्षकी पष्ठी, पौषकी चतुर्दशी, माघके शुक्लपक्षकी एकादशी और फाल्गुनके शुक्लपक्षकी पष्ठी यह सब तिथियें दीक्षाविषयमें प्रशस्त हैं और इनमें दीक्षा ग्रहण करनेसे मास तिथि और नक्षत्रादिके विचार करनेकी आवश्यकता नहीं होती है ॥ ६६॥६८ ॥

अपरञ्च ।

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

रविसंक्रातिदिवसे युगाद्यायां सुरेश्वरि ।

मन्वन्तरासु सर्वासु महापूजादिने तथा ॥ ६९ ॥

इति योगिनीतन्त्रे ।

अर्थ-योगिनीतन्त्रमें महादेवजीने पार्वतीके प्रति कहा है कि, हे सुरेश्वरि ! दाक्षिणायन और उत्तरायणकी संक्रान्तिमें, विषुव और जलविषुव संक्रान्तिमें, चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें, अन्य साधारण संक्रान्तिमें, युगाद्यामें, सब मन्वन्तरोंमें और महाष्टमी और महानवमीमें दीक्षाग्रहण अतिपुनीत होता है, इसमें भी मास, तिथि, नक्षत्रादिका विचार नहीं होता है, परन्तु साधारण संक्रान्तिसे अयन और विषुव संक्रान्तिमें मन्त्रग्रहण अधिक पुनीत होता है ॥ ६९ ॥

अपिच ।

निन्दितेष्वपि कालेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे तु वा ।

सूर्यग्रहणकालस्य समानो नास्तिभूतले ॥ ७० ॥

विशेषतो महादेवि दीक्षाग्रहणकर्माणि ।

तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ-शिवजीने कहाहै कि, हे देवि ! निन्दित कालमें भी ग्रहणके समान

पादा और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें मन्त्रग्रहण करना चाहिये, इस वचनमें जो ज्येष्ठा और भरणी नक्षत्रमें मन्त्रग्रहण करनेका विधान है उसको अगस्त्यसंहितोक्त जानना चाहिये ॥ ५२ ॥

अथ दीक्षायाः योगकथनम् ।

शुभः सिद्धस्तथायुष्मान्ध्रुवयोगस्ततः परम् ।

प्रीतिः सौभाग्ययोगश्च वृद्धियोगस्ततः परम् ।

हर्षणश्च तथा योगाः सर्वतन्त्रे शुभावहाः ॥ ५३ ॥

इति विश्वसारतन्त्रे ।

अर्थ—विश्वसारतन्त्रमें लिखा है कि—शुभ, सिद्ध, आयुष्मान्, ध्रुव, प्रीति सौभाग्य वृद्धि और हर्षण इन सब योगोंमें दीक्षा प्रशस्त है ॥ ५३ ॥

अथ दीक्षायाः करणनिर्णयः ।

वववालवकौलवतैतिल (, १) स्तदनन्तरम् ।

करणानि शुभान्येव सर्वतन्त्रेषु भाषितम् ॥ ५४ ॥

अथ—अथ दीक्षाविषयमें प्रशस्तकरण कहते हैं—वव, बालव, कौलव, तैतिल यह सब दीक्षाविषयमें प्रशस्त हैं किंहीं २ आचार्यके मतसे गर और वाणिज्य करण भी दीक्षामें प्रशस्त हैं ॥ ५४ ॥

अथ दीक्षायाः लग्ननिर्णयः ।

वृषे सिंहे च कन्यायां धनुर्मीनाख्यलग्ने ।

चन्द्रतारानुकूल्ये च कुर्याद्दीक्षाप्रवर्तनम् ॥ ५५ ॥

अथ—अथ दीक्षामें प्रशस्तलग्नोंको कहते हैं—वृष, सिंह, कन्या, धनु और मीनलग्ने चन्द्रमा और ताराके शुद्ध होनेसे दीक्षाग्रहण करना चाहिये ॥ ५५ ॥

अपिच ।

स्थिरलग्नं विष्णुमन्त्रे शिवमन्त्रे चरं शुभम् ।

द्विस्वभावगतं लग्नं शक्तिमन्त्रे प्रशस्यते ॥ ५६ ॥

अर्थ—अथ लग्नसम्बन्धमें विशेष कहते हैं वृष, सिंह वृश्चिक और कुम्भ लग्ने विष्णुके मन्त्रको ग्रहण करे। मेष, कर्क तुला और मकर इन सब लग्नोंमें

(१) गत्वरजस्तदनन्तरम् । इति कश्चित्पुस्तके पाठः ।

कार्तिके नवमी शुक्ला मार्गशीर्षे तथा सिता ॥

पष्ठी चतुर्दशी पौषे माघेऽप्येकादशी सिता ॥

फाल्गुने च सिता पष्ठी चेति कालविनिर्णयः ॥ ६८ ॥

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी (कामत्रयो-
दशी) वैशाखके शुक्लपक्षकी एकादशी, ज्येष्ठके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, आषाढकी
नामपञ्चमी (कृष्णपक्षकी पञ्चमी) श्रावणकी एकादशी, भाद्रपदीकी रोहिणी
युक्त अष्टमी (जन्माष्टमी) आश्विनकी महाष्टमी (शुक्लपक्षकी अष्टमी) कार्ति-
कके शुक्लपक्षकी नवमी (जगद्धात्री नवमी) अग्रहायणके शुक्लपक्षकी पष्ठी,
पौषकी चतुर्दशी, माघके शुक्लपक्षकी एकादशी और फाल्गुनके शुक्लपक्षकी पष्ठी
यह सब तिथिमें दीक्षाविषयमें प्रशस्त हैं और इनमें दीक्षा ग्रहण करनेसे मास
तिथि और नक्षत्रादिके विचार करनेकी आवश्यकता नहीं होती है ॥ ६६॥६८ ॥

अपरञ्च ।

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

रविसंक्रातिदिवसे युगाद्यायां सुरेश्वरि ।

मन्वन्तरासु सर्वासु महापूजादिने तथा ॥ ६९ ॥

इति योगिनीतन्त्रे ।

अर्थ—योगिनीतन्त्रमें महादेवजीने पार्वतीके प्रति कहा है कि, हे सुरेश्वरि !
दक्षिणायन और उत्तरायणकी संक्रान्तिमें, विषुव और जलविषुव संक्रान्तिमें,
चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें, अन्य साधारण संक्रान्तिमें, युगाद्यामें, सब मन्वन्त-
रोंमें और महाष्टमी और महानवमीमें दीक्षाग्रहण अतिपुनीत होता है, इसमें भी
मास, तिथि, नक्षत्रादिका विचार नहीं होता है, परन्तु साधारण संक्रान्तिसे
अयन और विषुव संक्रान्तिमें मन्त्रग्रहण अधिक पुनीत होता है ॥ ६९ ॥

अपिच ।

निन्दितेष्वपि कालेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे तु वा ।

सूर्यग्रहणकालस्य समानो नास्तिभूतले ॥ ७० ॥

विशेषतो महादेवि दीक्षाग्रहणकर्माणि ।

तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ—शिवजीने कहा है कि, हे देवि ! निन्दित कालमें भी ग्रहणके समान

पौषे च नवमा शुक्ला माघे शुक्ला चतुर्थिका ।

फाल्गुने नवमा (क) शुक्ला चैत्रे कामचतुर्दशी ॥६२॥ (ख)

इति रत्नावल्याम् ।

अर्थ—अब निषिद्ध मासादिमें तिथिविशेषकी प्रशस्तता कहते हैं—भादोंकी पष्ठी तिथि, आश्विनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी, अग्रहायणके शुक्लपक्षकी तृतीया, पौषकी शुक्लनवमी, माघके शुक्लपक्षकी चतुर्थी, फाल्गुनके शुक्लपक्षकी नवमी और चैत्रमासके शुक्लपक्षकी (काम) चतुर्दशी तिथि, मन्त्रग्रहणमें प्रशस्त हैं अर्थात् उक्त सब तिथियोंमें मासादिका विचार नहीं होता है ॥ ६१॥ ६२ ॥

अन्यत्र ।

“वैशाखे चाक्षया चैव ज्येष्ठे दशहरा तिथिः ।

आषाढे नवमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥ ६३ ॥

एतानि देवपर्वाणि तीर्थकोटिफलं लभेत् ।

अत्र दीक्षा प्रकर्तव्या न मासश्च परीक्षयेत् ॥ ६४ ॥

न वारं न च नक्षत्रं न तिथ्यादिकदूषणम् ।

न योगकरणं चैव शंकरेणेति भाषितम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—अब देवपर्वको वर्णन करते हैं—वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, (अक्षय्य तृतीया) ज्येष्ठका दशहरा, (शुक्लपक्षकी दशमी) आषाढके शुक्लपक्षकी नवमी और श्रावणके कृष्णपक्षकी पञ्चमी इन (नागपञ्चमी) सब तिथियोंको देवपर्व कहते हैं, उक्त सब तिथियोंमें पुण्यकर्म करनेसे कोटित्थियोंका फल प्राप्त होता है और यह सब तिथियें दीक्षाविषयमें आतिप्रशस्त हैं इनमें दीक्षाग्रहण करनेसे मासपरीक्षा नहीं होती है और वार, नक्षत्र, तिथि, योग और करण इनके विचार करनेका भी प्रयोजन नहीं होता है इस प्रकार देवादिदेव महादेवजीने कहा है ॥६३॥ ६४॥

चैत्रे त्रयोदशी शुक्ला वैशाखैकादशी सिता ।

ज्येष्ठे चतुर्दशी कृष्णा आषाढे नागपञ्चमी ॥ ६६ ॥

श्रावणैकादशी भाद्रे रोहिणी सहिताष्टमी ।

आश्विने च महापुण्या महाष्टम्यप्यभीष्टदा ॥ ६७ ॥

(क) फाल्गुने दशमी शुक्लोति पाठः ।

(ख) चैत्रे कामत्रयोदशी इति कचित्पाठः ।

कार्तिके नवमी शुक्ल मार्गशीर्षे तथा सिता ॥

पष्ठी चतुर्दशी पौषे माघेऽप्येकादशी सिता ॥

फाल्गुने च सिता पष्ठी चेति कालविनिर्णयः ॥ ६८ ॥

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी (कामत्रयोदशी) वैशाखके शुक्लपक्षकी एकादशी, ज्येष्ठके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, आषाढकी नागपञ्चमी (कृष्णपक्षकी पञ्चमी) श्रावणकी एकादशी, भादोंकी रोहिणी युक्त अष्टमी (जन्माष्टमी) आश्विनकी महाष्टमी (शुक्लपक्षकी अष्टमी) कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी (जगद्धात्री नवमी) अग्रहायणके शुक्लपक्षकी पष्ठी, पौषकी चतुर्दशी, माघके शुक्लपक्षकी एकादशी और फाल्गुनके शुक्लपक्षकी पष्ठी यह सब तिथियें दीक्षाविषयमें प्रशस्त हैं और इनमें दीक्षा ग्रहण करनेसे मास तिथि और नक्षत्रादिके विचार करनेकी आवश्यकता नहीं होती है ॥ ६६॥६८ ॥

अपरञ्च ।

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

रविसंक्रातिदिवसे युगाद्यायां सुरेश्वरि ।

मन्वन्तरासु सर्वासु महापूजादिने तथा ॥ ६९ ॥

इति योगिनीतन्त्रे ।

अर्थ-योगिनीतन्त्रमें महादेवजीने पार्वतीके प्रति कहा है कि, हे सुरेश्वरि ! दाक्षिणायन और उत्तरायणकी संक्रान्तिमें, विषुव और जलविषुव संक्रान्तिमें, चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें, अन्य साधारण संक्रान्तिमें, युगाद्यामें, सब मन्वन्तरोंमें और महाष्टमी और महानवमीमें दीक्षाग्रहण अतिपुनीत होता है, इसमें भी मास, तिथि, नक्षत्रादिका विचार नहीं होता है, परन्तु साधारण संक्रान्तिसे अयन और विषुव संक्रान्तिमें मन्त्रग्रहण अधिक पुनीत होता है ॥ ६९ ॥

अपिच ।

निन्दितेष्वपि कालेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे तु वा ।

सूर्यग्रहणकालस्य समानो नास्तिभूतले ॥ ७० ॥

विशेषतो महादेवि दीक्षाग्रहणकर्मणि ।

तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ-शिवजीने कहा है कि, हे देवि ! निन्दित कालमें भी ग्रहणके समान

दूसरा काल मन्त्रग्रहणमें नहीं है, विशेषकरके दीक्षामें सूर्यग्रहणके समान पुण्यकाल पृथिवीमें और नहीं है, सूर्यग्रहणके समय जिस किसी पुण्यकर्मका अनुष्ठान किया जाय तो उसमें अनन्तफल प्राप्त होता है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अन्यच्च ।

रविसंक्रमणे चैव सूर्यस्य ग्रहणे तथा ।

तत्र लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्य कथञ्चन ॥ ७२ ॥

अर्थ—संक्रान्तिके पुण्यकालसमयमें और सूर्यग्रहणके कालमें दीक्षाग्रहण करनेसे लग्नादि कुछभी विचार नहीं होता है ॥ ७२ ॥

अपरञ्च ।

रविसंक्रमणे चैव नान्यदन्वेष्टितं भवेत् ।

न वारतिथिमासादिशोधनं सूर्यपर्वणि ॥ ७३ ॥

अर्थ—संक्रान्तिके पुण्यकालमें और ग्रहणसमयके कालमें मन्त्र ग्रहण करनेसे मास तिथि और वारादिके शुभाशुभ देखनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ७३ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

देव्याबोधं समारभ्य यावत्स्यान्नवमीतिथिः ।

कृते तासु शुभा दीक्षा सर्वाभीष्टफलप्रदा ॥ ७४ ॥

इति विष्णुयामले ।

अर्थ—विष्णुयामलमें लिखा है कि, भगवती दुर्गा देवीके बोधनसे महानवमीतक जो पन्द्रह तिथि हैं उनमें दीक्षाग्रहण करनेसे सम्पूर्ण अभीष्टसिद्धि होती है ॥ ७४ ॥

तत्रापि शावरीपूजा यत्र देवि गृहे गृहे ।

तत्र दीक्षा प्रकर्तव्या मासक्षादीन्न शोधयेत् ॥ ७५ ॥

इति विष्णुयामले ।

अर्थ—विष्णुयामलमें लिखा है कि, जिस समयमें घर २ के प्रती भगवती शारदा देवीका पूजन होवे उस समयमें भी दीक्षाग्रहणकरनेसे मास, नक्षत्र और तिथ्यादिका विचार नहीं होता है ॥ ७५ ॥

अन्यच्च ।

शुक्लपक्षे विशेषेण तत्रापि तिथिरष्टमी ।

बोधने चैव दुर्गायाः कालाकालं न शोधयेत् ॥ ७६ ॥

इति रुद्रयामले ।

अर्थ—रुद्रयामलमें लिखा है कि, भगवती दुर्गादेवीके बोधनमें विशेष करके

महाष्टमी तिथिमें मन्त्रग्रहण करनेसे कालाकालका विचार नहीं होता है॥ ७६ ॥

अपरञ्च ।

न कुर्याच्छाक्तिको दीक्षामुपरक्ते विभावसौ ।

न कुर्याद्वैष्णवीन्तान्तु यदि चन्द्रमसो ग्रहः ॥७७॥ (क)

इति सूत्र्यामले ।

अर्थ-रुद्रयामलमें लिखा है कि, सूर्यग्रहणमें शक्तिमन्त्र न ग्रहण करे और चन्द्रग्रहणमें विष्णुमन्त्रका निषेध है [किन्तु गौतमीयतन्त्रमें लिखा है कि, चन्द्रग्रहणमें और सूर्यग्रहणमें विष्णुका मन्त्र ग्रहणकरना चाहिये और योगिनी हृदयमें भी सूर्यग्रहणके समय शक्तिमन्त्रके ग्रहणकरनेको कहा है इस विरोधकी मीमांसा तन्त्रसारमें कृष्णानन्दमहाचार्यने इस प्रकार करी है कि, सूर्यग्रहणमें श्रीविद्याका मन्त्र ग्रहण करै और चन्द्रग्रहणमें गोपालमन्त्रका ग्रहणकरना चाहिये, इसके अतिरिक्तमें निषेधका सार्थक होता है ॥ ७७ ॥

सूर्यग्रहणे विशेषमाह ।

श्रीपराकालीबीजानि लोपादौर्गश्च यो मनुः ।

सूर्यस्योपग्रहे लब्धो नृणां श्रीप्रफलप्रदः ॥ ७८ ॥

अर्थ-मन्त्रग्रहणके विषयमें सूर्यग्रहणमें, विशेष कहते हैं, यथा-श्रीबीज, मायाबीज, कालीबीज लोपादुर्गाका मन्त्र यदि मान्यवशसे किसी मनुष्यको सूर्यग्रहणकालमें प्राप्त होय तब वह मन्त्र श्रीप्र फलदान करता है ॥ ७८ ॥

अथ तारादिविद्यायां विशेषः ।

दीक्षाकालं प्रवक्ष्यामि नीलतन्त्रानुसारतः ।

कृष्णपक्षस्य चाष्टम्यां शुभे लग्ने शुभे क्षणे ॥ ७९ ॥

पूर्वाभाद्रपदाशुके मित्रतारादिसंयुते ।

अथवा अनुरापायां रेवत्यां वा प्रशस्यते ॥ ८० ॥

अर्थ-अब तारादिविद्याकी दीक्षाविषयमें नीलतन्त्रोक्त लक्षण कहते हैं, कृष्ण-पक्षकी अष्टमी तिथिमें शुभलग्ने 'शुभ घटीमें' पूर्वाभाद्रपदा, अनुराधा, अथवा रेवती नक्षत्रमें मित्रादि ताराहोनेसे दीक्षा प्रशस्त है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

(क) एतच्च गोपालश्रीविद्येतरविषयम् । अन्येषु पुण्ययोगेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो-
रिति गौतमीयाद । सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषित भवेदिति योगिनीहृदयाच्च । इति
तन्त्रसारे कृष्णानन्देनोक्तम् ॥

अन्यच्च ।

जानीयाच्छोभनं कालं मन्त्रस्य ग्रहणं प्रति ।

इपे चैव विशेषेण कार्तिके च विशेषतः ॥ ८१ ॥

अर्थ-वचनान्तरमें कहा है कि, मन्त्रके ग्रहणविषयमें आश्विन और कार्तिक मासही अधिक प्रशस्त है ॥ ८१ ॥

सूर्यग्रहणसमकालकथनम् ।

अमावस्या सोमवारे भौमवारे चतुर्दशी ।

सप्तमी रविवारे च सूर्यग्रहणतैः समा ॥ ८२ ॥

अर्थ-अब सूर्यग्रहणके समानकाल कहते हैं-सोमवारमें अमावस तिथि मङ्गल-वारमें चतुर्दशी और रविवारमें सप्तमी तिथि होनेसे शत (१००) सूर्य ग्रहणके समान काल होता है ॥ ८२ ॥

अशोकाष्टम्यां विशेषमाह ।

अशोकाख्याष्टमी यत्र रामाख्या नवमी तथा ।

लग्ने वाप्यथवाऽलग्ने यत्र तत्र तिथावपि ॥ ८३ ॥

गुरोराज्ञानुसारेण दीक्षा कार्या विशेषतः ॥ ८४ ॥

इति विष्णुयामले ।

अर्थ-विष्णुयामलमें लिखा है कि, अशोकाष्टमी तिथि वा श्रीरामनवमी तिथिमें लग्नके शुद्ध होनेसे वा अशुद्ध होनेसे भी दीक्षाग्रहण की जाती है और विशेषकरके गुरुकी आज्ञानुसार हरेक तिथिमें दीक्षा हो सकती है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अन्यच्च ।

ग्रहणे च महातीर्थे नास्ति कालस्य निर्णयः ॥ ८५ ॥

इति योगिनीतन्त्रे ।

अर्थ-योगिनीतन्त्रमें लिखा है कि, महातीर्थमें और ग्रहणसमयमें कालाकालका विचार नहीं होता है ॥ ८५ ॥

अपिच ।

पुण्यतीर्थे कुरुक्षेत्रे देवीपीठचतुष्टये ।

प्रयागे श्रीगिरौ काश्यां कालाकालं न शोधयेत् ॥ ८६ ॥

इति यामले ।

अर्थ-यामलमें लिखा है कि, पुण्यतीर्थमें, कुरुक्षेत्रमें, महादेवीकी पीठचतुष्ट-

यमें, प्रयागमें, श्रीशैलपर्वतमें और काशीधाममें कालाकालका विचार नहीं होता है ॥ ८६ ॥

युगाद्यायां विशेषः ।

युगाद्यायां जन्मदिने विवाहदिवसे तथा ।

विषुवायनयोर्द्वन्द्वे नैव किञ्चिद्विचारयेत् ॥ ८७ ॥

इति समयातन्त्रे ।

अर्थ-समयातन्त्रमें लिखा है कि, चारों युगोंके आदिकी तिथिमें, जन्मदिनमें, विवाहके दिनमें, विषुवसंक्रान्ति और अयनसंक्रान्तिमें, मन्त्रादिके ग्रहणमें कुछ भी विचार नहीं होता है ॥ ८७ ॥

अकालादौ दीक्षानिषेधः ।

अस्तंगते दैत्यगुरौ शिशौ च वृद्धेऽथ बाले च गुरौ तथैव ।

भवेन्न दीक्षाग्रहणं शुभाय जीवातिचारे मलमाससंज्ञे ॥ ८८ ॥

इत्यागमार्णवे ।

अर्थ-आगमार्णवमें लिखा है कि, शुक्र, बुध वा बृहस्पतिके अस्त, वृद्ध अथवा बाल्य होनेसे और बृहस्पतिके वृद्धी होनेसे वा मलमासमें दीक्षाग्रहण न करना चाहिये ॥ ८८ ॥

अन्यथा ।

जीवे हरौ दैत्यगुरौ ससूर्ये केतूदमे भूचलनादिदोषे ।

अकालवृष्टौ जलदे सगर्जे दीक्षा भवेन्नैव च साधकानाम् ॥ ८९ (१) ॥

इत्यागमार्णवे ।

अर्थ-आगमार्णवमें लिखा है कि, बृहस्पति सिंहराशिमें स्थित होनेसे अथवा शुक्र वा सूर्यके साथ स्थित होनेसे, भूमकेतुके उदयमें, भूमिकम्पादिमें, अकालवृष्टिमें और सन्ध्यागर्जनमें वा अकालमें मेघके गर्जनेसे साधकको दीक्षाग्रहण न करनी चाहिये ॥ ८९ ॥

अकाले प्रातिप्रसवमाह ।

शुक्राऽस्ते यदि वा वृद्धौ गुर्वादित्यो भवेद्यादि ।

मेपवृश्चिकसिंहेषु यदा दोषो न विद्यते ॥ ९० ॥

इति वाराहीतन्त्रे ।

अर्थ-पूर्वोक्त अकालके प्रातिप्रसव कहते हैं-वाराहीतन्त्रमें लिखा है कि, मेप,

(१) एतत्सर्वं कालाशुद्धिप्रदर्शकम् । अशुद्धकालमुक्त्वा । “परोक्षारामयज्ञाश्च पुरश्चरणदीक्षणे” इत्यनेन ज्योतिषे दीक्षानिषेधदर्शनात् ।

चूष वा सिंहराशिमें शुक्र अस्त वा वृद्ध होनेसे और उक्त सब राशियोंमें शुक्रादित्ययोगके लिये अकाल नहीं होता है ॥ ९० ॥

अन्यच्च ।

श्रीगुरोर्दर्शनाद्देवि ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

न चात्र नियमं कुर्याद्दीक्षायाः कालदेशयोः ॥ ९१ ॥ (२)

इति यामले ।

अर्थ—यामलमें लिखा है कि, गुरुके दर्शन पानेसे, चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें दीक्षाका काल और देशका नियम प्रतिपालन न करनेसे भी दोष नहीं होता है ॥ ९१ ॥

अथ महाविद्याविषये विशेषफलकथनम् ।

महाविद्यासु सर्वासु कालादिविचारो नास्ति

तदुक्तं दश महाविद्यामधिकृत्य ।

कालादिशोधनं नास्ति न चामित्रादिदूषणम् ॥ ९२ ॥

इति मुण्डमालातन्त्रे ।

अर्थ—मुण्डमालातन्त्रमें लिखा है कि, दशमहाविद्याके मन्त्रग्रहणकरनेमें कालाकालकी न देखना चाहिये और अमित्रादिकाभी विचार न करना चाहिये ॥ ९२ ॥

अथ दशमहाविद्याकथनम् ।

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।

भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥ ९३ ॥

बगला सिद्धिविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका ।

एता दशमहाविद्याः सिद्धिविद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ९४ ॥

इति निरुत्तरतन्त्रे चामुण्डातन्त्रे च ।

अर्थ—अब दशमहाविद्याको वर्णन करते हैं, निरुत्तर और चामुण्डातन्त्रमें लिखा है कि, काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातङ्गी और कमला, इनकोही दशमहाविद्या और सिद्धिविद्या कहते हैं किन्तु इनके मध्यमें विशेष यही है कि, काली और ताराको महामहाविद्या और सिद्धिविद्या कहते हैं और बगलाको सिद्धसिद्धिविद्या और महाविद्यानामसे कहते हैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

(२) निषिद्धदेशमाह—“गयाया मात्सरस्त्रे विरजे चन्द्रप्रवर्ते । चट्टले च मतङ्गे च तथा कन्याश्रमेषु च । न गृहीयात्ततो दीक्षां तीर्थेष्वेतेषु पार्वति ” इति ।

नात्र कालविशुद्धिः स्यात्समयासमयादिकम् ।

न वारतिथिनक्षत्रं न योगः करणं तथा

सिद्धविद्यामहाविद्यायुगसेवाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ९५ ॥

इति निरुत्तरतन्त्रे ।

अर्थ-निरुत्तरतन्त्रमें लिखा है कि, अठारह महाविद्या सिद्धविद्या इत्यादिके मन्त्र ग्रहण करनेमें कालाकाल न देखना चाहिये, वार, तिथि और नक्षत्र देख-नेकीभी आवश्यकता नहीं और योगकरणादिके शुद्धाशुद्ध विचार करनेका प्रयो-जन नहीं है । किन्तु सिद्धविद्या और महाविद्याकी युगसेवा करनी चाहिये ॥ ९५ ॥

अष्टादशमहाविद्यामाह ।

काली तारा तथा छिन्ना मातङ्गी भुवनेश्वरी ।

अन्नपूर्णा तथा नित्या दुर्गा महिषमर्दिनी ॥ ९६ ॥

त्वरिता त्रिपुरा त्रिपुटा भैरवी बगला तथा ।

धूमावती तथा ज्ञेया कमला च सरस्वती ॥ ९७ ॥ ॥

जयदुर्गा तथा भद्रा तथा त्रिपुरसुन्दरी ।

अष्टादश महाविद्यास्तन्त्रादौ कथिताः प्रिये ॥ ९८ ॥

इति निरुत्तरतन्त्रे ।

अर्थ-अथ अष्टादश महाविद्याको कीर्त्तन करते हैं-निरुत्तरतन्त्रमें तदाशिव महादेवजीने स्वयं पार्वतीके प्रति कहा है कि, हे प्रिये ! काली, तारा, छिन्नमाता, मातङ्गी, भुवनेश्वरी, अन्नपूर्णा, नित्या, दुर्गा, महिषमर्दिनी, त्वरिता, त्रिपुरमै-रवी, त्रिपुटाभैरवी, बगला, धूमावती, कमला, सरस्वती, जयदुर्गा और त्रिपुर-सुन्दरी (पोटशी) इन अठारह महाविद्याओंको मैंने तुम्हारे निकट अन्यान्य तन्त्रमें भी कही हैं ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

गुरुकृपास्य दीक्षाकालः ।

शिष्यानाहूय गुरुणा कृपया दीयते यदि ।

तदा लग्नादिकं किञ्चित् विचार्य कथञ्चन ॥ ९९ ॥

इति विष्णुयामले ।

अर्थ-विष्णुयामलमें लिखा है कि, जिस किसी कालमें दीक्षाग्रहण करनेको कहा है गुरुदेव कृपाकर जिस समयमें शिष्यको मन्त्रग्रहण करावे उसी कालमें

वह मन्त्र शुभदायक होता है इसमें लग्नादि किसीका भी विचार न करना, चाहिये ॥ ९९ ॥

अपिच ।

सर्वे वारा ग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः ।

यस्मिन्नहनि सन्तुष्टो गुरुः सर्वे शुभावहाः ॥ १०० ॥

इति समयातन्त्रे ।

अर्थ—समयातन्त्रमें लिखा है कि, गुरुदेव प्रसन्न होकर जिस दिन शिष्यको मन्त्र प्रदान करे उसी समयमें वार, तिथि, ग्रह और नक्षत्रादि सभी शुभफल प्रदान करते हैं ॥ १०० ॥

इति तन्त्रशास्त्रोक्तदीक्षाकालकथनम् ।

अथ पुरश्चरणकालः ।

चैत्रे मास्यथवा कुर्याच्छुभक्षे गुरुशासनात् ।

द्वादश्यां शुक्लपक्षे च माघे मासि तत्तिथौ ।

आरभेदमलायां वै पुरश्चर्या सुसिद्धये ॥ १ ॥

इति गौतमीये ।

अर्थ—अथ पुरश्चरण करनेका समय कहते हैं—गौतमीयतन्त्रमें लिखा है कि चैत्रके महीनेमें, शुभ नक्षत्रमें, गुरुकी आज्ञानुसार अथवा वैशाखके महीनेकी शुक्लाद्वादशी तिथिमें गुरुकी आज्ञानुसार पुरश्चरणका आरम्भ करना चाहिये ॥ १ ॥

चन्द्रतारानुकूल्ये च शुक्लपक्षे शुभेऽहनि ।

आरभेन्मकरादौ च सुप्ते विष्णौ जपेन्नच ॥ २ ॥

इति वैशम्पायनसंहितायाम् ।

अर्थ—वैशम्पायनसंहितामें लिखा है कि, चन्द्रमा और ताराके शुद्ध होनेसे शुक्लपक्षमें शुभदिनमें माघसे आदि लेकर छः महीनेमें पुरश्चरणका आरम्भ करना चाहिये, किन्तु श्रीहरिके अयनकालमें पुरश्चरणका आरम्भ न करे ॥ २ ॥

चन्द्रतारानुकूल्ये च शुक्लपक्षे शुभेऽहनि ।

आरभेयुः पुरश्चर्यां हरौ सुप्ते न चाचरेत् ॥ ३ ॥

इति वाराहीतन्त्रे ।

अर्थ—वाराहीतन्त्रमें लिखा है कि, चन्द्रमा और ताराके शुभ होनेसे शुक्लपक्षमें, शुभ दिनमें, श्रीहरिके जाग्रतकालमें पुरश्चरणका आरम्भ करना चाहिये ॥ ३ ॥

अन्यच्च ।

कार्तिकाश्विनवैशाखमाघे वा मार्गशीर्षके ।

फाल्गुने श्रावणे दीक्षा पुरश्चर्या प्रशस्यते ॥ ४ ॥

इति वाराहीतन्त्रे ।

अर्थ-वाराहीतन्त्रमें लिखा है कि, कार्तिक, आश्विन, वैशाख, माघ, अग्रहा-
न्यण, फाल्गुने और श्रावणमासमें दीक्षा और पुरश्चरण प्रशस्त है ॥ ४ ॥

अपरश्च ।

रवौ गुरौ सिते सोमे कर्त्तव्यं बुधवासरे ।

चन्द्रताराजुक्कल्ये च पुरश्चरणमाचरेत् ॥ ५ ॥

इति वाराहातन्त्रे ।

अर्थ-रवि, बृहस्पति, शुक्र, सोम और बुधवागमें चन्द्रमा और ताराके
शुद्ध होनेसे पुरश्चरण करना चाहिये । वाराहीतन्त्रके वचनान्तरमें इस प्रकार
कहा है ॥ ५ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

रोहिणी श्रवणार्द्रा च धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् ।

पुण्या शतभिषा शस्ता पुरश्चरणकर्मसु ॥ ६ ॥

इति नारदतन्त्रे ।

अर्थ-नारदतन्त्रमें लिखा है कि-रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, धनिष्ठा, उत्तराफा-
ल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरामाद्रपदा, पुष्य और शतभिषा नक्षत्रमें पुरश्चरणका
प्रारम्भ करना चाहिये ॥ ६ ॥

पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा ।

त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकर्मणि ॥ ७ ॥

इति नारदतन्त्रे ।

अर्थ-नारदतन्त्रके वचनान्तरमें कहा है कि-पूर्णिमा, पञ्चमी, द्वितीया, सप्तमी
त्रयोदशी और दशमी तिथिमें सभी कर्म प्रशस्त हैं ॥ ७ ॥

सतीर्थेऽर्कविधुग्रासे तन्तुदामनपर्वणोः ।

पुरश्चर्या प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन् शोधयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ-सुन्दर तीर्थमें, सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणमें, श्रावणी, पूर्णिमामें और
चैत्रके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीमें पुरश्चरणके प्रारम्भ करनेमें मास और नक्षत्रादिका
विचार नहीं होता है ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

ग्रहणे च महातीर्थे न कालमवधारयेत् ॥ ९ ॥

अर्थ-वचनान्तरमें कहा है कि, ग्रहणमें और महातीर्थमें (गङ्गादिमें) पुरश्चरणका आरम्भ करनेसे कालाकालका कुछ प्रयोजन नहीं होता है ॥ ९ ॥
इति पुरश्चरणकालः ।

अथ ज्ञान्तिपुष्टि कथनम् ।

शुभग्रहार्कवारेषु मृदुक्षिप्रध्रुवेषु च

शुभराशीन्दुलग्नेषु शुभं ज्ञान्तिकपौष्टिकम् ॥ ११० ॥ (क)

अर्थ-अब ज्ञान्ति और पुष्टिकर्मको कहते हैं-शुभग्रहोंके वारमें, रविवारमें, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, पुष्य, अश्विनी, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणीनक्षत्रमें, शुभराशिमें, गोचरमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे और शुभलग्नेमें ज्ञान्तिक और पौष्टिक कर्म करना चाहिये ॥ ११० ॥

अथ हलग्रवाहः ।

पूर्वाग्रियाम्यफणिचित्रशिवाभ्यभेषु

रिक्ताष्टमीविगतचन्द्रतिथिं विहाय ।

द्रव्यज्जालिगोसमुदये विकुजार्किवारे

ज्ञान्तेन्दुयोगकरणेषु हलग्रवाहः ॥ ११ ॥ (ख)

अर्थ-अब हलारम्भ करनेका मुहूर्त कहते हैं-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिका, भरणी, आश्लेषा चित्रा और आर्द्रा इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें, रिक्ता, अष्टमी और अमावास्या मित्रतिथिमें, मङ्गल और शनिवारको छोड़कर अन्यवारोंमें, शुभचन्द्रमा, शुभयोग और शुभकरणमें, व्यात्मक, वृश्चिक और वृष लग्नेमें हल प्रवाह करना अर्थात् हल चलाना चाहिये ॥ ११ ॥

(क) ज्ञान्तिकर्मणः पुष्टिकर्मणश्च विधिमाह-शुभेति । शुभग्रहवारे रविवारे च मृदुलपुष्टवर्गणेषु शुभराशी गोचरशुद्धे चन्द्रे शुभलग्ने ज्ञान्तिकं पौष्टिकञ्च कुर्यादिति ।

(ख) हलग्रवाहमाह-पूर्वेति । पूर्वाग्रितयं कृत्तिकामरण्याश्लेषाचित्रार्द्राव्यारिक्तेषु नक्षत्रेषु रिक्ताष्टमी विगतचन्द्रमावस्याञ्च त्यक्त्वा अन्यतिथौ द्वाचात्मकलग्ने वृश्चिकवृषलग्ने च मङ्गलशनिवारं त्यक्त्वा हलग्रवाहः कार्यः । तिथिदोषमाह-कृषिपराशरः " सस्यक्षयं प्रातिपदि द्वादश्यां वषव-घनम् । बहुविघ्नकरी पष्टी कुहूः कृषकनाशिनी । हन्त्यष्टमीं बलीवर्दान्नवमीं सस्यवातिनी । चतुर्थी कीटजननी पातं हन्ति चतुर्दशी " अथ शुभ-तिथिमाह-" दशम्येकादशी चैव द्वितीया पञ्चमी तथा । त्रयोदशी चतुतीया च सप्तमी च शुभावहा " अथ वाराग्रह-" भोमाकंदिवसे चैव तथैव शनिवासरे । कृषिकर्मसमारम्भे

अपि च ।

संक्रान्त्यां पूर्णमास्याञ्च ह्यमावास्यां तथैव च ।

हलस्य वाहनात्पापं गवामयुतद्वत्यया ॥ १२ ॥

इति स्मृतिः ।

अर्थ-स्मृतिमें लिखा है कि, संक्रान्ति, पूर्णिमा और अमावस्या तिथिमें हलको न चलाना चाहिये जो मनुष्य उक्तसमयमें, हल चलाते हैं उनको अयुत (दश हजार) गोहत्याका पाप होता है ॥ १२ ॥

अन्यथा ।

रिक्ताष्टमीविष्टिषु नष्टचन्द्रे क्षीणेन्दुभौमाकजवासरेषु ।

निरंशके वा निशि सन्ध्ययोर्वा कृताकृपिः पूर्वफलं निहान्ति ॥ १३ ॥

अर्थ-रिक्ता, अष्टमी, विष्टि (मद्रा) और अमावस्या तिथिमें, क्षीण चन्द्रमामें, मङ्गल और शनिवारमें, संक्रान्तिमें रात्रिमें वा सन्ध्यासमयमें कृपिकार्य करनेसे पूर्वके अनुसार फल होता है (अर्थात्) अयुत गोहत्याका पातक लगता है ॥ १३ ॥

अपरश्च ।

वामे कृष्णं बलीवद्धं दक्षिणे लोहितं न्यसेत् ।

-राजोपद्रवमादिशेत्" अत्र च नक्षत्रमाह पराशरः-"अनिलोत्तररोहिण्या मृगमूलपुनर्वसौ । पुष्यश्रवणहरतास्तु कुर्याद्वलप्रसारणम् " अथ लग्नमाह-"वृषे भीमे च कन्यायां युग्मे घनापि वृश्चिके । एतेषु शुभलग्नेषु कुर्याद्वलप्रसारणम् " तथा पाराशरः-"भेषलग्ने पशुं हन्यात्कर्कटे जलज भयम् । सिंहे सर्पभय चैव कुम्भे शीरभय भवेत् । मकरे सस्यनाशः स्यात्तुलायां प्राणसंशयः । तस्मात्लग्नं प्रयत्नेन कृष्णारम्भे विचारयेत्" तथा-"स्नात्वा गन्धैश्च पुष्पैश्च पूजयित्वा यथाविधि । पृथिवीं ग्रहसंपुक्तां पृथुं चैव प्रजापतिम् । सम्पूज्यार्घ्यं द्विज देव कुर्याद्वलप्रसारणम् । छिन्नरेखा न कर्त्तव्या यथा ग्राह पराशरः । एका तिस्रस्तथा पञ्च हलरेखाः प्रकीर्तिताः । एका जयकरी रेखा तृतीया शार्यसिद्धिदा । पञ्चसंख्या तु या रेखा बहुसंख्यप्रदायिनी । हलप्रसारणं येन न हृतं मृगकुम्भयोः । गृहस्थस्य कृशा तस्य फलदा कृपिकर्मणि" इति । भेषे पशुविनाशः स्यात्कर्कटे जलज भयम् । सिंहे सस्यविनाशः स्यात्तुलायां प्रवराक्षतिः । मृगे शशुभयं विद्यात् कुम्भे चौर समादिशेत् । समृज्य कनकेः फाल लेप्येन्मधुसर्पिणा । एका तिस्रस्तथा पञ्च हलरेखाः प्रकीर्तिताः । उत्तराभिमुखो भूत्वा कृपकः कृपिमाभेत् । एका रेखा शुभा प्रोक्ता त्रिरेखा वृद्धिदायिनी । पञ्चरेखा बहुफला करोति धरणीषु च । अत ऊर्ध्वं प्रजुर्वाणो महापातकमाप्नुयात् । गोषु पीडा भवेन्नित्यं दृष्टिनाञ्च भय तथा " इति सारसंग्रहे हृदयानन्दः ।

उत्तराभिमुखो भूत्वा कर्षकः कृषिमारभेत् ॥ १४ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—भीमपराक्रममें लिखा है कि, वामदिशामें कृष्णवर्णका बैल और दाक्षिण-
दिशामें लोहित वर्णके बैलको खडाकरके हल जोतनेवाला मनुष्य उत्तरको
मुख करके कृषिकार्यका आरम्भ करे ॥ १४ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

हले तु योजिते यत्र क्षेत्रे ग्रासं करोति गाः ।

तत्र स्याद्विगुणं शस्यमवश्यं गर्गभाषितम् ॥ १५ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—भीमपराक्रममें लिखा है, कि, हलमें जुतकर बैल यदि खेतमें घासको खाय
तो उस खेतमें दूना नाज उत्पन्न होता है, गर्गशुनिने इस प्रकार कहा है ॥ १५ ॥

अथ बीजवपनम् ।

हलप्रवाहवद्बीजवपनस्य विधिः स्मृतः ।

चित्रायां च शुभे केन्द्रे स्थिरस्वमनुजोदये ॥ १६ ॥ (१)

अर्थ—अब बीज बोनेकी विधि कहते हैं, हलमें कहे हुए नक्षत्रोंमें और चित्रा-
नक्षत्रमें, लग्नके केन्द्रस्थानमें शुभग्रह होनेसे वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ-
लग्नमें, अपनी जन्मलग्नमें और मिथुन, तुला, कन्या और धन लग्नके पूर्वार्द्धमें
बीज बोना चाहिये ॥ १६ ॥

(१) बीजवपनमाह—हलेति । हलप्रसारणे यो विधिः बीजवपनेऽपि सः किन्तु हल
प्रवाहः चित्रायां निषिद्धः बीजवपन कार्यमित्यर्थः । केन्द्रस्थे शुभग्रहे स्थिरलग्ने वृषसिंह-
वृश्चिककुम्भलग्ने मिथुनतलाषट्कन्याषट्कपूर्वार्द्धेषु कर्त्तव्यमित्यर्थः । विशेषमाह पराशरः
“वेशाखे वपन श्रेष्ठं ज्येष्ठे च रोहिणी रवौ । आपादे चाधम प्राहुः श्रावणे चाधमाध-
मम् । रोपण सर्वसस्यानां श्रेष्ठं हि मिथुने रवौ । श्रावणे मध्यम प्रोक्तं माद्रे मध्यममध्य-
मम् ॥ वपनविधिमाह पराशरः—“क्षेत्रमध्ये स्वयं गत्वा द्विराचम्य समाहितः । सकल्पं
कारयेद्धीमान्वास्तिवाचनपूर्वकम् । गणनायादिकं देवं पूजयित्वा विधानतः । प्रादमुखः
कलशं धृत्वा पठेन्मन्त्रं विधानतः । ओं वसुधारेऽसिते देवि बहुसस्यफलप्रदे । देवराशि
नमस्तुभ्यं शुभगे सस्यकारिणि । रोपणे सर्वसस्यानां काले मेघः प्रवर्धतु । सुस्या भवन्तु
कृपका धनधान्यसमृद्धिभिः । तथा “हिमवारिणि सिक्तस्य बीजस्य तन्मनाः शुचिः ।
इन्द्र चित्ते समाधाय स्वयं मुष्टित्रयं वपेत् । कृत्वा धान्यस्य पुण्याहं कृपकां दृष्टमानसाः ।
दिव्यगन्धैश्च पुष्पैश्च तदलङ्कृतवान्गृही । कृत्वा तु वपनक्षेत्रे कृपाणां घृतपायसेः । भोज-
यित्वा तु ते तृणा निर्विघ्ना जायते कृषिः” इति ।

अपिच ।

सुखदा प्रतिपच्चैव द्वितीया कार्यसाधिनी ।

आरोग्यदा तृतीया च चतुर्थी कीटकृत्सदा ॥ १७ ॥

पञ्चमी श्रीप्रदा नूनं पष्ठी च कलहप्रिया ।

सप्तमी स्थानदा भोग्या वृषं हन्ति तथाष्टमी ॥ १८ ॥

नवमी सस्यनाशाय दशमी भूतिदा सदा ।

एकादशी तथा कुर्याद्धनं धान्यं मनोरथम् ॥ १९ ॥

द्वादशी प्राणसन्देहा सर्वसिद्धा त्रयोदशी ।

चतुर्दशी पार्ति हन्ति पञ्चदश्येव निष्फला ॥ २० ॥

इति कृत्यपितामणी ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणीमें लिखा है कि, प्रतिपदामें कृषिकर्म आरम्भ करनेसे सुख प्राप्त होता है, इसी प्रकार द्वितीयामें कार्यका साधन होता है, तृतीयामें आरोग्यताप्राप्ति होती है, चतुर्थामें कीटद्वारा नाजका नाश होता है, पञ्चमीमें श्री (लक्ष्मी) प्राप्ति होती है, पष्ठीमें कलह होता है, सप्तमीमें स्थान और भोगकी वृद्धि होती है, अष्टमीमें बैलकी मृत्यु होती है, नवमीमें नाजका नाश होता है, दशमीमें पेश्वर्यलाम होता है, एकादशीमें धन धान्य और मनोरथसिद्धि होती है, द्वादशीमें प्राणका संशय होता है, त्रयोदशीमें सर्वप्रकारकी सिद्धियां प्राप्ति होती हैं, चतुर्दशीमें खेतके मालिककी मृत्यु होती है और पूर्णिमा और अमावस्यामें खेती आरम्भ करनेसे निष्फल होजाती है ॥ १७-२० ॥

अन्यथा ।

अमावास्याष्टमीपष्ठीरिक्ताश्च परिवर्जयेत् ।

सौरिभौमादिने चैव कृष्यारम्भे धनक्षयः ॥ २१ ॥

इति बलभद्रः ।

अर्थ-बलभद्रने कहा है कि, अमावस्या, अष्टमी, पष्ठी और रिक्ता तिथिमें, शनि और ॥ झलवारमें कृषिकर्म आरम्भ करनेसे धनका नाश होता है ॥ २१ ॥

अपरञ्च ।

प्राजेशविष्णुतिष्येषु पितृहस्तोत्तरासु च ।

अश्विनीवातपौष्णेषु मूलादित्येन्दुभे तथा ॥ २२ ॥

वारे भानुजशुके च जीवे शीतकरे तथा ।

लग्ने स्त्रीगोमीनयुग्मे कृष्यारम्भं शुभं विदुः ॥ २३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि—रोहिणी, श्रवण, पुष्य, मघा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, आश्विनी, स्वाति, रेवती, मूल, पुनर्वसु और मृगशिर नक्षत्रमें शनि, शुक्र, बृहस्पति और सोमवारमें, कन्या, वृष, मीन और मिथुन लग्नमें कृषिकर्म आरम्भ करनेसे शुभ होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

पूर्वाभाद्रपदा मूलं रोहिण्युत्तरफाल्गुनी ।

विशाखा शतभिषा वाथ धान्यानां रोपणे वराः ॥ २४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि—पूर्वाभाद्रपदा, मूल, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और शतभिषा नक्षत्र बीज बोनेमें प्रशस्त हैं ॥ २४ ॥

अन्यच्च ।

हस्ताश्विपुष्यचन्द्रेषु ब्रह्मेन्द्रविष्णु वारुणे ।

वायव्येन्द्राग्निभे चैव रोहिण्यामुत्तरासु च ॥ २५ ॥

वारे जीवे च शुक्रे च सोमे दिनकरे तथा ।

युग्मे युवतिगोमीने शस्तं स्याद्वीजवापनम् ॥ २६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि—हस्त, आश्विनी, पुष्य, मृगशिर, ज्येष्ठा श्रवण, शतभिषा, स्वाति, विशाखा, रोहिणी और तीनों उत्तरा नक्षत्रमें बृहस्पति, बुध, शुक्र, सोम और रविवारमें, मिथुन, कन्या, वृष और मीन लग्नमें बीज बोना चाहिये ॥ २५ ॥ २६ ॥

आपेच ।

प्राजेशश्रवणोत्तरादितिमघामार्तण्डतिष्याश्विनी

पौष्णानुष्णमरीचयः शतभिषास्वातिर्विशाखा तथा ।

जीवाकेंदुसितेन्दुनन्दनादिने वारे स्थिरस्योदये

शस्यानां वपने भवन्ति लवने शस्ते तिथौ रोपणे ॥ २७ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्तण्डमें लिखा है कि, रोहिणी, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, पुनर्वसु, मघा, हस्त, आश्विनी, रेवती, मृगशिर, शतभिषा, स्वाती

और विशाखा इन नक्षत्रोंमें, वृहस्पति, रवि, सोम, शुक्र और, बुधवारमें और स्थिरलग्नमें नाज बोना और काटना चाहिये ॥ २७ ॥

अपरञ्च ।

गुरुसोमसूर्यशुक्राः क्षेम्याः सम्पत्कराः शुभाः ।

बुधार्किभूमिपुत्राश्च न भवन्ति फलप्रदाः ॥ २८ ॥

इति भैरवाचार्यः ।

अर्थ-भैरवाचार्यने कहा है कि, वृहस्पति, सोम, रवि और शुक्रवारमें कृषि आरम्भ करनेसे मङ्गल और सम्पत्की वृद्धि होती है और बुध, शनि और मङ्गलवारमें कृष्यारम्भ करनेसे निष्फल होती है ॥ २८ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

हन्ति मेघः पशून्सर्वान्स्वभावेनाथ वृश्चिकः ।

कर्कटेन भवेत्सौख्यं तुलायां न प्ररोहति ॥ २९ ॥

केशरी सस्यघाती स्यात्पार्थिवोपद्रवं धनुः ।

मकरे चैव कुम्भे च भयमेव विनिर्दिशेत् ॥ ३० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, मेघलग्नमें खेती आरम्भ करनेसे पशुओंका नाश होता है, इसी प्रकार वृश्चिक लग्नमें कर्ताको बीछलू काटना है कर्क लग्नमें सुखहीन होता है, तुला लग्नमें खेतीके आरम्भ करनेका निषेध है, सिंह लग्नमें नाजका नाश होता है, धनमें पार्थिवका उपद्रव होता है मकर और कुम्भ लग्नमें खेतीके आरम्भ करनेसे भय होता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अन्यथा ।

गोस्त्रीमन्मथमनिषु लस्यं सम्पद्यते महत् ।

प्रशस्ते चन्द्रतारे च शुचिः शुक्ले न वाससा ॥ ३१ ॥ (क)

अर्थ-वृष, कन्या, मिथुन और मीन लग्नमें बीज बोनेसे बहुत नाज उत्पन्न

(क) छात्रा गन्धैश्च पुष्पैश्च पूजयित्वा विधानतः । पृथ्वीश्च ग्रहसमुक्ता पूजयित्वा प्रजापतिम् । अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य क्षीयते मूरिदक्षिणा । कृष्णो वृषो नियोक्तव्यो नवनी-
तैर्दृतेन वा । मुखपार्श्वे तयोर्लिप्यात्फालाग्र कनकैः स्पृशेत् । उत्तराभिमुखो भूत्वा क्षीरे-
णार्घ्यं प्रक्षापयेत् । ततः शुभकारः श्रीमान्कृषिकर्म समाचरेत् । वज्रयेद्भग्नशृङ्गश्च रुरभ-
ग्नश्च वज्रयेत् । विफलं छिन्नलंगूलं कपिलं वृषभं तथा । हलप्रवाहनं कार्यं नीरुग्भिः
कृषिकर्मकैः । हलादिभिर्दृष्टैः क्षेमं कुट्टेन शुभं वदेत् । वृषमा यदि मुह्यन्ति तस्य विघ्न-
प्रदा भवेत् ” कृषिरिति शेषः । “तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्विघ्नं कारयेत्तदा । एका जय-

होता है, अतएव चन्द्रमा और ताराके शुद्ध होनेसे उक्त लग्नोंमें पवित्र होकर सफेद वस्त्रको पहिरकर खेतीका आरम्भ करना चाहिये ॥ ३१ ॥

अथ धान्यच्छेदनम् ।

याम्याजपादहिधनानलतोयशक
चित्रोत्तरोडुषु कुजार्कजवारवर्जम् ।

शस्तेन्दुयोगकरणेषु तिथावारिके

धान्यच्छिदिः स्थिरनरस्वमृगोदयेषु ॥ ३२ ॥ (१)

अर्थ—अब खेतमेंसे नाज काठनेका मुहूर्त कहते हैं । भरणी, पूर्वाभाद्रपदा, आश्लेषा, धनिष्ठा, कृत्तिका, पूर्वाषाढा, ज्येष्ठा, चित्रा और तीनों उत्तरा इन सब नक्षत्रोंमें मङ्गल और शनिवारको छोड़कर अन्यवारोंमें, योग और करण शुभ होनेसे, रिक्ताभिन्न तिथियोंमें स्थिर, द्विपद, अपने जन्मकी लग्न और मकर लग्नमें खेतका नाज काटना चाहिये ॥ ३२ ॥

अपिच ।

रोहिणीरेवतीमूलस्वातिहस्तमृगास्तथा ।

फाल्गुन्यौ श्रवणे चैव पूर्वाभाद्रपदा तथा ।

बन्धने सर्वबीजानां तथा गोलीप्रवेशने ॥ ३३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहेः ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि—रोहिणी, रेवती, मूल, स्वाति, हस्त

करी रेखा तृतीया चार्थदायिनी । पञ्चमी या भेदरेखा बहुसस्यफलाहि सा । अत ऊर्ध्वं न कर्त्तव्य महादोषस्तदा भवेत् । सम्पूज्याग्नि द्विजं देवं कुर्याद्वलमवर्त्तनम् । हेमनिर्दृष्टफालाग्न लिङ्गरेखा न कारयेत् । स्मर्त्तव्या वसवेश्वन्द्रः सर्वविघ्नोपशान्तये । हले प्रवाह्यमाणे तु कूर्म उत्पाटयते यदि । गृहणीं प्रियते तस्य ततोऽग्रेथ भय भवेत् । लङ्गुलं भिद्यते चापि प्रभुस्तत्र विनश्यति । ईशानमङ्गलश्चेत्कर्तुः सशयो जीवितस्य च । सुतनाशो युगामङ्गे समीने प्रियते सुतः ” समीने योत्कबन्धनकाष्ठद्वये । “योत्कच्छेदे तु व्यासङ्गः सस्यहानिश्च जायते । हले प्रवाह्यमाणेतु गौरिकः प्रपतेद्यादि । प्रपतेन्मुक्तमात्रस्तु बन्धन स प्रपद्यते । ज्वरातिसारारोगेण वृषिमङ्ग विनिर्दिशेत् । प्रवाह्यमुक्तमात्रस्तु ततो गौः प्रपतेद्यादि । वत्सालीदेननर्दन्तिः ततः सस्य चतुर्गुणम् । हेमवारिर्विलिप्तस्य कीजस्योन्नयतः अचिः । इन्द्र चित्ते निधायाथ स्वय मुष्टित्रय वपेत् । इत्यादि । “चैत्रे च कुष्णपञ्चम्या काश्मीरा च रजस्वला । नित्य भजति तस्मात्ता स्मृत्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ” इत्यादि । “अष्टम्याश्च ततः स्नाप्य ताभिरेव गृहे गृहे ” इत्यादि च ज्योतिषतत्त्वेऽनुसन्धेयम् ॥ इति ।

(१) धान्यच्छेदनमाह—याम्योति । याम्यादिषु नक्षत्रेषु रिक्तावर्जिते तिथौ स्थिरलग्ने नरलग्ने स्वलग्ने स्वनीयजन्मलग्ने मकरलग्ने च धान्यच्छिदिः कार्या शेष सुगमम् । मेधि-

मृगाशिर, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, श्रवण और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें बीजबन्धन और गोला प्रवेश करना चाहिये ॥ ३३ ॥

अथ धान्यादिसंस्थापनम् ।

याम्याग्निरुद्राहिविशाखपूर्वामाहेन्द्रपित्र्येतरभैः शुभाहे ।

धान्यादिसंस्थापनमेव कुर्यान्मृगास्थिरद्वद्गृहोदयेषु ॥ ३४ ॥ (क)

अर्थ—अब नाजके रखनेका मुहूर्त कहते हैं—भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, ज्येष्ठा और मघा इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें, शुभ दिनमें, शुभ ग्रहोंके वारमें, स्थिर और द्वायात्मक लग्नमें नाज रखना चाहिये ॥ ३४ ॥

अथ धान्यादिविवर्द्धनज्ञानम् ।

श्रवणत्रयविशाखाध्रुवपौष्णपुनर्वसूनि पुष्यं च ।

अश्विन्यथ च ज्येष्ठा धनधान्यविवर्द्धने कथिता ॥ ३५ ॥ (ख)

अर्थ—अब नाजके बढ़नेका प्रयोग कहते हैं, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, अश्विनी और ज्येष्ठा नक्षत्र नाजके वृद्धि होनेके विषयमें प्रशस्त हैं ॥ ३५ ॥

अथ धान्यमहाध्यादिकथनम् ।

हशपूरोरवं मूल्यं पक्षादौ लक्षयेदुधः ।

उकृमूरे समं विद्याच्छेपे धान्यमधः क्रमम् ॥ ३६ ॥ (ग)

अर्थ—अब नाजके मूल्य जाननेकी रीति कहते हैं—हस्त, शतभिषा, तीनों माह प शिर । “न्यग्रोधः सप्तपर्णा वा गाम्भारी शाल्मली तथा । उदुम्बरो पिशेपेण चान्ये वा क्षीरवाहेन । एभिर्मेषि नरो मार्गे कुर्यात्पौषे विवर्जयेत् । कपित्थवशविरजानां न च मोषिः कदाचन ॥ ”

(क) धान्यादीनां स्थापनमाह—याम्येति । याम्यादिवाजर्तनेक्षत्रे मकरलग्ने स्थिरलग्ने द्वायात्मकलग्ने च शुभग्रहजारे धान्यातिलमुद्रादीनां स्थापनं कार्यम् पिशेपमाह पराशर “लिखित्वा ह्यविमौ मन्त्री धान्यागारे निनि क्षिपेत् ।” “ओं धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धनं स्वाहा । ओं नवे हार्यं नवे देवि सर्वलोकविाद्धिनि । कामरूपाणि सुभगे धनं मे दोहि स्वाहा ” इति ।

(ख) वृद्धिनिमित्तं धनधायदाने विहितनक्षत्रमाह—श्रवणेति । स्पष्टार्थम् ।

(ग) धान्यमूल्यज्ञानमाह—हशेति । आद्यशरसवेतेन नक्षत्रवयनं हस्तशतभिषापू-र्वान्नय रोहिणी पक्षादौ प्रतिपदारम्भकाले एतानि नक्षत्राणि यदि स्युः तदा वरम् अधिकं मूल्यं धान्यस्य लक्षयेत् । एवम् ‘उकृमूरे’ उत्तपत्रय वृत्तिकामूल रेवती प्रतिपदारम्भकाले यदि स्यात्तदा धान्यमूल्यं समं गतपक्षे यमूल्यं तदेव वर्तमानेऽपि न साहाय्यं न च

पूर्वा अथवा रोहिणी नक्षत्र यदि प्रतिपदाके आरम्भकालमें होय तब नाज मँगा विकता है, तीनों उत्तरा, कृत्तिका, मूल अथवा रेवती नक्षत्र यदि प्रतिपदाके आरम्भकालमें होय तो नाज समान मूल्यमें विकता है और उक्त नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्र यदि प्रतिपदाके आरंभ कालमें होय तो धान्य (नाज) सस्ता विकता है ॥ ३६ ॥ इति पाक्षिकधान्यमूल्यज्ञानम् ।

अपिच ।

यदाहि मेपसंक्रान्तिस्तुलासंक्रमणं निशि ।

तदा प्रजा विवर्द्धन्ते धनधान्यसमृद्धिभिः ॥ ३७ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि—यदि मेपकी संक्रान्ति दिनमें और तुलाकी संक्रान्ति रातमें लगै तो प्रजा धनधान्यसे सुखी होती है ॥ ३७ ॥

अन्यच्च ।

कुजार्कशनिवारणे महासंक्रमणं यदा ।

भवेत्तदा प्रजाहानिर्दुर्भिक्षादिभयं तदा ॥ ३८ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि—मङ्गल, शनि वा शनिवारमें यदि संक्रान्ति होय तो प्रजाका नाज और अत्यन्त दुर्भिक्षादिका भय होता है ॥ ३८ ॥

अथ वार्षिकधान्यमूल्यज्ञानम् ।

रवौ शनौ कुजे चैव पौषे दशौ भवेद्यदा ।

तदा धान्यस्य मूल्यं स्यादेकद्वित्रिगुणं क्रमात् ॥ ३९ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—अब वार्षिक नाजका मूल्य जाननेकी रीति कहते हैं—सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि, पौषके महीनेमें रविवारके दिन यदि अमावस्या तिथि होय तो नाजका मूल्य एक गुण बढ़जाता है, इसी प्रकार शनिवारमें होनेसे नाज दूना मँगा होजाता है, और मङ्गलवारमें पौष महीनेकी अमावस हो तो नाजका मूल्य तिगुना होजाता है ॥ ३९ ॥

अपिच ।

दशौ पौषस्य रात्रौ चेज्ज्येष्ठा मूलजलानि च ।

—माहात्म्यमित्यर्थः । एतेषां शेषनक्षत्रे प्रतिपदारम्भकाले धान्यानामधः क्रयोऽल्पमूल्यं स्यात्सदा शुक्ले कृष्णे चात्र च प्रतिपदारम्भकाले तन्मुख्यार्त्ताधिपनक्षत्रं ज्ञात्वा अतिशय समारुपं ज्ञातव्यमिति श्रीभाष्यट्टचरणः ॥ इति ।

क्रमान्मूलस्य वृद्धिः स्याद्धान्यानां वत्सरे तदा ॥ ४० ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि-पौष महीनेकी अमावस्या तिथिकी रातमें ज्येष्ठा, मूल वा पूर्वाषाढा नक्षत्र होय तो उस वर्षमें उत्तरोत्तर नाजका मूल्य बढ़जाता है ॥ ४० ॥

अन्यच्च ।

संक्रान्तिकृशं तिथिवारयुक्तं द्रव्याक्षरं वामहतं भवेत्तु ।

एकं समर्ध्य समतां द्वितीये शून्ये महर्ध्यमुनयो वदन्ति ॥ ४१ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-अब प्रकारान्तरसे नाजका मूल्य निर्णय करतेहैं-सत्कृत्यमुक्तावलीग्रन्थमें लिखा है कि, संक्रान्तिसमय जो नक्षत्र होय उसकी संख्या उस दिनकी तिथिकी संख्या, धारकी संख्या और द्रव्यके अक्षरोंकी संख्याको मिलाकर जितनी संख्या होय उनकी तीनसे भाग करे भाग करनेसे यदि एक बचै तो पूर्वके भावसे कुछ मईगा नाज होजाता है इस प्रकार दो बचनेसे पहिलेके समान भाव रहता है और कुछ न बचनेसे पहलेके भावसे अत्यन्त मईगा नाज होता है, इस प्रकार सुनियोंने कहा है ॥ ४१ ॥

अथ गोशालाप्रवेशः ।

पूर्वात्रये धनिष्ठायां पौष्णे सौम्यविशाखयोः ।

आश्लेषा चाश्विनी चैव यात्रा सिद्धिश्चतुष्पदाम् ॥ ४२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहके बचनानुसार गौआदिका शाला (घर) में जानेका सुहृत् कहते हैं-तीनों पूर्वा, धनिष्ठा, रेवती, मृगशिर, विशाखा, आश्लेषा और आश्विनी नक्षत्रमें चतुष्पद (गौ) इत्यादिके गृहप्रवेशकी यात्रा सिद्ध होती है ॥ ४२ ॥

अथ गोयात्रादिनिषेधः ।

त्रिपूतरासु रोहिण्यां सिनीवाली चतुर्दशी ।

श्रवणा चैव हस्ता च चित्रा चैव तथाष्टमी ।

गवां यात्रां न कुर्वीत प्रवेशान्नापि कारयेत् ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, श्रवण, हस्त, चित्रा नक्षत्रमें, अमावस्या, चतुर्दशी और अष्टमी तिथिमें, गोयात्रा वा गोप्रवेश न करावै इस प्रकार ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है ॥ ४३ ॥

अथ गवामानयनादि ।

दर्शाष्टमीभूततिथिप्रवेशपूर्वोत्तराकेशवयाम्यचित्राः ।

कूराहविष्टिव्यतिपातयोगा नेष्टा गवाञ्चानलविक्रयादौ ॥४४॥(क)

अर्थ-अमावस्या अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें रोहिणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा पूर्वाभाद्रपदा, तीनों उत्तरा, श्रवण, भरणी और चित्रा नक्षत्रमें, रवि, मङ्गल और शनिवारमें, विष्टि भद्रा तिथिमें और व्यतिपातयोगमें गोचालन और बेंचनेसे शुभफल नहीं होता है ॥ ४४ ॥

अथ वृष्टिज्ञानम् ।

वर्षप्रश्ने सलिलनिलयं राशिमाश्रित्य चन्द्रो

लग्ने यातो भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे ।

सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमुदकं पापदृष्टोऽल्पमम्भः

प्रावृट्काले सृजति न चिराच्चन्द्रवद्भार्गवोऽपि ॥ ४५ ॥(ख)

इति प्रश्नावृष्टिज्ञानम् ।

अर्थ-अथ प्रश्नद्वारा वृष्टि (वर्षा) जाननेकी रीति कहते हैं-कर्क, मकर वा मीन यदि प्रश्नकी लग्न होय और उसमें चन्द्रमा स्थित होय अथवा चन्द्रमा यदि शुक्लपक्षमें लग्नके केन्द्रस्थानमें होय और उस चन्द्रमाको शुभ ग्रह देखतै होय

(क) वर्षा यात्राप्रवेशक्रयविक्रयेषु निषेधमाह-दर्शति । अमावस्याष्टमी चतुर्दशी तिथि नेष्टा । रोहिणी पूर्वात्रयोत्तरात्रयश्रवणभरणीचित्रा रविशनिमङ्गलवाराः विष्टिव्यतिपातयोगाश्च नेष्टाः । गवामित्युपलक्षणं सर्वेषां पशूनामिति राजमार्त्तण्डे-“व्युत्तरेषु च रोहिण्यां सिनीवाली चतुर्दशी । श्रवणेपि च नक्षत्रे चित्रायामष्टमीषु च । गोषु कार्यं न कुर्वीत .प्रनयश्च प्रवेशनम् । पशवस्तस्य नश्यन्ति ये चान्ये तृणचारिणः ” इति ।

(ख) प्रश्नावृष्टिज्ञानमाह-वर्षेति । वृष्टिप्रश्ने चन्द्रो यदि सलिलनिलयराशि कर्कट-मकरमीनमाश्रित्य लग्नमुदय प्राप्तः स्यात् यदि वा केन्द्रगश्चन्द्रः शुक्लपक्षे स्यात्तदा शुभग्रहदृष्टः प्रचुरमुदकं जलं सृजति पापदृष्टोऽल्पजलं एव सृज्यतेऽपि । वर्षाकाले जलराशिगः जलराशिलग्नौ स्यात् शुक्लपक्षे केन्द्रगो वा स्यात्तदा शुभदृष्टः-प्रचुरं जलं पापदृष्टोऽल्पजलं सृजति वर्षति । सौम्यरिस्तु जलराशिमाश्रित्य चन्द्रस्तिष्ठति यात्राविक्रया-लग्नं वा प्रश्ने भवति केन्द्रगो वा स्यादिति व्याचष्टे तदशुद्धं तिष्ठतीति त्रियान्तराध्याहा-रात् तथा दैवज्ञवल्लभायाम् “कर्कटभृगमीनानामुदये चन्द्रः सितो वा वृष्टिकरः । तद्वत्केन्द्रोपगतौ सितश्चन्द्रश्च शुभदृष्टौ ” योगान्तरमुक्तं तत्रैव “ पक्षे सिते सलिलराशिगताः शुभाश्च केन्द्रेद्वितीयसलिलालयगाश्च सम्यक् । चन्द्रोऽथवा सलिलराशिविलग्नश्च वृष्टि-वदेन्नियतमेव ततो धरिष्याम् ” तथा कुपिपराशरः-“ जलस्थो जलहस्तो वा निकटे च जलस्य वा । पृष्टोऽवृष्टौ च वृष्ट्यर्थं वृष्टिः सजायतेऽचिरात् ॥ ” इति ।

तो प्रचुर (इच्छानुसार) वर्षा होती है और चन्द्रमाको यदि पापग्रह देखते हो तब अल्प (थोड़ी) वर्षा होती है वर्षा समयमें कर्क, मकर वा मीन लग्नमें यदि शुक्र स्थित होय अथवा शुक्रपक्षमें लग्नके केन्द्रस्थानमें होय और शुक्रपर शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तो इच्छानुसार जलकी वर्षा होती है और यदि शुक्रपर पापग्रहोंकी दृष्टि होय तो अल्प वर्षा होती है ॥ ४५ ॥

अथ ग्रहसंस्थानेन संघोवृष्टिज्ञानम् ।

प्रावृषि शीतकरो भृगुपुत्रात्सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः ।

सूर्यसुतान्नवपञ्चमगो वा सप्तमगोऽपि जलागमनाय ॥ ४६ ॥ (१)

अर्थ-वर्षाकालमें ग्रहसंस्थापनद्वारा वृष्टि (वर्षा) जाननेकी रीति कहते हैं, वर्षाकालमें यदि शुक्रसे सातवें स्थानमें चन्द्रमा स्थित होय और चन्द्रमाको शुभग्रह देखते होंय तो उसी दिनमें वर्षा होती है और शनिसे नववें, पांचवें, वा सातवें, चन्द्रमा होय और उसको शुभग्रह देखते होंय तो उसी दिन वर्षा होती है ॥ ४६ ॥

अथ नवान्नम् ।

भेषूग्राहिशिवान्येषु विभौमशनिवासरे ।

अन्नप्राशनवत्कुर्यान्नवान्नफलभक्षणम् ॥ ४७ ॥ (२)

अर्थ-अब नये नाजके तथा नये फलके खानेका सुहृत् कहते हैं- तीनों पूर्वा,

(१) वर्षाकाले ग्रहसंस्थानवशेन वृष्टिज्ञानमाह-प्रावृषीति । यस्मिन्दिने चन्द्रः शुक्रात्सप्तमगः शुभदृष्टः स्यात्तस्मिन् दिने जलागमनाय वर्षाकाले स्यात् । तथा सूर्यसुतान्नवपञ्चमगः सप्तमगो वा चन्द्रः शुभदृष्टो यत्र दिने तस्मिन्दिने वृष्टिर्भवतीत्यर्थः । इति ।

(२) पूर्वोक्तान्नप्राशनप्रकरणप्राप्तं नवान्नफलभक्षणमाह-भोधिवाति । उग्रगणः ११। २० । २५ । १० । २ अहिः ९ शिवः ६ एतद्वन्धेषु नक्षत्रेषु मङ्गलशनिर्वर्जितेषु वारेषु नवान्नस्य नवफलस्यान्नादेश्च भक्षणं कुर्यात् । अन्नप्राशनवदिति एतदतिरिक्ते पूर्वस्मिन् अन्नप्राशनाक्तश्लोके योऽन्नप्राशनविधिः “गो ज्ञर्क्षमीनोदय ” इत्यादिरुक्तः सोऽत्रैव विधेय इत्यर्थः । एतच्च कृष्णपक्षादौ न कर्त्तव्यमिति । तथाच-“ नवान्न नैव नन्दायां न च सुते जनार्दने । न कृष्णपक्षे धनुषि तुलायां न कदाचन । तथा च वराहः-“वृश्चिके शुक्रपक्षे तु नवान्नं शस्यते बुधैः । अपरे क्रियमाणं हि धनुष्येव कृतं भवेत् । यत्कृतं धनुषि श्राद्ध मृगनेत्रासु रात्रिषु । पितरस्तत्र गृह्णन्ति नवान्नाभिर्यकांक्षिणः ॥ ” अपरे कृष्णपक्षे मृगनेत्रा ज्येष्ठानक्षत्रपरार्द्धगते सूर्ये भवति । शुक्रवारे तु सावकाशश्राद्धनिषेधादेव प्राप्तोऽत्र निषेधः । स च त्रयोदशी जन्मदिनश्चेत्यादिना वक्ष्यते । इति । नवान्न मलमासेऽपि कार्यम् । “ गार्हितो मलमासः स्यादुत्तरे मासि तत्क्रिया । नित्यश्राद्ध नवान्नञ्च विना निरवकाशतः ” इति स्मृतिसागरधृतवचनात् ।

मघा, भरणी, आश्लेषा और आर्द्रा इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें, मंगल और शनिभिन्न वारमें, शुक्रपक्षमें, अन्नप्राशनकी लग्नोंमें नया अन्न और नया फल खाना चाहिये ॥ ४७ ॥

द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा ।

दशमी च प्रशस्यन्ते नवान्नाशनकर्मणि ॥ ४८ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब नये अन्न खानेकी तिथियें कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी और दशमी तिथि नये अन्नके खानेमें प्रशस्त हैं ॥ ४८ ॥

हरियुगलेऽदितिपूपयुगले विरिञ्चियुगले च ।

करपञ्चोत्तरेष्विनवपुष्यरूशशिषु नवान्नभक्षणम् ॥ ४९ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—दीपिकामें लिखा है कि, श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अभिनी, रोहिणी, मृगशिर, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तरामाद्रपदा नक्षत्रोंमें, रवि, बुध, बृहस्पति और सोमवारमें नया अन्न खाना चाहिये ॥ ४९ ॥

आपेच ।

सूर्ये चैव विशाखगे (१) स्मरतिथौ पापे त्रिजन्मान्विते

नन्दामन्दमहीजकाव्यदिवसे पौषे मघौ कार्तिके ।

भेषूयादिशिवेषु विष्णुशयने कृष्णे शशिन्यष्टमे

श्राद्धं भोजनकं नवान्नविहितं पुत्रार्थनाशप्रदम् ॥ ५० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे श्राद्धतत्त्वे च ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें और श्राद्धतत्त्वमें लिखा है कि, सूर्य विशाखा नक्षत्रगत होनेसे त्रयोदशी और नन्दा तिथिमें, तीनों जन्मतारा (२) और तीनों प्रत्यरि (३) तारामें, सौर पौष चैत्र और कार्तिकके महीनेमें, शनि मंगल और शुक्रवारमें

(१) सूर्ये चैव विशाखगे मार्गशीर्षस्य विशतिदण्डाधिकप्रथमादिनत्रयावस्थिते सूर्ये स्मरतिथौ त्रयोदश्यां पापे पञ्चमतारात्रये त्रिजन्मान्वित इत्यत्र त्रिजन्मपदं जन्मचन्द्रजन्मतिथिजन्मनक्षत्रपरामिति श्राद्धतत्त्वे-स्मार्त्तनाभिहितम् ।

(२) स्मार्त्तमहाचार्यने जन्मतारा, जन्मतिथि और जन्मनक्षत्रकोही त्रिजन्मशब्दका अर्थ करा है ।

(३) जन्मनक्षत्रसे पांचवें नक्षत्रको पापतारा वा प्रत्यरितारा कहते हैं । अत एव सत्ताईस नक्षत्रोंको जन्म, सम्पत् इत्यादिसे गिननेमें ही तीन प्रत्यरितारा होते हैं ।

विष्णुके शयनकालमें, कृष्णपक्षमें, आठवें चन्द्रमामें और तीनों पूर्वा, मघा, भरणी, आश्लेषा और आर्द्रा नक्षत्रमें जो मनुष्य नया अन्न श्राद्धकर्ममें वा भोजनमें स्वीकार करता है उसके पुत्र और धन आदिका नाश हो जाता है ॥ ५० ॥

अन्यत्र ।

पौषे चैत्रे कृष्णपक्षे नवान्नं नाचरेद्बुधः ।

भवेज्जन्मान्तरे रोगी पितृणां नोपतिष्ठते ॥ ५१ ॥

इति भोजराजः ।

अर्थ-भोजराजने कहा है कि-सौर पौषमें, सौर चैत्रमें और कृष्णपक्षमें नये अन्नसे श्राद्ध न करना चाहिये, जो मनुष्य उक्तकालमें नये अन्नसे श्राद्ध करता है वह जन्मान्तरमें रोगी होता है और उक्त श्राद्धमें पितृगण नहीं स्थित होते हैं ॥ ५१ ॥

अपरश्च ।

ज्येष्ठाशेषार्द्धगे सूर्ये मृगनेत्रानिशात्मके । (क)

नवान्नैर्भाजनं श्राद्धं जन्मचन्द्रे तिथौ न च ॥ ५२ ॥

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, ज्येष्ठानक्षत्रके शेषार्द्धमें सूर्यके होनेसे अर्थात् सौर अग्रहायणके २३ दिन २० दण्डके गतमें मृगनेत्रा रात्रि होती है, उसमें और जन्मराशिमें और जन्मतिथिमें नये अन्नसे श्राद्ध और नये अन्नका भोजन न करना चाहिये ॥ ५२ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

ब्रह्मा विष्णुबृहस्पती शशधरो मार्त्तण्डपौष्णादितौ

मैत्रे चित्रविशाखवायुधनभे मूलाश्विबह्वौ तथा ।

शक्रे वारुणऋक्षके शुभदिने श्राद्धं नवं शस्यते

नन्दाभार्गवभूमिजेषु न भवेच्छ्राद्धं नवान्नोद्भवम् ॥ ५३ ॥ (ख)

इति भोजराजः ।

अर्थ-राजा भोजने कहा है कि, रोहिणी, श्रवण, मृगशिर, हस्त, रेवती, पुन-

(क) “दिनत्रयाधिके विंशे मार्गशीर्षस्य वै गते । मृगनेत्रा स्मृता रात्रिः श्राद्धं तत्र न कारयेत् ” इति ज्योतिषाससंग्रहे ।

(ख) अत्र वचने नवान्नश्राद्धे मूलकृत्तिकाज्येष्ठाविधानात्तच्छेषमक्षणप्राप्ते वक्ष्यमाणश्लेषाकृत्तिकाज्येष्ठा मूलाजपादकेषु च इत्यादि वचन श्राद्धशेषाभोजिमात्रपरम् । इति श्राद्धतत्त्वे स्मार्त्तनाभिहितम् ।

वसु अनुराधा, चित्रा, विशाखा, स्वाति, धनिष्ठा, मूल, अश्विनी, कृत्तिका, ज्येष्ठा और शतभिषा नक्षत्रमें, शुभदिनमें, नये अन्नसे श्राद्ध करना चाहिये किन्तु (प्रतिपदा, एकादशी और पष्ठी) तिथिमें, शुक्र और मङ्गलवारमें, नए अन्नसे श्राद्ध न करे ॥ ५३ ॥

अपिच ।

आश्लेषाकृत्तिकाज्येष्ठामूलजपादकेषु च ।

भृगुभौमदिने रिक्तातिथौ नाद्यान्नवादनम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—आश्लेषा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें, शुक्र और मङ्गलवारमें और रिक्तातिथिमें नया अन्न न खाना चाहिये [इस वचनमें जो नये अन्नके खानेमें मूल कृत्तिका और ज्येष्ठा, नक्षत्रका निषेध होनेसे नये अन्न द्वारा श्राद्ध न करके जो मनुष्य नया अन्न खाते हैं उन्हींके पक्षमें जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

अन्यच्च ।

रवौ बुधे गुरौ चन्द्रे नवान्नस्य च भक्षणम् ।

भक्षयेन्न शनौ शुके तथा भूमिजवासरे ॥ ५५ ॥

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि—रवि, बुध, बृहस्पति और सोमवारमें नया अन्न खाना चाहिये शनि और शुक्र और मंगलवारमें नये अन्नको न खावे ॥ ५५ ॥

अपरञ्च ।

वृषे मिथुनकन्यायां मीनलग्ने शुभान्विते ।

भक्षणं स्यान्नवान्नस्य ददात्यायुर्वलं धनम् ॥ ५६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि वृष, मिथुन, कन्या और मीन लग्न शुभग्रहयुक्त होनेसे यदि उसमें नया अन्न खायाजाय तो खानेवालेकी आयु बल और धनकी वृद्धि होती है ॥ ५६ ॥

नन्दायां भार्गवदिने त्रयोदश्यां त्रिजन्मनि ।

अन्नं श्राद्धं न कुर्वीत पुत्रदारधनक्षयात् ॥ ५७ ॥ (१)

अर्थ—नन्दातिथि, जन्मतिथि, त्रयोदशी, शुक्रवार, जन्मराशि और जन्म-

(१) अत्र त्रिजन्मनीत्यस्य जन्मतिथिः जन्मतारा जन्मराशिरूप इत्यर्थः । हलायुधोऽप्येव वक्ष्यमाणोक्तत्रयोदश्याम् । जन्मदिनश्च नन्दामित्यत्र दिनपदं तिथिपरं तिथि-

तारामें श्राद्ध करनेसे पुत्र मार्या और धनकी हानि होती है ॥ ५७ ॥

नक्षत्रेऽपि न कुर्वीत यस्मिञ्जातो भवेन्नरः ।

न प्रौष्ठपदयोः (x) कार्यं न चाग्नेये च भारतः ।

दारुणेषु (क) च सर्वेषु प्रत्यरा च विवर्जयेत् ॥ ५८ ॥

इति महाभारते ।

अर्थ—महाभारतमें लिखा है कि—मनुष्यका जिस नक्षत्रमें जन्म होय उसमें श्राद्ध न करे और पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिका, आश्लेषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रमें भी श्राद्ध न करना चाहिये [फल यह है कि, “ब्रह्मा विष्णुबृहस्पती शशधरः” इत्यादि वचनसे नये अन्नसे श्राद्ध करनेमें मूल, कृत्तिका और ज्येष्ठा नक्षत्र विहित है । उक्त वचनमें मूल कृत्तिका और ज्येष्ठानक्षत्रक श्राद्धमें निषेध है अतएव उसको नये अन्नके श्राद्धमें कहा है ॥ ५८ ॥

वृश्चिके शुक्लपक्षे तु नवान्न शस्य^त बुधैः ।

अपरे क्रियमाणं हि धनुष्येव कृतं भवेत् ॥ ५९ ॥

इति गराहमिहिराचार्यः ।

अर्थ—बराहमिहिाचार्यने कहाहे ।क, सौर अग्रहायणके महीनेमें विशाखा नक्षत्र और ज्येष्ठानक्षत्रमें और ज्येष्ठानक्षत्रके शेवार्द्धमें सूर्य स्थित न होनेसे शुक्लपक्षमें नया अन्न खाना चाहिये, किन्तु कृष्णपक्षमें नये अन्नसे श्राद्धकरनेसे धनुमें (सौर पौषमें) नवाचश्राद्ध जिस प्रकार निष्फल होताहै उसी प्रकार होताहै ॥५९॥

यत्कृतं धनुषि श्राद्धं मृगनेत्रासु रात्रिषु ।

पितरस्त गृह्णन्ति नवान्नामिपकांक्षिणः ॥ ६० ॥

इति वराहमिहिगचार्यः ।

अर्थ-वराहमिहिराचार्यने कहा है कि, सौर पौषके महीनेमें वा मृगशिराके (ज्येष्ठाके शेषार्द्धमें सूर्य होनेसे) जो मनुष्य नये अन्नसे आश्रय करता है, उसके पितृगण उस आश्रयके अन्नको ग्रहण नहीं करते हैं ॥ ६० ॥

अनावश्यकश्राद्धकालकथनम् ।

नवान्नं नैव नन्दायां न च सुप्ते जर्नादने ।

संदशपाठात् त्रिजन्मनि त्रिजन्म नक्षत्रमिति व्याख्यानं गुरुचरणानामपि प्रामाणिकं राजमार्त्तण्डात् यथा ताराप्रकरणे “सर्वमङ्गलकार्याणि त्रिषु जन्मसु कारयेत् । विवादश्चा-
हमेप्ययात्राक्षीराणि वर्जयेत् ” इति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तेन लिखितम् ।

(+) प्रौष्ठपदा पूर्वाभाद्रपदा द्वितारकृत्वाद्द्विवचनम् । इति ।

(क) "दारुणश्चौराणां रोद्रमेन्द्र नैर्ऋतमेव च" इति च श्राद्धविषेककृद्भूतवचनम् ।

न कृष्णपक्षे धनुषि तुलायां नैव कारयेत् ॥ ६१ ॥ (क)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, नन्दातिथिमें, श्रीहरिके शयनमें, कृष्णपक्षमें, सौर पौषमें और सौर कार्तिकमें नये अन्नसे श्राद्ध न करना चाहिये ॥ ६१ ॥

इति ज्योतिषसारसंग्रहे ।

अपिच ।

शुक्लपक्षे नवं धान्यं पक्वं ज्ञात्वा सुशोभनम् ।

गच्छेत्क्षेत्री विधानेन गीतवाद्यपुरःसरः ॥ ६२ ॥

इत्यभिधाय ।

तेन देवान्पितॄंश्चैव तर्पयेदर्चयेत्तथा ॥ ६३ ॥

इत्याश्विनाधिकारे ब्रह्मपुराणम् ।

अर्थ—ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, आश्विनके महीनेमें शुक्लपक्षमें, धान पकता है उस समय खेतका मालिक गीतवाद्यादिको आगे करके खेतमें आकर नाजको कटावै पीछे उस धानके चावलोंसे देवताओंकी और पितरोंकी पूजा करनी चाहिये । [इस ब्रह्मपुराणके वचनसे प्रसीत होता है कि, पूर्ववचनमें श्रीहरिके शयनकालमें, जो नये अन्नसे श्राद्ध करनेका निषेध है उसको आश्विनमासके शुक्लपक्षके इतर जानना चाहिये ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

त्रयोदशीं जन्मदिनञ्च (×) नन्दां

जन्मक्षतारां सितवासरं च ।

त्यक्त्वा हरीशेन्दु (१) करान्त्यमैत्र-

ध्रुवेषु च श्राद्धविधानमिष्टम् ॥ ६४ ॥ (२)

अर्थ—अब अनियत अर्थात् अनावश्यक श्राद्धका समय कहते हैं, त्रयोदशी, जन्मतिथि, नन्दातिथि, जन्मराशि, जन्मतारा और शुक्रवारको छोड़करके श्रवण,

(क) न च सुप्ते जनार्दने इति आश्विनशुक्लपक्षेतरपरम् । इति श्राद्धतत्त्वेस्मार्त्तनोक्तम् ।

(×) जन्मतिथिश्चेति पाठान्तरम् ।

(१) हरीज्येन्द्राति मलमासतत्त्वादी पाठः । तत्र हरिः श्रवणः इज्यः पुष्य इति स्मार्त्तेन व्याख्यातम् ।

(२) अनावश्यकश्राद्धमाह—त्रयोदशीमिति । त्रयोदशीं जन्मदिनं नन्दातिथिं जन्मराशिं जन्मतारां शुक्रवारञ्च त्यक्त्वा हरीशो यस्य स हरीशः श्रवणः इन्दुर्मुग्गशिरः करो-

मृगाशिर, हस्त, रेवती, अनुराधा, तीनों उत्तरा और रोहिणी नक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये ॥ ६४ ॥

नवान्नाकरणोनिन्दाकथनम् ।

नवं (अ) कृशरूपानि पायसं मधुसर्पिणी ।

वृथा मांसं न चाश्रीयत्पितृदेवविवर्जितम् ॥ ६५ ॥ (❀)

इति देवीपुराणम् ।

अर्थ-देवीपुराणमें लिखा है, नये धानोंके चावल, कृशर (गुडयुक्तलि चॉवल) पिष्टक, पायस, मधु, घृत और मांस इन सब वस्तुओंसे पहिले पितरोंकी और देवताओंकी पूजाकरके पीछेसे खाना चाहिये ॥ ६५ ॥

अपिच ।

वृथा कृशरस्यावपायसापूपशङ्कुलीः ।

भुक्त्वा त्रिरात्रं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥ ६६ ॥ (क)

इति शंखः ।

अर्थ-कृशर, स्याव (घृतक्षीरादिद्वारा पक गोधूमचूर्ण) पायस, पिष्टक,

हस्तः अन्त्य रेवती मेघम् अनुराधा एषु ध्रुवगणेषु च श्राद्धमिष्टम् । एतच्च सावकाश-
श्राद्धविषय यच्छ्राद्धमन्यदिने कर्तुं शक्यते यदकरणे प्रत्यवायाभावः यथा व्रीहियवपाक-
श्राद्धं द्रव्यब्राह्मणप्राप्तिश्राद्ध संक्रान्त्यादिकाम्यातिथिश्राद्धश्चेति अमावस्यादिनित्यश्राद्धन्तु
तद्दिनाकरणे प्रत्यवायादवश्यकर्त्तव्यत्वेन नास्य विषय इति सौभरिणा तु हरिः श्रवण
ईश आर्द्रा इति व्याख्यात तदशुद्धम् आर्द्राया निषेधश्रवणात् । यथा विष्णुधर्मोत्तरे
" नक्षत्राणि तथैवात्र दारुणोप्राणि वर्जयेत् " दारुण उक्तः " दारुणञ्चौरां रौद्रमेन्द्रं
नेर्ऋतमेव च " इति । उग्रमाश्लेषा रौद्रमार्द्रा ऐन्द्रं ज्येष्ठानेर्ऋतं मूलेति । उग्रगणन्तु
उग्रः पूर्वमघान्तकेति । तथा महाभारते-" नक्षत्रे न च कुर्वीत यस्मिन्नातो भवेघ्नरः ।
न प्रोष्ठपदयोः कार्यं तथाग्रेये च भारत । दारुणेषु च सर्वेषु प्रत्यरो च विवर्जयेत् "
प्रोष्ठपदा पूर्वाभाद्रपदा आग्रेयं कृत्तिका प्रत्यरिः पञ्चतारा अत्र यत्र च साक्षाच्छब्दो-
च्चारणेन विशेषविधिरस्ति तत्र विधिवेयर्थ्यमयान्नानेन निषेध इति यथान्नप्राशने सिते-
न्दुजीवदिवस इति । शुक्रवारेऽपि कण्ठोक्तत्वात् विधानमेव । कुर्यात्पुसवनं सुयोगकरणे
चन्द्रे समद्रे तिथ्याविति वचनान्नन्दायामपि पुसवनं कर्त्तव्यमेव । तथा च मूलानुराधा
मघोति वचनाद्दारुणोप्राणत्वेन निषिद्धयोरपि मूलमघयोर्विवाहः कर्त्तव्य एवान्यथा
विधिवैयर्थ्यापत्तेः एवमन्यत्राप्युक्तः । इति ।

(अ) नव नवान्नम् ।

(+) पितृदेवविवर्जितं पितृदेवोद्देशं विना कृतम् नवान्नादि मासास्तं अतएव वृथा कृतमिति ।

(क) तेन देवपित्रातिथिवर्ज्यं कामतः सकृदमीषां भक्षणे त्रिरात्रं कृशरादिताह-
चर्येण नवान्नेऽपि तथा । इति मलमामतत्वे स्मार्त्तेनोक्तम् ।

और शङ्खुली (तिलतण्डुलादिमिश्रित यवागुविशेष) जो मनुष्य इन सब वस्तु-ओंको देवताओंको और पितरोंको निवेदन न करके वृथा भोजन करता है तो उसको त्रिरात्रि उपवासका प्रायश्चित्त होता है अथवा तदनुकल्प दान करना चाहिये । और नया अन्नभी जो देवताओंको और पितरोंको बिना निवेदन किये भोजन करनेसे इसी प्रकारका प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ६६ ॥

नवान्नभोजनविधिः ।

प्राश्यादधिसंयुक्तं नवं विप्राभिमन्त्रितम् ॥ ६७ ॥ (ख)

इति ब्रह्मपुराणम् ।

अर्थ—ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, नये अन्नमें दही मिलाकर ब्राह्मणमें गायत्री मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित कराकर भोजन करना चाहिये ॥ ६७ ॥

अपिच ।

गृहीत्वा ब्राह्मणानुज्ञां स दधि प्राशयेन्नवम् ॥ ६८ ॥

इति स्मृतिः ।

अर्थ—स्मृतिमें लिखा है कि, ब्राह्मणकी आज्ञासे दधिमें मिलाकर नये अन्नको खाना चाहिये ॥ ६८ ॥

अन्यथा ।

अन्न त्रीह्यभावे शालिना नूतनाभावे पुरातनेनापि श्राद्धा-
दिकमाह भट्टभाष्ये स्मृतिः । गृहमेधी त्रीहियवाभ्यां शरद्र-
'सन्तयोर्यजेत । श्यामाकैर्वनीवर्षासु आपत्कल्पे अन्येन
पुरातनैर्वैति ॥ ६९ ॥

अर्थ—नवान्नश्राद्ध नये त्रीहिनामक धानोंके चावलोंसे करना चाहिये, उसके अभाव होनेसे शौंठीके चावलोंसेभी किया जासक्ता है, नये धानोंका अभाव होनेसे नवा श्राद्ध पुराने धानोंके चावलोंसे करना चाहिये भट्टभाष्यधृत स्मृतिके वचनमें इसी प्रकार लिखा है कि, गृहस्थमनुष्य त्रीहिके चावलोंसे शरत्कालमें श्राद्ध करे और यवद्वारा वसन्तकालमें श्राद्धकरे, वानप्रस्थाश्रमीको श्यामाक-धान्यके चावलोंसे वर्षाकालमें श्राद्ध करना चाहिये, किन्तु आपत्कालमें पुराने धानोंके चावलोंसेही श्राद्धका निर्वाह होजाता है ॥ ६९ ॥

(ख) अभिमन्त्रितम् । “ मन्त्रानादेशे गायत्री ” इति वचनाद्गायत्र्या इति श्राद्धतत्त्वे स्मार्ताः ।

अपरञ्च ।

प्रेतमातापितृकस्य पुरातनधान्यालाभे नवेनैव वैश्वदेवे
कृत्वा । नवञ्च ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा ब्राह्मणानुज्ञां गृहीत्वा
भोजनादिकं कर्त्तव्यम् ॥ ७० ॥

अर्थ-माता वा पिताके प्रेत होनेसे पुराणे धानोंके चावलोंका अभाव होनेसे
नये धानोंके चावलोंसे विश्वेदेवका बलि देकर नया अन्न ब्राह्मणोंको दान करके
और ब्राह्मणोंकी आज्ञासे नये अन्नका भोजन करे इसका प्रमाण नीचे
लिखा है ॥ ७० ॥

दत्तैवं ब्राह्मणेभ्यश्च हुत्वा वा वैश्वदेविकम् ।

अन्यो (❀) नवान्नमश्रीयादिति वौधायनोऽब्रवीत् ॥ ७१ ॥

इति नव्यवर्धमानधृतास्मृतिः ।

अर्थ-नवान वर्द्धमानकी स्मृतिमें लिखा है कि, श्राद्धके करनेमें असमर्थ
मनुष्य वैश्वदेवकी आहुति और ब्राह्मणोंको दानकरके स्वयं नया अन्न खाना
चाहिये ॥ ७१ ॥

इति नवान्नम् ।

अथ जन्मादिनकृत्यम् । (क)

सर्वैश्च जन्मदिवसे स्नातैर्मङ्गलपाणिभिः ।

गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ ७२ ॥

स्वनक्षत्रञ्च पितरौ तथा देवः प्रजापतिः ।

प्रतिसंवत्सरञ्चैव कर्त्तव्यं महोत्सवः ॥ ७३ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ-मनुष्यकी जन्मतिथिके दिनमें जलमें तिल मिलाकर उससे स्नान करके
नये वस्त्रको पहनकर दूर्वा गोरौचनादियुक्त जन्मग्रन्थि दहिने हाथमें धारण
करके गुरु, देवता, अग्नि, ब्राह्मण, स्वीय जन्मनक्षत्र, पिता, माता और प्रजा-
पति देवताकी (ब्रह्माकी) विधानपूर्वक पूजा करनी चाहिये । प्रतिवर्षकी जन्म-
तिथिमेंही उक्तप्रकारसे महोत्सव करना चाहिये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

(•) अन्येः श्राद्धाकरणसमर्थः श्राद्धानधिकारी च अत एव विधया नवमेकोद्दिष्टे
दीयते मुन्यते च । इति श्राद्धतत्त्वे स्मार्त्ताः ।

(क) जन्मतिथिकृत्यं मलमासे न कर्त्तव्यं चान्द्रमासीयत्वेन सावकाशश्चात् । न च
तस्य सौरमासीयत्वं तथात्वे तन्मासे तत्तिथेः कदाचिदप्राप्ती तदर्थं तत्कृत्यलोपापत्तेः ।
नचोपापत्तिः प्रतिसंवत्सरे तद्विधानात् । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेनाभिहितम् ।

अपिच ।

तिलोद्वर्तस्तिलस्त्रायीतिलहोमी तिलप्रदः ।

तिलभुक्तिलवापी च पट्टतिर्ली नावसीदति ॥ ७४ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वमें लिखा है कि जन्मतिथिमें तिलोद्वर्तन, तिलस्त्रान, तिल-होम, तिलप्रदान, तिलभोजन और तिल बोलनेसे उस मनुष्यको अवसन्नताप्राप्ति नहीं होती है ॥ ७४ ॥

अन्यच्च ।

गुडदुग्धतिलानद्याजन्मग्रन्थेश्च बन्धनम् ।

गुग्गुलं निम्बसिद्धार्थं दूर्वागोरोचनायुतम् ॥ ७५ ॥

इति कृत्याचिन्तामणौ ।

अर्थ-कृत्याचिन्तामणिमें लिखा है कि, जन्म तिथिमें दूधमें गुड और तिल मिलाकर त्राय और गुग्गुल, निम्ब, श्वेतसर्पप, दूर्वा और गोरोचनायुक्त सूत्रसे बंधने हाथमें ग्रन्थि बन्धन करे ॥ ७५ ॥

अपरश्च ।

खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वानमेव च ।

आमिपं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत् ॥ ७६ ॥

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ-स्कंदपुराणमें लिखा है कि-जन्मतिथिमें नाखून और बालोंका कटाना, मैथुन, अध्वगमन (यात्रा) आमिपमक्षण, कलह और हिंसा इन सब कार्योंको न करना चाहिये ॥ ७६ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

स्नात्वा जन्मदिने स्त्रियं परिहरन्प्राप्नोत्यभीष्टां श्रियं

मत्स्यान्मोचयतो द्विजाय ददतोऽप्यायुश्चिरं वर्द्धते ।

सङ्गन्खादति यस्तु तस्य रिपवो नाशं प्रयान्ति ध्रुवं

भुङ्क्ते यस्तु निरामिपं स हि भवेज्जन्मान्तरे पण्डितः ॥ ७७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि-जन्मतिथिमें स्नान करके और स्त्रीसंसर्ग

परित्यागकरनेसे अतुल श्री (लक्ष्मी) प्राप्ति होती है और मत्स्यमोचनपूर्वक
आह्वणको दान करनेसे आयुकी वृद्धि होती है जन्मतिथिमें सक्तु (भर्जितयवा-
दिचूर्ण सतुआ) खानेवाले मनुष्यके शत्रुओंका नाश होता है, और निरामिष
(मांसरहित) भोजनकरनेसे जन्मान्तरमें पण्डित होता है ॥ ७७ ॥

अन्यच्च ।

मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा ।

अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥ ७८ ॥

इति बृहमनुः ।

अर्थ—बृहमनुने कहा है कि—मृतक शरीरको छूनेसे, पुत्रके होनेसे, संक्रान्तिके
निमित्त, श्राद्धके दिन, जन्मतिथिके दिन और न छूनेकी वस्तुको छूनेसे गरम-
पानीसे स्नान करना चाहिये ॥ ७८ ॥

अथ जन्मतिथेरुभयदिने लाभे व्यवस्थामाह ।

युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया ।

रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता ॥ ७९ ॥

इति देवीपुराणम् ।

अर्थ—देवीपुराणमें लिखा है कि, युगाद्या जन्मतिथि और आश्विनके मही-
नेकी शुक्लासप्तमी यदि उभयदिन पूर्वाह्णमें प्राप्ति होय तब उदयगामिनी तिथि-
कोही ग्रहण करे अतएव जन्मतिथि दो दिनके पूर्वाह्णमें होय तो परादिनमें कृत्य
करना चाहिये ॥ ७९ ॥

अपिच ।

घस्रद्वये जन्मतिथिर्यदि स्यात्पूज्या तदा जन्मभसंयुतैव ॥

असंयुता भेन दिनद्वयेऽपि पूज्या परा या भवतीह यत्नात् ८० ॥

इदं वचनं बृहद्राजमार्त्तण्डेपि ।

अर्थ—बृहद्राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि—दोनों दिनके पूर्वाह्णमें जन्मतिथि होनेसे
जिस दिन जन्मका नक्षत्र पूर्वाह्णमें होय तो उसी दिन जन्मतिथिका कृत्य
करना चाहिये और दोनों दिन पूर्वाह्णमें जन्मनक्षत्र होनेसे वा एकादिन भी न

होनेसे परादिनमें जन्मतिथिका कृत्य करना चाहिये । पूर्वाह्नके इतर कालमें जन्मनक्षत्र होनेसे भी ग्रहण न करे ॥ ८० ॥

विस्तरेणालं प्रकृतमनुसरामः ।

अथ स्वनक्षत्रे जन्मतिथिफलम् ।

जन्मक्षयुक्ता यदि जन्ममासे यस्य ध्रुवं जन्मतिथिर्भवेच्च ।

भवन्ति संवत्सरमेव यावन्नैरुज्यसन्मान सुखानि तस्य ॥ ८१ ॥ (x)

अर्थ-जन्मनक्षत्रका जन्मतिथिमें होनेसे फल कहते हैं-यदि किसी मनुष्यके जन्म महीनेमें जन्मनक्षत्रयुक्त जन्मतिथि होय तो उस वर्षमें उस मनुष्यको रोग नहीं होता है और वर्षभरतक सन्मान सुख और अनेकप्रकारके भोग प्राप्त होते हैं ॥ ८१ ॥

• बारफलम् ।

कृतान्तकुजयोर्वारे यस्य जन्मदिनं भवेत् ।

अनृक्षयोगसंप्राप्तो विघ्नस्तस्य पदेपदे ॥ ८२ ॥ (१)

अर्थ-यदि किसी मनुष्यकी शनिवारमें वा मङ्गलवारमें, जन्मतिथि होय तो उस मनुष्यको विघ्न होता है और उसमें यदि जन्म नक्षत्र न होय तो वह संवत्सर उस मनुष्यके पदपदमें विघ्नदायक होता है ॥ ८२ ॥

अथ शनिमङ्गलवारयुक्तजन्मनक्षत्रफलम् ।

जन्मनृक्षे यदि स्यातां वारौ भौमशुनैश्चरौ ।

स मासः कल्मषो नाम मनोदुःखप्रदायकः ॥ ८३ ॥ (२)

अर्थ-जिस किसी महीनेमें जन्मनक्षत्र यदि मङ्गलवारमें वा शनिवारमें होय तो उस मनुष्यके उस महीनेको पापका महीना कहते हैं और उस मनुष्यको उसी महीनेमें अनेकप्रकारके दुःख प्राप्त होते हैं ॥ ८३ ॥

(x) जन्मतिथौ स्वनक्षत्रयोगे फलमाह-जन्मक्षेति सुगमम् ।

(१) शनिकुजवारे जन्मतिथिप्राप्तौ दोषमाह-कृतान्तेति । शनिमङ्गलवारे जन्मतिथौ सत्यां विघ्नः स्यात् । तथा अनृक्षयोगसंप्राप्तौ ऋक्षयोगाभावे पदेपदे विघ्नः स्यादित्यर्थः । अतएव सौरारयोर्दिने मुक्ता देया अनृक्षे तु काञ्चनमिति पृथक्पृथक् प्रतीकारोऽनन्तरं वक्ष्यते । सौभारिणा तु यदि नक्षत्रयोगाभावः स्यात्तदैव शनिकुजवारे दोषो भवेत् इति निगदित आत्मनो भूस्त्वत्वादिभाति ।

(२) यस्मिन्कारिमात्रे मासि शनिकुजवारे जन्मनक्षत्रे सति दोषमाह-जन्मनक्षत्रे कल्मषः पाप इत्यर्थः ।

अथ दोषशान्तिः ।

तस्य सर्वोपाधिसानं ग्रहविप्रसुरार्चनम् ।

सौरारयोर्दिने मुक्ता देयाऽनृक्षे तु काञ्चनम् ॥ ८४ ॥ (१)

अर्थ-जन्मके तिथिमें जन्मके महीनेमें और जन्मके नक्षत्रमें शनिवार अथवा मङ्गलवारके होनेसे जो दोष होता है उस दोषके शान्तिके अर्थ सर्वोपाधि जलमें मिलाकर उस जलसे स्नान करे और ग्रह ब्राह्मण और देवताओंकी पूजा करनी चाहिये और शनि मङ्गलवारमें जन्मकी तिथि और जन्मका नक्षत्र होनेसे दोष-शान्तिके अर्थ मुक्ता (मोती) का दान करे, जन्मनक्षत्रहीन जन्मकी तिथिमें काञ्चन (सुवर्ण) दान करना चाहिये ॥ ८४ ॥

अथ सर्वोपाधिकथनम् ।

मुरा मांसी वचा कुपुं शैलेयं रजनीद्वयम् ।

शुंठी चम्पकमुस्तश्च सर्वोपाधिगणः स्मृतः ॥ ८५ ॥

अर्थ-अब सर्वोपाधिको कहते हैं-मुरामांसी (जटामांसी) वचा, कूठ, शैलेय अर्थात् शैलज हल्दी, दारुहल्दी, सोंठ, चम्पक (भूमिचम्पक) नागरमोचा इन सब वस्तुओंको सर्वोपाधि कहते हैं ॥ ८५ ॥

इति जन्मतिथिकथनम् ।

इति वंशावरेत्यांतर्वीतिकान्यकुञ्जकुलभूषणभारद्वाजगोत्रोद्भवेनत्रिपाठद्युपनाम-

केन पाण्डित बालेकिलालात्मजेन श्यामुन्दरशर्मणा सम्पादितभाषाटीकया

विभूषिते ज्योतिषतत्त्वसुधारणवे देवताघटनादि

तिथ्यन्तः पञ्चमस्तरङ्गः ॥ ५ ॥

(१) एतत्प्रतिकारमाह-तस्येति । यस्य जन्मतिथौ, प्रतिमास जन्मनक्षत्रे वा दोष उक्तस्तस्येत्यर्थः । सौरारयोर्दिने जन्मतिथौ जन्मनक्षत्रे वा मुक्ता देया तथा अनृक्षे जन्म तिथौ स्वनक्षत्रयोगाभावे तु काञ्चनं देयमित्यर्थः । इति ।

षष्ठस्तरङ्गः ६.

अथ यात्राप्रकरणम् ।

निषिद्धलग्नकथनम् ।

सिंहे धनुषि मीने च स्थिते सप्ततरङ्गमे ।

यात्रोद्वाहगृहारम्भक्षौरकर्माणि वर्जयेत् ॥ १ ॥ (अ)

इति संवत्सरप्रदीपे ।

अर्थ-अब यात्राप्रकरण कहते हैं-संवत्सरप्रदीपमें लिखा है कि, सिंहमें, धनमें और मीनमें सूर्य होनेसे अर्थात् भादोंमें, पौषमें और चैत्रमें यात्रा, विवाह गृहारम्भ और क्षौरकर्म न करना चाहिये ॥ १ ॥

निषिद्धतिथिकथनम् ।

पष्ठचष्टमीद्वादशीषु न गच्छेन्निदिनस्पृशि ।

पूर्णिमाप्रतिपददर्शरिक्तावमदिनेषु च ॥ २ ॥ (आ)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-दीपिकामें लिखा है कि-पष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, पूर्णिमा, प्रतिपदा और

(अ) एष यात्रानिषेधः राजेतरपर इति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तनाभिहितम् । भाद्रपदैत्र-पौषे बृहद्यात्रानिषेध इति ज्योतिःसारे रामकान्तः ।

(आ) निषिद्धतिथिमाह-पष्ठीति । त्रिदिनस्पृशि अहस्पृशि पूर्वोक्ते अत्र च प्रति-प्रदोषविधिनिषेधश्च श्रूयते । यथा राजमार्तण्डे “प्रतिपस्तु प्रयातानां सिद्धिरेव न संशयः” एतच्च चन्द्रस्य क्षणित्वपूर्णत्ववशेन शुक्लकृष्णभेदेन निषेधो विधिश्च ज्ञातव्य इति । दशोऽमावस्या रिक्ता चतुर्थीनवमी चतुर्दश्यः । अवमदिनं पूर्वोक्तं अहस्पृगवमादिनयोश्च भेदस्तत्रैव कृतः । इति-शेषं सुगमार्थम् । अत्र च लग्नविशेषवशेन तिथिनिषेध उक्तः । पशुपतिदीपिकायाम्-“द्वितीयाभीनधनुषोश्चतुर्थी वृषकुम्भयोः भेषकर्कटयोः पष्ठी कन्या-मिथुनकेऽष्टमी । दशमी वृश्चिके सिंहे द्वादशी मकरे तुले । एभिर्योतो न जीवेत यदि शक्रसमो भवेत् । एषु गन्तुर्विनाशः स्यात्प्रनेशे भद्रमागृहे । विवाहे चैव वैधव्यं ब्रूडार्या मरणं ध्रुवम् । कृष्णारम्भे फलं नास्ति व्रतदाने च मूर्खता । शुभकर्माणि सर्वाणि नैव कुर्याद्विचक्षणः ॥” अत्र केचित्तिथिभेदात्पूर्वादिदिक्षु योगिन्यवस्थितत्वेन तत्तादृशि यात्रा-निषेध वदन्ति वचनञ्च पठन्ति । “प्रतिपन्नवमी पूर्वं रामारुद्राश्च पावके । शरत्रयोदशी याम्ये वेदा मासाश्च नेर्ऋते । पष्ठी चतुर्दशी पश्चाद्वायौ पूर्णा च सप्तमी । द्वितीया दशमी सौम्यामैशान्यामष्टमी कुहूः । वामे शुभकरी देवी दक्षिणे मृत्युदा स्थिता । वधवन्धकरी चाग्रे पृष्ठे सर्वार्थसाधिनी ” एतदनाकरं साकरत्वे वा योगिन्याश्चतुर्दण्डक्रमेण घोटकगत्या वामावर्त्तनं प्रातिदिकस्थभ्रमणादनास्थाप्रसङ्गः स्यात् । तथा च पठन्ति “यामाद्वैनाश्व-गत्या तु भ्रमते दिक्षु योगिनी ” इति ।

रिक्ता तिथिमें ग्रहस्पर्श और अवम दिनमें यात्रा न करना चाहिये ॥ २ ॥

आपेच ।

तथा यमद्वितीयायां यात्रायां मरणं भवेत् ॥ ३ ॥

इति ज्योतिस्तारे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमें लिखा है कि-यमद्वितीया (भ्रातृद्वितीया) तिथिमें यात्रा करनेसे मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ३ ॥

शुभाशुभतिथिकथनम् ।

अज्ञातचन्द्रा प्रतिपत्तिथिर्या सा सर्वथा सिद्धिकरी न पुंसाम् ।

कलोनचन्द्रा प्रतिपत्तिथिर्या सा सर्वदा सिद्धिकरी नियुक्ता ॥ ४ ॥

अर्थ-अज्ञातचंद्रमा अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिमें यात्रा करनेसे जाने-वालेकी मनकामना सिद्ध नहीं होती है और कलोनचंद्रमा (कृष्णपक्षकी प्रतिपदा) तिथिमें यात्रा करनेसे मनुष्यकी यात्रा शुभ होती है ॥ ४ ॥

आपेच ।

प्रतिपत्सु प्रयातानां सिद्धिरेव न संशयः ।

द्वितीयायां शुभः पन्थास्तृतीयायां जयं भवेत् ॥ ५ ॥

वधवन्धनसंक्लेशश्चतुर्थ्यां नात्र संशयः ।

पञ्चम्यामीप्सितार्थः स्यात्पष्ठ्यां व्याधियुतो भवेत् ॥ ६ ॥

सप्तम्यामर्थलाभः स्यादष्टम्यामन्त्रपीडनम् ।

नवम्यां मृत्युसंयोगात्र गन्तव्यं कदाचन ॥ ७ ॥

दशम्यां भूमिलाभः स्यादेकादश्यामरोगिता ।

द्वादश्याञ्च न गन्तव्यं सर्वसिद्धा त्रयोदशी ॥ ८ ॥

चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां गमनञ्च निषेधयेत् ॥ ९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, कृष्णपक्षकी प्रतिपदामें यात्रा करनेसे मनोरथ सिद्ध होता है, इसी प्रकार दोनों पक्षोंकी द्वितीयामें यात्रा शुभ होती है, तृतीयामें जयप्राप्ति होती है, चतुर्थीमें वध, बन्धन और क्लेश होता है, पञ्चमीमें अभीष्टसिद्धि होती है, षष्ठीमें रोग होता है, सप्तमीमें धनकी प्राप्ति होती है, अष्टमीमें अछाघात होता है, और नवमीमें यात्रा करनेसे मृत्यु होती है, अतएव इस तिथिमें कभी न जाना चाहिये और दशमी तिथिमें यात्रा करनेसे भूमि

(पृथिवी) मिलती है. इसी प्रकार एकादशीमें आरोग्यताप्राप्ति होती है किन्तु द्वादशीमें यात्रा न करे, त्रयोदशीमें सब कार्य सिद्ध होते हैं. चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा तिथिमें यात्रा न करना चाहिये ॥ ५-९ ॥

वारादिकथनम् ।

सत्यजोदिवसे यात्रां सूर्यारार्कान्दुवक्रिणाम् ।

अष्टवर्गदशापाकेष्वनिष्टफलदस्य च ॥ १० ॥ (इ)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि—रवि, मंगल, शनि और सोमवारमें और ग्रहोंके वक्ती होनेसे उनके वारोंमें यात्रा न करना चाहिये और अष्टवर्गमें वा दशामें जो ग्रह अनिष्टदायक होयें उन सब ग्रहोंके वारमेंभी यात्रा न करनी चाहिये ॥१०॥ (टीकामें जो सब वचन लिखे हैं उनके मध्यमें किसी किसी अत्यन्त आवश्यक वचनोंका सर्वसाधारणके जानने निमित्तसे मूलमें लिखकर उनकाभी भाषा-नुवाद कर दिया है जिसके देखनेसे पाठकगण अनायासमें समझ जायेंगे ।)

अपिच ।

सूर्यदिनेऽध्वनि नाशश्चन्द्रे शक्तिक्षयोऽर्थहानिश्च ।

ज्वलनासृक्पितरुजः भौमे बुधे सुहृत्प्राप्तिः ॥ ११ ॥

(इ) यात्रायाम् निषिद्धवारानाह—सत्यजोदिवसि । सूर्यस्वारस्य मङ्गलस्य आर्कः शने-
रिन्दोऽश्वन्द्रस्य वक्त्रिग्रहस्य वारे यात्रा त्यजेत् । तथा लघुयात्रायां “सूर्यदिवसे विनाश-
श्चान्द्रे शक्तिक्षयोऽर्थहानिश्च । ज्वलनासृक्पितरुजः भौमे बुधे सुहृत्प्राप्तिः । जेने जयष-
नलाब्धिः शौक्रे स्त्रीवस्त्रगन्धधनलभः । दैन्यवषवन्वरोगान्प्राप्नोति दिनेऽर्कपुत्रस्य ”
तथाच तत्रैव—“वक्त्री न शुभः केन्द्रे तदहस्तद्वर्गलभश्च ” इति । अत्र च वाराधिपतेरनु-
लोमादिशि गमनं प्रशस्तं प्रतिलोमादिशि न प्रशस्तम् । यथा राजमार्तण्डे—“ तोयेश
बह्विषनदान्तकराक्षसाना यातो गदानिलशतक्रतुशङ्कराणाम् । दिग्भागमुष्णाकिरणादि
दिनेषु देवैः सशक्तितोऽपि निधनं न विरादुपेति । प्रतीर्त्तां रविवारेण प्राचींश्च रविनन्दने ।
उदीर्त्तां भूमिपुत्रेण न यात्रा दक्षिणां बुधे ॥ तथा पशुपतिदीपिकायाम् “ दक्षिणादिहमु-
खगमनं गमनं वाप्यभिनवासु नारीषु विषयमपि शस्यफलानां न बुधो बुधवासरे कुर्यात् ”
सामान्येनोक्तं विशेषमाह अष्टवर्गोति । अष्टवर्गाद्युक्तगोचरे दशापाकादी आदिशब्दान्त-
र्देशादौ नाडीनक्षत्रादौ चानिष्टफलदस्य शुभग्रहस्यापि वारे यात्रा सत्यजोदिवसे । एवञ्च
भाष्यग्रहस्यापि अष्टवर्गादौ शुभफलदस्य वारे यात्रा प्रशस्ता । तथा प्रतिलोमादिग्रह-
स्यापि वारे गोचरादौ शुभदत्त्वेन यात्रा शुभेति तात्पर्यार्थः । यथा राजमार्तण्डे—“आश्व-
र्यक पुनरिदं त्वशुभः शुभो वा यः स्याद्ग्रहः शुभफलो दिनः प्रशस्तः ” तथा लघुया-
त्रायाम् “ उपचयग्रहादिने सिद्धिः क्रूरेष्वपि यात्रिणा भवति । सीम्येत्यनुपचयर्थे न
भवति यात्रा शुभा यातुः ” ॥

जैवे धनजयलब्धिः शौके स्त्रीवस्त्रगन्धधनलाभः ।

दैन्यवधबन्धरोगान्प्राप्नोति दिनेऽर्कपुत्रस्य ॥ १२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, रविवारमें यात्रा करनेसे मृत्यु होती है, इसी प्रकार सोमवारमें शक्तिका क्षय और धनकी हानि होती है, मंगलवारमें आश्रिका भय और रक्तपित्तकी पीडा होती है, बुधवारमें बन्धुकी (भाईकी) प्राप्ति होती है, बृहस्पतिवारमें धनप्राप्ति और जयप्राप्ति होती है, शुक्रवारमें स्त्री, वस्त्र, गन्धद्रव्य और धनकी प्राप्ति होती है और शनिवारमें यात्रा करनेसे दैन्यता, वध, बन्धन और रोगकी प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥ १२ ॥

अन्यथ ।

उपचयग्रहादिने सिद्धिः क्रूरैष्वपि यायिनां भवति ।

सौम्येऽप्यनुपचयस्थे न भवति यात्रा शुभा यातुः ॥ १३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, क्रूरग्रह यदि उपचयस्य (तीसरे, ग्यारहवें, छठे वा दशवें स्थानमें स्थित) होयें तब उन सब ग्रहोंके वारोंमें जानेवालेकी यात्रा शुभ होती है और शुभग्रह यदि अनुपचयस्थ होयें तो शुभग्रहोंके वारोंमें यात्रा शुभ होती है ॥ १२ ॥

अपरञ्च ।

शुक्रादित्यदिने न वारुणदिशं न ज्ञे कुजे चोत्तरां

मन्देन्दोश्च दिने न शक्रककुभं याम्यां गुरो न व्रजेत् ।

शूलानोतिषिलङ्घ्य यान्ति मनुजा ये सौख्यवित्ताशया

भ्रष्टाशाः पुनरापतन्ति यदि ये शक्रेण तुल्या अपि ॥ १४ ॥

अर्थ-शुक्रवार और रविवारमें पश्चिमदिशाको न जाना चाहिये, इसी प्रकार बुधवार और मंगलवारकी उत्तरदिशामें न जाय, शनिवार और सोमवारमें पूर्वदिशाको न जाय और बृहस्पतिवारमें दक्षिणदिशाको न जाना चाहिये, जो मनुष्य इन दिशाशूलोंके दिनमें सुख और धनकी आशा करके यात्रा करता है तो इन्द्रके समान होनेसेभी उस मनुष्यका नाश होता है ॥ १४ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

दिगीशाहे शुभा यात्रा पृष्ठाहे मरणं ध्रुवम् ॥ १५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, दिशाके स्वामीके वारमें यदि उसी दिशामें

यात्रा करनेसे शुभफल होता है और दिशाके मालिककी पीठकी तरफ जानेसे यात्रीकी मृत्यु होती है ॥ १५ ॥

अथ दिग्धिपतिकथनम् ।

सूर्यः शुक्रः क्षमापुत्रः सैहिकेयः शनिः शशिः ।

सौम्यस्त्रिदशमन्त्री च प्राच्यादिदिग्धीश्वराः ॥ १६ ॥ (✽)

अर्थ-अब दिशाओंके स्वामी वर्णन करते हैं, यथा दोषिकामें लिखा है कि, पूर्वदिशाके मालिक सूर्य हैं, इसी प्रकार आग्निकोणके मालिक शुक्र, दक्षिणके मालिक मंगल, नैऋत कोणके मालिक राहु, पश्चिमके मालिक शनि, वायुकोणका मालिक चन्द्रमा, उत्तरका मालिक बुध और ईशान कोणका मालिक बृहस्पति होता है ॥ १६ ॥

अपिच ।

दिगीश्वारे गमनं प्रशस्तं विहाय सौम्यं यदि जीविताशा ।

न वारदोषाः प्रभवन्ति रात्रौ विशेषतोऽर्कावनिभूशनीनाम् ॥ १७ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ-गर्गने कहा है कि, दिशाके स्वामीके वारमें उसी दिशामें जाना चाहिये किन्तु बुधवारको जीनेकी आशा करनेवाला मनुष्य उत्तरदिशामें न जाय । रात्रिमें यात्रा करनेसे उक्त वारोंका दोष नहीं होता है, विशेष करके रवि, मंगल और शनिवारमें यात्रा करनेसे दोष नहीं होता है ॥ १७ ॥

अन्यच्च ।

पूर्वस्यां सूर्यशुक्रौ च प्रतीच्यां शनिसोमकौ ।

दक्षिणस्यां क्षितिमुत्तश्चोत्तरस्यां बृहस्पतिः ॥ १८ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमें लिखा है कि-रवि और शुक्रवारमें पूर्वदिशामें जाना चाहिये इसी प्रकार शनि और सोमवारमें पश्चिमदिशाको जाय, मंगलवारमें दक्षिणदिशाको जाय और बृहस्पतिवारमें उत्तरदिशाको जाना चाहिये ॥ १८ ॥

अथ दिशाशूलकथनम् ।

न गच्छेदुत्तरे भौमे न प्राच्यान्दिशि सोमके ।

याम्ये देवगुरौ चैव न गन्तव्यं कदाचन ॥ १९ ॥

ईशाने चैव नैर्ऋत्यामाग्रेय्यां मारुते तथा ।

न गन्तव्यं सुराचार्ये प्रतीच्यां रविशुक्रयोः ॥ २० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, मंगलवारमें उत्तरदिशाको यात्रा न करनी चाहिये, इसी प्रकार सोमवारमें पूर्वको न जाय, दक्षिण ईशानकोण नैर्ऋत अग्निकोण और वायुकोणमें बृहस्पतिवारको न जाना चाहिये और रविवार शुक्रवारको पश्चिम दिशामें न जाय ॥ १९ ॥ २० ॥

प्रकारान्तरश्च ।

शानिसोमदिने प्रार्चीं दक्षिणां बुधजीवयोः ।

प्रतीचीं रविशुक्राहे गच्छेद्द्रौमे न चोत्तराम् ॥ २१ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि, शानि और सोमवारमें पूर्वदिशाको न जाना चाहिये इसी प्रकार बुध और बृहस्पतिवारमें दक्षिणदिशाको न जाय, रवि और शुक्रवारमें पश्चिमको न जावे मङ्गलवारमें उत्तरदिशाकी यात्रा न करनी चाहिये ॥ २१ ॥

अथ वारवेलाकथनम् ।

कृतमुनियमश्रमङ्गलरामर्षुपु भास्करादियामार्द्धे ।

प्रभवति हि वारवेला न शुभा शुभकार्यकरणाय ॥ २२ ॥ (×)

अर्थ-अथ वारवेलाको कहते हैं-दिनमानको आठभागमें विभक्त करनेसे उसके एक २ भागका नाम यामार्द्ध होता है । रविवारके चौथे यामार्द्धको वारवेला कहते हैं, अर्थात् डेढ़ प्रहरके बाद एक यामार्द्ध वारवेला होता है, इसी प्रकार सोमवारके सातवें यामार्द्धको वारवेला कहते हैं, मंगलवारके दूसरे यामार्द्धमें वारवेला होती है, बुधवारके पांचवें यामार्द्धमें, बृहस्पतिवारके आठवें यामार्द्धमें, शुक्रवारके तीसरे यामार्द्धमें और शनिवारके छठे यामार्द्धमें वारवेला होती है अर्थात् अढ़ाई प्रहरके बाद वारवेला होती है । इन सब वारवेलाओंमें शुभाशुभ कोई कार्य न करना चाहिये ॥ २२ ॥

(×) वारवेलामाह-कृतोति । कृतादिसस्यासु चतुरादिसस्यानिपथेषु यथासंख्य भास्करादीनां यामार्द्धं प्रहरार्द्धं तत्र वारवेला स्यात्सा शुभाशुभकर्मकरणाय न शुभा स्यात् । रविवारे चतुर्थयामार्द्धं वारवेला सोमवारे सप्तमयामार्द्ध इत्यादि । अत्र च वारप्रवृत्तिकालादेव वारवेला गणनीयेत्याहुरेतच्च वृत्तिसिद्ध व्यपदिश्यते च कैश्चित् । इति ।
“ रविः कविः कुजो रहुर्गुरुश्चन्द्रः शनिर्बुधः । एतेषां राहुवेलायां वारवेलाः प्रकीर्तिताः ”
इति ग्रन्थान्तरे ।

अथ कालादिकथनम् ।

कालस्य वेला रवितः शराक्षी कालानलागाम्बुधयो गजेन्द्र ।

दिनेनिशायामृतवेदनेत्रनगेषुरामा विधुदन्तिनौ च ॥ २३ ॥ (*)

अर्थ—अब कालवेलाको कहते हैं—रविवारके पांचवें यामार्द्धमें कालवेला होती है अर्थात् दोपहरके बाद एक यामार्द्धको कालवेला कहते हैं, इसी प्रकार सोमवारके दूसरे यामार्द्धको कालवेला कहते हैं, मङ्गलवारके छठे यामार्द्धको, बुधवारके तीसरे यामार्द्धको, बृहस्पतिवारके सातवें यामार्द्धको शुक्रवारके चौथे यामार्द्धको और शनिवारके पहिले यामार्द्धको और आठवें यामार्द्धको कालवेला कहते हैं—यह कालवेला दिनमें होती है, रात्रिमें रविवारके छठे यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं, इसी प्रकार सोमवारके रात्रिके चौथे यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं, मङ्गलकी रात्रिके दूसरे यामार्द्धको, बुधवारकी रात्रिके सातवें यामार्द्धको बृहस्पतिवारकी रात्रिके पाँचवें यामार्द्धको, शुक्रवारकी रात्रिके तीसरे यामार्द्धको और शनिवारकी रात्रिके पहिले और आठवें यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं ॥ २३ ॥

अपिच ।

रवौ वर्जं चतुःपञ्च सोमे सप्तद्वयं तथा ।

कुजे पष्ठद्वयं चैव बुधे पञ्चतृतीयकम् ॥ २४ ॥

गुरौ सप्ताष्टमञ्चैव त्रिचत्वारि च भार्गवे ।

शनावाद्यञ्च पष्ठञ्च शेषं च परिवर्जयेत् ॥ २५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिः सारसंग्रहमें लिखा है कि, रविवारमें चौथे और पांचवें यामार्द्धको अर्थात् डेढ प्रहरके बाद एक प्रहरको त्यागकरके कर्म करना चाहिये, इसी प्रकार सोमवारके दूसरे और सातवें यामार्द्धको, मङ्गलवारके दूसरे और छठे यामार्द्धको बुधवारके तीसरे और पांचवें यामार्द्धको बृहस्पतिवारके सातवें और आठवें यामार्द्धको, शुक्रवारके तीसरे और चौथे यामार्द्धको और शनिवारके पहिले, छठे और आठवें यामार्द्धको परित्यागकरके कार्य करना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

(+) कालवेला माह—कालस्येति । रवितो रविवागदितः दिने यथासंख्यं शरादि यामार्द्धानि कालस्य वेला स्यात् । गजेन्द्र इति द्विवचनात् शनिवारं प्रथमं शेषञ्च यामार्द्धं कालवेला स्यात् । रात्रौ तु यथासंख्यं तुषेदादियामार्द्धानि कालवेला इत्यर्थः । अत्र च कालस्य नेलेति संज्ञया अशुभत्वं दर्शितमिति ।

अथ कालरात्र्यादिकथनम् ।

रवौ पष्ठं विधौ वेदं कुजवारे द्वितीयकम् ।

बुधे सप्त गुरौ पञ्च भृगुवारे तृतीयकम् ॥ २६ ॥

शनावाद्यं तथा चान्तं रात्रौ कालं विवर्जयेत् ॥ २७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिः सारसंग्रहमें लिखा है कि, रविवारकी रात्रिमें छठे यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं, इसी प्रकार सोमवारकी रात्रिके चौथे यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं, मङ्गलकी रात्रिके दूसरे यामार्द्धको, बुधकी रात्रिके सातवें यामार्द्धको, बृहस्पतिकी रात्रिके पांचवें यामार्द्धको, शुक्रवारकी रात्रिके तीसरे यामार्द्धको और शनिवारकी रात्रिके पहिले यामार्द्धको और आठवें यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं, इसमें कोई कार्य न करना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥

अपिच ।

रवौ रसाब्धी हिम गौह्याब्धी द्वयं महीजे विधुजे शराश्वौ ।

गुरौ शराष्टौ भृगुजे तृतीयं शनौ रसाद्यन्तामिति क्षपायाम् ॥ २८ ॥

इति सरकृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सरकृत्यमुक्तावल्याम् लिखा है कि, रविवारकी रात्रिके छठे और चौथे यामार्द्धमें कालरात्रि होती है, इसी प्रकार सोमवारकी रात्रिके सातवें और चौथे यामार्द्धमें मङ्गलकी रात्रिके दूसरे यामार्द्धमें बुधकी रात्रिके पांचवें और सातवें यामार्द्धमें बृहस्पतिकी रात्रिके पाँचवें और आठवें यामार्द्धमें, शुक्रवारकी रात्रिके तीसरे यामार्द्धमें और शनिवारकी रात्रिके पहिले, छठे और आठवें यामार्द्धमें कालरात्रि होती है ॥ २८ ॥

अथ फलम् ।

यात्रायां मरणं काले वैधव्यं पाणिपीडने ।

व्रते ब्रह्मवधः प्रोक्तः सर्वकर्मसु तं त्यजेत् ॥ २९ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-कालवेलादिमें यात्रा करनेसे यात्रीकी मृत्यु होती है इसी प्रकार विवाह करनेसे कन्या विधवा होती है और यज्ञोपवीत करनेसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है अतएव कालवेला दिमें कोई काम न करे ॥ २९ ॥

अथ कुलिककालनिरूपणम् ।

मन्वर्कदिग्वस्वृत्तुवेदपक्षैर्कान्मुहूर्तैः कुलिका भवन्ति ।

दिवा निरैकैरथ यामिनीषु ते गर्हिताः कर्मसु शोभनेषु ॥ ३० ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, रव्यादि सात वारोंमें दिनके समय क्रमानुसार चौथे, बारह, दश, आठ, छः चार और दो मुहूर्त कुलिक संज्ञक होते हैं, और रात्रिमें इन सब मुहूर्तोंके एक २ न्यूनक्रमसे होताहै अर्थात् तेरह, ग्यारह, नौ, सात, पांच, तीन और पहिला मुहूर्त क्रमानुसार रव्यादि सातों वारोंमें कुलिकसंज्ञा होतीहै कुलिक समय सम्पूर्ण मङ्गलकार्योंमें अप्रशस्त है ॥ ३० ॥

अथ यामार्द्धे माहेन्द्रादिदण्डकथनम् ।

रुपातं वा वयमासूर्ये मावावयकलानिधौ ।

यमावावकुजे ज्ञेया वयमावा सुधांशुजे ॥ ३१ ॥

जीवे चैव वावयमा मावावय भृगोः सुते ।

सूर्यपुत्रे यमायाव घटीयुग्मं शुभाशुभम् ॥ ३२ ॥ (x)

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-अब यामार्द्धमें माहेन्द्रादियोग कहते हैं, ज्योतिःसारमें लिखाहै कि, रवि-वारमें प्रत्येक यामार्द्धके प्रथम दण्ड वायु, द्वितीयदण्ड वरुण, तृतीय दण्ड यम और चतुर्थ दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक होताहै, इसी प्रकार सोमवारमें पहिला दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक, दूसरा दण्ड वायुसंज्ञक, तीसरा वरुणसंज्ञक और चौथा दण्ड यमसंज्ञक होता है, मङ्गलवारमें पहिला दण्ड यमसंज्ञक, दूसरा दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक, तीसरा दण्ड वायुसंज्ञक और चौथा दण्ड वरुणसंज्ञक होताहै, बुधवारमें पहिला दण्ड वरुणसंज्ञक, दूसरा दण्ड यमसंज्ञक, तीसरा दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक और चौथा दण्ड वायुसंज्ञक होताहै, वृहस्पतिवारमें पहिला दण्ड वायुसंज्ञक, दूसरा दण्ड वरुणसंज्ञक, तीसरा दण्ड यमसंज्ञक और चौथा दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक होताहै; शुक्रवारमें प्रथम दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक दूसरा दण्ड वायुसंज्ञक, तीसरा दण्ड वरुणसंज्ञक और चौथा दण्ड यमसंज्ञक होताहै और शनिवारके प्रत्येक यामार्द्धमें प्रथम दण्ड यमसंज्ञक, द्वितीय दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक, तृतीयदण्ड वायुसंज्ञक और चतुर्थदण्ड वरुणसंज्ञक होताहै, प्रत्येकवारमेंही चार दण्डमें शुभाशुभ देखना चाहिये फल नीचे लिखते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

(x) वा. वायुः व. वरुणः य. यमः मा. माहेन्द्रः इति ज्योतिःसारे रामकान्तः ।

अथ फलम् ।

माहेन्द्रवरुणयोर्यात्रा शुभा प्रोक्ता मनीषिभिः ।

अन्यत्र चाशुभा ज्ञेया दैवज्ञैरिति निश्चितम् ॥ ३३ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-माहेन्द्र और वरुणसंज्ञक दण्डमें यात्रा करनेसे शुभफल होता है और वायु और यमसंज्ञक दण्डमें यात्रा करनेसे अशुभ होता है इस प्रकार ज्योतिषके ज्ञाननेवाले विद्वानोंने ज्योतिःसारनामक पुस्तकमें लिखा है ॥ ३३ ॥

अथ योगिनीस्थितिकथनम् ।

प्रतिपन्नवमी पूर्वे रामा रुद्राश्च पावके ।

शरत्रयोदशी याम्ये वेदा मासाश्च नैर्ऋते ॥ ३४ ॥

पष्ठी चतुर्दशी पश्चाद्वायव्या मुनिपूर्णिमे ।

द्वितीया दशमी यक्षे ऐशान्यामष्टमी कुहूः ॥ ३५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब योगिनीस्थितिको वर्णन करते हैं ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, प्रतिपदा और नवमी तिथिमें योगिनी पूर्वदिशामें रहती है, इसी प्रकार तृतीया और एकादशीको अग्निकोणमें, पञ्चमी और त्रयोदशीको दक्षिणमें, चतुर्थी और द्वादशीको नैर्ऋतकोणमें, पष्ठी और चतुर्दशीको पश्चिममें, सप्तमी और पूर्णिमाको वायुकोणमें, द्वितीया और दशमीको उत्तरमें, अष्टमी और अमावस्यातिथिके दिन योगिनी ईशानकोणमें रहती है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

त्याज्यकालकथनम् ।

योगिनीनवदण्डास्तु शेषा वर्ज्याः प्रयत्नतः ।

दक्षसन्मुखयोगिन्यां गमनं नैव कारयेत् ॥ ३६ ॥ (×)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि योगिनीके शेष नौ दण्डोंको यत्नपूर्वकः परित्याग करै, दक्षिणदिशामें और सन्मुख योगिनी होनेसे कभी यात्रा न करनी चाहिये ॥ ३६ ॥

(×) “त्रयोदयगता देवी तत्र मातङ्गशुक्तिका । भ्रमन्ती तेन मार्गेण भवेत्तत्काल-योगिनी ॥ तेन मार्गेण परतिथिक्रमेण क्रममाह-इन्द्रे सोम्याग्निनैर्ऋत्ययाम्यतो यानिले शिवे ” इति ज्योतिःसारे स्मार्त्तनाभिहितम् ।

अपिच ।

प्राचीधनेश्वरहुताशनकौणपेय-

वैवस्वतीवरुणवायवशङ्करेषु ।

एषु क्रमान्निवसति प्रतिपन्नवम्बो-

र्वामाग्रतोऽभयकरीनिधिराजपुत्री ॥ ३७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, प्रतिपदा और नवमी तिथिमें योगिनी प्रथमके चार दण्डमें पूर्वदिशामें नहीं रहती है और उत्तरमें, आश्विणकोणमें, नैऋत-कोणमें दक्षिणमें, पश्चिममें वायुकोणमें और ईशानकोणमें पराधिक्रमानुसार प्रतिपदा, द्वितीया इत्यादिक्रमसे योगिनी वामगतिमें भोग करती है । योगिनी बायें वा पीछे होनेसे अभयदान करती है ॥ ३७ ॥

अन्यच्च ।

वामे शुभकरी देवी पृष्ठे सर्वार्थदायिनी ।

वधबन्धकरी चाग्रे दक्षिणे मृत्युदायिनी ॥ ३८ ॥

इत्यस्य पुर्याद्वि ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-योगिनीदेवी बायें होनेसे शुभकल दान करती है पीछे होनेसे सर्वार्थ सीद्धि होती है, सन्मुख होनेसे वध बन्धन होता है और दहिने योगिनीके होनेसे मृत्यु होती है ॥ ३८ ॥

अथ दिवारात्रौ आदित्यतिथ्यादयोपि यात्रायां शुभा इत्याह ।

गुणवति तिथावृक्षेऽनिष्टे दिवागमनं हितम्

निशि च भगुणैः शस्तं यानं तिथौ गुणवर्जिते ॥ ३९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, तिथि शुभ होय और नक्षत्रके अशुभ होनेसे भी दिनकी यात्रा करना चाहिये, रात्रिमें नक्षत्र शुभ होय और तिथिके अशुभ होनेसे भी यात्रा शुभ होती है ॥ ३९ ॥

अथ दक्षिणायने निशिसौम्यायने च दिवा यात्राकथनम् ।

याम्यायने निशायात्रा शुभा स्यादुत्तरे दिवा ।

चन्द्रसूर्यौ मृगादिस्थौ पूर्वा यायात्तथोत्तराम् ॥ ४० ॥

दक्षिणां पश्चिमामाशां कर्क्यादौ तौ स्थितौ यदा ।

अन्यथा वधबन्धादिक्लेशमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, दक्षिणायनमें रात्रिके समय और उत्तरायणमें दिनके समयमें यात्रा शुभ होती है । चन्द्रमा और सूर्य जबतक मकरादि मिथुन राशिमें रहे उस समय पूर्व दिशामें और उत्तरदिशामें यात्रा करनी चाहिये । उक्त दोनों ग्रह कर्क राशिसे धन राशिमें जबतक रहें उस समय दक्षिणदिशामें और पश्चिम दिशामें यात्रा शुभ होती है । इसके विपरीतमें यात्रा करनेसे वध बन्धन और क्लेशादिको भोगना पड़ता है ॥ ४१ ॥

अथ राहुभ्रमणचक्रम् ।

पश्चादकं विधौ वह्नौ सौम्यां ज्ञे वायवे कुजे ।

रक्षोदिशि भृगौ याम्यां गुरावशि शनौ दिने ॥ ४२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--अब राहुके भ्रमणचक्रको कहते हैं--ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, रविवारके प्रथम यामार्द्धमें पश्चिमदिशामें राहु रहता है, सोमवारको आश्विणकोणमें, बुधवारको उत्तरांशमें, मङ्गलवारको वायुकोणमें, शुक्रवारको नैऋतकोणमें, गुरुवारको दक्षिणकोणमें और शनिवारके प्रथमयामार्द्धमें राहु ईशानकोणमें रहता है ॥ ४२ ॥

राहुर्भ्रमति यामार्द्धादश्वगत्या च वामतः ।

प्रतर्च्या वह्निकोणे तु ततः सौम्यामतोऽस्रपे ॥ ४३ ॥

ततः प्राच्यामतो वायौ तस्माद्याम्यां ततः शिवे ।

रवावेवमन्यवारेपूह्यमेवं क्रमेण हि ॥ ४४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, राहु एक एक यामार्द्धके बाद घोडेकी चालसे वामावर्तमें भ्रमण करता है । रविवारके प्रथम यामार्द्धमें राहु पश्चिमदिशामें रहता है । इसी प्रकार दूसरे यामार्द्धमें आश्विणकोणमें, तीसरे यामार्द्धमें उत्तरांशमें, चौथे यामार्द्धमें नैऋतमें, पांचवें यामार्द्धमें पूर्वदिशामें, छठे यामार्द्धमें वायुकोणमें, सातवें यामार्द्धमें दक्षिणमें और रविवारके आठवें यामार्द्धमें राहु ईशानकोणमें रहता है । रविवारके दिनकी राहुकी स्थिति कही गई इसी प्रकार अन्यान्य वारमें भी जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

द्यूते युद्धे विवादे च यात्रायां सम्मुखस्थितम् ।

राहुं विवर्जयेद्यत्नाद्यदीच्छेत्कर्मणः फलम् ॥ ४५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, द्यूतक्रीडामें (चीपड खेलनेमें) युद्धमें, विवादमें और यात्रासमयमें फलके चाहनेवाला मनुष्य सम्मुख राहुको परि-
त्याग करे ॥ ४५ ॥

इति राहुस्थित्यादिकथनम् ।

अथ यात्रिकनक्षत्रकथनम् ।

अश्विहस्तगुरुमैत्रदेवतैः पौष्णविष्णुवसुशतिरश्मिभिः ।

यानमेभिरतिसुन्दरं विदुः सर्व एव मुनयस्तु नेतरे ॥ ४६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अब यात्राविषयमें नक्षत्र कहते हैं—अश्विनी, हस्त, पुष्य, अनुराधा, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा और मृगशिर नक्षत्रमें यात्रा करना चाहिये सब मुनियोंने इस प्रकार कहा है । किन्तु उक्त नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें यात्रा करनेसे अमङ्गल होता है ॥ ४६ ॥

अन्वयः ।

अश्विनीमैत्ररेवत्यो मृगमूलपुनर्वसुः ।

पुष्यो हस्तस्तथा ज्येष्ठा प्रस्थाने चोत्तमाः स्मृताः ॥ ४७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, अश्विनी, अनुराधा, रेवती, मृगशिर, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त और ज्येष्ठा नक्षत्र यात्रामें उत्तम हैं ॥ ४७ ॥

अपरञ्च ।

रोहिणी त्रीणि पूर्वाणि चित्रा स्वातिश्च वारुणम् ।

श्रवणं च धनिष्ठा च यात्रायां मध्यमाः स्मृताः ॥ ४८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि—रोहिणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, चित्रा, स्वाति, श्रवणि, श्रवण और धनिष्ठा इन सब नक्षत्रोंको यात्रामें मध्यम कहते हैं ॥ ४८ ॥

अथ निन्दनक्षत्रकथनम् ।

चित्राश्लेषास्वातिविशाखाभरणीपिण्येशकृत्तिकाः ।

नातिशुभदाः प्रयाणे शेषाणि शुभाशुभानि धिष्ण्यानि ॥ ४९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—चित्रा, आश्लेषा, स्वाति, विशाखा, भरणी, मघा, आर्द्रा और कृत्तिका

नक्षत्र यात्रामें अत्यन्त अशुभदायक हैं, इनको छोड़कर अन्य नक्षत्र कौन शुभदायक और कौन अशुभदायक है ॥ ४९ ॥

अपिच ।

उत्तरासु विशाखासु मघाद्राभरणीषु च ।

कृत्तिकाश्लेषयोश्चैव प्रस्थाने मरणं भवेत् ॥ ५० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा-भाद्रपदा, विशाखा, मघा, आर्द्रा, भरणी, कृत्तिका और आश्लेषा नक्षत्रमें यात्रा करनेसे उस मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ५० ॥

अथ नक्षत्राणां दिग्व्यवस्थाकथनम् ।

पूर्वाग्रिमिषानुराधवसुभादीन्यत्र दण्डोऽन्तरे

वायव्यग्नौ सलङ्घ्यमैक्यमनलप्राच्यास्तथान्या विदिक् ।

लग्ने दिग्बदने तु दण्डगमनं प्राच्यादिशूलं विना

तज्येष्टाजपदं सरोजनिलयः स्यादुत्तराफाल्गुनी ॥५१॥(क)

अर्थ-अब नक्षत्रोंकी दिग्व्यवस्था कहते हैं, पूर्वदिशाकी कृत्तिकादि सप्त

(क) नक्षत्राणां दिग्व्यवस्थामाह-पूर्वादीति । पूर्वादि यथा स्यात्तथाग्रिमिषानुराधवसुभादीनि नक्षत्राणि स्युः । पूर्वं कृत्तिकादीनि सप्त, दक्षिणे मघादीनि सप्त, पश्चिमेऽनुराधादीनि सप्त, अभिजित्सह उत्तरे धनिष्ठादीनि भरण्यान्तानि सप्त स्युः । एतेन स्वस्वदि-शुक्तनक्षत्रैस्तत्तद्दिशि गमनं शान्भित्यर्थः । तत्रैव विशेषमाह-अत्रेति । अत्र वायव्या-ग्न्योरन्तरे मध्ये दण्डः स्यात्स तु न लघ्वः । एतेन पूर्वोत्तरस्थनक्षत्रैर्दक्षिणपश्चिमयोर्न गन्तव्यम् । दक्षिणपश्चिमस्थनक्षत्रैः पूर्वोत्तरयोर्न गन्तव्यं किन्तु पूरस्थनक्षत्रैरुत्तर गन्तव्यम् उत्तरस्थनक्षत्रैः पूर्व गन्तव्यं दक्षिणस्थनक्षत्रैः पश्चिम गन्तव्यं पश्चिमस्थनक्षत्रैर्दक्षिण गन्तव्यमिति । तथा लघुयात्रायाम् । “ प्राच्यादि सप्त सप्त क्रमेण विष्ण्यानि कृत्तिकादीनि । अनुलोमान्येकत्र पूर्वोत्तरयोश्च दक्षिणापरयोः । अनिलानलादिग्रेखा परिधारयान्ति ये समुल्लङ्घ्य । आज्ञाभिन्नुलिशमृतः पतन्ति न चिरेण ते व्यसने ” इति । इदानीं दिग्व्यवस्थामाह-एक्यमिति । आग्नेयपूर्वदिशोरैक्यं पूर्वदिङ्मक्षत्रैराग्निकोणे गन्तव्यमित्यर्थः । तथैव प्रकारेणान्या विदिक् ज्ञेया दक्षिणनैऋतयोरैक्यं पश्चिमवातयोरुत्तरे-शानयेत्येति । विशेषमाह-लग्नइति । प्रागादिमकुभा नाया इत्यादिनांक्त दिग्बदने दिग्-सुल्लङ्घनं तच्च दिग्मुख लग्नं यदि स्यात्तदा प्राच्यादिशूलं विना पूर्वादिदिशा शूलसंज्ञक नक्षत्रं विहाय दण्डगमनं दण्डमुल्लङ्घ्यापि गमनं कार्यम् । मध्यपदलोपी समासः । शूलैपि कदाचित् गमनमित्यर्थः । तथा बृहदात्रायाम् । “उल्लङ्घ्य दण्डमपि काममु-शन्ति यान् शूलं विहाय यदि दिग्मुखलग्नशुद्धिः ” इत्यनेन दिग्बदने लग्ने सर्वदेवयात्रा-शस्तेत्यर्थः । पूर्वादिशूलनक्षत्रमाह-तदिति । तच्छूलं पूर्वं ज्येष्ठा दक्षिणेऽजपदं पूर्वं भाद्र-पदं पश्चिमे रोहिणी उत्तरे उत्तराफाल्गुनी शूलमित्यर्थः ।

नक्षत्रोंमें जाय, इसी प्रकार दक्षिणको मघादि सात नक्षत्रोंमें, पश्चिमको अनुराधादि सात नक्षत्रोंमें और उत्तरको धनिष्ठादि सात नक्षत्रोंमें, यात्रा करनी चाहिये और वायुकोणसे आग्निकोणतक एक दण्डकी कल्पना करै, उक्त दण्ड अलंघनीय अर्थात् पूर्व ओर उत्तर दिक्स्थ नक्षत्रोंमें दक्षिण और पश्चिमकी यात्रा न करै और दक्षिण और पश्चिमस्थ नक्षत्रोंमें पूर्व और उत्तरकी यात्रा करै, किन्तु पूर्वदिक्स्थ नक्षत्रोंमें उत्तरकी यात्रा करै, उत्तर दिक्स्थनक्षत्रोंमें पूर्वकी यात्रा करै, दक्षिणादिक्स्थ नक्षत्रोंमें पश्चिमकी यात्रा करै और पश्चिम दिक्स्थनक्षत्रोंमें दक्षिणकी यात्रा करनी चाहिये, और पूर्वदिक्स्थ नक्षत्रोंमें आग्निकोणकी यात्रा करै, दक्षिणादिक्स्थ नक्षत्रोंमें नेत्रगतकोणकी यात्रा करै, पश्चिमस्थ नक्षत्रोंमें वायुकोणकी यात्रा करै और उत्तरादिक्स्थ नक्षत्रोंमें ईशान कोणकी यात्रा करनी चाहिये, विशेषकरके दिग्गुणलक्षण यदि दिङ्मुख लक्षण होय तो पूर्वादि दिशाओंके शूलसंज्ञक नक्षत्रोंको छोड़करके पूर्वोक्त दण्डका लंघन करकेभी यात्रा करनी चाहिये । दिक्शूलनक्षत्र यथा पूर्वदिशामें ज्येष्ठा, दक्षिणमें पूर्वाभाद्रपदा, पश्चिममें रोहिणी और उत्तरमें उत्तराफाल्गुनी इन्हीं नक्षत्रोंको दिक्शूल नक्षत्र कहते हैं ॥ ५१ ॥

अथ नक्षत्रशूलकथनम् ।

प्राचीं श्रवणशक्राभ्यां च भद्राश्विभ्यां च दक्षिणाम् ।

प्रतीचीं पुष्यरोहिण्योः करेऽर्यमनुचोत्तराम् ॥ ५२ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ--सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि, पूर्व दिशामें श्रवण और ज्येष्ठानक्षत्र दक्षिणमें पूर्वाभाद्रपदा और अश्विनीनक्षत्र, पश्चिममें पुष्य और रोहिणी नक्षत्र और उत्तरमें हस्त और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र महाशूल संज्ञक होता है ॥ ५२ ॥

अपि च ।

एते चाष्टौ महाशूला देवैरपि विनिन्दिताः ।

यदि प्रमादतो गच्छेज्जीवनं तस्य दुर्लभम् ॥ ५३ ॥

इति ज्योतिषसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, यह शूलनक्षत्र देवताओंकोभी त्याज्य है इनमें यात्रा करनेसे मनुष्यको जीनेमेंभी संशय होता है ॥ ५३ ॥

अथ यात्रायां निषिद्धनक्षत्रकथनम् ।

नेशाजाभिर्विशाखवाय्वहिमघायाम्यैः परार्द्धं न स-
चित्रा ह्यन्तर्जं परं प्रथमजं पित्र्यानिले चाखिले ।

राहुकूरयुगस्तसन्निधितथोत्पातप्रदुष्टं ग्रहै-

व्याध्ययुग्ममसदिने निशि तिथावृक्षेऽप्यनिष्टे गमः ॥५४॥ (२)

अर्थ-अब यात्राविषयमें निषिद्ध नक्षत्रादि कहते हैं-आर्द्रा, पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिका, विशाखा, आश्लेषा, मघा और भरणी नक्षत्रमें यात्रा न करना चाहिये, किन्तु चित्रा, आश्लेषा और भरणी नक्षत्रका परार्ध अत्यन्त निन्दनीय है और आर्द्रा, पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिका और विशाखाका पूर्वार्ध अतिनिषिद्ध है। मघा और स्वातिके सभी अंश अत्यन्त निन्दनीय है और राहु और कूरग्रहयुक्त नक्षत्र, रविभुक्त नक्षत्र रविभोग्यनक्षत्र उत्पात (धूमकेतु उल्कापात भूकम्प और पांसु-वृष्ट्यादि) से दुष्ट नक्षत्र और दो तीन ग्रहोंकरके युक्त नक्षत्र, अशुभतिथि और अशुभ दिनमें कभी यात्रा न करनी चाहिये, दीपिकाकारने यात्राके नक्षत्रसम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है, किन्तु इन वचनोंकी व्यवस्था सभी देशमें नहीं है ॥५४॥

(+) अधुना निषिद्धनक्षत्राण्याह-नेशेति । ईश आर्द्रा अजः पूर्वाभाद्रपदा । अग्निः कृत्तिका विशाखा वायुः स्वातिः अहिराश्लेषा मघा याम्या भरणी एभिर्न गम इति पश्चादन्वयः । अत्र च चित्राणि चोद्धव्या विशेषनिन्दायां तस्या वक्ष्यमाणत्वात् । तथा लघुयात्रायाम् । “ चित्रास्वातीविशाखामरणीषिष्येशकृत्तिकाश्लेषाः । नाति शुभदाः प्रयाणे शेषाणि शुभानि धिष्यन्ति ॥ ” इति । अत्रैव विशेषनिन्दामाह-परार्द्धमिति । चित्राश्लेषामरणीनां परार्द्धमत्यन्तं न सदित्यर्थः । परेपामेतदन्वेषा निषिद्धनक्षत्राणाम् । आर्द्रापूर्वाभाद्रपदाकृत्तिकाविशाखानां प्रथमजमर्द्धमत्यन्तमसत् पिष्यानिष्ठे मघास्वात्यौ तु अखिले समस्ते नक्षत्रे सती न शुभे नेत्यर्थः । तथा राहुकूरयुक् नक्षत्रमसत् तथा राहुयुक्तं कूरं रविशनिभुजैर्युक्तं चासदिति । केपाश्विनमते राहोरापत्वात् राहुग्रहणम् अस्तसन्निधि अस्तगतस्य रविभुक्तस्य नक्षत्रस्य सन्निधि समीपे स्थित रविभुक्त रविभोक्तव्यञ्च नक्षत्रमसदित्यर्थः । अस्तनक्षत्रस्य तु कूरयुतत्वेन सुतरां निषेध एव । तथा उत्पातेन धूमकेतुल्कापातभूकम्पपांसुवृष्ट्यादिना प्रदुष्टं न सत् । तथा व्याध्यग्रहैर्द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिः पञ्चभिः षड्भिः शुभैरशुभैर्ग्रहैः युक्तं चासत् । तथा बृहद्यात्रायाम् । “ ऋक्षे ब्रह्माद्यैः सयुतेऽत्राप्रकोपो लक्ष्मीभ्रशो राहुणाकैण रोगः । केतुल्काभ्यां पीडिते देहनाशः क्रेशः सारे सोष्णरश्म्यात्मजे च ” तथा म्यानान्तरे उक्तं नक्षत्रमटकिरणमित्यादि । विशेषान्तरमाह-दिन इति । तिथानिष्टे दिवा कदापि न गमः दिवसे तिथेचलत्वात् । ऋक्षेऽनिष्टे रात्रौ कदापि न गमः रात्रौ तस्य बलवत्त्वादिति तात्पर्यम् । तथा बृहद्यात्रायाम् । “ गुणवति तिथावृक्षेऽनिष्टे दिवा गमनं शुभं निशि च भगुणैः शस्तं यानं तिथौ गुणवर्जिते । भतिथिगदितान्दोषान्प्राप्नोत्यतः प्रतिलोमगं गुणमपि तयोः सम्यग्ज्ञाने जगाद् भृगुर्मुनिः ” इति । अन्ये त्वन्यथा प्रलपन्ति तदुपेक्षितम् । अत्र च उग्रतीक्ष्णचरमृदुसंज्ञकानि यानि प्रोक्तानि तानि च तत्कर्मणि यात्रायां विहितान्येवोक्तनिषेधस्य तु न तत्रावकाशः । किन्त्वत्रादिनक्षत्रगणानां तत्कर्मण्युदयादिकालभेदेनैव निषेधः अन्यथा सर्वदा निषेधस्य कालभेदेन पुनर्निषेधानुपपत्तिरिति ।

अथ निषिद्धनक्षत्राणां विशेषकथनम् ।

दग्धुं शत्रुपुरं सदग्निभमुदेत्यर्को न चेदुत्तरे
रोहिण्याश्च विशाखमे च न गमः पूर्वाह्नकाले शुभः ।
मध्याह्ने न शिवाहिमूलवलभिद्रेष्वह्निशेषेऽश्विनी
पुष्येहस्तमस्तसु चित्रशशिमैत्र्यान्त्ये न रात्र्यादितः ॥५५॥

अर्थ—यात्रामें समयके भेदसे निषिद्धनक्षत्रादिक कहते हैं—जिस समय सूर्य उदय होय उस समयको छोडकर सभी समयमें ही कृत्तिका नक्षत्र शत्रुपुरदहन करनेकी यात्रामें प्रशस्त है । उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी और विशाखा नक्षत्रमें पूर्वाह्नसमय यात्रा न करनी चाहिये. आर्द्रा, आश्लेषा, मूल और ज्येष्ठा नक्षत्रमें मध्याह्नसमय यात्रा न करै. अश्विनी, पुष्य, हस्त और स्वाति नक्षत्रमें अपराह्नके समय यात्रा न करनी चाहिये । रात्रिके प्रथम भागमें चित्रा, मृगशिरा अनुराधा और रेवती नक्षत्रमें यात्रा न करै ॥ ५५ ॥

अपि च ।

रात्रेर्मध्यमसत्तुपूर्वभरणीपित्र्येषु शेषे निशो
हर्म्यादित्रितयादितिविष्वपि जलं मध्याह्नरत्र्यान्तयोः)

(x) एतदेव श्लोकद्वयेनाह—दग्धुमिति । शत्रुपुरदोह तीक्ष्णकर्मणि मृदुतीक्ष्णगण-
त्वेनाग्नेयत्वेन च कृत्तिका विहितैव अत एव शत्रुपुरं दग्धुमग्निं सदैव विहितमित्यर्थः ।
किन्त्वर्को न चेदुदेति । अर्कोदयं कालं त्यक्त्वा अस्मिन्सर्वकाल एव शत्रुपुरं दग्धुं
कृत्तिका शस्तेत्यर्थः । तथा च बृहद्यात्रायाम् । “ स्वेस्वे कर्मणि पूजितानि मुनिभिः
प्रोक्तानि सर्वाण्यपि त्यक्त्वाकोदयमाननेऽरिविषयं यात्रादिक्लेशे शुभा ” इत्यस्मिन्त्वचने
सर्वाण्यपि इति अपिशब्दनिषिद्धान्यपि स्वे स्वे कर्मणि विहितानित्यर्थः । तथा लघुया-
त्रायाम् “ शत्रुविषयं दिक्षोरन्यत्राकोदयाच्छुभाग्नेयी ” एतेनार्को न चेदुदेति । अर्को-
दयात्पूर्वं रात्रिदण्डद्वये स्थिते एव शत्रुपुरं दग्धुम् अग्निं सत् नान्यत्रेति कैश्चित्प्रलपितं
तदशुद्धमेवेति । अथुना तत्तत्कर्मणि विहितानामुग्रादिनक्षत्राणां शुभकर्मणि यात्रार्थं
पूर्वोक्तानां नक्षत्राणाञ्च सर्वेषां दिनस्य पूर्वाह्णादिषु षट्सु भागेषु यथाक्रमं निषेधमाह—
उत्तर इति । पूर्वाह्णे उत्तरात्रये रोहिणीविशाखाश्च गमो न शुभ इति । अत्र केचिदग्धुं
शत्रुपुरमित्यस्य सर्वत्रान्वयं कुर्वन्ति तत्र बृहद्यात्रादिषु सामान्येनैव निषेधात् । यथा
बृहद्यात्रायाम् । “ रोहिण्यां त्रिषु चोत्तरेषु विजयो यातुर्विशाखासु च त्यक्त्वा वासव-
पूर्वमेवमवदद्गर्गोऽरिराज्याथिनः ” इति । अत्र चारिराज्याथिनो यातुर्विजय इत्युक्त्वा
तथा “ निशान्त्यभागे त्रिषु वैष्णवाद्ये यायाद्धनार्था न पुनर्गसी च ” इति । मध्याह्न इति
आर्द्राश्लेषामूलज्येष्ठासु मध्याह्ने न गम इति अह्नःशेषेऽपगह्नेऽश्विनीपुष्यहस्तस्वातिषु न
गमः । रात्रः प्रथमभागे मृगशिरोऽनुराधारेवतीषु न गमः । इति ।

पुष्योहस्तमृगाच्युतेषु शुभदाः सर्वेऽपि कालास्तथा

सार्वद्वारिकसंज्ञितानि गुरुभं हस्ताश्विमैत्राणि च ॥ ५६ ॥ ❀

अर्थ-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी और मघा नक्षत्रमें रात्रिके मध्यभागमें यात्रा न करै, श्रवण, धनिष्ठा, जतमिषा और पुनर्वसु नक्षत्रमें रात्रिके शेषभागमें यात्रा न करै, पूर्वाषाढा नक्षत्रमें रात्रिके मध्य और शेषभागमें यात्रा न करनी चाहिये पुष्य, हस्त, मृगाशिर और श्रवण नक्षत्रमें सर्वदा यात्रा करै और पुष्य, हस्त, आश्विनी और अनुराधा नक्षत्रको सार्वद्वारिकसंज्ञक जानना चाहिये ॥ ५६ ॥

अथ नक्षत्राभ्युदययोगकथनम् ।

ध्रुवगुरुकरमृलापौष्णभान्यर्कवारे

हरियुगविधियुग्मे फाल्गुनीभाद्रयुग्मे ।

दिवसकरतुरङ्गौ शर्वरीनाथवारे

गुरुयुगनलवातोपान्त्यपौष्णानि कौजे ॥ ५७ ॥

दहनविधिश्चताख्यामैत्रभं सौम्यवारे

मरुददितिभपुष्यामैत्रभं जीववारे ।

भगयुगजयुगश्वोविष्णुमैत्रे सितहरे

स्वज्ञानकमलयोनी सौरिवारेऽमृतानि ॥ ५८ ॥ (*)

अर्थ-अब वार और नक्षत्रयोगसे अमृतयोग कहते हैं-रविवारमें उत्तराफा-

• पूर्वात्रये भरणी मघाश्रवण रात्रेर्मध्यं मध्यभागान्तु न सत् न शुभमित्यर्थः । निशो-
रात्रेः शेषे हर्म्यादित्रये पुनर्वसो चासन्न शुभ इत्यर्थः । अवटितव्यञ्जनान्तो निशाशब्दोऽ-
प्यस्ति । जल पूर्वाषाढा मध्याह्ने रात्र्यन्ते चासत् इति । रात्रिमध्ये चास्य निषेध उक्त
एव । सार्वकालिकनक्षत्राण्याह-पुष्यहस्तामृगाशिरश्रवणेषु सर्वेऽनिषिद्धा अपि कालाः
शुभाः । नन्वपरार्द्धे पुष्यहस्तयोर्निषेध उक्तः । तथा रात्रिप्रथमे मृगाशिरसः रात्रिशेषे श्रव-
णायाश्चेति तत्कथमेतेषु सर्वेषु कालाः शुभा इत्युक्त निषेधविरुद्धाः । षोडशिनं यद्वाति
इति वदिकल्पः । तथा च गौतमसूत्रं । “ तुल्यबलनिरोधे विरुद्धः ” इति । पुष्यादिषु
पूर्वनिषिद्धाः कालाः निषिद्धाः विहिता अपि स्युः यदि कार्यं ज्ञात्वा वास्यात्तदा पुष्या-
द्यस्तेषु पूर्वोक्तकालेषु न निषिद्धाः किन्तु शुभदा एव न वा तत्र प्रतीकारः कार्यः ।
स्वेच्छागमने तु निषिद्धकाल त्यक्त्वा गन्तव्यामिति विरुद्धस्य फलम् । अत एव आक्षेपेऽ-
पिशब्दः । एषु सर्वेऽपि कालाः शुभाः किं निषेधविचारणेत्यर्थः ॥ इति ।

(*) श्लोकद्वयेनामृतयोगमाह-ध्रुवेति, दहनोति । सुगममिति ॥

लगुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, हस्त, मूल और रेवती नक्षत्र होनेसे अमृतयोग होता है, इसी प्रकार सोमवारमें श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, हस्त और अश्विनी नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होता है, मङ्गलवारमें पुष्य आश्लेषा, कृत्तिका, स्वाति, उत्तराभाद्रपदा और रेवतीनक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होता है- बुधवारमें कृत्तिका, रोहिणी, शतभिषा और अनुराधा नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होता है, बृहस्पतिवारमें स्वाती, पुनर्वसु, पुष्य और अनुराधा नक्षत्र होनेसे अमृतयोग होता है, शुक्रवारमें पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी, श्रवण और अनुराधा नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होता है और शनिवारमें स्वाति वा रोहिणी नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

आपेच ।

आदित्यहस्ते गुरुपुष्ययुक्ता बुधानुराधा शनिरोहिणी च ।
सोमे च विष्णुःकुजरेवती च शुक्राश्विनी चामृतयोगवर्गः ॥ ५९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, रविवारमें हस्तनक्षत्र होनेसे अमृतयोग होता है इसी प्रकार बृहस्पतिवारमें पुष्य होनेसे, बुधमें अनुराधा होनेसे, शनि-वारमें रोहिणी होनेसे, सोमवारमें श्रवण होनेसे, मङ्गलवारमें रेवती होनेसे और शुक्रवारमें अश्विनी नक्षत्र होनेसे अमृतयोग होता है ॥ ५९ ॥

अमृतयोगप्रशंसा ।

यदिविष्टिव्यतीपातौ दिनं वाप्य शुभं भवेत् ।

हन्यतेऽमृतयोगेन भास्करेण तमो यथा ॥ ६० ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—दीपिकामें लिखा है कि, जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशसे अन्धकारका नाश हो जाता है उसी प्रकार इस अमृतयोगके होनेसे विष्टि भद्रा वैधृति और व्यती-पातादि दोषोंका नाश हो जाता है ॥ ६० ॥

(क) अमृतयोगफलमाह—यदीति । विष्टिव्यतीपातौ भवतः व्यतीपात इत्युपलक्षणं वैधृत्यादयोऽपि मन्दयोगः । ग्रहस्पर्शदिनं वा यद्यशुभं भवेत् तत्सर्वममृतयोगेन हन्यत इत्यर्थः । तथाच राजमार्तण्डे—हन्यत्यमृताख्यो योगः सर्वाण्यशुभानि हेलया नियतम् । न भवन्ति पुनरिह शक्ता वैधृति विष्टिव्यतीपाताः ” इति । कस्यचिन्मते वैधृत्यादि योग-हननेऽमृतयोगस्य न सामर्थ्यामिति ज्योतिषतत्त्वे स्मार्ताः ॥

उत्पातादियोगः ।

रव्यादिदिवसैर्युक्ता विशाखादिचतुश्चतुः ।

उत्पाता मृत्यवः काणा अमृतानि यथाक्रमम् ॥ ६१ ॥ (ख)

अर्थ-अब उत्पातादियोग कहते हैं । रव्यादिवारमें विशाखादि चार चार नक्षत्र युक्त होनेसे क्रमानुसार उत्पात, मृत्यु, काण और अमृतयोग होता है यथा-रविवारमें विशाखा नक्षत्र होनेसे उत्पात, अनुराधा होनेसे मृत्यु, ज्येष्ठा होनेसे काण और मूल नक्षत्र होनेसे अमृतयोग होता है । इसी प्रकार सोमवारमें पूर्वाषाढा नक्षत्र होनेसे उत्पात, उत्तराषाढा होनेसे मृत्यु, अभिजित् होनेसे काण और श्रवण नक्षत्र होनेसे अमृतयोग होता है । मङ्गलादिवारोंमें धनिष्ठादि चार चार नक्षत्रके होनेसे क्रमानुसार उत्पातादियोग जानना चाहिये ॥ ६१ ॥

अथ क्रकचयोगः ।

वाजिचित्रोत्तराषाढामूलपाशीज्यभान्तकाः ।

सूर्यादिवारसंयुक्ता योगास्ते क्रकचाः स्मृताः ॥ ६२ ॥ ❀

अर्थ-अब क्रकचयोग कहते हैं-रविवारमें अश्विनी नक्षत्र होनेसे क्रकच योग होता है, इसी प्रकार सोमवारमें चित्रा नक्षत्र होनेसे, मङ्गलवारमें उत्तराषाढा होनेसे, बुधवारमें मूलनक्षत्र होनेसे, बृहस्पतिवारमें शतभिषा होनेसे, शुक्रवारमें पुष्य नक्षत्र होनेसे और शनिवारमें रेवतीनक्षत्र होनेसे क्रकचनामक योग होता है ॥ ६२ ॥

अन्यच्च ।

अश्विनी रविवारे च सोमे चित्रा तथा भवेत् ।

नक्षत्रमुत्तराषाढा मङ्गले च प्रकीर्तिता ॥ ६३ ॥

बुधे मूलं तथा जीवे शतभिषा प्रकीर्तिता ।

शुके पुष्यः शनौ चैव भरणीति प्रकीर्तिता ॥ ६४ ॥

(ख) उत्पातादिचतुरोयोगानाह-रव्यादिति । रव्यादिवारिर्विशाखादिचत्वारि नक्षत्राणि यथासंख्यम् उत्पातमृत्युकाणामृतसंज्ञकानि स्युः । यथा-रविवारे विशाखा-उत्पातः, अनुराधा मृत्युः, ज्येष्ठा काणः, मूलः अमृत सोमवारे पूर्वाषाढा उत्पातः, उत्तराषाढा मृत्युः, अभिजित्काणः, श्रवणा अमृतम् । इत्याद्येवं बोद्धव्यमिति ।

(*) क्रकचादियोगमाह-वाजीति । सूर्यादिवारे यथासंख्यम् अश्विन्यादिनक्षत्र योगात्क्रकचादियोगाः स्युः । पाशी वरुणः शतभिषाति यावत् । इज्यो गुरुः पुष्येति

योगे ऋकचसंज्ञे वै सर्वकर्माणि वर्जयेत् ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार ऋकचयोग कहते हैं- रविवारमें अश्विनीनक्षत्रके होनेसे ऋकच योग होता है, इसी प्रकार सोमवारमें चित्राके होनेसे, मंगलवारमें उत्तराषाढा होनेसे, बुधमें मूल होनेसे, बृहस्पतिवारमें शतभिषा होनेसे, शुक्रवारमें पुष्य होनेसे और शनिवारमें भरणी नक्षत्रके होनेसे ऋकच योग होता है इस ऋकचयोगमें कोई कार्य न करना चाहिये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथ ऋकचादि प्रति प्रसवमाह ।

ऋकचो मृत्युयोगश्च दिनं दग्धं तथापरे ।

शुभे चन्द्रे प्रणश्यन्ति वृक्षा वज्रदत्ता इव ॥ ६६ ॥ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब ऋकचादि योगके प्रतिप्रसव कहते हैं—ऋकचयोग मृत्युयोग, दिन-दग्धा और अन्यान्य अनिष्टकारक योग, चन्द्रमाके शुद्ध होनेसे नाशको प्राप्त होते हैं जिस प्रकार वज्रके आघातसे वृक्षका नाश होजाता है ॥ ६६ ॥

अथ तिथिनक्षत्रयोगे मृत्युयोगः ।

प्रतिपद्युत्तराषाढा नवम्यां कृत्तिका यदि ।

पूर्वाभाद्रपदाष्टम्यामेकादश्याश्च रोहिणी ॥ ६७ ॥

द्वादश्याश्च यदाश्लेषा त्रयोदश्यां मघा यदि ।

एतेषु यदि गच्छन्ति नियतं मरणं भवेत् ॥ ६८ ॥ (❀)

अर्थ—अब तिथि और नक्षत्रके योगसे मृत्युयोग कहते हैं—प्रतिपदा तिथिमें उत्तराषाढा नक्षत्रके होनेसे मृत्युयोग होता है, इसी प्रकार नवमीमें कृत्तिका नक्षत्रके होनेसे, अष्टमीमें पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रके होनेसे, एकादशीमें रोहिणी नक्षत्रके होनेसे, द्वादशीमें आश्लेषा नक्षत्रके होनेसे, त्रयोदशी तिथिमें मघानक्षत्रके होनेसे मृत्युयोग होता है उक्त समस्त तिथि और नक्षत्रके योगमें यात्रा करनेसे मनुष्यकी निश्चयही मृत्यु होती है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

—यावत् । भान्तका भान्तं नक्षत्रान्तं रेवतीति यावत् । एते सर्वे दग्धादयो योगाः अशुभ फला इत्यर्थः ।

(•) कुप्यारम्भे फलं नास्ति विचारम्भे च मूर्खता ।

सङ्गमे गर्भपातश्च विवाहे मरणं ध्रुवम् ॥

इति दीपिकायाम् ।

अथ वारनक्षत्रयोगे मृत्युयोगः ।

त्यज रविमनुराधे वैश्वदेवं च सोमे
शतभिषमपि भौमे चन्द्रजे चाश्विनी च ।
मृगशिरमपि जीवे सर्पदेवं च शुक्रे
रविसुतमपि हस्ते मृत्युयोगोऽस्य संज्ञा ॥ ६९ ॥

अर्थ-अब वार और नक्षत्रके योगसे मृत्युयोग कहते हैं, रविवारमें अनुराधा नक्षत्रके होनेसे मृत्युयोग होता है, इसी प्रकार सोमवारमें उत्तराषाढा नक्षत्रके होनेसे मङ्गलवारमें शतभिषानक्षत्रके होनेसे, बुधवारमें आश्विनी नक्षत्रके होनेसे, गृहस्पतिवारमें मृगशिर नक्षत्रके होनेसे, शुक्रवारमें आश्लेषा नक्षत्रके होनेसे और शनिवारमें हस्तनक्षत्रके होनेसे मृत्युयोग होता है ॥ ६९ ॥

अथानन्दयोगः ।

अश्विनी सह सूर्येण सोमे मृगशिरस्तथा ।
आश्लेषा भौमवारेण बुधे हस्तं प्रकीर्तितम् ॥ ७० ॥
अनुराधा गुरोर्वारे वैश्वदेवश्च भागंधे ।
वारुणं शनिसंयुक्तमानन्दोऽयं प्रकीर्तितः ॥ ७१ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ-आनन्दयोग कहते हैं-भीमपराक्रममें लिखा है कि, रविवारमें अश्विनी-नक्षत्रके होनेसे आनन्दयोग होता है, इसी प्रकार सोमवारमें मृगशिर नक्षत्रके होनेसे, मङ्गलवारमें आश्लेषानक्षत्रके होनेसे, बुधवारमें हस्तनक्षत्रके होनेसे गृहस्प-तिवारमें अनुराधानक्षत्रके होनेसे, शुक्रवारमें धनिष्ठानक्षत्रके होनेसे आनन्दयोग होता है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अथामृतसिद्धियोगः ।

हस्तं सूर्ये मृगः सोमे भौमवारे तथाश्विनी ।
बुधे मैत्रो गुरो पुष्यं रेवती भृगुनन्दने ॥ ७२ ॥
रोहिणी सूर्यपुत्रे च सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
असावमृतसिद्धिचारुयो योगः प्रोक्तः पुरातनैः ॥ ७३ ॥

इति ज्योति सारसंग्रहे ।

अर्थ-अब अमृतसिद्धिनामक योग कहते हैं-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रविवारमें हस्त, सोमवारमें मृगशिर, मङ्गलवारमें आश्विनी, बुधवारमें अनुराधा,

बृहस्पतिवारमें पुष्य, शुक्रवारमें रेवती और शनिवारमें रोहिणीनक्षत्र होनेसे अमृतसिद्धि नामक योग होता है यह योग सब कार्योंमें सिद्धिप्रदान करता है, इस प्रकार प्राचीन विद्वानोंने कहा है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अथ प्रशस्तयोगः ।

रेवती रविवारे च हस्तः सोमे न संयुतः ।

पुष्योऽप्यवनिपुत्रेण रोहिणी बुधसंयुता ॥ ७४ ॥

स्वाती च गुरुणा युक्ता शुक्रेणोत्तरफाल्गुनी ।

मूलन्तु पङ्क्तसङ्गेन सर्वकार्ये प्रशस्यते ॥ ७५ ॥

इति श्रीपतिव्यवहारनिर्णये ।

अर्थ-श्रीपतिभट्टाचार्यने व्यवहारनिर्णय ग्रन्थमें लिखा है कि, रविवारमें रेवती, सोमवारमें हस्त, मङ्गलवारमें पुष्य, बुधवारमें रोहिणी, बृहस्पतिवारमें स्वाति, शुक्र वारमें उत्तरफाल्गुनी और शनिवारमें मूलनक्षत्र होनेसे सभी कार्योंमें प्रशस्त होता है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

अथ यमघण्टयोगः ।

द्वे मघा पूर्वाफाल्गुन्यौपुष्याश्लेषार्कचन्द्रयाः ।

ज्येष्ठानुराधाभरणी चाश्विनी कुजवासरे ॥ ७६ ॥

हस्ताद्रा चन्द्रजे मूलपूर्वाषाढा च रेवती ।

जीवे तृत्तरभाद्रश्च शुक्राहे स्वाति रोहिणी ॥ ७७ ॥

शनिवारे च श्रवणा शतभिषा यमघण्टकः ॥ ७८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब यमघण्टयोग कहते हैं-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रविवारमें मघा, वा पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके होनेसे यमघण्टयोग होती है इसी प्रकार सोमवारमें पुष्य, वा आश्लेषा नक्षत्रके होनेसे मङ्गलवारमें ज्येष्ठा, अनुराधा, भरणी, वा अश्विनी नक्षत्रके होनेसे बुधवारमें हस्त वा आर्द्रा, नक्षत्रके होनेसे बृहस्पतिवारमें मूल, पूर्वाषाढा, रेवती वा उत्तराभाद्रपदाके होनेसे, शुक्रवारमें स्वाति वा रोहिणीके होनेसे और शनिवारमें श्रवणा वा शतभिषा नक्षत्रके होनेसे यमघण्टनामक योग होता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ अमृतयोगः ।

भूमिपुत्रार्कयोरहि नन्दामरुद्गारुणार्द्रान्त्यचित्राहिमूलाभि-
भिः । भार्गवेणाङ्ग्योराहि भद्रा भवेत्फल्गुगुमाज्युगमोडुभिः

संयुता ॥ ७९ ॥ सोमपुत्रस्य वारे जया स्यान्मृगोपेन्द्रगुर्वि-
न्द्रयाम्याभिजिद्वाजिभिः । गीष्पतेराहि युक्ता च रिक्ता यदा
विश्वशक्राग्रियुक्पिष्यादित्यम्बुभिः ॥ ८० ॥ सूर्यसुतस्य
दिने यदि पूर्णा ब्रह्मदिनाधिपतिद्रविणेः स्यात् ॥ योगवा-
रास्त्रिभिरेव समेताः सर्वसमीहितसिद्धिनिधुक्ताः ॥ ८१ ॥ (×)

अर्थ--अथ अमृतयोग कहते हैं:- मंगलवारमें वा रविवारमें नन्दातिथि, स्वाति,
शतभिषा, आर्द्रा, रेवती, चित्रा, आश्लेषा, मूल वा कृत्तिका नक्षत्रके होनेसे
अमृतयोग हाता है इसी प्रकार शुक्रवारमें वा सोमवारमें भद्रातिथि, पूर्वाफाल्गुनी,
उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदाके होनेसे बुधवारमें जयातिथि,
मृगशिरा, श्रवण, पुष्य, ज्येष्ठा, मरणी अभिजित् वा अश्विनीनक्षत्रके होनेसे
बृहस्पतिवारमें रिक्तातिथि, उत्तराषाढा, ज्येष्ठा कृत्तिका, रोहिणी, मघा, हस्त वा
पूर्वाषाढा नक्षत्रके होनेसे और शनिवारमें पूर्वातिथि, रोहिणी, हस्त, वा धनिष्ठा
नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होता है । यह अमृतयोग सब योगोंमें श्रेष्ठ है इस
योगमें मनुष्यको वाञ्छित फल प्राप्त होता है ॥ ७९-८१ ॥

अथ तिथ्यमृतयोगः ।

बुधमन्दगता नन्दा कुजे भद्रा जया गुरौ ।

भृगौ रिक्तामृतं प्रोक्तं पूर्णा च रविचन्द्रयोः ॥ ८२ ॥ (१)

इति -योति-सारसंग्रहे ।

अर्थ--अथ तिथ्यमृतयोग कहते हैं, ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि-बुधवारमें
वा शनिवारमें नन्दा (प्रतिपदा, एकादशी, पष्ठी) तिथिके होनेसे अमृतयोग
होता है, इसी प्रकार मंगलवारमें भद्रा (द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी,) तिथिके होनेसे
बृहस्पतिवारमें जया (त्रयोदशी, अष्टमी, तृतीया) तिथिके होनेसे, शुक्रवारमें

(×) दण्डनश्याकेन अमृतयोगमाह-भूमिपुत्रेति । सुगमम् । अन्यत् अमृतयोगमे-
तेषां फलमाह-सूर्यसुतस्येति । उत्तेस्त्रिभिर्वारित्येनश्रुत्युक्ता योगा सर्वसमीहितसि-
द्धिकरा ।

(१) “चन्द्रार्कयोर्मन्त्रे पूर्णा कुजे भद्रा जया गुरौ । बुधमन्दो च नन्दायां शुके रिक्ता-
मृतातिथिः ” इति राजमातृण्डे । अथ नन्दादितिथिमाह सारसंग्रहे “एकादशी ॥ प्रति-
पद् पष्ठी नन्दा सदा भवेत् । द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी चापि सा भवेत् । अष्टमी च
तृतीया च जया स्याच्च त्रयोदशी । चतुर्थी नवमी रिक्ता तथैव स्याच्चतुर्दशी । पञ्चमी
दशमी पूर्णा पूर्णमासी ततः परम् ॥ ”

बृहस्पतिवारमें पुष्य, शुक्रवारमें रेवती और शनिवारमें रोहिणीनक्षत्र होनेसे अमृत-
तसिद्धि नामक योग होता है यह योग सब कार्योंमें सिद्धिप्रदान करता है, इस
प्रकार प्राचीन विद्वानोंने कहा है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अथ प्रशस्तयोगः ।

रेवती रविवारे च हस्तः सोमे न संयुतः ।

पुष्योऽप्यवनिपुत्रेण रोहिणी बुधसंयुता ॥ ७४ ॥

स्वाती च गुरुणा युक्ता शुक्रेणोत्तरफाल्गुनी ।

मूलन्तु पङ्क्तुसङ्गेन सर्वकार्ये प्रशस्यते ॥ ७५ ॥

इति श्रीपतिव्यवहारनिर्णये ।

अर्थ—श्रीपतिभट्टाचार्यने व्यवहारनिर्णय ग्रन्थमें लिखा है कि, रविवारमें रेवती,
सोमवारमें हस्त, मङ्गलवारमें पुष्य, बुधवारमें रोहिणी, बृहस्पतिवारमें स्वाति,
शुक्र वारमें उत्तराफाल्गुनी और शनिवारमें मूलनक्षत्र होनेसे सभी कार्योंमें प्रशस्त
होता है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

अथ यमघण्टयोगः ।

द्वे मघा पूर्वाफाल्गुन्यौपुष्याश्लेषार्कचन्द्रयाः ।

ज्येष्ठानुराधाभरणी चाश्विनी कुजवासरे ॥ ७६ ॥

हस्ताद्रा चन्द्रजे मूलपूर्वाषाढा च रेवती ।

जीवे तूत्तरभाद्रश्च शुक्राहे स्वाति रोहिणी ॥ ७७ ॥

शनिवारे च श्रवणा शतभिषा यमघण्टकः ॥ ७८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अथ यमघण्टयोग कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रविवारमें
मघा, वा पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके होनेसे यमघण्टयोग होती है इसी प्रकार
सोमवारमें पुष्य, वा आश्लेषा नक्षत्रके होनेसे मङ्गलवारमें ज्येष्ठा, अनुराधा,
भरणी, वा अश्विनी नक्षत्रके होनेसे बुधवारमें हस्त वा आर्द्रा, नक्षत्रके
होनेसे बृहस्पतिवारमें मूल, पूर्वाषाढा, रेवती वा उत्तराभाद्रपदाके होनेसे, शुक्र-
वारमें स्वाति वा रोहिणीके होनेसे और शनिवारमें श्रवण वा शतभिषा नक्षत्रके
होनेसे यमघण्टनामक योग होता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ अमृतयोगः ।

भूमिपुत्रार्कयोरहि नन्दामरुद्गारुणार्द्रान्त्यचित्राहिमूलाग्नि-
भिः । भार्गवेणाङ्ग्योरहि भद्रा भवेत्फल्युगमाज्युगमोडुभिः

संयुता ॥ ७९ ॥ सोमपुत्रस्य वारे जया स्यान्मृगोपेन्द्रगुर्वि-
न्द्रयाम्याभिजिद्वाजिभिः । गीष्पतेराह्नि युक्ता च रिक्ता यदा
विश्वशक्राग्निषुक्पिपादित्यम्बुभिः ॥ ८० ॥ सूर्यसुतस्य
दिने यदि पूर्णा ब्रह्मदिनाधिपतिद्रविणैः स्यात् ॥ योगवा-
रास्त्रिभिरेव समेताः सर्वसमीहितासिद्धिनिपुक्ताः ॥ ८१ ॥ (×)

अर्थ-अब अमृतयोग कहते हैं- मंगलवारमें वा रविवारमें नन्दातिथि, स्वाति,
शतभिषा, आर्द्रा, रेवती, चित्रा, आश्लेषा, मूल वा कृत्तिका नक्षत्रके होनेसे
अमृतयोग हाता है इसी प्रकार शुक्रवारमें वा सोमवारमें भद्रातिथि, पूर्वाफाल्गुनी,
उत्तराफाल्गुनी, पूर्वामाद्रपदा, उत्तरामाद्रपदाके होनेसे बुधवारमें जयातिथि,
मृगशिर, श्रवण, पुष्य, ज्येष्ठा, मरणी अभिजित् वा अश्विनीनक्षत्रके होनेसे
बृहस्पतिवारमें रिक्तातिथि, उत्तराषाढा, ज्येष्ठा कृत्तिका, रोहिणी, मघा, हस्त वा
पूर्वाषाढा नक्षत्रके होनेसे और शनिवारमें पूर्वातिथि, रोहिणी, हस्त, वा धनिष्ठा
नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होता है । यह अमृतयोग सब योगोंसे श्रेष्ठ है इस
योगमें मनुष्यको वाञ्छित फल प्राप्त होता है ॥ ७९-८१ ॥

अथ तिथ्यमृतयोगः ।

बुधमन्दगता नन्दा कुजे भद्रा जया गुरौ ।

भृगौ रिक्तामृतं प्रोक्तं पूर्णां च रविचन्द्रयोः ॥ ८२ ॥ (१)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब तिथ्यमृतयोग कहते हैं, ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि-बुधवारमें
वा शनिवारमें नन्दा (प्रतिपदा, एकादशी, पष्ठी) तिथिके होनेसे अमृतयोग
होता है, इसी प्रकार मंगलवारमें भद्रा (द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी,) तिथिके होनेसे
बृहस्पतिवारमें जया (त्रयोदशी, अष्टमी, तृतीया) तिथिके होनेसे, शुक्रवारमें

(×) दण्डकश्चाकेन अमृतयोगमाह-भूमिपुत्रेति । सुगमम् । अन्यत् अमृतयोगमे-
तेषां फलञ्चाह-सूर्यसुतस्येति । उक्तेस्त्रिभिर्वारतिथिनक्षत्रैर्पुक्ता योगाः सर्वसमीहितसि-
द्धिकराः ।

(१) “चन्द्रार्कयोर्भवेत्पूर्णा कुजे भद्रा जया गुरौ । बुधमन्दौ च नन्दायां शुक्रे रिक्ता-
मृतातिथिः” इति राजमार्तण्डे । अथ नन्दादितिथिमाह सारसंग्रहे “एकादशी च प्रति-
पत् पष्ठी नन्दा सदा भवेत् । द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी चापि सा भवेत् । अष्टमी च
तृतीया च जया स्याच्च त्रयोदशी । चतुर्थी नवमी रिक्ता तथैव स्याच्चतुर्दशी । पञ्चमी
दशमी पूर्णा पौर्णमासी ततः परम् ॥ ”

रिक्ता (चतुर्थी नवमी, चतुर्दशी) तिथिके होनेसे, और राविवारमें वा सोमवारमें पूर्णा (पञ्चमी, दशमी, अमावस्या पूर्णिमा) होनेसे अमृतयोग होता है ॥८२॥

अन्यच्च ।

अर्कोत्ति पूर्णाथ जया शशाङ्गे भौमे च भद्रा बुधवारनन्दा ।

गुरौ द्वितीया भृगुजे तृतीया शनौ जया चेदमृतं वदन्ति ॥८३॥ (*)

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ—ज्योतिःसारमें लिखा है कि—राविवारमें पूर्णातिथि, सोमवारमें जयातिथि मङ्गलवारमें भद्रातिथि, बुधवारमें नन्दातिथि, वृहस्पति वारमें द्वितीयातिथि, शुक्रवारमें तृतीयातिथि और शनिवारमें जयातिथिके होनेसे अमृतयोग होता है ॥ ८३ ॥

अथ सिद्धियोगः ।

शुक्रे नन्दा बुधे भद्रा शनौ रिक्ता कुजे जया ।

गुरौ पूर्णा च संयुक्ता सिद्धियोगः प्रकीर्तितः ॥ ८४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अथ सिद्धियोग कहते हैं ज्योतिः सारसंग्रहमें लिखा है कि—शुक्रवारमें नन्दातिथि बुधवारमें भद्रातिथि, शनिवारमें रिक्तातिथि, मङ्गलवारमें जयातिथि और वृहस्पतिवारमें पूर्णातिथिके होनेसे सिद्धियोग होता है ॥ ८४ ॥

अथ रत्नाङ्कुरयोगः ।

यदि सोमदिने नन्दा विहाय हस्विासरम् ।

जया भद्रार्कयोवारि रिक्ता भूमिसुते तथा ॥

पूर्णा बुधसिताद्दे च भद्रा चेद्वरुवासरे ।

रत्नाङ्कुराख्यो योगोऽयं सर्वकार्ये प्रशस्यते ॥८५॥ (✽)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अथ रत्नाङ्कुरनामक योग कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि—सोमवारमें एकादशी तिथिको छोड़कर नन्दातिथि, शनिवारमें वा रविवारमें जयातिथि, मङ्गलवारमें रिक्तातिथि, बुधवारमें वा शुक्रवारमें पूर्णातिथि और वृहस्पतिवारमें भद्रातिथिके होनेसे रत्नाङ्कुरनामक योग होता है यह योग सभी-कार्यमें प्रशस्त है ॥ ८५ ॥

(*) इदं वचनं ग्रन्थान्तरे लिख्यमिति ज्योतिःसारे स्मार्तनामिहितम् ।

(•) अयन्तु स्मार्तभोजराजसंग्रहकारदीपिकाकारादिभिर्नहुमिरालिखितत्वादप्रमा-
णमिव लक्ष्यते इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अथ पापयोगः ।

आदित्यभौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्रशशाङ्कयोः ।

बुधे जया गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णा च पापदा ॥ ८६ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब पापयोगको कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, रविवारमें वा मङ्गलवारमें नन्दातिथि, शुक्रवारमें वा सोमवारमें भद्रातिथि, बुधवारमें जयातिथि, बृहस्पतिवारमें रिक्तातिथि और शनिवारमें पूर्णा तिथिके होनेसे पापयोग होता है ॥ ८६ ॥

अथ विषयोगः ।

सूर्ये सूर्यसुते भद्रा नन्दा वाक्पतिवासरे ।

जया सोमसिताहे च पूर्णा च धरणीसुते ॥

बुधवारे यदा रिक्ता तथा चन्द्रार्कयोरपि ।

विषयोगोऽयमुद्दिष्टः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥ ८७ ॥ ❀

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब विषयोग कहते हैं—ज्योतिःसारमें लिखा है कि, रविवारमें वा शनिवारमें भद्रातिथि, बृहस्पतिवारमें नन्दातिथि, सोमवारमें वा शुक्रवारमें जयातिथि, मङ्गलवारमें पूर्णातिथि और बुधवार सोमवार वा रविवारमें रिक्तातिथि होनेसे विषयोग होता है, इस योगको सभी कार्यमें परित्याग करना चाहिये ॥ ८७ ॥

अपिच ।

अमृतं सिद्धियोगश्च यद्येकस्मिन्दिने भवेत् ।

तद्दिनन्तु भवेद्दुष्टं मधुसर्पिर्भयविषम् ॥ ८८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि—मधु और घृतके मिलानेसे जिस प्रकार विषके समान होजाता है उसी प्रकार नक्षत्रामृतयोग और सिद्धि एक समयमें होनेसे विषयोग होजाता है कोई २ कहते हैं कि, एक दिनमें अमृत (तिथ्यमृत) और सिद्धियोगके होनेसे विषयोग होजाता है ॥ ८८ ॥

अथ सिद्धिदग्धपापयमघण्टयोगाः ।

नन्दाद्याः सिद्धियोगा भृगुजबुधकुजार्कज्यवारैः प्रशस्ताः

सूर्यशाशाग्रिषड्दृष्टिमुनिमिततिथयोर्कादिवारैः प्रदग्धाः ॥ ८९ ॥

• अयमापि रत्नांकुरयोगवादेति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

पापोर्काहे विशाखात्रययममुदुपस्याहि चित्राचतुष्कम्
 तोयं विश्वाभिजिद्धं त्वथ कुजदिवसे स्वत्रयं विश्वरुद्रौ ॥ ९० ॥ (क)
 ज्ञाहे मूलाविशाखा यमघनतुरगान्त्यानि ज्विह्वि पैत्र्य-
 रोहिण्यार्द्रायमेन्दुं शतभमथ भृगोराहि पुष्यत्रयेन्द्रौ ॥ ९१ ॥
 सौराहे हस्तयुग्मार्यमयमजलयुक्पौष्मपुष्यां घनानि
 घण्टोऽखण्डक्षयुक्ते स्वगृहपतिदिने सौम्यवारेऽर्थमापि ॥ ९२ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अथ सिद्धि, दग्ध, पाप और यमघण्टयोग कहते हैं-दीपिकामें लिखा है कि, शुक्रवारमें नन्दा, बुधमें भद्रा, मङ्गलमें जया, शनिवारमें रिक्ता और बृहस्पति वारमें पूर्णातिथिके होनेसे सिद्धियोग होता है-रविवारमें द्वादशी, सोमवारमें एकादशी, मङ्गलवारमें दशमी, बुधवारमें तृतीया, बृहस्पतिवारमें पष्ठी, शुक्रवारमें द्वितीया, और शनिवारमें सप्तमी तिथिके होनेसे दिनदग्धनामक योग होता है । रविवारमें विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, वा भरणी नक्षत्रके होनेसे पापयोग होता है इसी प्रकार सोमवारमें चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, वा अभिजित् नक्षत्रके होनेसे मङ्गलवारमें धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराषाढा, वा आर्द्रा नक्षत्रके होनेसे बुधवारमें मूल, विशाखा, भरणी, धनिष्ठा, आश्विनी वा रेवती नक्षत्रके होनेसे, बृहस्पतिवारमें मघा, रोहिणी, आर्द्रा, भरणी, मृगाशिर वा शतभिषा नक्षत्रके होनेसे, शुक्रवारमें पुष्य, आश्लेषा, मघा, ज्येष्ठा नक्षत्रके होनेसे और शनिवारमें हस्त, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, भरणी, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, रेवती पुष्य अथवा धनिष्ठा नक्षत्रके होनेसे पापयोग होता है नक्षत्रोंके मध्यमें जो अभग्न

(क) सिद्धिदग्धपापयमघण्टयोगान्श्लोकद्वयेनाह-नन्दाद्या इति । ज्ञाह इति । भृगु जादिवारे यथासख्य नन्दाद्यास्तिययः प्रशस्ताः सिद्धियोगाः स्युः । तथाच “भृगी नन्दा बुधे भद्रा शनौ रिक्ता कुजे जया । गुरौ पूर्णा च सिद्धिः स्यात् त्रैलोक्य साधयेद्भु-
 वम् ” इति । तथा यथाक्रममर्कादिवारेः द्वादश्यादयस्तिययो दग्धाः स्युः । फलन्तु सज्ञानरूपमिति । तथाच राजमार्तण्डे-“भास १२ रुद्रा ११ दिशो १० रामाः ३ पद् ६ पक्ष २ मुनयस्तथा । दहन्ते तिययः सप्त सूर्याद्यैः सप्तभिर्ग्रहैः ” तथा रव्यादिवारे यथोक्तनक्षत्रैः पापयोगाः स्युः । स्वत्रय धनिष्ठादित्रयमित्यर्थः । अभग्ननक्षत्रयोगे स्वगृहपतिदिने यमघण्टयोगः स्यात् । बुधवारे अर्थमा उत्तराफाल्गुनी यमघण्टः तत्रेय व्याख्या राशिद्वयगत भग्ननक्षत्र एकराशिगत त्वभग्ननक्षत्रम् अभग्ननक्षत्रस्य यद्गृह यो राशिः तत्पतिवारे अभग्न नक्षत्रयोगे यमघण्टः स्यात् । तथा रविवारे मघा, उत्तरा, फाल्गुनी, सोमवारे पुष्याश्लेषा, मङ्गलवारे आश्विनी, भरणी, अनुराधा, ज्येष्ठा, बुधवारे आर्द्रा, हस्त बृहस्पतिवारे मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती शुक्रवारे रोहिणी, स्वाती, शनिवारे श्रवण, शतभिषा इत्यर्थः इति ।

नक्षत्र हैं वह सब नक्षत्र क्षेत्रके मालिक ख्यादिवारमें युक्त होनेसे यमघण्टकयोग होता है ॥ उदाहरण यथा-मघा पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीका एकपाद सिंहराशि इनका मालिक सूर्य है अतएव भग्ननक्षत्र उत्तराफाल्गुनी भिन्न मघा वा पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र रविवारमें युक्त होनेसे यमघण्टयोग होता है ॥ ८९ ॥
॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

अथ यमघण्टयोगादीनां त्याज्यकालकथनम् ।

यमघण्टे (१) त्यजेदष्टौ मृत्यौ द्वादशनाडिकाः ।

अन्येषां (२) पापयोगानां मध्याह्नात्परतः शुभम् ॥ ९३ ॥ (३)

अर्थ-अब यमघण्टादियोगका त्याज्यकाल कहते हैं यथा-यमघण्टयोगमें सूर्योदयके बाद आठ दण्ड और मृत्युयोगमें द्वादशदण्ड परित्याग करना चाहिये अन्यान्य समस्त पापयोगमें मध्याह्नकालके बादही शुभ होता है ॥ ९३ ॥

विष्ट्यादीनां प्रतिप्रसवः ।

विष्टावङ्गारके चैव व्यतीपाते शनैश्चरे ।

निधने जन्मनक्षत्रे मध्याह्नात्परतः शुभम् ॥ ९४ ॥

इति श्रीपतिव्यवहारनिर्णये ।

अर्थ-विष्टि भद्रा, मङ्गलवार, व्यतीपातयोग, शनिवार, जन्मतारा और जन्म-तारासे सातवाँ तारा-इन सब तिथि, नक्षत्र, वार और योगके कर्मसमय मध्याह्नके उपरान्त शुभ होता है इस प्रकार श्रीपतिभट्टाचार्यने व्यवहारनिर्णयनामक ग्रन्थमें कहा है ॥ ९४ ॥

अथ त्रिपुष्करयोगकथनम् ।

वाराः क्रूरास्तिथिर्भद्रा पादैकखण्डितश्च भम् ।

एतन्नयसमायोगे त्रिपुष्करमुदाहृतम् ॥ ९५ ॥

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ-अब त्रिपुष्करयोग कहते हैं-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, क्रूर अर्थात् रवि शनि वा मङ्गलवारमें यदि भद्रा (द्वितीया, द्वादशी वा सप्तमी) तिथि और मङ्गपादनक्षत्र पुनर्वसु, उत्तराषाढा, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा और विशाखा नक्षत्रके होनेसे त्रिपुष्करयोग होता है ॥ ९५ ॥

(१) कालण्टे इति पाठः ।

(२) सर्वेषामिति च पाठान्तरम् ।

(३) एतेषां निन्दनीयकालमाह-यमघण्ट इति । सूर्योदयादष्टौ दण्डान् यमघण्टे त्यजेत् । मृत्युयोगस्य द्वादश दण्डान् त्यजेत् । ततः परं शुभमित्यर्थः । अन्येषां दण्डादीनामितिष्टयोगान् मध्याह्नात् परकाले शुभं मध्याह्नात् पूर्वकालं त्यजेदित्यर्थः इति ।

फलम् ।

त्रिपुष्करे तु यत्किञ्चिच्छुभं वा यदि वाऽशुभम् ।

जायते त्रिगुणं सर्वं प्राणी जातस्तु जारजः ॥ ९६ ॥ (*)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, शुभ वा अशुभ जो कार्य होय त्रिपुष्कर-योगमें त्रिगुण फल होता है, किन्तु प्राणी उत्पन्न होनेसे वह जारज होता है ॥ ९६ ॥

अथ कालघण्टयोगः ।

पष्टी शीतांशुवारे परिहर दशमीं सप्तमीं भार्गवे च
अष्टम्यां देवमन्त्री बुधादिनवमीं सौरिवारे दशम्याम् ॥

भौमे चैकादशीञ्च दशशतकिरणे वर्जयेद्वाशीञ्च ।

सर्वारम्भ न कुर्याज्जनयति विपदं कालघण्टोऽपियोगः ॥ ९७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब कालघण्टयोग कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, सोमवारमें पष्टीतिथिके होनेसे कालघण्टयोग होता है, इसी प्रकार शुक्रवारमें दशमी वा सप्तमी तिथिके होनेसे, बृहस्पतिवारमें अष्टमी होनेसे, बुधवारमें नवमी होनेसे, शनिवारमें दशमी होनेसे मंगलवारमें एकादशी होनेसे रविवारमें द्वादशी तिथिके होनेसे कालघण्ट योग होता है इस कालघण्टयोगमें कार्यके करनेसे विपत्तियाँ होती हैं अतएव इसमें कोई कार्य न करना चाहिये ॥ ९७ ॥

अथ महादग्धाकथनम् ।

द्वादशी च मघादित्ये कृत्तिकैकादशी विधौ ।

दशम्यङ्कारके चार्द्रा बुधे मूलतृतीयका ॥ ९८ ॥

गुरौ पष्ठी भरण्याञ्च शुकेऽश्विन्यां द्वितीयका ।

आश्लेषा सप्तमी मन्दे महादग्धाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ९९ ॥

अर्थ—अब महादग्धायोग कहते हैं—रविवारमें द्वादशी तिथि और मघा नक्षत्रके होनेसे महादग्धा होता है, इसी प्रकार सोमवारमें कृत्तिकानक्षत्र और एकादशी तिथिके होनेसे, मङ्गलवारमें दशमीतिथि और आर्द्रा नक्षत्रके होनेसे, बुधवारमें मूलनक्षत्र,

(*) “लामो हानिर्जयो वृद्धिः पुत्रजन्य तथैव च । नष्ट दत्त मृतं वापि तत्सर्वं त्रिगु-
णापते । सर्वदेशविशेषेण फल स्याच्छुभयोगजम् ।

और तृतीया तिथिके होनेसे, बृहस्पतिवारमें पष्ठीतिथि और भरणी नक्षत्रके होनेसे, शुक्रवारमें अश्विनी नक्षत्र और द्वितीया तिथिके होनेसे और शनिवारमें व्याश्लेषानक्षत्र और सप्तमी तिथिके होनेसे महादग्धा होता है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

अथ दग्धादिनकथनम् ।

द्वादश्येकादशी च दशमी च त्रिपष्टिका ।

द्वितीया सप्तमी चैव दग्धा सूर्यादिवारतः ॥ १०० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-रविवारमें द्वादशी, सोमवारमें एकादशी, मंगलवारमें दशमी, बुधवारमें तृतीया, बृहस्पतिवारमें पष्ठी, शुक्रवारमें द्वितीया और शनिवारमें सप्तमी तिथिके होनेसे वह दग्धादिन होता है इस प्रकार ज्योतिःसारमें लिखा है ॥ १०० ॥

अपिच ।

आदित्यरुद्रकाष्ठाग्रिसप्तपक्षतुरङ्गमाः ।

आर्कादिवारयोगेन दह्यन्ते तिथयः क्रमात् ॥ १ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है, रव्यादि सात वारमें द्वादशी, एकादशी, दशमी, तृतीया, पष्ठी, द्वितीया और सप्तमी इन सब तिथियोंके होनेसे वह दिन दग्ध होता है ॥ १ ॥

अन्यथा ।

मासा रुद्रा दिशो रामाः पट्पक्षमुनयस्तथा ।

दह्यन्ते तिथयः सप्त रव्यादिसप्तभिर्ग्रहेः ॥ २ ॥

इति राजमातृण्डे ।

अर्थ-राजमातृण्डमें लिखा है कि, रव्यादि सात वारमें क्रमानुसार द्वादशी, एकादशी, दशमी, तृतीया, पष्ठी, द्वितीया और सप्तमी तिथि दग्धा होती है ॥ २ ॥

अपरञ्च ।

द्वादश्यर्कयुता भवेदशुभपा सोमेन चैकादशी

भौमे चापि युता तथैव दशमी नेष्टा तृतीया बुधे ।

पष्ठी नेष्टफलप्रदा सुरगुरौ शुके द्वितीया तथा

सर्वारम्भविनाशविघ्नजननी सूर्यात्मजे सप्तमी ॥ ३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, रविवारमें द्वादशी तिथि शुभ नहीं होती है

इसी प्रकार सोमवारमें एकादशी, मंगलवारमें दशमी, बुधवारमें तृतीया, बृहस्पतिवारमें पष्ठी, शुक्रवारमें द्वितीया और शनिवारमें सप्तमी तिथि सभी कार्यमें विघ्नदात्री होती है ॥ ३ ॥

अथ देशविशेषे योगव्यवस्था ।

सर्वेषु देशेषु विशेषतोऽमी

विष्कुम्भकाद्या मुनिभिः प्रदिष्टाः ॥ (×)

वारक्षयोगास्तिथिवारयोगा

वज्रेषु योज्या न तु तेऽन्यदेशे ॥ ४ ॥ (क)

अर्थ—विष्कुम्भादि सत्ताईस नित्ययोगका फल सभी देशोंमें होता है किन्तु अमृतयोग पापयोगादि, नक्षत्रामृतादि और तिथिवारयोगमें जो सिद्धि और दग्धादियोग हैं उनका शुभाशुभ केवल बङ्गदेशमें ही होता है अन्य किसी देशमें इनकी व्यवस्था नहीं है अतएव और जगह शुभाशुभ फल नहीं होता है ॥ ४ ॥

अथ यात्रादिषु करणव्यवस्था ।

गरवणिजविष्टिर्वर्जितानि करणानि यातुरिष्टानि ।

गरमपि कैश्चिच्छस्तं वणिजस्तु वणिक्क्रियास्वेव ॥५॥ (×)

अर्थ—जब यात्रादिमें करण कहते हैं, गर वणिज और विष्टिभिन्न सभी करण यात्रादिमें प्रशस्त हैं- किसी २ मुनिके मतसे गर करणभी यात्रामें प्रशस्त है और वणिज करण वाणिज्यमें प्रशस्त है ॥ ५ ॥

(×) यह वचन नित्ययोगप्रकरणमें लिखा है परन्तु आवश्यकता समझकर यहाँ भी लिखा है ।

(क) सर्वेषां शुभाशुभयोगानां देशविशेष एव फलमाह—सर्वेष्विति । वारक्षयोगा अमृतयोगादयः तिथिवारयोगाः साद्धिदग्धादयः वज्रेषु योज्याश्चान्यदेशे गुणदोषो नास्तीत्यर्थः । इति । ‘विरुद्धसंज्ञास्तिथिवारयोगा नक्षत्रवारप्रभवाश्च ये वै । हूणाङ्गवज्रेषु खशेषु वर्ज्याः शेषेषु देशेषु न ते विरुद्धाः ॥’

इति श्रौपातिः ।

(+) यात्रायां करणान्याह—गरोति । गरवणिजविष्टिसंज्ञकं करणत्रयं त्यक्त्वान्यानि करणानि यातुर्जनस्य इष्टानि शुभानि । कैश्चिन्मुनिभिर्गरमिति प्रशस्तमुक्तम् । वणिजमपि वणिक्क्रियासु वाणिज्येष्वेव कैश्चिदुक्तं शस्तं नान्यत्रेति । तथाच वशिष्ठः—“गरं हि शुभदं याने वाणिज्ये वणिजं तथा । विष्टिः सर्वात्मना वर्ज्या यातुः प्राणार्थनाशिनी ”

अथ यात्रायां नक्षत्रवत्करणव्यवस्था । .

नक्षत्रवत्क्षणानां परिघः शूलं समयभेदश्च ।

ताराचन्द्रविशुद्धिः सर्वं तत्स्वामिभिश्चिन्त्यम् ॥ ६ ॥ (अ)

अर्थ-अब यात्रामें नक्षत्रकी समान नक्षत्रके मुहूर्त्तकी व्यवस्था कहते हैं, नक्षत्रके समान नक्षत्रके क्षणमें (मुहूर्त्तमें) दण्डमें, नक्षत्र शूलमें, समयके भेदसे नक्षत्रके मालिक और मुहूर्त्तका मालिक ऐक्य होनेसे और तारा चन्द्रमा शुद्ध होनेसे नक्षत्राविहित कर्म नक्षत्रके मुहूर्त्त होसकते हैं ॥ ६ ॥

अथ निषिद्धलग्नकथनम् ।

मीने कर्किक्यालनि च वृषे जन्मकालस्थपापे

वामे वा दिग्द्युनिशबलिनां जन्मलग्नाष्टमे वा ।

वर्गे पापानुपचयकृतां वक्रिणां पृष्ठलग्ने

पापास्तम्भे न गतिरबले जन्मलग्नानधोनं ॥ ७ ॥ (×)

अर्थ-अब यात्रामें निषिद्ध लग्न कहते हैं-मीन कर्क, वृश्चिक और वृष इन सब लग्नों और जन्मसमय पापग्रह जिस राशिमें होय उस लग्नमें वा राशिमें

(अ) यात्रायां मुहूर्त्तफलमाह-नक्षत्रवदिति । नक्षत्रवत्क्षणानामपि परिवोऽत्र दण्डोऽन्तरे वाय्वग्नोरित्यनेनेक्तो दण्डः । तन्म्येष्टाजपदाभित्यनेनेक्तो शूल समयभेदो दग्ध शत्रुपुरमित्यादिनेक्तः । कालभेदश्चन्द्रताराविशुद्धिः चकारात्सार्वभारिकश्च चिन्त्यमित्यर्थः । न केवल यात्रायां किन्तु यस्मिन्पस्मिन्नक्षत्रे विहित यद्यत्कर्मोक्ति तत्तत्सर्वं कर्म च क्षणानामपि चिन्त्य कथमिति चेदाह तच्च स्वामिभिरेवेति । तेषां क्षणानां स्वामिभिः पूर्वोक्तैर्नक्षत्रैरित्यर्थः । तथा चोक्त नक्षत्रे याद्विहित तत्कार्यं तन्मुहूर्त्तरिति । बृहद्यात्रायाम् । “ अहोरात्रश्च सम्पूर्ण चन्द्रनक्षत्रयोजितम् । तन्नक्षत्रमुहूर्त्ताश्च सर्वकर्मगुणाः स्मृताः ” यद्वा तयोर्नक्षत्रक्षणयोः स्वामिभिर्देवैरिति अश्विनमदहनेत्यादिना नक्षत्राधिपदेवा उक्ताः । शिन्नुजग इत्यादिना मुहूर्त्ताधिपा देवाश्चोक्ताः तयोर्देवैक्यवशेन नक्षत्राविहित कर्मक्षणेऽपि कार्यमित्यर्थः । अन्ये त्वन्यथा प्रलपन्ति तदुपेक्षितमिति ।

(×) यात्रायां निषिद्धलग्नमाह-मीन इति । मीने कर्कटे वृश्चिके वृषलग्ने गमन न शुभमित्यर्थः । तथाच बृहद्यात्रायाम् । “ वृषवृश्चिककर्कटे नृणामनुकूलैरपि लग्नमाश्रितः । गमनं प्रवदन्त्यशोभनं मुनयोऽन्यर्क्षसमाश्रितैरपि ” तथा लघुयात्रायाम् । “ मीने कुटिलो मार्गो भवति तदक्षेऽपि ” इत्यादि वक्ष्यति । एतेन नौपान मीनकर्कटयोऽपि शस्त जलजराशित्वादिति । जन्मेति जन्मकालस्थपापं होयस्मिन् तत्र राशौ लग्ने वा गमनं न शस्तमिति । तथा लघुयात्रायाम् । “ आसन्नजन्मनि राशिषु येषु शुभा भास्कराद्वा द्वितीयाश्च । ते लग्ने शस्यन्ते नेष्टाः पापग्रहाध्यापिताः ” इति । एतेन मीनादीनां विशेषणं जन्मकालस्थपापं इति कस्यचिद् प्रलापो हेय इति । वाममिति दिशां वाम दिशाबलिना निशाबलिनाश्च लग्नानां वाम विपरीत

और दिवाबली राशि लग्नमें रात्रिसमय निशाबली राशिलग्नमें दिनके समय और जन्मराशिके वा जन्मलग्नके आठवें लग्नमें और पापग्रहोंके क्षेत्रमें वा नवांशादिमें गोचरमें अथवा दशादिमें अनुपचयकारक शुभग्रहोंके और बक्री ग्रहोंके क्षेत्रादिमें और पृष्ठोदय लग्नमें दो पापग्रहोंके मध्य स्थित लग्नमें बलहीन लग्नमें जन्मलग्न और जन्मराशिके अवशीभूत लग्नमें यात्रा न करनी चाहिये ॥ ७ ॥

अथ शुभाशुभलग्नकथनम् ।

मीने कुटिलो मार्गो भवति तदंशेऽन्यराशिलग्नोऽपि ।

नौयानमाप्यलग्ने कार्यं तेषां नवांशे वा ॥ ८ ॥

—गमन न शुभमेतदुक्तं भवति दिशा वाम यस्यान्दिशि गन्तव्यं तद्दिशो विमुखलग्ने न गन्तव्यम् । यथा बृहद्यात्रायाम् । “ यातव्यादिहमुखगतस्य मुखेन सिद्धिव्यर्थे प्रभोर्भवति दिनपतिनोदलग्ने ” इति । एतेन पूर्वोदितलग्ने पूर्वोत्तरदिशिणेषु गमनं शस्तं न कदाचित् पश्चिम इति । एष मन्यटपूह्यम् । तथा मोऽजा-श्वीत्यादिना दिवाबलिनो निशाबलिनश्च राशयः उक्तास्तेषां वामं दिवाबलिराशिलग्नो रात्रौ गमनं न शुभम् । निशाबलिराशिलग्नो च दिवा गमनं न शस्तमिति । यथा बृहद्यात्रायाम् “ शस्ते दिश दिनवरे निशि नक्तवीर्यं राशौ विपर्ययवले गमनं न शस्तमिति ” जन्मेति जन्मराशेर्जन्मलग्नस्य चाष्टमे लग्ने न शुभं गमनम् । वाशब्दश्चाथै । तथा पापग्रहस्य वर्गे ग्रहनवाशादौ गोचरे दशापाके वा अनुपचयकृता शुभानामपि वर्गे गमनं न शुभम् । एतेनोपचयकरस्यापि पापग्रहस्य च वर्गे गमनं शस्तमिति ध्वनितम् । तथाच लघुयात्रायाम् “ उपचयकरस्य वर्गः क्रूरस्यापि प्रशस्यते लग्ने । चन्द्रेऽपि च तदयुक्ते न तु विपरीतस्य सौम्यस्य ” इति तथा वक्रिणा वर्गे ग्रहनवाशादौ गमनं न शस्तम् । तथा लघुयात्रायाम् “ वक्रौ न शुभेन्द्रे तदहस्तद्वर्गशुभलग्नश्च ” इति । तथाच पृष्ठलग्ने पृष्ठोदये लग्ने गमनं न शस्तम् । यथा बृहद्यात्रायाम् । “ शीर्षोदये स्वमभिवाञ्छितकार्यासिद्धिः पृष्ठोदया विफलता फलविद्रवश्च ” इति । एतेन पापानां पापग्रहावस्थितराशिनाम् अनुपचयकरस्थित राशीनाञ्च वर्गे गमनं न शुभं वक्रिग्रहाणां पृष्ठलग्ने पश्चालग्नौ च न शुभमिति सौमरेर्गतिविभ्रमजन्यप्रलप इति । पापान्तस्य इति पापद्वयमध्यगे लग्ने न शुभम् । तथा अवले बलहीने च लग्ने न शुभम् । तथा जन्मलग्नस्य जन्मराशेश्चाविधेये विधेयो विवातव्यः । आज्ञाप्यो वशग इति यावत् । तथा चामरसिंहः—विधेयो विनयग्राही वचने स्थित स्वाश्रयः । वश्यः प्रणेयो निमृताविनीतप्राश्रिताः समाः ॥ इत्यादिधेयेऽवले लग्ने गमनं न शुभमित्यर्थः । द्विपदवशाग इत्यादिना तु वश्यावश्यत्वमुक्तमेवेति । तथा बृहद्यात्रायाम् “ अविधेयं यद्रवनं स्वजन्मलग्नार्क्षयोः प्रयातुणाम् । अप्यनकूलं लग्नं घनक्षयाय स्वेदमद्रवाति । सप्तवश्यतामुपेतं स्वजन्मलग्नार्क्षयोर्विलग्नस्ये । अपचयकरकेऽपि यातुर्लघुघनमानागमाः क्षिप्रम् ” इति सीमरिणातु अविधेयेत्यादि । अविधेयात्रिलामरिषि-वर्मस्यानवर्जिते लग्ने इति सर्वार्थाज्ञानादेव प्रलपितं तदशुद्धमेवेति । इति वामे विपरीते “ घटमिधुनकुलिराश्वापगो मीनकन्याः स्त्रुलु शुभमवनत्वाद्वाशयः सप्त सौम्याः । अलिषट्मृगासिंहाजाश्च पापाश्रयत्वान्मुनिभिरभिहितारत्ने राशयः क्रूरभावाः ” इति ज्योतिस्तत्त्वे स्मार्त्तनोक्तम् ।

अर्थ-मीनलग्नमें वा अन्यराशिकी लग्नमें मीनके अंशमें गमन करनेसे यात्रीकी वक्रपथमें गति होती है। जलजराशिकी लग्नमें वा जलजराशिकी लग्नके नवांश दिमें नौकामें सवार होकर यात्रा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

अपिच ।

लग्ने कार्मुकमेपतोलिगमने कार्ये विलम्बो नृणां

पञ्चत्वं मकरे तथा शशिशृङ्गे तद्वत्फलं वृश्चिके ।

सिंहे वा यदि गोघटेषु गमनं सर्वार्थसिद्धिप्रदं

स्यादाशापतिषु प्रयाति सकलं कन्याश्वमे मन्मथे ॥ ९ ॥ (क)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, धन, मेष और तुलालग्नमें यात्रा करनेसे यात्रीका विलम्बसे कार्य सिद्ध होता है, मकर, कर्क और वृश्चिकलग्नमें यात्रा करनेसे पञ्चत्व प्राप्ति होती है। सिंह, वृष और कुम्भलग्नमें यात्रा करनेसे सर्वार्थसिद्धि होती है और दिग्बदनलग्नमें और कन्या मीन वा मिथुन लग्नमें यात्रा करनेमें मनोरथ पूर्ण होता है ॥ ९ ॥

अन्यच्च ।

नेष्टं दिशन्ति मकरालिकुलीरलग्ने

मेघे घटे धनुषि दीर्घकरा हि यात्रा ।

गुमाङ्गनाश्वपवृषे ध्रुवमर्थलाभो

ज्योतिर्विदः सकलसिद्धिमुपैति लक्ष्मीः ॥ १० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वके वचनान्तरमें लिखा है कि, मकर, वृश्चिक कर्क, मेष, तुला और धनलग्नमें यात्रा करनेसे शुभफल नहीं होता है। मिथुन कन्या, मीन और वृष लग्नमें यात्रा करनेसे अर्थलाभ और लक्ष्मीयुक्त होता है ॥ १० ॥

अपरञ्च ।

पूर्वान्तु गच्छेद्धनुः सिंहमेघे अथोत्तरां कर्कटकीटमीने ।

प्रतीचिकां मन्मथतौलिकुम्भे ह्यपाचिका गोमकराङ्गनासु ११ (ख)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिषसारसंग्रहमें लिखा है कि, धन, सिंह और मेष लग्नमें पूर्वदिशाकी (क) “सिंहे वा यदि गोघटे गतनरः सर्वार्थसिद्धिं लभेत् कन्याया मिथुने श्वमे त्वभिमेते प्राप्नोत्यवश्य फलम्” ॥ इति ज्योतिःसारसंग्रहे परार्द्धस्य पाठः ।

(ख) “मेघसिंहधनुः प्राच्या वृषकन्यामृगा यमे । तुलाद्वन्द्वघटाः पश्चात्सीम्यां मीनालिकर्कटाः । इत्यपि सारसंग्रहे ।

यात्रा करैः कर्क, वृश्चिक, और मीन लग्नमें उत्तरदिशाकी यात्रा करै। मिथुन, तुला और कुम्भलग्नमें पश्चिमदिशाकी यात्रा करै और वृष, मकर वा कन्या लग्नमें दक्षिणदिशाकी यात्रा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

प्रकारांतरश्च ।

यानेभं जन्मराशेरुपचयमुदयारित्रिलाभश्च वेशिर्मित्रं वश्यं
स्वजन्मस्वतनुभवनयोर्यद्गृहेनोनिर्गमम् ॥ स्थानं सौम्यस्य
जन्मन्यभिमतपलदस्यापि यत्र पुवश्च याम्यांत्यक्त्वा
भिजिद्वं शुभदिवसफलेन्दोश्च या कालहोरा ॥ १२ ॥ (+)

अर्थ—जन्मराशिसे तीसरे, छठे वा ग्यारहवें लग्न हो, जन्मसमयके सूर्यसे

(+) विहितलग्नमाह—यान इति । जन्मराशेः सप्ताशात् उपचय त्रिदशपष्ठैराद-
शस्य लग्नं तत् शुभ एतेन जन्मराशिलग्नं न शुभमिति ध्वनिन तथा लघुयात्रायाम्
“इष्टं स्वलग्नलग्नं जन्मराशुद्रमस्तरो” स्थानानि । पट् त्रयायगृहाणि हितान्युदयेनेष्टानि
शेषाणि” इति । तयोदयारित्रिलाभश्च सदुदय स्वजन्म लग्नं अर्थात्तदौदयारित्रिलाभश्च
लग्नं सदेतेन जन्मलग्नाद्दशमस्थानं न शस्तमिति सूचितम् ॥ तथा बृहद्यात्रायाम् क्लेशा-
दिनाफलमरिक्षयश्चेति केचित्तदयस्यारित्रिलाभं सत् किन्तु नोदयमिति पूर्वलिखितजन्य-
नात् । “तथा क्लेशादिना फलमरिक्षयमर्थसिद्धिं प्राप्नोति लग्नसहिते प्रवसन्स्वलग्ने”
इति । तथा वेशिर्जन्मकाले सूर्याद्वितीयार्धं लग्नं शुभमिति । वृश्चिक यात्राकाले सूर्यात्
द्वितीयार्धं शुभमिति वदति तदसत् “आसन्नजन्मनि राशिषु येषु शुभा भास्कराद्वितीयाश्च”
इति लघुयात्रावचनात् । तथा स्वजन्म स्वलग्नग्रहयोरेष्य भिन्नश्च लग्नं सत् द्विपदवशात्
इत्यादिनावश्यत्वमुक्तं भिन्नत्वश्च स्वामिद्वारेति ज्ञातव्यम् । यद्दशमं ग्रहः शुभाशुभेन निर-
शमशशेषीकृतं यस्य शेषांशे ग्रहो न वर्तते तद्दशमं सदेतेन निरशलग्नं न शुभमिति
निषेध एव तात्पर्यार्थः । तथाच “यस्मिन्नाशान्न्यभागे सौम्यः पापोऽथवा स्थितः ।
गमने वर्जयेन्नित्यं भयशोकप्रदो यतः” अर्थाजन्मकाले सौम्यस्य स्थानं शुभकान्तं
यद्गृहं तद्दशमं सत् यथा आसन्नजन्मनि राशिषु येषु शुभा इत्यादि । तथा जन्मन्यभिमतफ-
लदस्य राजयोग उक्तं योगादिना शुभफलदस्य पापस्यापि समानान्तं स्थानं यद्गृहं
तद्दशमं सत् । तथा यत्र ऋः स्यात् यद्दशमं स्वामिनो विद् यस्मिन् गच्छी गन्तुमिष्टा स्यात्त-
द्दशमं मत् । तथा सारांशायाम्—“ननाधिपदिदनामग्नं इह यज्ञः प्रयत्नतः कथितः ।
तत्तत्तगो विनिहन्त्यादचिरेण महीपातिः अत्र” इति । एतेन ऋषो वेशिस्थानाधिपो यत्र
विद्यत इति सोमरे. प्रलापोऽशुद्ध एव । तथा याम्यां दक्षिणां विज्जं त्यक्त्वाभिजिद्वं
अभिजिन्मुहूर्त्ताधिष्ठितराशिलग्नं सत् तथा लघुयात्रायाम् “यश्चाष्टमो मुहूर्त्तो दिनेऽभिजि-
द्वामनिर्दिष्टः तस्मिन्स्य तत्रा याम्यामन्यत्र गतस्य जयलब्धिः” इति ॥ शुभेति शुभं दिवाप-
गारफः यस्य तस्य ग्रहस्थेन्दोश्च या कालहोरा तद्दशमं सदेतदुक्तं गच्छति सत्यमेदिनास इत्या-
दिना निषिद्धाग उक्ताः । लघुयात्रादिषु च ज्यो जयानन्तरित्यादिना च शुभयात्रा
उक्ताः अनुलोमदिक्शेन च वारस्य शुभमस्तुक्तमेव यम्यग्रहस्य द्वारे शुभफलं कथितं तस्य

दूसरी राशिको लग्न और जन्मराशिकी वा जन्मलग्नके वश्य वा मित्र लग्न अथवा जिस राशिके शेषांशमें ग्रह न होय उस लग्नमें, जन्मसमय शुभग्रह युक्त राशिकी लग्नमें, जन्मसमय शुभ फलप्रद पापग्रहयुक्त राशिकी लग्नमें गन्तव्यादेकपातिके क्षेत्रलग्नमें, दक्षिण दिग्भिन्न अमिजित् नक्षत्रके मुहूर्त्तकी लग्नमें और शुभग्रहोंके वारमें और चन्द्रमाके काल होरामें यात्रा शुभ होती है ॥ १२ ॥

अथ यात्रायां लग्नस्थनिषिद्धग्रहनिर्णयः ।

पापः क्षीणो विधुररिदिनं यस्य जन्मर्क्षपीडा

होराजन्माष्टमगृहपतिर्जन्मभं प्रत्यनिष्टः ।

नीचस्थास्तं गतपरजितो जन्मलग्नशत्रु-

लग्ने नेष्टः खचररहितं वक्रियुक्तश्च केन्द्रम् ॥ १३ ॥ (×)

अर्थ-यात्रालग्नमें स्थित निषिद्ध ग्रहोंको कहेवें, पापग्रह, क्षीण चन्द्रमावारका

--कालहोरा। अस्वार्थः ग्रहस्य दिवसफल धारफल शुभाशुभ यदुक्त तस्य कालहोरा तत्फल करोति। तथा च लघुयात्रायाम् "यद्यस्य फल वारेतदशेष तस्य कालहोरायाम्" इति। एतेनाशुभेऽपि वारे शुभफलवास्य ग्रहस्य कालहोराया गमन शस्तमिति ध्वनितम् । एतेन जन्मकोष्ठ्या शुभदिवसफलस्य शुभदस्येति सीमरेव्योरव्याकौशल हेतु दिवसपदवैयर्थ्यपत्तेश्चेति । कालहोराधिपाश्च देशवल्लभायामुक्ताः । "वारप्रवृत्तेर्षटिका द्विनिघ्नाः कालाख्यहोरापतयः शरात्ताः । दिनाधिपाद्या रवि मुक्तसौम्यशशाकसौरख्यरुजाः क्रमेण" ॥ इति ।

(×) लग्ने निषिद्धग्रहानाह-पाप इति । पापग्रहो लग्ने नेष्टः न शुभः । अत्र पापोऽपि यदि गोचरे दशापके वा शुभ ग्रहोऽप्यनिष्टदः सोऽपि लग्ने न शस्तइत्यर्थः । यथा लघुयात्रायाम् "क्रूरोऽप्यनुकूलस्थः शस्तो लग्ने शुभोऽपि नानिष्टफलदः" इति । तथा क्षीण-श्चन्द्रो लग्ने न शस्तः । यदुक्त "केन्द्रकोणार्थेगो नेष्टः क्षीणः पूर्णः शशी" इति । तथा यस्य ग्रहस्वारिदिनं ग्रहवारः यस्मिन्वारे यात्रा कर्त्तव्या तस्य वारस्य स्वामी यस्य ग्रहस्य शत्रुः स ग्रहो लग्ने नेष्ट इत्यर्थः । तथा बृहद्यात्रायां "रिपुदिवसे यस्य भवेत्सौम्योऽपि स लग्नगो न शुभदाता । पापोऽपिष्ट जनयति मित्रस्वलग्नस्य विलग्नस्यः" इति । अत्र लग्नाधिपस्वारिदिनं गमने योग्यमिति सीमरेर्मतविभ्रम इति । तथा यस्य ग्रहस्य जन्म-नक्षत्रपीडा स ग्रहो लग्ने नेष्टः । यस्येत्युभयत्र सवध्यते मध्यपाठात् ग्रहाणां जन्मनक्षत्र यथा " विशाखा नलतोयानि वैष्णवे भगदैवतम् । पुष्य पौष्णं यमः सर्पो जन्मर्क्षोऽप्य-कर्तः क्रमात् " इति । जन्मर्क्षपीडा च नक्षत्रमपट्टकिरणमित्यादिनोक्तेव तथा जन्मलग्नस्य जन्मराशेश्च यदष्टमं ग्रहं तस्य स्वामी लग्ने नेष्ट इति । तथा जन्मभ जन्मराशि प्रति गोचरे योऽनिष्टप्रदः स शुभोऽपि लग्ने नेष्टप्रदः । तथा क्रूरोऽप्यनुकूलस्थः शस्तो लग्ने शुभोऽपि नानिष्टफलद इति । तथा ये नीचस्था ये चास्तेगता ये च युद्धे परैर्जितास्ते लग्ने नेष्टाः । तथा जन्मलग्नाधिपस्य जन्मराश्यधिपस्य यः शत्रुः स लग्ने नेष्टः । एव दशान्तर्दशापतेः शत्रुलग्ने नेष्ट इति । यथा बृहद्यात्रायाम् । "गकेशादौ लग्ने वर्गे वा तस्य

मालिक जो शत्रु वह ग्रह और जिस ग्रहका जन्मनक्षत्र पीडित होय वह जन्मग्रह और जन्मराशिके आठवें स्थानका मालिक ग्रह, गोचरमें अनिष्टप्रद शुभ वा अशुभ ग्रह नीचस्थानमें स्थित ग्रह, अस्तमित ग्रह, पराजित ग्रह जन्मलग्नका मालिकका और जन्मराशिके मालिकका शत्रु ग्रह यदि लग्नमें होय वा लग्नके केन्द्रस्थानमें ग्रह शून्य होय अथवा वक्ती ग्रह केन्द्रस्थानमें होय तो उस लग्नम यात्रा न करनी चाहिये ॥ १३ ॥

अथ यात्रायां लग्नस्य होराज्ञानम् ।

तिर्यग्ध ऊर्ध्ववदनहोराः स्युः सूर्ययोगतः क्रमशः । (x)

वाञ्छितफलदोर्ध्वमुखी शेषे द्वे चाशुभे यातुः ॥ १४ ॥

अर्थ—अब यात्रामें लग्नके होरा जाननेकी रीति कहते हैं—राशिको दो भागमें विभक्त करनेसे उत्तकी होरा कहते हैं, जिस होरामें, सूर्य स्थित होय उसका नाम तिर्यङ्मुखी, उसके पीछेके भागका नाम अधोमुखी और उसके पीछेके भागका नाम ऊर्ध्वमुखी हैं ऊर्ध्वमुखी होरामें यात्रा करनेसे यात्राको वाञ्छित फल प्राप्त होता है और शेष दोनों होरामें यात्रा करनेसे अशुभ होता है ॥ १४ ॥

अथ यात्रायां द्रेष्काणफलम् ।

लग्ने यद्यद्रहाणां फलमुदितमिहांशेऽपि तेषां दृकाणे

सन्नाथे सौम्यरूपे कुसुमफलयुते रत्नभाण्डान्विते वा ।

—भूपतिर्गच्छन् । विनिहन्तारनराश्वः शत्रोगयाति वश्यतरम्” इति । तथा केन्द्र-लग्नचतुर्थसप्तमदशमस्थान सर्वमेव स्वचररहित ग्रहशून्य नेष्टम् । तथा वक्रिग्रहयुतश्च केन्द्र नेष्टम् तथा बृहद्यात्रापाम् “एकोऽपि वक्रोपगतो ग्रहाणां शुभाऽशुभो वापि चतुष्टयस्थः । वगोऽपि वास्योदयगो विनाश बृहत्प्रकारं कुरुतेऽध्वगानाम् ॥” इति। अत्र च विशेषमाह राजमातृण्डे—“शुभदः शुभदृष्टो वा शुभदक्षिणतोऽथवा शुभदृष्टः । शुभगेहे वा शुभदो वक्ती केन्द्रोपगो यातुः” इति । गोचरे दशापाके वा शुभदो वक्ती केन्द्रस्थः शुभफलदो भवतीत्यर्थः ।

(x) होराफलमाह—तिर्यग्गति । होराशब्द सूर्ययोगात् क्रमेण तिर्यग्ध ऊर्ध्ववदन-सन्नराहोरा गत्यर्थानि स्युः । अथमर्थः । यस्मिन् राश्यां सूर्यमिच्छति सा तिर्यङ्मुखी तत्पश्चादधोमुखी पुनस्तत्पश्चादूर्ध्वमुखीत्यादि । तथा बृहद्यात्रापाम् । यस्मिन्महर्षांशु गतिस्थितोऽर्ध्वतिर्यङ्मुखी सगणयेत्पुनः पुनः ”इति । नत ऊर्ध्वमुखी वाञ्छितफलदा शेषे द्वे होरे तिर्यङ्मुखी अधोमुखी यातुर्न शुभप्रदत्यर्थः । तथाच देवज्ञरत्नभाषायाम् । “यत्ते वाञ्छितकार्यमूर्ध्ववदना केशादिना लग्ना केशायां मपरिग्रमाश्च कुरुते तिर्यङ्मुखी गच्छन् । सैन्यभ्रमणयोमुखी च कुरुते केशादग्रहे चागमः मार्गः पुष्टफलप्रदाः स्वप-तिना दृष्टा न पापग्रहेः” इति ।

सौम्येर्दृष्टे जयः स्यात्प्रहरणसहिते पापदृष्टे च भङ्गो

वह्ना दाहोऽथर्वणः समुजगनिगडे पापयुक्ते च यातुः ॥१५॥ (क)

अर्थ-जब यात्रामें द्रेकाणका फल कहते हैं, पूर्वोक्त लग्नमें स्थित ग्रहोंका जिस प्रकार फल वर्णन किया है यात्रामें उन्हीं सब ग्रहोंके नवाशोंमेंभी तिसी प्रकार फल होता है शुभ ग्रहोंके द्रेकाणमें, सौम्यरूप द्रेकाणमें, फलपुष्पयुत द्रेकाणमें रत्नभाण्डान्वित द्रेकाणमें, और द्रेकाणोंपर शुभग्रहोंकी दृष्टि होनेसे यात्रा करनेवाले मनुष्यकी जय होती है और उद्यताक्ष द्रेकाणमें वा पापग्रहोंकी दृष्टि होनेसे द्रेकाणम यात्राभङ्ग होती है भुजगद्रेकाणमें, निगडद्रेकाणमें और पाप-ग्रहयुक्त द्रेकाणम यात्रा करनेसे यात्रीकी अग्निमें आह और बन्धन होता है ॥१५॥

अथ धरित्रीयोगः ।

लाभशुसहजेषु यमारां सौम्यशुक्रगुरवो बल्युक्ताः ।

गच्छतो यदि ततोऽस्य धरित्री सागराम्बुवसना वशमेति ॥१६॥ (ख)

अर्थ-जब धरित्री योग कहते हैं-यात्रासमयमें लग्नसे ग्यारहवें, छठे और

(क) यात्रायां नवांशद्रेकाणयो फलमाह-लग्न इति । लग्ने स्थितानां ग्रहाणां यद्य स्फल पाप क्षीणो विधुरित्यादिना पूजाक्तमिह यात्रायां तेषां ग्रहाणां नवांशेऽपि तत्फल-मुदितमिति । उह्यात्रायाम् । "यद्वयति फलं ग्रहे प्रदिष्टं जनयति तस्य नवांशको विलम्बे " इति । तथाच फलांतरमुक्त तत्रेन " नवभागे तिमाशोर्गहननाशो विलम्बस-प्राप्ते । दृष्ट्यात्सगृहागमनं प्रभासमृदता च चन्द्राजः । कीजेऽग्निभयं बोधे मित्रप्राप्ति-धनागमो ज्ञेयः । भोगविशुद्धिं शीघ्रे भृत्यविनाशो रविमुत्ताशे " इति । द्रेकाणफलमाह सन् शुभग्रहो नाथो यस्य तस्मिन् द्रेकाणे जयः स्यात्तथा नृपमर्भनयोरित्यादिनोक्तः । सौम्यद्रेकाणे जयः तथा फलपुष्पयुक्ते कर्कटादिद्रेकाणे जयस्तथा रत्नभाण्डान्विते धनुर्मध्ये तुलादिद्रेकाणे जयः स्यात्तथा सौम्ये शुभेर्दृष्टे द्रेकाणे जयः स्यादथ प्रहरणसहिते उद्यताक्षद्रेकाणे भङ्गोऽसदृशद्रेकाणे दाहोऽग्निभयम् । अथ समुजगनिगदेति । भुजगद्रेकाणे निगडद्रेकाणे च पापग्रहयुक्तं च द्रेकाणे यातुर्वन्धः स्यात् । यद्यपि भौनकर्कटयो-रित्यादिना मपनिगडयोरैक्यमुक्तं तथाप्यन्यत्र भेददर्शनादत्रापि पृथगुक्तम् । तथाच 'मृगालिपूर्वा निगडौ प्रदिष्टौ इति । अत्रच कश्चित् प्रहरणसहिते पापयुक्ते इति पाठं कृत्वा विशेषविशेषणभावेनान्वयं करोति तदसत् । ब्रह्मयात्रायाम् पापदृष्ट इत्यस्येन दृष्टत्वात् चरार यवैयथापत्तेश्च इति ।

(ख) अथकार्यनशान्तरागमने यद्यदुक्तमेव सर्वं न लभ्यते तदा योगयात्रा कायति तत्र प्रथमं धरित्रीयोगमाह-लग्नेति । एकादशषष्ठतृतीयेषु यथासम्भवमेकत्र पृथग्व्यवस्थितौ यमारां शनिगुरौ यदि स्यातां बुधशुक्रगुरवन्तु यत्र कत्रचित् स्थिता चरयुक्ता यदि स्युः तदा गच्छतोऽस्य नृपते पृथिवी सागराम्बुवसना समुद्रजलसीमा वशमेति । वसनेन वसना सीमेत्यर्थः । यदि । बुधशुक्रगुरवामेकोऽप्येव स्यात्तदायं योगो न स्यादित्यर्थः ।

तीसरे स्थानमें शनि और मंगल रहकर यदि बुध, शुक्र और बृहस्पति उस समय बलवान् न हों तब धरित्रीप्रद योग होता है उक्त योगमें यात्रा करनेसे सागर-पर्यन्त पृथिवी वशमें होजाती है ॥ १६ ॥

अथ किंवसुयोगः ।

केन्द्रोपगतेन गुरुणा वीक्षिते त्रयायचतुर्थगे सिते ।

पापैरनवाप्तसप्तमर्गैर्वसु किं तत्र यदाभुयाद्गतः ॥ १७ ॥ (ॐ)

अर्थ—यात्रासमय लग्नसे तीसरे, ग्यारहवें वा चौथे स्थानमें शुक्र स्थित होय केन्द्र स्थानमें स्थित बृहस्पति शुक्रको देखता होय, और नववें आठवें और सातवें स्थानमें पापग्रह न होय तो किंवसुयोग होता है, इस योगमें यात्रा करनेसे यात्रीको ऐसा कीनसा धन है कि जिसको प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् सब धनकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥

अथ विनासमरयोगः ।

शशिनिचतुर्थगृहं समुपगते बुधसहितेऽस्तगते भृगोःपुत्रे ।

गमनमवाप्य पतिर्मनुजानां जयति रिपून्समरेण विनैव ॥ १८ ॥ (क)

अर्थ—यात्रासमय यदि बुधके साथ चन्द्रमा लग्नके चौथे स्थानमें होय शुक्र अस्त होय तो विना समर योग होता है, उक्तयोगमें यात्रा करनेसे राजा विना, युद्ध किये शत्रुओंसे जयप्राप्ति करता है ॥ १८ ॥

अथ विनारणयोगः ।

सितेन्दुजौ चतुर्थगौ निशाकरश्च सप्तमे ।

यदा तदा गतो नृपः प्रशास्त्यरीन्विनारणम् ॥ १९ ॥ (ख)

अर्थ—यात्रासमय लग्नसे यदि चौथे स्थानमें शुक्र और चन्द्रमा सातवें स्थानमें स्थित होय तो विनारणयोग होता है, इस योगमें यात्रा करनेसे राजा विना युद्धसे शत्रुओंको पराजय करता है ॥ १९ ॥

(*) किंवसुयोगमाह—केन्द्राति । लग्नात्रयायचतुर्थस्थे शुके लग्नप्रथमसप्तमाष्टमस्थानरहितेः पापैर्गतः पुमान्यत्राभुयात्तात्किकं वसु धनं जगत्यस्ति । नवमाष्टमसप्तस्थेकोऽपि पापो यदि विद्यते तदा योगमद्ग इत्यर्थः ।

(क) विनासमर योगमाह—शशिनीति । चन्द्रे लग्नाचतुर्थस्थानं प्राप्ते बुधयुक्ते शुकेऽस्तगते सप्तमस्थे गमनं प्राप्य मनुजानां पतिर्नृपः समरेण युद्धेन विनैव रिपुं जयति । अरिमन्योगे रिपुजयकर्तृत्वाधिकारः नान्यस्य घनादकाक्षिण इति ।

(ख) विनारणयोगमाह—सितेति । चतुर्थस्थी शुक्रबुधौ समये च चन्द्रे यदा स्यात्तदा गतो नृपः शत्रून् प्रशास्ति अत्रापि रिपुनेतुराधिकारो नान्यस्येति ।

अथ अरिप्रध्वंसयोगः ।

एकान्तरक्षे भृगुजात्कुजाद्वा सौम्ये स्थिते सूर्यसुताद्गुरोर्वा ।

प्रध्वंसतेरिस्त्वचिराद्गतस्य वेशाधिके भृत्य इवेश्वरस्य ॥ २० ॥ (ग)

अर्थ—यात्रासमय शुक्र वा मङ्गलसे तीसरे स्थानमें शुभग्रह होय बुध और शनिसे तीसरे स्थानमें बृहस्पतिके होनेसे अरिप्रध्वंसनामक योग होताहै, इसमें यात्रा करनेसे यात्रीके शत्रुओंका शीघ्रही नाश होताहै ॥ २० ॥

शशिनरेन्द्रयोगः ।

गुरुदये रिपुराशिगतोऽर्को यदि निधने न च शीतमयूखः ।

भवति गतोऽत्र शशीव नरेन्द्रो रिपुवनितामनतामरसानाम् ॥ २१ (घ)

अर्थ—यात्रासमय लग्नमें बृहस्पति और लग्नके छठे स्थानमें सूर्य होय और आठवें स्थानमें चन्द्रमा न होय तो शशिनरेन्द्र योग होताहै, उक्त योगमें यात्रा करनेसे राजाके शत्रुओंकी स्त्रियोंका मुख संकुचित होजाताहै ॥ २१ ॥

अथ शिलाप्रतरणयोगः ।

लग्नारिकर्महिबुकेषु शुभेक्षिते ज्ञे

बूनान्त्यलग्नरहितेष्वशुभग्रहेषु ।

यातुर्भयं न भवति प्रतरेत्समुद्रं

यद्यश्मनापि किमुतारिसमागमेषु ॥ २२ ॥ (ङ)

अर्थ—यात्रासमय यदि लग्नमें वा लग्नके छठे, दशवें वा चौथे स्थानमें बुधपर शुभग्रहोंकी दृष्टि होय और सातवें, बारहवें और लग्नमें पापग्रह स्थित न होंय

(ग) अरिप्रध्वंसयोगमाह—एकेति । शुक्राद्वा कुजाद्वा एकान्तरक्षे तृतीयग्रहे सौम्येऽपापग्रहे सूर्यसुताद् गुरौ च स्थिते सति गतस्य राज्ञोऽचिरादेवारिः प्रध्वंसते नश्यति यवेश्वरस्य सेव्यस्य वेशाधिकोऽतिरेकवेशो भृत्योऽचिरान्नश्यति । अत्र तु रिपुजेतुरेवाधिकारो न लामाद्याकाक्षिण इति । एवमुत्तरत्रापि विशेषदर्शनाद्बोद्धव्यमिति ।

(घ) शशिनरेन्द्रयोगमाह—गुरुसिति । उदये लग्ने गुरुः पष्ठे स्थितोऽर्को यदि स्याद्-स्मिन् योगे निधनेऽष्टमे चन्द्रो यदि न स्यादष्टमस्ये तु चन्द्रे योगमद्वा एवेति । अत्र योगे गतो नरेन्द्रो रिपुवानेतामनतामरसानां शत्रुघ्नीमुखपद्मानां शशीव सङ्कोचको भवति । पङ्केरुह तामरसभित्तमरः । रिपुघ्नीणां पद्मत्वेन निरूपितस्य मुखस्य शोकादिना म्लानिकारकत्वेन राजा चन्द्रेणोपमयित इति ।

(ङ) शिलाप्रतरणयोगमाह—लग्नेति । लग्नपष्ठचतुर्थदशमेषु शुभदृष्टे ज्ञे बुधे सति पापेषु सप्तमद्वादशलग्नरहितेषु सत्सु अश्मना प्रस्तरेणापि यदि समुद्र प्रतरेत्तथापि यातुर्भयं न भवेत् किमुत शत्रुसमागमेषु भयमिति ।

तव शिलाप्रतरण योग होताहै उक्त योगमें यात्राकरनेसे यात्री पापाण (पत्थर) लेकरभी समुद्रमें तैर सकताहै तब शत्रुके निकटसे उसे क्या भय होसकताहै ॥२२॥

अथ अरिशलमयोगः ।

मूर्तिवित्तसहजेषु संस्थिताः शुक्रचन्द्रसुततिग्मरश्मयः ।

यस्य यानसमय रणानले तस्य पान्ति शलभा इवारयः २३ ॥ (च)

अर्थ—यात्रासमय लग्नमें शुक्र, लग्नके दूसरे स्थानमें बुध और लग्नके तीसरे स्थानमें सूर्यके होनेसे अरिशलमयोग होताहै, इसमें यात्राकरनेसे यात्रीके शत्रुगण रणमें पतङ्गकी समान नष्ट होजातेहैं ॥ २३ ॥

अथ अरिवैनतेययोगः ।

शुक्रवाक्पतिबुधैर्धनसंस्थैः सप्तमे शशिनि लग्नगतेऽर्के ।

नृपनिर्गतो पतिरोति कृतार्थो वैनतेयवदरीन्विनिगृह्य ॥ २४ ॥ (छ)

अर्थ—यात्रासमयमें शुक्र, बृहस्पति और बुध यदि लग्नके दूसरे स्थानमें स्थित हों और सातवें स्थानमें चंद्रमा और लग्नमें सूर्य हों तो अरिवैनतेय-नामक योग होता है इस योगमें यात्रा करनेसे राजा गरुडकी समान अपने शत्रुओंकी नाश करके समरमें कृतार्थ होता है ॥ २४ ॥

अथ अग्नियोषाभरणयोगः ।

त्रिपण्णवान्त्येष्ववलः शशाङ्कश्चान्द्रिर्वली यस्य गुरुश्च केन्द्रे ।

तस्यारियोषाभरणैः प्रियाणि प्रियाः प्रियाणां जनयन्ति सैन्ये २५ ॥ (ज)

अर्थ—यात्रासमयमें यदि बलहीन चन्द्रमा तीसरे, छठे, नववें वा बागहों स्थानमें होय और बलवान् बुध और बृहस्पति केन्द्रस्थानमें स्थित हों तो आग्नियोषाभरणयोग होताहै, इसमें यात्रा करनेमें उस राजाके बान्धव गणोंकी स्त्रियें शत्रुओंकी स्त्रियोंके आभूषणोंसे अपने प्रियाओंकी प्रीतिको उत्पन्न करते हैं ॥ २५ ॥

(थ) अरिशलमयोगमाह—मूर्तिवित्तः । शुक्रबुधसूर्यो यथामग्न्य लग्नद्वितीयतृतीयेषु स्थिता यस्य यानकाले स्पुस्तस्यारयो रणानले युद्धाग्नी शलना इव पान्ति नश्यन्तीत्यर्थः ।

(छ) अरिवैनतेययोगमाह—शुक्रोति रणार्थम् ।

(ज) अरियोषाभरणयोगमाह—त्रिपटिनि । यस्य पुत्रो यानकाले बलहीनश्चन्द्रमित्रिपण्णवान्त्येषु स्थितः चान्द्रिर्बुधो वली गुरुश्च वली केन्द्रमिग्नितुभी स्यातां तस्य सैन्ये प्रियाः प्रियजना बान्धवाः शत्रुपनितालङ्घिः प्रियाणां स्वपत्नीनां प्रियाणि प्रीतीन्जनयन्ति तत्पत्नयोऽपि शत्रुजये समर्था भवन्तीति तात्पर्यार्थः ।

अथ यात्राया राजयोगः ।

वर्गोत्तमगते चन्द्रे लग्ने वा चन्द्रवर्जितेः ।

चतुराद्यैर्यहैर्दृष्टे नृपा द्वाविंशतिः स्मृताः ॥ २६ ॥ (झ)

अर्थ-अब यात्रामें राजयोग कहते हैं, यात्रीकी जन्मराशि वा जन्मलग्न यदि वर्गोत्तमगत होय और चन्द्रमाको छोड़कर चारों ग्रहोंकी यदि उसमें दृष्टि होय तो बाईस (२२) प्रकारसे राजयोग होता है ॥ २६ ॥

अथ यात्राया राजयोगफलम् ।

यात्रिणां तु नृपयोगगतानां प्रत्यहं भवति राज्यविवृद्धिः ।

वातघूर्णितमिवार्षावयानं वैरिणां बलमुपैति विनाशम् ॥ २७ ॥ (झ)

अर्थ-जो राजा राजयोगमें यात्रा करता है उसका राज्य प्रतिदिन बढ़ता जाता है और विशेषकर समुद्रमें नौका जिस प्रकार वायुसे घूर्णित होकर नष्ट होजाती है तिसी प्रकार उस राजाके शत्रुओंका सेन्य नष्ट होजाता है ॥ २७ ॥

अथ वनवृद्धियोगः ।

लाभार्थलग्नेषु शुभो रविश्चैव स्यारसारौ सहजेऽरिभे च ।

तस्यार्थकोशः समुपैति वृद्धि लाभो यथा प्रत्यहमर्थवृद्ध्या ॥ २८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वम लिखा है कि, यात्रासमयमें लग्न ग्यारहवें वा दूसरे

(झ) अथ राजयोगमाह-वर्गोत्तमेति । प्रतिराशी द्वाविंशतिप्रमाणेन लग्नचन्द्रवशा द्वाविंशत्यधिष्ठानि पञ्चशतानि राजयोगा म्यु । स्थानान्तरे व्याख्यातोऽयं श्लोक इति । बृहज्जातके राजयोगान्तरमुक्तम् । यथा “ वाकणिलग्नौ तत्स्थे जीवे चन्द्रसित-
ज्ञेरेप प्राप्त । मेघगतेऽके जात विद्याद्वैक्रमयुक्त भूमेर्नाथम् । वृषे सेन्दौ लग्ने सवित्र्युह-
तीक्ष्णाशुतनये सुहज्यायार्थस्थेर्भवाति नियमान्मानवपति । मृगे मन्दे लग्ने सहजारिपु-
धर्भोऽपगते शशाङ्गाद्ये ख्यात पृथुगुणयशा पुगणपति ” । एतन्मये च योगास्त-
त्रेव ज्ञेया इति मेपादद्वादशराशिना स्वीयनवांशस्थे लग्ने चन्द्रे च यत्र कुत्रापि स्थिते
चन्द्रवर्जितेश्वतरादिभिर्ग्रहैर्वाक्षिते । अयमर्थः । द्वादशराशिषु लग्नस्य द्वादश एव स्वीय-
नवांशास्तत्र कुम्भ वर्जयित्वा एकादशेषु स्थिता । एव च द्रव्यापि वृश्चिकवर्जनात्
एकादशेषु स्थानानि म्युरिति द्वाविंशति कुम्भलग्ने दोषदर्शनात्त्याग । यथा “ न कुम्भ-
लग्ने शुभमाह सत्यो न भागभेदान्यपना वदन्ति ” वृश्चिकगशिश्चन्द्रम्यनीचगृहामिति
चन्द्रपक्षे वृश्चिकवर्जनम् । “ सर्वैर्गगनध्रमणैर्दृष्टे लग्ने भवति महीपाल । बलिभि शुभैः
सर्वैर्धगतभयो दीर्घजीवी च ” इति जातकोत्तराजयोग इति ज्योतिस्तत्त्वेस्मात्त-
नाभिहितम् ॥

(झ) राजयोगगमने फलमाह-जातयेति बृहज्जातकादी जातके जन्मनि ये राजयोगा

स्थानमें अथवा लग्नमें यदि शुभ सूर्य होय और मंगल और शनि तीसरे वा छठे स्थानमें होय तो धनवृद्धि योग होता है अर्थात् उक्तयोगमें यात्रा करनेसे जिस प्रकार लोभी धनकी लालसाको बढ़ाता है उसी प्रकार यात्रीका धन प्रतिदिन बढ़ता है ॥ २८ ॥

अथ फलाप्तियोगः ।

लग्ने गुरुर्बुधभृगू द्विवृत्तात्मजस्थौ

पष्ठौ कुजार्कतनयौ दिनकृतृतीयः ।

चन्द्रस्य यस्य दशमो भवति प्रयातु-

स्तस्याभिवाञ्छितफलाप्तिरलं नृपस्य ॥ २९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, यात्रासमय लग्नमें बृहस्पति चौथे और पाँचवें स्थानमें बुध और शुक्र छठे स्थानमें मङ्गल और शनि तीसरे स्थानमें और सूर्य दशवें स्थानमें चन्द्रमा होनेसे इस समयमें जो गजा यात्रा करे तो उसको वाञ्छित फलप्राप्ति होती है ॥ २९ ॥

अथ यात्राजनित्रीयोगः ।

गुरौ विलग्नौ यदि वा शशाङ्के पष्ठे रवौ कर्मगतेऽर्कपुत्रे ।

सितज्ञयोर्वन्धुसुतस्थयोश्च यात्राजनित्रीव सुखानि धत्ते ॥ ३० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-जन्मसमय बृहस्पति वा चन्द्रमा यदि लग्नमें होय और सूर्य छठे स्थानमें शनि दशवें स्थानमें, शुक्र चौथे स्थानमें और बुध पाँचवें स्थानमें स्थित होय तो उस यात्रामें यात्रीको माताकी समान सुख प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

अथ योगोऽतिथीणां योगातियोगश्च ।

एकेन वा बुधबृहस्पतिभार्गवाणां

यागा भवेन्नवमपञ्चमकण्टकेषु ।

द्वाभ्यां वदन्ति मुनयोऽप्यतियोगमेव

योगातियोगमपरे त्रिभिरुद्दिशन्ति ॥ ३१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, यात्रासमय लग्नमें वा लग्नके नववें, पाँचवें

-उक्तास्तत्र गतानां जनानां प्रत्यहं सन्त्यहृद्धिः स्यात् शत्रुघलश्च विनाशं प्राप्नोति तथा वायुना धूमितं समुद्रमप्यस्थं यानं नीका नाशमेति तद्वदिति ।

चौथे सातवें अथवा दशवें स्थानमें बुध, बृहस्पति और शुक्र इन तीन ग्रहोंमेंसे जो कोई ग्रह होय तो उसको योग कहते हैं दो ग्रह होनेसे मुनिगण उसको अतियोग कहते हैं और तीनों ग्रह उपरोक्त स्थानमें होनेसे उसको योगातियोग कहते हैं ॥ ३१ ॥

अथ योगयात्रादीनां व्यवस्था ।

महीभृतां योगवशात्फलोदयो द्विजन्मनामृक्षगुणैश्च जायते ।

शतन्धुरादेः शकुनिप्रभावतो जनस्य शेषस्य मुहूर्तशक्तिः ॥ ३२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब योगयात्रादिकी व्यवस्था कहते हैं-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, राजाके योगबलाधीन यात्राका फल होता है, द्विजातिगणके नक्षत्रबलाधीन फल होता है, शतन्धुरादिके शकुनिसे यात्राका शुभाशुभ फल होता है, और अन्यान्य मनुष्यके मुहूर्तके अधीन यात्राका फल होता है ॥ ३२ ॥

अत्र उपादियोगे यात्राकथनम् ।

तिथ्यादिषु निषिद्धेषु चन्द्रताराविलोमतः । (*)

उपां गोधूलियोगं वा स्वीकृत्य गमनश्चरेत् ॥ ३३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, तिथिनक्षत्रादिविरुद्ध और चन्द्रताराके प्रति कूल होनेसे यदि स्थानान्तरमें जानेकी अत्यन्त आवश्यकता होय तो उपा वा गोधूलि योगको स्वीकार करके यात्रा करे कोई २ आचार्य कहते हैं कि, चन्द्रतारा गोचरमें शुद्ध होनेसेही उपा और गोधूलियोगमें यात्रा करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

दिग्विशेषे उपादिनिन्दा ।

प्राच्यामुपां प्रतीच्याञ्च गोधूलिं वर्जयेन्नृप ।

दक्षिणे चाभिजिञ्चैव उत्तरे च निशां तथा ॥ ३४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-पूर्वदिशाकी यात्रा उपामें न करनी चाहिये इसी प्रकार पश्चिमकी यात्रा गोधूलिमें न करे दक्षिणकी यात्रा अभिजिन्मुहूर्तमें न करे और उत्तरकी यात्रा रात्रिमें न करनी चाहिये इस प्रकार ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है ॥ ३४ ॥

अपिच ।

लग्नशुद्धिर्यदा नास्ति प्राप्तकालोऽतिवर्तते ।

अविशेषेण वर्णानां तदा गोधूलिरिष्यते ॥ ३५ ॥

इति व्यासः ।

अर्थ—व्यासजीने कहा है कि, स्थानान्तरमें जाना आवश्यक हो प्रशस्त बार और तिथ्यादि न होय और लग्नभी शुद्ध न होय तो इस प्रकारकी अवस्थामें सभी वर्णोंको गोधूलिमें यात्रा करनी चाहिये ॥ ३५ ॥

उपा करोति कल्याणं यदि पूर्वं न गच्छति ।

वारुण्यां धूलियोगे तु न गन्तव्यं कदाचन ॥ ३६ ॥

अर्थ—पूर्वदिशाको छोड़कर अन्य दिशामें यात्रा करनेसे उपा मङ्गलकारक होती, है और गोधूलिमें पश्चिमदिशाको यात्रा कभी न करना चाहिये ॥ ३६ ॥

अथ उपाकालकथनम् ।

आरक्तसन्ध्यं रजनीविरामं वदन्त्युपायोगमिह प्रवीणाः ॥

आहुः प्रयातुः सकलार्थसिद्धिः संलक्ष्यते हस्ततलस्थितेव ॥ ३७ ॥ (ख)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

(ख) उपायोगमाह—आरक्तेति । उपायोग इति कृत्वा रजनीविराम रात्रिक्षयकालं वदन्ति ज्योतिष्प्रवीणाः । आरक्ता ईषद्रक्तवर्णा सन्ध्या यत्र रात्रिशेषे इति । तत्रोपायोगे यातुर्हस्तस्थेय सकलकार्यसिद्धिरलक्ष्यते । तथाच “प्रभ्रष्टदृष्टितारका स्फुटतटी प्राची भवेन्निर्मला ईषद्रक्तविलोहिता च पतता नीटस्थितानां रविः । नो वारं न तार्यं न योगकारणं चन्द्रश्च नोपक्षते हस्ता दोषसहस्रक प्रतिदिनं चोपा कगेत्युन्नतिम् ॥ ” अत्र च रविगुरुमंगलवारस्योपातीव प्रशस्ता इति । अत्र च पूर्वगमने नोपा विहिता लालाटिकत्वात् । तथाच “उपा करोति कल्याणं यदि पूर्वं न गच्छति” इति । अत्र च सर्वपासापिग्रहः सामान्येनोक्तत्वात् एवं किं वसुयोगादिति बोद्धव्यमिति । तथा नारिमन् ग्रहा इत्यदिना गोधूलियोगे यात्रा प्रशस्तोक्ता । गोधूलियोगलक्षणश्च पूर्वस्मिन्नुक्तमिति । तथा “केन्द्रे गुरुशुक्रौ चलिनी सर्वदोषक्षयकरौ” । यथा “किं कुर्वन्ति ग्रहाः सर्वं पश्य केन्द्रे बृहस्पतिः । मत्तवारणसपातः सिंहनेत्रेन हन्यते ॥ लग्नदोषाश्च ये केचिद्ग्रहदोषास्तथापरे । ते सर्वं विलयं यान्ति लग्ने गुरुमृगू यदा ” । तथा योगमालापाम्—“उदये गुरुसौम्यभार्गवैः सहजेऽर्काकिंजुजैश्च गच्छतः । न भवन्त्यरयो रणे स्थिताः कितवानामिव कितसञ्चयाः । येषां गमे नमपञ्चमकण्टकरथाः सोम्यास्तृतीयास्तेषुलामगताश्च पापाः । आपान्ति ते स्वभवनानि पुनः कृतार्था दत्ता द्विजातिषु पुरा विधिवद्यथायाः ” ॥ इत्यादि योगा उक्तास्ते अन्यगौरवाद्भोक्षिता इति एवं केचिदपि दुर्गमने प्रशस्तान्तरं वदन्ति । यथा “चन्द्रं वृषादौ जानिपान्मेषादा-
तदथ तथा । तित्विना मह सयोन्य त्रिभिर्नाग समाहेत् । शून्येष्टं सर्वे

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, रात्रिके अंशमें पूर्वदिशा (ईषत् रक्तवर्णा) कुल्लेक लालवर्ण होनेसे पाण्डितगण उस कालकोही उपा कहते हैं इस समय यात्रा करनेमें यात्रीके सब कार्य करतलगत होजाते हैं ॥ ३७ ॥

अथामिजित्कथनम् ।

अष्टमे दिवसस्यार्द्धे त्वभिजित्संज्ञकः क्षणः ।

स ब्रह्मणो वरान्नित्यं सर्वकामफलप्रदः ॥ ३८ ॥

इति ज्योतिष्मन्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, दिनके आठवें मुहूर्त्तका नाम अभिजित् है यह अभिजित् मुहूर्त्त ब्रह्माके वरसे सभी कार्योंमें शुभफल प्रदान करता है ॥ ३८ ॥

अन्यच्च ।

दिनमध्यगते सूर्ये मुहूर्त्ते ह्यभिजित् (१) प्रभुः ।

चक्रमादाय गोविन्दः सर्वान्दोषान्निकृन्तात ॥ ३९ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ज्योतिस्तत्त्वे च ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें और ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, सूर्यदेव पृथिवीके मध्यस्थलमें जानेसे अर्थात् आठवें मुहूर्त्तका नाम अभिजित् है इस समयमें स्वयंगोविन्द भगवान् चक्रको लेकर सब दोषोंका नाश करते हैं ॥ ३९ ॥

अथामिजित्कथनम् ।

अभिजित् बुधे शस्तं याम्यान्तु गमने तथा ।

अन्यदिग्गमने शस्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ४० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, अभिजित् मुहूर्त्त बुधवारमें प्रशस्त नहीं है दक्षिणकी यात्रा अभिजित् मुहूर्त्तमें न करना चाहिये, अन्य दिशाओंकी यात्रा अभिजित्समयमें करनेसे सभी कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ४० ॥

अथैकाङ्कीयोगः ।

वृषादौ चन्द्रमा ज्ञेयो मेपादौ लग्नमेव हि ।

—हानिरेकांके विजयी भवेत्” इति । अधुना राज्ञो यात्रादिवसात्पूर्व सप्ताहादिनत्रये प्रथमं प्रथमवल्लिदानं तत्परं दिनत्रयं विजयस्नानं तत्परं सप्तमदिने ग्रहयागस्तत्परं यात्रेति । तथा वृहद्यात्रयाम्—“ यात्रा प्राक्सप्ताहाद्ब्रह्मरु साहाय्यकं त्र्यहं पूर्वं त्र्यहमथ विजयस्नानं ग्रहयोगः सप्तमे दिवसे ” इति ।

(१) “सर्वेषां वर्णानामभिजित्संज्ञके मुहूर्त्तः स्यात्” इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

परियोज्य समं तिथ्या त्रिभिर्भागं हरेत्ततः ।

शून्ये मृत्युर्द्वये हानिरेङ्काके विजयी भवेत् ॥ ४१ ॥ (२)

इति देवज्ञवल्लभायाम् ।

अर्थ—अब एकाङ्की योग कहते हैं, यात्रासमयमें वृषादिको गिननेसे राशिकी जितनी संख्या हो और मेपादिसे गिनकर जो लग्नकी संख्या होय इन दोनों संख्याओंको उस समयकी तिथिकी अङ्कके साथ मिलाकर तीनसे भाग देवे शून्य बचनेसे यात्रीकी मृत्यु होती है दो बचनेसे हानि होती है और एक बचनेसे जयप्राप्ति होती है ॥ ४१ ॥

अथ सर्वाङ्की योगः ।

दिनं तिथिं वारयुक्तं स्वनक्षत्राङ्कयोजितम् ।

सप्तभिश्च हरेद्भागं शेषे यात्रां विनिर्दिशेत् ॥ ४२ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—अब सर्वाङ्की योग कहते हैं—भीमपराक्रममें लिखा है कि, महीनेके जिस दिनमें यात्रा करनेकी इच्छा होय उस दिनकी संख्याङ्क, तिथिके अङ्क, वारके अङ्क और जन्मसमयके नक्षत्राङ्कको मिलाकर सातसे भाग देवे भागके शेषाङ्कको देखकर यात्रा करनी चाहिये फल नीचे लिखते हैं ॥ ४२ ॥

फलम् ।

प्रथमे शोभना यात्रा द्वितीये लाभकृद्भवेत् ।

तृतीये वित्तलाभः स्याच्चतुर्थे सिद्धिरुत्तमा ॥ ४३ ॥

पञ्चमे मार्गविघ्नः स्यात्पष्ठे निधनमेव च ।

उक्तं प्रत्ययमुनिना शून्ये श्रीः सर्वतः सुखी ॥ ४४ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—भीमपराक्रममें लिखा है कि, पूर्वोक्त अङ्क एक बचनेसे यात्रा शुभ होती है, इसी प्रकार दो बचनेसे यात्रा लाभदायिका होती है, तीन बचनेसे धनप्राप्ति होती है, चार बचनेसे कार्यसिद्धि होती है, पांच बचनेसे मार्गमें विघ्न उपस्थित होते हैं, छः बचनेसे मृत्यु होती है और शेषमें शून्यपडनेसे अर्थात् (कुछ न बचनेसे) यात्रामें सर्वप्रकारके सुख और लक्ष्मीकी वृद्धि होती है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

(२) “वृषादौ चन्द्रमा ज्ञेयो मेपादावुदयस्तथा । तिथिना सह योगेन गहिना भागमाहरेत् । शून्ये मृत्युर्द्वये हानिरेकाङ्की विजयी भवेत् । ” इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अथ घातचन्द्रमावर्णम् । १०१

चन्द्रभूतग्रहयमरसदिग्वहिसागराः ।

वेदसिद्धिशिवादित्यो घातचन्द्रः प्रकीर्तितः ॥ ४५ ॥

अर्थ—मेघराशिवाले मनुष्यको जन्मचन्द्र घातक होता है इसी प्रकार वृषराशिको पांचवों चन्द्रमा, मिथुन राशिको नववाँ चन्द्रमा, कर्कराशिको दूसरा चन्द्रमा, सिंहराशिको छठा चन्द्रमा, कन्या राशिको दशवाँ चन्द्रमा, तुलाराशिको तीसरा चन्द्रमा, वृश्चिक राशिको सातवाँ चन्द्रमा, धनराशिको चौथा चन्द्रमा, मकरराशिको आठवाँ चन्द्रमा कुम्भराशिको ग्यारहवाँ चन्द्रमा और मीन राशिवाले मनुष्यको बारहवाँ चन्द्रमा घातक होता है ॥ ४५ ॥

फलम् ।

घातचन्द्रे कृता यात्रा कृतोद्वाहादिमङ्गलम् ।

दुःखाय मृत्यवे वा स्याद्गर्गाचार्येण भाषितम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—घातकचन्द्रमार्गे जो मनुष्य यात्रा वा विवाहादि माङ्गलिक कर्म करता है उसको हेशभोगना पडता है वा मृत्यु होती है ॥ ४६ ॥

अथाकालवृष्ट्यादी यात्रानिषेधः ।

पौषादिचतुरो मासान्वृष्टिं दृष्ट्वा न संव्रजेत् ।

यस्तु संप्रस्थितो यात्रां ब्राह्मणाननुमन्यते ॥ ४७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, पौषसे चैत्रतक वृष्टि होनेसे यात्रा न करनी चाहिये यदि जाना चाहै तो ब्राह्मणोंकी आज्ञासे यात्रा करे ॥ ४७ ॥

अथ यात्रादिगमनविधिः ।

दिगीशं हृदये ध्यात्वा गन्तव्याशामुत्थस्थितः ।

अन्तः समरिणे देही प्रवेशे समुपस्थिते ।

स्वस्तीति दक्षिणं पादमासनादवतारयेत् ॥ ४८ ॥

इति भागुरिः ।

अर्थ—अब यात्रा करनेकी रीति कहते हैं—जिस दिशामें यात्रा करनी हो उस दिशाके मालिक देवताका हृदयमें ध्यान करके उसी दिशामें अपना मुखकरके शरीरमें स्थित समीरण देहको प्रवेशकर जाने समय “स्वस्ति” इस प्रकारका शब्द उच्चारण करके आसनसे दहना पैर आगे रखकर यात्रा करनी चाहिये ॥ ४८ ॥

अपिच ।

ब्रजेदिगीशं हृदये निधाय यथेन्द्रमैन्द्रयामपराञ्च तद्वत् ।

सुशुक्लमाल्याम्बरभृत्ररेन्द्रो विसर्जयेदक्षिणपादमादौ ॥ ४९ (*)

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, जिस दिशामें यात्रा करै उस दिशाके स्वामी देवताका हृदयमें ध्यान करके सफेद वस्त्रोंको पहनकर और सफेद फूलोंकी मालाको अपने गलेमें धारण कर राजा पहिले अपने दाहिने पैरको आगे रखकर यात्रा करै ॥ ४९ ॥

अथ यात्राविधिकथनम् ।

गृहाद्गृहान्तरं गर्गः सीमः सीमान्तरं भृगुः ।

शरक्षेपाद्भरद्वाजो वसिष्ठो नगराद्बहिः ॥ ५० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—यात्रा करनेके बाद यात्रीकी स्थिति कहते हैं, गर्गमुनिने कहा है कि, यात्रा करके एक घरसे दूसरे घरमें रह सकता है—भृगु मुनिने कहा है कि, एक सीमासे दूसरी सीमामें रहना चाहिये, भरद्वाज मुनिके मतसे एक तीरको चलावै जितनी दूर तक वह तीर जाय उसके बहिर्देशमें यात्रा करके रहना चाहिये और वसिष्ठ मुनिने कहा है कि, यात्रा करके एक ग्रामको त्यागकर दूसरे ग्राममें वास करना चाहिये ॥ ५० ॥

अथ यात्रानन्तरं निषिद्धानि ।

संत्यजेद्भोजनागारं तथा शयनमन्दिरम् ।

दूरस्थं जलमध्यस्थं शयानं व्याधिपीडितम् ।

गच्छन्तमपि यानस्थं ब्राह्मणं नाभिवादयेत् ॥ ५१ ॥

इति वराहः ।

अर्थ—वराह मुनिने कहा है कि, यात्राके बाद यदि घरमें रहना होय तो भोजनके मकानको और शयनके घरको छोड़देवे अर्थात् यात्रा करनेके बाद उक्त दोनों घरमें न जाना चाहिये अन्योन्य घरमें रहै यात्राके उपरान्त दूरस्थित, जलस्थ, शयान, रोगयुक्त अथवा यानस्थ ब्राह्मणको प्रणाम न करै ॥ ५१ ॥

(*) यात्राविधिमाह—ब्रजेदिति । इन्द्रादिदिगीशं हृदये निवेश्य ब्रजेत् । दिक्पतिमाह—यथेति । यथा ऐंयां पूर्वस्थां गमने इन्द्रं हृदये निवेशयेति । एवमाग्नेष्पादिषु अपरानग्न्यादींश्च दिगीशान् तद्वत् हृदये निवेशयेत्यर्थः । अतिसुशुक्लमाल्यवस्त्रधरो राजा प्रथमं दक्षिण पादं विसर्जयेत् दद्यात् ।

बृहद्यात्रायाम् ।

प्राच्यामहानि मुनयः प्रवदन्ति सप्त
याम्यामतीव शुभदानि दिनानि पञ्च ।
त्रीण्येव पश्चिमादिशि क्षितिनायकानां
प्रस्थानकेषु दिवसत्रयमुत्तरस्याम् ॥ ५२ ॥ (*)

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ-यात्रा करनेके बाद राजाको कितने दिन रहकर किस दिशामें जाना चाहिये अब उसको कहते हैं-राजमार्तण्डमें लिखा है कि, यात्राके उपरान्त राजाको सात दिनके मध्यमें पूर्वदिशामें जाना चाहिये, इसी प्रकार दक्षिणदिशामें पांच दिनके बाद यात्रा करनी चाहिये, पश्चिमादिशामें तीन दिनके बाद यात्रा करे और उत्तर दिशामें तीन दिनके बाद यात्रा करनी चाहिये इस प्रकार मुनियोंने कहा है ॥ ५२ ॥

अपिच ।

यात्रां त्रिपञ्चसप्ताहात्पुनर्भद्रेण योजयेत् ।

वाञ्छितार्थफलावाप्सौ (+) यात्रा परिसमाप्यते ५३ ॥ (क)

इति भैरवाचार्यः ।

अर्थ-यदि कोई मनुष्य यात्रा करनेके बाद तीन दिन वा पांच दिन अथवा

(*) एतच्चायुक्तमित्याहुर्होराशास्त्रविदो बुधाः ॥ राजमार्तण्डोक्त " प्राच्यामहानि मुनयः प्रवदन्ति " इत्यादि वचनकी व्यवस्थाको दृष्टि कटकर होराशास्त्रविद् पण्डित गणोंने निर्देश करी है ।

(+) केश्चिदिष्टफलावाप्सौ इति पाठान्तरम् ।

(क) यात्रां कृत्वा स्थितस्थ राज्ञः पुनः प्रस्थानमाह-यात्रामिति । एकरथाने त्रिपञ्चसप्ताह स्थित्वा तत्परं तस्मात्स्थानात् भद्रेण शुभलग्नेन पुनर्यात्रां योजयेदिति भैरवाचार्यो वदति । यदर्थं यात्रा कृता तत्फलप्राप्तावेव यात्रा समाप्यते सम्पूर्णा तु स्यात् न तु पुनर्भद्रेण योजयेत् । यथा बृहद्यात्रायाम् । " एकत्राप्युपितस्याग्निगीतमच्यवना जगुः । यात्रां पञ्चत्रिंशत्सप्ताह पुनर्भद्रेण योजयेत् । तच्चायुक्तमिति प्राहुर्होराशास्त्रविदो जनाः । वाञ्छितार्थफलावाप्सौ यात्रा परिसमाप्यते " तथा चात्रिः- " यात्रायाम् निर्गतो राजा ज्यह पञ्चाहमेव च । सप्ताह वा स्थितो यत्र पुनस्तस्माच्छुभे दिने । शुभे लग्ने च यातव्या यात्रा येनाप्नुयाच्छुभम् " इति । अत्र च नक्षत्रविशेषे कृतयात्रस्य स्थितिनिश्चय उक्तो बृहद्यात्रायाम् । " सीम्ये गत्वा निष्परीद्राऽदितिंशे संप्रस्थाता बाध्यते शत्रुसंघान् । भेभे गत्वा पौरुहूत समूष्य मूलं यायाच्छत्रुनाशाय भूषः । हस्ते गत्वा स्वातिचित्रे समूष्य शत्रुन्याख्ये प्रस्थितो वाच्यतेऽरीन् । त्रिष्ये पोष्णे वासवे चैरुगात्रं सीमि स्थित्वा भूतिमाप्नोति यात्रा " अम्यार्थः । मृगशिरसि यात्रां कृत्वा द्वायां स्थित्वा पुनर्गती

सात दिन रहै तो दूसरे बार शुभलगादिमें यात्रा करनी चाहिये, किन्तु जबतक मनोरथसिद्धि न होय तबतक यात्रामङ्ग नहीं होताहै इस प्रकार भैरवाचार्यने कहाहै ॥ ५३ ॥

अन्यत्र ।

जन्मक्षे चाष्टमे चन्द्रे वारे भौमशुनैश्वरे ।

प्रस्थितेऽपि न गन्तव्यमत्यन्तगर्हिते दिने ॥ ५४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि, यात्रा करनेसे भी जन्मनक्षत्रमें, आठवें चन्द्रमामें, मङ्गल, रवि और शनिवारमें और अत्यन्त दूषित दिनमें न जाना चाहिये ॥ ५४ ॥

अथ यात्रायां मनःशुद्धिप्रशंसा ।

शुभाशुभानि सर्वाणि निमित्तानि स्युरेकतः ।

एकतस्तु मनो यातुस्तद्विशुद्धं जयावहम् ॥ ५५ ॥ (+)

अर्थ—अथ यात्राकर्ममें मन-शुद्धिकी प्रशंसा करते हैं—शुभ वा अशुभके निमित्त (तिथिनक्षत्रादि) और मन यात्रामें इन दोनोंके समान होताहै अतएव तिथि नक्षत्रादिके शुभ होनेसे भी यदि मन अप्रसन्न होय तो यात्रा न करनी चाहिये, अतएव मनके प्रसन्न होनेसेही यात्रा शुभ होती है ॥ ५५ ॥

अपिच ।

शुभं वाप्यशुभं वापि तिथियोगादिकञ्च यत् ।

लब्ध्वा मनोबलं तत्र प्रयाणं शुभदं स्मृतम् ॥ ५६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, यात्रामें तिथि, नक्षत्र, वार और योगादि शुभ हो वा अशुभ हो मनका बल ग्रहणकरके यात्रा करनी चाहिये, अर्थात् तिथि नक्षत्रादिके शुभ होनेसेभी यदि इच्छा न होय तो यात्रा न करनी चाहिये ॥ ५६ ॥

—पुनर्गमनं तथा हस्तायां गत्वा चित्रास्त्राद्योः स्थित्वा विशाखायां पुनर्गमनं तथा पुष्य-रेवतीषनिष्ठासु गवैकरात्रं स्वसीमि स्थित्वा पुनर्यानम् । एवमन्येष्वप्युहनीयम् इति ।

(×) मनःशुद्धिप्रशंसामाह—शुभेति । निमित्तानि फलसूचकानि शुभाशुभानि सर्वा-ण्येकतः एकस्मिन् पक्षे स्युः एकतोऽन्यस्मिन् पक्षे यातुः केवलं मनः फलदायकं तन्मनो विशुद्धं प्रसन्नं सत् जयावहं स्यात् । यदर्थं यात्रा कृता तदनन्तरं तदर्थं मनःप्रसादो यदि स्यात्तदा शुभम् अप्रसादे त्वशुभमित्यर्थः । तथाच बृहद्यात्रायाम् “प्रीयते न मनोऽनर्थे नासिद्धावभिनन्दति । तस्मात्सर्वात्मना यातुस्तुमेयं सदायतनः ” इति ।

यात्रासमयेऽशुमदर्शनम् ।

शीर्षं तैलाभिषिक्तं भुजगमभिमुखं वामनं काष्ठभारं
प्रव्राजं छिन्ननासं जटिलनखयुतं मुक्तकेशं च नग्नम् ।
प्रस्थाने शून्यकुम्भं भयमदकुशलं रोदनं क्रोशनं च
प्रस्थाने प्रस्थितानां यदि च न मरणं कार्यसिद्धिर्न च स्यात् ॥५७॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अथ यात्रासमयमें अशुमदर्शनादि कहते हैं-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, यात्रासमयमें तेल लगाये हुए मनुष्य, सर्प, वामन, काष्ठका बोझा लिये मनुष्य, संन्यासी, नकटा आदमी, जटिल दीर्घनखयुक्त मुक्तकेश (जिसको शिरके बाल खुलेहों), नग्न (वस्त्रहीन) प्रस्थानमें स्थित शून्यकुम्भादिकी देखना और रोना मुनना वा पीछेसे कोई पुकारे तो उस समय यात्रा करनेसे यात्रीकी तो मृत्यु न होय किन्तु कार्य कभीभी सिद्ध नहीं होता है ॥ ५७ ॥

अपि च ।

कार्पासीपथिकृष्णधान्यलवणक्रीवास्थितैलं वसा-

पङ्काङ्गारगुडाहिचर्मशकृतः केशायसव्याधिताः ।

खर्वोन्मत्तजटाधरं तृणतुपश्रुत्क्षामतक्रारयो

मुण्डभ्यङ्गविमुक्तकेशपतितः कापायिणश्चाशुभाः ॥५८॥(+)

अर्थ-यात्रासमयमें कार्पास, औषधि, तिल, लवण, क्रीवा (नपुंसक) अस्थि, तेल, मांस पङ्क, अङ्गार, गुड, सर्प, चमड़ा, विषा, केश, लोहा, रोगी, वामन, उन्मत्त, जटाधारी मनुष्य, काष्ठ, तृण, तुषार, भूँखसे कृश (दरिद्री मनुष्य,) तक्र (मट्टा), शत्रु, शिरको भुँडाए हुए मनुष्य, तेल लगाए हुए मनुष्य, जिस मनुष्यके शिरके बाल खुले हैं वह मनुष्य, पतित, कपड़े बर्छोंको पहिने हुए मनुष्यया यदि देवयोगसे दर्शन होजाय तो उस यात्रामें अमङ्गल होताहै ॥५८॥

+ अमङ्गलद्रव्याण्याह-शर्पासैति । औषध द्रव्यप्रयोगः, क्रीवा, नपुंसक, वसा मेदः, अहि, सर्पः, शट्पादिषा, आयसो रौहभिरारः वृद्धरायश्च वा व्याधितो रोगाभिभूतः उन्मत्तो वातुलः जटी जटायुक्तः पुष्पः । जटैति पाठे श्रोत्रादीन्द्रियहीनो जट इति । इन्धन पाष्ठ, हृत्क्षामः कृशः, दम्भि इत्यर्थः । तक्र मयितम्, खरिः शत्रुः, मुण्डी मुण्डितमुण्डः, अभ्यङ्गस्तेलादिना मृताभ्यङ्गः, विमुक्तकेशोऽवच्छेदो जनः, कापायिणः कापाययत्रा एते अनिष्टप्रदाः ॥ इति ।

अथ क्षुतनिषेधः ।

सर्वतः क्षुतमशोभनं स्मृतं गोक्षुतं मरणमेव करोति ।

केचिदाहुरफलं बलात्कृतं वृद्धपीनसितबालकृतञ्च ॥५९॥ ❀

अर्थ-सभी कार्योमें छोकसे अमङ्गल होता है, किन्तु यात्रादि कार्यमें गौकी छोक मृत्युजनक होती है । किसी २ आचार्यने कहाहै कि, जो तुनका नाकमें डालकर छोके वह छोक, वृद्धकी छोक, रोगीकी छोक, और बालककी छोकसे शुभाशुभ कुछभी फल नहीं होता है ॥ ५९ ॥

अथ क्षुतादिफलम् ।

वित्तं ब्रह्मणि कार्यसिद्धिरतुला शक्रे हुताशे भयं
याम्यामग्निभयं सुरद्विपि कलिर्लाभः समुद्रालये ।

वायव्यां वरवस्त्रगन्धसलिलं दिव्यांगना चोत्तरे
ऐशान्यां मरणं ध्रुवं निगदितं दिग्लक्षणं खञ्जने ॥ ६० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ग्रन्थकारने खञ्जन देखनेका फलाफल मनुष्यकरके उयेष्टी (टिफ्टिकी) और क्षुतका (छोकका) फल उसी प्रकारसे कहा है, यथा ऊर्ध्वदिशमें खञ्जनको देखनेसे धन मिलता है, इसी प्रकार पूर्वादिशमें देखनेसे कार्य सिद्ध होता है, आग्निकोणमें भय, दक्षिणमें अग्निभय, नैऋतमें कलह, पश्चिममें लाभ, वायुकोणमें श्रेष्ठवस्त्र, गन्ध और सलिलादिकी प्राप्ति, उत्तरमें उत्तमा स्त्रीका लाभ और ईशानकोणमें खञ्जनको देखनेसे मृत्यु होती है ॥ ६० ॥

अपिच ।

ज्येष्टीरुते क्षुतेऽप्येवमृचुः केचिच्च कोविदाः ॥ ६१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-कोई पण्डित टिफ्टिकीके रुदनमें छोकहीके सदृश फल कहते हैं ॥६१॥

(*) क्षुतस्य फलमाह-सर्वत इति । सर्वकार्येषु प्रवेशेऽपि क्षुतमशोभनं गोक्षुतञ्च मरणमेव करोति । तथा बृहद्यात्रायाम्-“ प्रारम्भयानसमयेषु तथा प्रवेशे शेषं क्षुतं न च शुभं क्वचिदप्युज्जति” केचित्तु बलात्कृतं नासायां तृणादिना कृतं क्षुतं वृद्धकृत पीनसितः श्लेष्मरोगार्तस्तेन कृतं शिशुकृतञ्च क्षुतमफलं फलशून्यमाहुः । तच्च बहूनां मतमिति ।

विष्णोरर्त्याधिकृत्य ।

नामसंकीर्तनं नित्यं क्षुतप्रस्खलितादिषु ।

वियोगं शीघ्रमाप्नोति सर्वत्र नात्र संशयः ॥ ६२ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ-विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि, छींकादि दोषशान्तिके निमित्त विष्णुका नाम सम्यक् प्रकारसे कीर्तन करनेसे दोषका नाश हो जाता है ॥ ६२ ॥

यात्रासमये परकीयस्वीयस्योपुरुषयोस्ताडनादिनिषेधः ।

स्वकीयां परकीयां वा स्त्रियं पुरुषमेव च ।

ताडयित्वा तु यो गच्छेत्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ ६३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, जो मनुष्य यात्रासमयमें अपनी स्त्री वा पराई स्त्री अथवा पुरुषको मारकर यात्रा करता है उसकी शीघ्र मृत्यु होती है ६३ अपिच ।

यात्राकाले तु संप्राप्ते मैथुनं यो निषेवते ।

रोगार्तः क्षीणकायश्च स निवर्त्तते वा न वा ॥ ६४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, जो मनुष्य यात्रासमयमें स्त्रीसेवन करके जाता है वह रोगसे युक्त और क्षीणकलेवर होकर फिर नहीं आता है ॥ ६४ ॥ अन्यच्च ।

कृत्वा तु मैथुनं रात्रौ प्रभाते यः प्रतिष्ठते ।

नासौ प्रतिनिवर्त्तते दुःखञ्च प्राप्नुयान्नरः ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-रात्रिमें स्त्रीसंभोग करके जो मनुष्य प्रातः कालमें यात्रा करता है वह मनुष्य अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगकर फिर नहीं आता ॥ इस प्रकार ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है ॥ ६५ ॥

अपरञ्च ।

कटुतेलगुडक्षीरपक्वमांसाशन तथा ।

भुक्त्वा यो यात्यसौ मोहाद्व्याधितः स निवर्त्तते ॥ ६६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, कटुरस, तैल, गुड, दूध और पक्वमांसा

मांसको यात्रा समय न खावे, जो मनुष्य इन चीजोंको खाकर यात्रा करता है वह रोगी होकर उस स्थानसे दूसरे स्थानको चला जाता है ॥ ६६ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

मार्जारयुद्धे कलहे प्रवृत्ते रजस्वलास्त्रिजिननीनिषेधे ॥ (क)

अकालवृष्टौ मृतसूतके च प्रस्थानयात्रा मरणं ध्रुवश्च ॥ ६७ ॥

अर्थ—बिल्लीके साथ बिल्लीकी लड़ाई होनेसे, कलह करके, अपनी रजस्वला स्त्रीको घरमें रखकर, माताके निषेध करनेपर वा अकालवृष्टि (ख) होनेसे और मरणाशौच वा जननाशौचमें जो मनुष्य यात्रा वा प्रस्थान (दूरगमन) करे तो उसकी निश्चयही मृत्यु होती है अथवा मृत्युके समान रोगादि होते हैं ॥ ६७ ॥

आपिच ।

वामे श्वाशिवाकुम्भा दक्षिणे गोमृगद्विजाः ।

नकुलः सर्वतो भद्रो न संपस्तु कदाचन ॥ ६८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है, कि, यात्रासमय वामभागमें श्व (मृत-देह) शिवा (जम्बूक) और पूर्णकुम्भके देखनेसे शुभफल होता है, दक्षिण-भागमें गो, मृग और ब्राह्मणके दर्शन होनेसे शुभफल होता है, नकुलका (निव-लाका) जिस दिशामें दर्शन हो उसमें शुभफल होता है और सर्पके देखनेसे अमङ्गल होता है ॥ ६८ ॥

यात्राकाले शुभदर्शनम् ।

धेनुर्वत्सप्रयुक्ता वृषगजतुरगा दक्षिणवर्त्तवह्नि-

दिव्यस्त्री पूर्णकुम्भा द्विजनृपगणिकाः पुष्पमालाः पताकाः ।

सद्योमांसं घृतं वा दधि मधु रजतं काञ्चनं शुक्रधान्यं

दृष्ट्वा श्रुत्वा पठित्वा फलमिदं लभते मानवो गन्तुकामः ६९ (+)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—यात्रासमयमें जिनके देखनेसे मंगल होता है अब उनको कहते हैं—ज्यो-

(क) “कुटुम्बकलहो गृहज्वलनमार्त्तव योपितां विहासमरं हृतं स्वलितमम्बरादे-स्तथा । दुरुक्तमातिकोपतो महिषयोश्च युद्धं भवेत्प्रयाणसमये नृणामभिमतार्थविच्छिन्नये” इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

(ग) अनाशुष्टि विवाहमें कालशुद्धिप्रकरणमें लिखी है ।

x “तृणोदकाब्धेषु वनेषु मत्ताः क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः । क्षीरं प्रमुञ्चन्तु सुखं स्वपन्तु शीतातपव्याधिभयेविमुक्ताः ” इति । ज्योतिस्तत्त्वधृतमन्त्रं यात्राकाले शृणुयात् ।

तिःसारसंग्रहमें लिखाहै, कि, बछरासहित गाय, बैल, हाथी, घोडा, दाहिनीतर्फे
अग्नि, उत्तमा स्त्री, पूर्णकुम्भ, द्विजाति, राजा, गणिका, फूलोंकी माला, पताका,
नयामांस, घृत, दही, मधु, चोंदी, सोना, शुक्लधान्य (गोधूम) इन सब द्रव्योंके
देखनेसे वा इनका शब्द सुननेसे अथवा इन शब्दोंका उच्चारण करनेसे यात्रीका
मनोरथ सिद्ध होताहै ॥ ६९ ॥

अथ यात्रासमये माङ्गल्यद्रव्यदर्शनस्पर्शनादि
शुभफलानि ।

सिद्धार्थकादर्शपयोऽञ्जनानि बद्धैकपश्चामिषपूर्णकुम्भाः ।
उष्णीषभृङ्गारत्नवर्द्धमानपुंयानवीणातपवारणानि ॥ ७० ॥ (क)
दधिमधुघृतरोचनाकुमार्यो ध्वजकनकाम्बुजभद्रपीठशङ्खाः ।
सितवृषकुसुमायुधाम्बराणि मीनद्विजगणिकासजनाश्च चारुवेपाः ७१ ख
ज्वलितशिखिफलाक्षतेक्षुभक्ष्यद्विरद्वराङ्कुशचामरायुधानि ।
मरकतकुरुविन्दपद्मरागस्फटिकमणिप्रमुखाश्च रत्नभेदाः ॥ ७२ ॥ (ग)
स्वयमथ रचितान्ययत्नतो वा यदि कथितानि भवन्ति मङ्गलानि ।
स जयति सकलां ततो धरित्रीं ग्रहणदृशालभने न पुनरुपास्य ७३ घ

(क) यात्रायाम् मङ्गलद्रव्याणि चतुर्भिः श्लोकैराह सिद्धार्थकेति । सिद्धार्थनाः श्वेत-
सर्पपाः, आदर्शो दर्पण, पयो हुग्ध, जलमिति केचित्तत्र पूर्णकुम्भस्यापि वक्ष्यमाणत्वात् ।
बद्ध एक पशु, आमिष मांस, उष्णीषः मस्तकवेष्टनवस्त्र, भृङ्गारो जलपात्रविशेषः,
नृवर्द्धमानः ना पुरुष वर्द्धमान समृद्ध्या यशसा चोभयतः, पुयान नृयान दोलादि,
आतपवारण छत्रमिति ।

(ख) कुमार्यो कन्यकाः, भद्रपीठ भद्रासनम्, अम्बर श्वेतवस्त्र, गणिका वेश्या इत्यर्थः ।
(ग) ज्वलिताग्निश्चारुफलानि । अक्षता यवाः इत्युदण्डः भक्ष्यद्रव्य उपदशादि,
द्विरद्वरो हस्तिश्रेष्ठः, भृदिति पाठे प्रशस्तमृत्तिकेत्यर्थः । मरकतकुरुविन्दी प्रस्तरविशेषो
पद्मरागो मणिविशेषः ।

(घ) एतानि कथितान्युक्तानि मङ्गलद्रव्याणि यदि स्वयं रचितानि अथ यत्नतोऽवस्था-
प्य रचितानि एतेषां नामानि यदि कथितानि यदा यस्य भवन्ति स राजा ततस्तदा कानि-
चिन्मङ्गलानि सिद्धार्थकादीनि ग्रहणेनोपास्य स्पृष्ट्वा कानिचिद्गणिकादीनि दृशा चक्षुषो-
पास्य दृष्ट्वा कानिचित्फलादीनि आलभनेनोपलब्ध्यास्त्रिकारेणोपास्य स्वीकृत्य कानिचिद्
वीणागीतादीनि श्रुतेन श्रवणेनोपास्य श्रुत्वा सकलां धरित्रीं जयति ॥ इति ।

अर्थ-अब यात्रासमयमें मङ्गलकारक द्रव्यके देखनेसे और छूनेसे जो फल होता है उसको कहते हैं-श्वेतसर्पप, दर्पण, (सीसा) दूध, (मतान्तरमें जल) अज्जन, बँधामया एक पशु, मांस, पूर्णकुम्भ, उष्णीष (शिरोवेष्टनवस्त्रविशेष) शृङ्गार (जलपात्रविशेष गडुआ) समृद्ध और यशस्वी मनुष्य, दोलादि, वीणा, छत्र, दधि, मधु, घृत, रोचना (गोररोचना वा हरिद्रा) कुमारी, ध्वजा, कनक, पद्म, भद्रासन, पीठ, शङ्ख, सफेद घोडा, कुसुम, आयुध, शुक्लवस्त्र, मत्स्य (मछली) द्विज, वैश्या, आसजन और सुवेपधारी मनुष्य, ज्वलिताग्नि, चारुफल, यव, इक्षुदण्ड, भक्ष्य द्रव्य, श्रेष्ठहाथी, अंकुश, चामर, शस्त्र, मरकत, कुरुविन्द (प्रस्तरविशेष) पद्मराग (मणिविशेष) और स्फटिकादि मणि यह सब माङ्गल्य द्रव्य यात्रासमयमें निकट (समीप) होय अथवा अचानक उपस्थित होजाय तब राजा श्वेतसर्पपादि द्रव्यविशेषको ग्रहणकरै वैश्यादिको देखै फलादिको छूवै और वीणादिको श्रवण (सुन) करके यात्राकरनेसे समस्त पृथिवीको जीतसका है परन्तु चिरम्वासी (बहुत दिनोंकी) यात्रामे सूर्य शुद्ध होना चाहिये उसको स्थानके जमावसे नीचे लिखते हैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ (x)

अथ स्वप्नदर्शनफलम् ।

यान्यत्र मङ्गलामङ्गलानि निर्गच्छतां प्रदिष्टानि ।

स्वप्नेष्वपि तानि शुभाशुभानि विष्टानुलेपनं धन्यम् ॥ ७४ ॥ (१)

अर्थ-अब स्वप्नदेखनेका फल कहते हैं-यात्राविषयमें जो सब माङ्गल्यामाङ्गल्य द्रव्य कहे हैं स्वप्नमेंभी उन्ही सब द्रव्योंके देखनेसे और छूनेसे तिसि प्रकार फल होता है किन्तु स्वप्नमें विष्टानुलेपन करनेसे धनप्राप्ति होती है ॥ ७४ ॥

(x) “ चिरम्वासयात्राया गृहे कर्णस्य बेधने चूडाकृतौ प्रतिष्ठायां भानुशुद्धिविधीयते इति व्यासवचनम् ।

(१) अत्र दृष्टस्य स्वप्नस्य शुभाशुभफलमाह-यानीति । निर्गच्छता जनानामत्र यात्राया मङ्गलान्यमङ्गलानि द्रव्याणि यानि प्रदिष्टानि कथितानि तानि स्वप्नेऽपि दृष्टानि शुभाशुभानि । किन्तु स्वप्ने विष्टानुलेपनं धन्यं धनप्राप्तिमिति संक्षेपः । विस्तरश्च बृहद्यात्रायां दृष्टव्यः । तथा “ सर्वाणि शुक्लानि सुशोभनानि कार्पासभस्मास्थिकपालवर्जम् । सर्वाणि कुष्णान्यतिनिन्दितानि गोहस्तिदेवादिजवर्जितानि ” अत्र च स्वप्नदर्शने पुनर्न शयनं कार्यम् । दुःस्वप्नदर्शने तु पुनःशयनं विहितमेव । यथा बृहद्यात्रायाम्- “ दृष्टं स्वप्नं शोभनं नेह सुष्यात्पश्चाद्दृष्टो यश्च पाकं विषत्तोऽशसेद्दृष्टं तज्ज्ञसाधुद्विजेभ्यस्ते चाशीर्भिः पूजयेत्पुनरेन्द्रम् । भूयः प्रत्यपनं न चास्य कथनं गङ्गाभिषेको जपः स्वस्ति स्वस्त्ययनं निवेदनमपि प्रातर्गवाश्वत्थयोः । विप्रेभ्यश्च तिलात्रहेममुसुमेः पूजा यथाशक्तितः पुण्यं भारतकीर्तनञ्च कथितं दुःस्वप्नविच्छिन्नस्ये ” आर्षिकं च विस्तरमयादुपेक्षितम् ।

अथ यात्रासमये वायोः शुभा शुभलक्षणम् ।

अनुलोमगते प्रदाक्षिणे सुरभौ देहसुखेऽनिले गतः । (२)

तिमिराणि गभस्तिमानिव प्रसभं हन्ति बलानि विद्विषाम् ॥ ७५ ॥

अर्थ-अब यात्रासमयमें वायुके शुभाशुभलक्षण कहते हैं-यात्रासमयमें यदि सुगन्धियुक्त अनुकूल वायु चले तो यात्रीको सुख होता है जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे समस्त अन्धकारका नाश होजाता है तिसी प्रकार उक्तवायुमें यात्रा करनेसे राजा शत्रुओंका नाश करता है ॥ ७५ ॥

अपिच ।

बलिकर्मणि यात्रायां प्रवेशे नववेश्मनः ।

महोत्सवे च मांगल्ये तत्र स्त्रीणां ध्वनिः शुभः ॥ ७६ ॥

इति मत्स्यसूक्ते ।

अर्थ-मत्स्यसूक्तमें लिखा है कि, बलिकर्ममें, यात्रामें नवीन घरमें प्रवेश-समयमें, महोत्सवमें और मांगल्यकर्ममें स्त्रियोंकी ध्वनि शुभ होती है ॥ ७६ ॥

इति यात्राप्रकरणम् ।

इति वंशावरेल्यांतर्वर्तिकां न्यकुलभूषणभारद्वाजगोत्रात्रिपाठ्युपनाम-

केन पण्डितवैकेलालात्मजेन श्यामसुन्दरशर्मणा सम्पादिते

भाषाटीकया विभूषिते ज्योतिषतत्त्वमुधारणवे यात्रा-

प्रकरणं नाम पष्ठस्तरङ्गः ॥ ६ ॥

(२) वायोः शुभफलमाह-अनुलोमेति । गन्तव्यदिगनुसूलमती सुगन्धे शरीरसुख-जनके वायो गतः पुमान् शत्रूणां बलानि प्रसभं हठात् हन्ति सूर्योऽन्धकारं नित्यमिव । एतेन प्रतिकूलोऽप्रदाक्षिणः दुर्गन्धो ज्ञान्ज्ञावायुर्नेष्ट इति ।

सप्तमस्तरङ्गः ७.

अथ नौकाघटनम् ।

ज्ञभहरिधटलमे देवराड्युग्विशाखा ।
 त्रिनयनविधियाम्यद्वन्द्वसर्पान्त्यभेषु ।
 सुकरणतिथियोगे शुक्रजीवार्कवारे
 तरणिघटनमिष्टं चन्द्रताराविशुद्धौ ॥ १ ॥ (अ)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अथ नौका जडवानेका सुहृत् कहते हैं-दीपिकामें लिखा है कि, मिथुन कन्या सिंह और तुलालग्रमें, ज्येष्ठा, मूल, विशाखा, आर्द्रा, रोहिणी, भरणी, कृत्तिका, आश्लेषा, और रेवती नक्षत्रमें, शुभकरण, शुभतिथि और शुभयोगमें, शुक्र, बृहस्पति और रविवारमें चन्द्रमा और ताराके शुद्ध होनेसे नौका जडवाना चाहिये किसी २ आचार्यका मत है कि, “ याम्यद्वन्द्वसर्पान्त्यभेषु ” इसको पढ़कर उपरोक्त नक्षत्रोंके सिवाय अन्य नक्षत्रोंमें नौका बनवाना चाहिये ॥ १ ॥

अन्यच्च ।

अश्विनीरेवतीहस्तशतभं मृगशिरास्तथा ।
 अनुराधा तथा स्वातिश्चित्रा चैव प्रशस्यते ॥ २ ॥
 शुक्रेन्दुगुरुवारेषु रिक्तावर्जं तिथौ पुनः ।
 पापाहञ्च परित्यज्य नौकाघटनमुत्तमम् ॥ ३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, अश्विनी, रेवती, हस्त, शतभिषा, मृगशिर, अनुराधा, स्वाति और चित्रानक्षत्रमें, शुक्र, सोम और बृहस्पतिवारमें रिक्ताभिन्न तिथिमें, मासदग्धादेयुक्त पापाहको त्यागकरके नौका बनवाना चाहिये ॥ २ ॥ १ ॥

(अ) नौकाघटनमाह-ज्ञमेति । ज्ञभं मिथुनं कन्या च हरि सिंहः धटस्तुलालमे देवराड्युगमं ज्येष्ठा मूले विशाखा त्रिनयनमार्द्रा रोहिणीयाम्यद्वन्द्वं भरणी कृत्तिका सर्पः आश्लेषा अन्त्यं रेवती एतेषु तरणिघटनं नौकानिर्माणमिष्टम् । शेषं सुगमम् । इति । केचित्तु याम्यद्वन्द्वसर्पान्त्यभेष्विति पाठं कृत्वा ज्येष्ठादिसर्पान्तनक्षत्रेतरेषु तरणिघटनं वदन्ति ।

अथ घटनस्थानान्नौकाचालनम् ।

शुभाहे विष्णुयुग्मेन्दुभगमैत्राश्विपाणिषु ।

चालनं घटनस्थानान्नावः शुभतिथीन्दुषु ॥ ४ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अथ नौका चलानेका मुहूर्त्त कहतेहैं दीपिकामें लिखाहै कि, सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्रवारमें, श्रवण, धनिष्ठा, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, अश्विनी और हस्त नक्षत्रमें, शुभ तिथिमें और शुभ चन्द्रमामें नौकाको चलाना चाहिये ॥ ४ ॥

अथ नौकायात्रा ।

अश्विकरेज्यसुधानिधिपूर्वा मैत्रधनाच्युतभेषु सुलग्ने ।

तारकयोगतिथीन्दुविशुद्धौ नौगमनं शुभदं शुभवारे ॥ ५ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अथ नौकामें चढकर यात्रा करनेका मुहूर्त्त कहते हैं—दीपिकामें लिखाहै कि, अश्विनी, हस्त, पुष्य, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, अनुराधा, धनिष्ठा और श्रवण, नक्षत्रमें, शुभलग्नेमें, शुभतारामें, शुभयोगमें, शुभतिथिमें शुभवारमें और गोचरमें चन्द्रमाके शुद्ध होनेसे नौकामें चढकर यात्रा करनी चाहिये ॥ ५ ॥

अथ बाणिज्यकरणम् ।

क्षिप्राणि यानि ऋक्षाणि चराणि च मृद्वनि च ।

बाणिज्ये तानि शस्यन्ते तिथिरिक्तां विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ—बाणिज्य करनेका मुहूर्त्त कहतेहैं—विष्णुधर्मोत्तरमें लिखाहै कि, पुष्य, अश्विनी, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती नक्षत्रमें रिक्ताभिन्नतिथिमें बाणिज्यकर्म करना चाहिये ॥ ६ ॥

अथ कुसीदकरणम् ।

प्रतिपद्वादशीपष्ठी नक्षत्राणि ध्रुवाणि च ॥

कुसीदेवर्जनीयानि दिनं सूर्यसुतस्य च ॥ ७ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ—अथ ऋण देनेका (कर्ज देनेका) मुहूर्त्त कहते हैं—विष्णुधर्मोत्तरमें लिखाहै कि, प्रतिपदा, द्वादशी और पष्ठी तिथिमें छोडकर अन्य तिथिमें,

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणीनक्षत्रको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें और शनिवारको छोड़कर अन्यवारोंमें कर्ज देना चाहिये ॥ ७ ॥

अथ नक्षत्रविशेषे रोगकथनम् ।

अश्विन्यां दशरात्रेण ज्वरितः कल्यतामियात् ।

भरण्यां संशयप्राप्तिरनले दशभिर्दिनैः ॥ ८ ॥

रोहिण्यां पञ्चदिवसैश्चतुर्भिर्मृगशीर्षके ।

आर्द्रायां संशयः पञ्चदशाहश्च पुनर्वसौ ॥ ९ ॥

पुण्ये च पञ्चदिवसैर्मृत्युराश्लेषया ध्रुवम् ।

मघायां सप्तभिः पूर्वफाल्गुन्यामेकवासरम् ॥ १० ॥

सप्ताह उत्तरफाल्गुन्यां हस्तायां पञ्चभिर्दिनैः ।

चित्रायां प्राणसन्देहः स्वात्यां चैव न जीवति ॥ ११ ॥

विशाखायां सप्तदिनैर्मित्रे च दशभिर्दिनैः ।

ज्येष्ठायाञ्च ध्रुवं मृत्युर्मूले कल्यं चतुर्दिनम् ॥ १२ ॥

पूर्वाषाढासु सन्देहो विश्वे पञ्चदिनैः पटुः ।

श्रवणे पञ्चभिः कल्यो धनिष्ठे प्राणसंशयः ॥ १३ ॥

शताख्ये प्राणसन्देहः पूर्वाभाद्रपदे तथा ।

संशयश्चोत्तराभाद्रे रेवत्यां पञ्चवासरैः ॥ १४ ॥

इति ज्योतिःसारे माण्डव्यः ।

अर्थ—अब नक्षत्रोंमें रोगकी आयु कहते हैं—अश्विनी नक्षत्रमें ज्वर होनेसे दश-रात्रितक पीडा भोगनी पड़ती है, इसी प्रकार भरणीमें मृत्यु होती है, कृत्तिकामें दशदिनतक पीडा भोगनी होती है, रोहिणीमें पांचदिन, मृगशिरमें चारदिन, आर्द्रामें मृत्यु, पुनर्वसुमें पन्द्रहदिन, पुष्यमें पांचदिन, आश्लेषामें जीवनतक रोग रहता है, मघामें सातदिन, पूर्वाफाल्गुनीमें एकरात्रि, उत्तराफाल्गुनीमें सात दिन, हस्तमें पांच दिन, चित्रामें प्राणशेषपर्यन्त, स्वातिमें मृत्यु, विशाखामें सात दिन, अनुराधामें दश दिन, ज्येष्ठामें मृत्यु, मूलमें चार दिन, पूर्वाषाढामें मृत्यु, उत्तराषाढामें पांच दिन, श्रवणमें पांच दिन, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदामें मृत्यु और रेवतीनक्षत्रमें जिस मनुष्यको ज्वर होय उसको पांचदिनतक पीडा भोगनी होती है ॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥

अपिच ।

कृत्तिकायां यदा कश्चिद्व्याधिरुत्पद्यते ध्रुवम् ।
 नवरात्रं भवेत्पीडा रोहिण्याश्च त्रिरात्रकम् ॥ १५ ॥
 पञ्चरात्रं मृगशिरसि चार्द्रायां सप्तरात्रकम् ।
 पुनर्वसौ पञ्चरात्रं पुष्यायाश्च तथैव च ॥ १६ ॥
 आश्लेषायां नवरात्रं मासमेकं मघासु च ।
 द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम् ॥ १७ ॥
 हस्तायां सप्तमे मोक्षश्चित्रायामर्द्धमासकम् ।
 मासद्वयं तथा स्वात्यां विशाखायाश्च विंशतिः ॥ १८ ॥
 मैत्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठायामर्द्धमासकम् ।
 मूलेन जायते मोक्षः पूर्वाषाढे त्रिपञ्चकम् ॥ १९ ॥
 उत्तराषाढे विंशत्या द्वौ मासौ श्रवणासु च ।
 धनिष्ठायामर्द्धमासो वारुण्यां च दशाहकम् ॥ २० ॥
 न च भाद्रपदे मोक्ष उत्तरायां त्रिपञ्चकम् ।
 रेवत्यां दिनविंशत्या चाहोरात्रं तथाश्विनी ॥ २१ ॥
 प्राणैर्विमुच्यते नित्यं भरण्यां नात्र संशयः ।
 कौशिकेन समादिष्टा नक्षत्रव्याधिसम्भवाः ॥
 नक्षत्रं प्रतिकर्तव्यं नक्षत्रमथ जानता ॥ २२ ॥ (क-)

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, कृत्तिकानक्षत्रमें रोग उत्पन्न होनेसे

(क) “कृत्तिकासु यदा व्याधिर्नृणां सप्रतिपादितः । नवरात्रं भवेत्पीडा त्रिरात्रं रोहिणीषु च । मृगशीर्षे पञ्चरात्रमार्द्रायां मुच्यतेऽसुभिः । पुनर्वसौ तथा पुष्ये सप्तरात्रं विधीयते । दशरात्रं तथाश्लेषे मासमेकं मघासु च । द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम् । हस्ते च सप्तमे मोक्षश्चित्रायामर्द्धमासकम् । मासद्वयं तथा स्वात्यां विशाखे दिनविंशतिः । मैत्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठायामर्द्धमासकम् । मूलेन जायते मोक्षः पूर्वाषाढे त्रिपञ्चकम् । उत्तरे विंशतिर्ज्ञेया द्वौ मासौ श्रवणे तथा । धनिष्ठायामर्द्धमासं वारुण्याश्च दशाहकम् । न च भाद्रपदे मोक्ष उत्तरासु त्रिपञ्चकम् । रेवत्यां दिनविंशत्या चाहोरात्रं तथाश्विनी । प्राणैर्विमुच्यते नित्यं भरण्यां नात्र संशयः । कौशिकेन समादिष्टा नक्षत्रव्याधिसम्भवाः । नक्षत्रं प्रतिकर्तव्यं नक्षत्रमथ जानता ” ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वप्रवृत्तकौशिकवचनम् ।

नौ रात्रितक पीडा होती है, इसी प्रकार रोहिणीमें तीन रात्रितक, मृगशिरमें पांचरात्रि, आर्द्रामें सात रात्रि पुनर्वसु और पुष्यमें पांचरात्रि, आश्लेषामें नौ रात्रि, मघामें एकमास, पूर्वाफाल्गुनीमें दो मास, उत्तराफाल्गुनीमें पन्द्रहदिन, हस्तमें सातदिन, चित्रामें अर्द्धमास, स्वातिमें दोमास, विशाखामें बीसरात्रि, अनुराधामें दशदिन, ज्येष्ठामें अर्द्धमास, मूलमें मृत्यु, पूर्वाषाढामें पन्द्रह दिन, उत्तराषाढामें बीस दिन श्रवणमें दो महिने, धनिष्ठामें अर्द्धमास, शतभिषामें दशदिन, रेवतीमें बीसदिन, आश्विनीमें एक दिन, और भरणी नक्षत्रमें रोग उत्पन्न होनेसे मृत्यु होती है इसमें कुछ संशय नहीं है इस प्रकार कौशिकने कहा है. नक्षत्रके जाननेवाले मनुष्यको इसके प्राप्ति विधान करना चाहिये ॥ १५-२२ ॥

अथ प्रतीकारा भीमपराक्रमे ।

कृत्तिकायां पिष्टकच्छागमुखे दध्युदकञ्च देयम् ।
 रोहिण्यां पिष्टकगोमुखे शाकम् । मृगशिरसि पिष्टक
 मृगमुखे माषो देयः । आर्द्रायां पिष्टकगोमुखे रक्तम् ।
 पुनर्वसौ पिष्टकवराहमुखे पटोलम् । पुष्ये पिष्टकच्छाग
 मुखे पायसम् । आश्लेषायां पिष्टकवराहमुखे घृतम् ।
 मघायां पिष्टकवानरमुखे तिलाः । पूर्वाफाल्गुन्यां पिष्टक
 वानरमुखे मुद्गपूपिका । उत्तराफाल्गुन्यां पिष्टकबलीवर्द्ध
 मुखे शाकम् । हस्तायां पिष्टकमहिषमुखे पुष्करमूलम् ।
 चित्रायां पिष्टकव्याघ्रमुखे तगरपुष्पम् । स्वात्यां पिष्टक
 मार्जारमुखे तिलाः । विशाखायां पिष्टकव्याघ्रमुखे गुड
 भक्तम् । अनुराधायां पिष्टकमृगमुखे कुलत्थम् । ज्येष्ठायां
 पिष्टकमूपिकमुखे धान्याकम् । मूले पिष्टकमार्जारमुखे
 तिलाः । पूर्वाषाढायां पिष्टककुम्भीरमुखे वचा । उत्तराषा
 ढायां पिष्टकवृषमुखे शाकभक्तम् । श्रवणायां पिष्टकमहि
 षीमुखे रक्तम् । धनिष्ठायां पिष्टकनरमुखे शाकभक्तम् । शत
 भिषायां पिष्टकवानरमुखे पिप्पली । पूर्वाभाद्रपदायां पिष्ट
 कनरमुखे सिततण्डुलाः । उत्तराभाद्रपदायामप्येवं रेवत्यां

पिष्टकवानरमुखे गुडभक्तम् । अश्विनीभरण्योरप्येवम् ।
एवं नक्षत्रदोहदे कृते ज्वरा विनश्यन्ति । एतद्विधानन्तु
प्रथमं गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यैः सदीपमाल्यपताकाभिः
प्रपूज्य कार्यम् ॥ २३ ॥

अर्थ-अब नक्षत्रमें ज्वरकी पीडा भोगनेका प्रतीकार। कहते हैं-भीमपराक्रममें लिखा है कि, कृत्तिका नक्षत्रमें ज्वर होनेसे आटेकी एक बकरी बनाकर गन्धपुष्पादिसे उसकी पूजा करनी चाहिये फिर सुखमें दही और पानीको डाले इस प्रकार करनेसे ज्वर दूर हो जाता है, इसी प्रकार रोहिण्यादिनक्षत्रमें ज्वर होनेसे आटेकी गौ और मृगादिको बनाकर पूजन करके उसके सुखमें शाक और मापादिको देनेसे ज्वर दूर होता है, संस्कृत अतिसरल है अतएव सबका अनुवाद नहीं करते हैं ॥ २३ ॥

अथ विरुद्धनक्षत्रादौ रोगकथनम् ।

उरगशतभिषाद्राज्येष्टयाम्यत्रिपूर्वा- (×)

स्वपि च रविजभौमे चार्कवारेण योगे ।

यदि भवति चतुर्था द्वादशी भूतपष्टी

निगदित इह जन्तोर्नाशकालः प्रविष्टः ॥ २४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-विरुद्धनक्षत्रादिमें रोग उत्पन्न होनेसे उसका फल कहते हैं-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, आश्लेषा, शतभिषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा (मतान्तरसे स्वाति और मूल) भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा और पूर्वाभाद्रपदा इन सब नक्षत्रके अन्यतम नक्षत्र शनि, मंगल वा रविवारमें होनेसे यदि चतुर्था, द्वादशी, चतुर्दशी, वा पष्टी तिथि होय और उसमें जो रोग उत्पन्न होय तो उक्त रोगीकी निश्चयही मृत्यु होनी है ॥ २४ ॥

अन्यच्च ।

आर्द्राश्लेषास्वातिशाके यस्य रोगो भवेद्भुवम् ।

धन्वन्तरेरप्यसाध्यो सद्यः प्राणैर्विगुज्यते ॥ २५ ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-दीपिकामें लिखा है कि, आर्द्रा, आश्लेषा स्वाति और ज्येष्ठा नक्षत्रके

(×) स्वातिमूलात्रिपूर्वा इति जातकचन्द्रिकायां पाठः ।

(क) आर्द्रादिषु योगे सति मृत्युमाह-आर्द्रेति । आर्द्रादिषु यस्य रोगः भवेत्स सद्यो म्रियत इत्यर्थः ।

अन्यतम नक्षत्रमें जिस मनुष्यको रोग होय उसको धन्वन्तरिभी चिकित्सा करके नहीं जिला सकते हैं ॥ २५ ॥

अपरश्च ।

शिवशतभिषधात्स्वातिमूलेन्द्रनागे (ख)

रविशानिकुजवारे भूतपृष्ठीनवम्याम् ।

इह हि मरणयोगे यो ज्वरेणाभिभूतः

पशुपतिसदृशश्चेत्सोऽपि मृत्युं प्रयाति ॥ २६ ॥ (ग)

इति दीपिकाटीकायाम् ।

अर्थ—दीपिकाके टीकामें लिखा है कि आर्द्रा, शतभिषा, रोहिणी, स्वाति, मूल, ज्येष्ठा और आश्लेषा नक्षत्रके अन्यतम नक्षत्र, रवि, शनि वा मङ्गलवारके अन्यतम वार और चतुर्दशी, पृष्ठी वा नवमीके अन्यतम तिथि यदि एक समयमें होय और उसमें जिस मनुष्यको रोग उत्पन्न होय तो रोगी शिवके समान होनेसेभी मृत्युको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

अपिच ।

सप्ताहं वारदोषे स्याद्विगुणं तिथिवारयोः ।

तिथिनक्षत्रयोर्मासं त्रिभिर्युक्तो न जीवति ॥ २७ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—जातकचन्द्रिकामें लिखा है कि, वारदोषमें रोग सात दिन रहता है, तिथि और वार दुष्ट होनेसे चौथे दिनतक रोगकी पीडा भोगनी पड़ती है, तिथि और नक्षत्र दूषित होनेसे व्याधि एक मासतक रहती है और वार, तिथि और नक्षत्र दूषित होनेसे रोगीकी मृत्यु होती है ॥ २७ ॥

अन्यथा ।

आधाने जन्मनक्षत्रे निधने प्रत्यरो तथा ।

व्याधिरुत्पद्यते यस्य क्लेशस्तस्य भवेद्भ्रुवम् ॥ २८ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—जातकचन्द्रिकामें लिखा है कि, आधाननक्षत्रमें, जन्मनक्षत्रमें और जन्मनक्ष-

(ख) स्वातिमूलादिपूर्वा इति ज्योतिःसारे पाठः ।

(ग) पशुपतिसमयोगी इति जातकचन्द्रिकायां पाठः ।

अत्र यधने प्रथमपक्षे उरगशतभिषायां । इति पाठः ।

त्रसे गिनकर सातवें वा पांचवें नक्षत्रमें जिस मनुष्यको रोग उत्पन्न होय तो उसको अत्यन्त क्लेश भोगना पडता है ॥ २८ ॥

अपरश्च ।

जन्मभे निधनक्षे वा प्रत्यरौ च विपत्करे ।

यदि व्याधिर्भवेदब्दं क्लेशो वा मरणं भवेत् ॥ २९ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमें लिखा है कि, जिस मनुष्यके जन्मतारामें, निधनतारामें प्रत्यरितारामें और विपत्तारामें व्याधि उत्पन्न होय तो उस मनुष्यको एक वर्ष-तक क्लेश भोगना पडता है वा मृत्यु होती है ॥ २९ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

जन्माधाने निधनभे प्रत्यरौ च विपत्करे ।

यदि व्याधिः समुत्पन्नः क्लेशाय मरणाय च ॥ ३० ॥

इति हारीतः ।

अर्थ-हारीतने कहा है कि, जन्म, आधान, निधन (सप्तमतारा) प्रत्यरि (पञ्चमतारा) और विपत् (तीसरे) तारामें रोग उत्पन्न होनेसे अत्यन्त क्लेश होता है और मृत्युभी होजाती है ॥ ३० ॥

अथ सर्पदंशे नक्षत्रवशेन मरणम् ।

मूलमघाद्राश्लेषाभरणीविशाग्निदैवतेषु नरः ।

गरुडप्रियोऽपि दष्टो न प्राणिति दन्दशूकेन ॥ ३१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब सर्पके काटेहुए मनुष्यकी नक्षत्रसे मृत्यु कहते हैं-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, मूल, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, भरणी, विशाखा और कृत्तिका नक्षत्रमें यदि किसी मनुष्यको सर्प काटे तब वह गरुडके प्रिय होनेसेभी यमा-लंयको पाता है ॥ ३१ ॥

अपिच ।

मूलमघाद्राश्लेषाभरणीवसुदेवभेषु नरः ।

गरुडप्रियोऽपि दष्टो न प्राणिति दन्दशूकेन ॥ ३२ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-दीपिकामें लिखा है; कि, मूल, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, भरणी, वा धनिष्ठा नक्षत्रमें यदि किसी मनुष्यको सर्प काटे तो वह गरुडके प्रिय होनेसेभी मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

अथ मरणप्रदरोगकथनम् ।

यद्यत्र चन्द्रमास्तस्य गोचरे चाशुभप्रदः ।

तदा नूनं भवेन्मृत्युः सुधासंसिक्तदेहिनः ॥ ३३ ॥ (×)

अर्थ—अब मृत्युप्रद रोग कहते हैं—जिस मनुष्यके रोग उत्पन्न होनेके समय चन्द्रमा गोचरमें अशुभ होय तो उसकी अमृतकी देह होनेसेभी मृत्युकी प्राप्त होती है ॥ ३३ ॥

अपिच ।

यदा ताराः शुभाः पुंसां नक्षत्रस्याशुभं फलम् ।

तत्र नात्यन्तिकं ज्ञेयमेवमन्यत्र पण्डितैः ॥ ३४ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ—ज्योतिःसारेमें लिखा है कि, रोग उत्पन्न होनेके समय अशुभ नक्षत्र होनेसेभी यदि मनुष्यका तारा शुद्ध होय तो उस मनुष्यकी मृत्यु नहीं होती है ॥ ३४ ॥

अथ रोगस्य शुभाशुभप्रश्नः ।

चरराशौ विलग्नस्थे द्विदेहाद्धं च पश्चिमे ।

रोगस्योपशमः प्रश्ने विपर्यासे विपर्ययः ॥ ३५ ॥ (क)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब रोगी मनुष्यका शुभाशुभ लक्षण प्रश्नद्वारा कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, यदि चरराशि और द्वात्मात्मक राशिका शेषार्द्ध प्रश्नलग्न होय तो रोगीकी शीघ्र आरोग्य होता है और याद स्थिरराशि और द्वात्मात्मक राशिका पूर्वार्द्ध प्रश्नकी लग्न होय तो वह मनुष्य चिररोगी होता है ॥ ३५ ॥

(×) पूर्वोक्ताद्वाक्षेपास्वातीत्यादीनां मूलमघाद्राक्षेपेत्पादीनां चापवादमाह—यद्यत्र चन्द्रेति । स्पष्टार्थः । यदि चन्द्रे गोचरशुभदे रोगः स्यात्तदा न मृत्युः किन्तु सशय इत्यर्थः । अत्र चान्यत्र विशेष उक्तः । शिवशतभिषगावृत्तातीत्यादि “सप्ताह वारदोषेण द्विगुण तिथिदोषतः । तिथिनक्षत्रयोर्मासस्त्रिभिः कालो न सशयः ” तथा सर्पदष्टस्थान्यत्र विशेष उक्तः । “मूलेक्षयाम्यशुक्राग्निमपाक्षेपाश्च कृत्तिम् । एषु दृष्टो दन्दशूरेस्तस्य मृत्युर्न सशयः । मूलेक्षमपाक्षेपावृत्तभरणीविशारामेषु नरः । गच्छप्रियोऽपि दृष्टो न प्राणानि दन्दशूरेण ” इति ।

(क) प्रश्नलग्नाद्गोविशुक्लावृत्तमाह—चरेति । चरराशौ लग्नगते द्वात्मात्मकस्य शेषार्द्धभागे च प्रश्ने सति रोगस्योपशमः स्यात् । विपर्यासे स्थिरराशौ लग्न गते द्वात्मात्मकस्य पूर्वभागे च विपर्ययाच्चिररोगित्य स्यात् ॥ इति ।

अथ रोगोपशमनयोगकथनम् ।

शुभग्रहाः सौम्यानिरीक्षिताश्च विलग्नसप्ताष्टमपञ्चमस्थाः ।

त्रिषड्दशायेषु निशाकरः स्याच्छुभं वदेद्गोनिपीडितानाम् ३६ (ख)

इति ज्योतिषसारसंग्रहे

अर्थ—अब रोगोपशमयोग कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, प्रश्नलग्नमें वा प्रश्नलग्नके सातवें, आठवें वा पाँचवें स्थानमें शुभग्रह होय और उनको अन्य शुभ ग्रह देखते हों तब रोगी मनुष्यकी कुशल जाननी चाहिये और यदि प्रश्नलग्नके तीसरे छठे, दशवें वा ग्यारहवें स्थानमें चन्द्रमा स्थित होय तोभी रोगी मनुष्यकी शुभ होती है ॥ ३६ ॥

अथ प्रश्ने मरणसूचकयोगौ ।

पापक्षे प्रश्नलग्ने तु पापसंयुतवीक्षिते ।

तथैव चाष्टमे स्थाने रोगिणां मरणं वदेत् ॥ ३७ ॥ (ग)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब प्रश्नलग्नसे रोगी मनुष्यकी आयु कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, यदि प्रश्नलग्न पापग्रहोंकी होय और उसमें पापग्रह स्थित होय वा प्रश्नलग्नको पाप ग्रह देखतेहों तो रोगी मनुष्यकी मृत्यु होती है । प्रश्नलग्नका आठवाँ स्थान पापग्रहोंका घर होय वा पाप ग्रह उसमें होय अथवा पापग्रह उसको देखते हों तो रोगी मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ३७ ॥

अथ परदेशस्थरोगादिज्ञानम् ।

मन्दः पापसमेतो लग्नान्नवमः शुभैर्युतदृष्टः ।

रोगार्तः परदेशे चाष्टमगो मृत्युकर एव ॥ ३८ ॥ (घ)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब परदेशमें गयेहुए मनुष्यके रोग और मृत्युका ज्ञान कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, यदि पापग्रहोंके साथ शनिग्रह जन्मलग्नके नववें

(ख) प्रश्ने रोगोपशममाह—शुभेति । लग्नस्य सप्तमाष्टमपञ्चमेषु मध्ये यत्र कुत्रापि स्थिताः शुभाः शुभदृष्टा यदि स्थस्तदारोगिणा कुशलं शुभं वदेत् । तथा त्रिषड्दशायेषु स्थिते चन्द्रे शुभे कुशलं वदेदित्यर्थः । इति ।

(ग) प्रश्ने मृत्युयोगमाह—पापक्षे इति । पापग्रहलग्ने पापयुक्ते पापदृष्टे च रोगिणां मरणं स्यात् । तथैवाष्टमस्थाने पापग्रहे पापयुक्ते पापदृष्टे च मरणम् । देवज्ञपल्लमायामन्यदुक्तम् “लग्नस्थितो वाष्टमसंस्थितो वा पापग्रहो यस्य ॥ जन्मराशिम् । निरीक्षते तस्य मदादितस्य निःसंशय मृत्युमुदाहरन्ति । पृष्ठोदये तिलग्रे कूराः वेन्द्राष्टमः शशी यस्य । रोगार्तस्य विनाशो दृष्टे वा बल्युतैः पापैः” इति ।

(घ) प्रश्नलग्नादेशान्तरस्थस्य रोगज्ञानमाह—मन्द इति । मन्दः शनिः पापयुक्तः

स्थानमें शुभग्रह युक्त वा शुभग्रहोंकी दृष्टि न होय तब परदेशमें मनुष्य रोगी होताहै और पापग्रहोंके साथ शुनैश्वर यदि प्रभ्रलग्रके आठवें होय और शुभयुक्त वा शुभग्रहोंकी दृष्टि उसपर न होय तो विदेशमें मनुष्य रोगी होकर मरताहै॥३८॥

अथ मनुष्यादीनां परमायुः प्रमाणम् ।

पञ्चाहानखभूसमा नृकरिणां व्याघ्राद्यजादेर्नृपा
गोकाल्योर्हिजिनास्तथोष्ट्रखरयोस्तत्त्वानि सूर्याः शुनः ।
अश्वायुः परमं रदा नृवादिहानीयायुरेपा परा-
युर्निघ्नं नृपवायुपा च विदितं तेषां स्फुटायुर्भवेत् ॥ ३९ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—अब मनुष्यादिकी परमायुका प्रमाण कहते हैं—ग्रन्थान्तरमें लिखाहै कि, मनुष्य और हाथीकी आयु एकसौ बीस वर्ष पांच दिनकी होती है, इसी प्रकार व्याघ्र और छागादिकी आयु सोलह वर्षकी, गाय और भैंसकी आयु चौबीस वर्षकी ऊँठ और गधेकी आयु पच्चीसवर्षकी, कुत्तेकी आयु बाहर वर्षकी और घोड़ेकी आयु बत्तीस वर्षकी होतीहै उक्त सब जीवोंकी जन्मसमयकी लग्न तथा ग्रहस्थापन करके आयु गिननेकी रीतिसे वत्सरादिनिर्णय करके हाथीआदिके पूर्वोक्त अपनी २ आयुद्वारा गुणन करै तदनन्तर गुणनफलको १२० से भागलेके भागफलद्वारा तिन हाथी आदिकी परमायु होतीहै ॥ ३९ ॥

अन्यत्र ।

समाः पष्टिर्द्विघ्ना मनुजकरिणां पञ्च च निशा
हयानां द्वात्रिंशत्खरकरभयोः पञ्चककृतिः ।
विरूपासत्वायुर्मृगमहिषयोर्द्वादश शुनः
स्मृतं छागादीनां दशकसहिताः पट् च परमम् ॥ ४० ॥ (*)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब दीपिकाके अनुसार मनुष्यादिकी परमायु कहते हैं—मनुष्य और प्रभ्रलग्नान्नवमस्यः शुभेयुतोऽष्टष्टश्च यदि स्वात्तदा परदेशे रोगार्तो नरः स्यात् । यदि लग्नादष्टमे पापेन युक्तः शुभेनयुतोऽष्टष्टश्च शुनिः स्वात्तदा विदेशे रोगी भूत्वा मृत इत्यर्थः । देशान्तररोगोपशमनमाह देवज्ञावल्लभायाम्—“उपच्यग्रहेषु चन्द्रे शुभेषु केन्द्रत्रिकोणनिधनेषु । शुभदृष्टे वा लग्ने रोगी देशान्तरे नीरुहः ॥” इति ।

(*) मानुषादीनां परमायुःप्रमाणमाह—समा इति । पष्टिर्द्विघ्ना विशाधिकशतं पञ्च च निशाः पञ्च दिनानि च मानुषाणां गजानाञ्च परमायुःप्रमाणम् । अश्वानां त्रिंशत् गधेभ्योऽष्टयोः पञ्चककृतिः पञ्चानां कृतिः पञ्चविंशतिः । स्वयं संयुजनं नाम कृतिरित्यभिधीयते । सा पञ्चककृतिर्विरूपा एकवर्जिता चतुर्विंशतिरित्यर्थः । गोमहिषयोः । वृद्ध-

हाथीकी आयु एकसौ बीस वर्ष पांच दिनकी होती है, इसी प्रकार घोड़ेकी आयु बत्तीस वर्षकी ऊँट और गधेकी आयु पच्चीस वर्षकी, गाय और भैंसकी आयु चौबीस वर्षकी कुत्तेकी आयु बारह वर्षकी और छाग, भेड़ और मृगादिकी आयु सोलह वर्षकी होती है ॥ ४० ॥

अपरश्च ।

पथ्याशिनां शीलवतां नराणां सद्वृत्तिभाजां विजितेन्द्रियाणाम् ।

एवंविधानामिदमायुरत्र चिन्त्यं सदा वृद्धमुनिप्रवादः ॥ ४१ ॥

इति सारावल्याम् ।

अर्थ-सारावली ग्रन्थमें लिखा है कि, जो पथ्याशी, सुन्दर स्वभाववाला, अच्छे प्रकारसे आजोवेकाका निर्वाह करनेवाला और जितेन्द्रिय मनुष्योंकी उक्त एकसौ बीस वर्षकी परमायु होती है वृद्धकृपि मुनिने इस प्रकार कहा है ॥ ४१ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

वर्त्याधारस्नेहयोगाद्यथा दीपस्य संस्थितिः ।

विक्रियापि च दृष्ट्वैवमकाले प्राणसंशयः ॥ ४२ ॥ (क)

इति याज्ञवल्क्यः ।

अर्थ-भगवान् याज्ञवल्क्यजीने कहा है कि, तेल, शराब और बत्तीके होनेसेभी वायु आदिविक्रियासे जिस प्रकार दीपक बुझजाता है, उसी प्रकार अशुभकर्मके फल भोगनेसे आयु होनेसेभी नाकापर चढ़नेसे अमार्गमें जानेसे, युद्धमें मधुच होनेसे और अपथ्यादिके आहार करनेसे मृत्यु होजाती है ॥ ४२ ॥

अथ गतायुःपरीक्षा ।

न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः ।

दीपनिर्वाणगन्धं च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम् ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-जिस मनुष्यकी आयु गत होती है उसके लक्षण कहते हैं-ज्योतिष तत्त्वमें लिखा है कि, जिस मनुष्यकी मृत्यु निकट आजाती है उस मनुष्यको

—स्य तु द्वादश । छागमेष्टृगाणां दशसहिताः पञ्च परमं पौडश वर्षाणि परमायुः स्मृतम् । अश्वादीनां पुरुषवदायुर्द्वयं कृत्वाविशत्याधिकशतेन भागमपहत्य यल्लब्धं तदश्वादीनां स्वकीयद्वात्रिशद्वर्षादिभिः पूरितं तेपामायुर्द्वयं स्यादिति ॥

(क) यथा अविश्वलवर्त्यादिसत्त्वे प्रचण्डवातादिना दीपनाशस्तथा सत्यप्यायुपि अशुभकर्मवशात्त्रौकार्हुगमवर्त्मयुद्धापथ्याशित्वादिना प्राणनाशः ।

इति ज्योतिस्तत्त्वे मलमासतत्त्वे च स्मार्तरोगोहितम् ।

दीपक गुल होनेकी गन्ध नहीं जान पड़ती है, इसी प्रकार अपने मनुष्योंकी बातभी बुरी लगती है और आकाशमण्डलमें उस मनुष्यको अरुन्धतीका ताराभी नहीं देख पड़ता है ॥ ४३ ॥

अयौषधकरणम् ।

द्वयङ्गोदये गुरुबुधेन्दुसितेषु सत्सु (१)

वारे परे च सुविधौ सुतिथौ सुयोगे ।

भेषूयपन्नगविशाखशिवेतरेषु

जन्मर्क्षविष्टिरहितेष्वगदः शुभाय ॥ ४४ ॥ (२)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अय औषध (दवाई) बनानेका सुहृत् कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, द्वायात्मक (मिथुन, कन्या, धन और मीन) लग्नमें बृहस्पति, बुध, चन्द्रमा और शुक्र स्थित होनेसे और इन सब ग्रहोंके वारमें और रविवारमें, शुभ-चन्द्रमा, शुभ तिथि और शुभयोगमें, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी, आश्लेषा, विशाखा और आर्द्रामिच नक्षत्रोंमें जन्मनक्षत्र और विष्टिकरणको छोड़कर अन्यसमयमें औषध बनाना चाहिये ॥ ४४ ॥

अयौषधभक्षणम् ।

हस्तस्वातिमघामूलमृगभं पुष्य एव च ।

ज्येष्ठा शतभिषा चित्रा रेवती च तथाश्विनी ॥ ४५ ॥

श्रवणा चानुराधा च लग्ने मिथुनकन्यके ।

शुकेन्दुगुरुवारेषु भेषज्यपानमुत्तमम् ॥ ४६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अय औषध सेवन करनेका (दवा खानेका) सुहृत् कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, हस्त, स्वाति, मघा, मूल, मृगशिर, पुष्य, ज्येष्ठा, शतभिषा, चित्रा, रेवती, अश्विनी, श्रवणा और अनुराधा नक्षत्रोंमें, मिथुन और कन्यालग्नमें शुक्र, सोम और बृहस्पतिवारोंमें औषधका सेवन करे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

(१) तेषामिति क्वचित्पाठः ।

(२) औषधकरणमाह—द्वयङ्गोदय इति । द्वायात्मकलग्ने तत्र च बुधगुरुचन्द्रशुकेषु सत्सु तेषां गुरुबुधेन्दुसितानां रेवत्ये वारे सुतिथौ शुभचन्द्रे शुभयोगे उग्रगणे ११ । २० । २५ । २० । २ । आश्लेषा ९ विशाखा १६ आर्द्रा ६ एतदन्येषु नक्षत्रेषु जन्मनक्षत्रयोगेतिषु विष्टिरहितेषु अगदमीषं शुभाय स्यात् ।

अन्यच्च ।

दहनविधिधानिष्टारेवतीस्वातिपुष्य-
हरिभमदितिचित्रामूलशक्रोत्तरं च ।
दिनकश्मनुराधा चाश्विनी सौम्यवारी
हरति सकलरोगान्भक्षणाच्चौषधस्य ॥ ४७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, कृत्तिका, रोहिणी, धनिष्ठा, रेवती, स्वाति, पुष्य, श्रवण, पुनर्वसु, चित्रा, मूल, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा हस्त, अनुराधा और आश्विनीनक्षत्रमें और शुभ ग्रहोंके वारमें औषध खानेसे सभी रोगोंका नाश होजाताहै ॥ ४७ ॥

अपरञ्च ।

पौष्णाश्विनीहरिभशक्रसमीरपुष्य
हस्तादितीन्दुवसुमूलविशाखमित्रे । (क)
चित्रान्विते भृगुबुधेन्दुरवीज्यवारे
भैषज्यपानमचिरादपि हन्ति रोगान् ॥ ४८ ॥ (ख)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि, रेवती, आश्विनी, श्रवण, ज्येष्ठा, स्वाति, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, मृगशिर, धनिष्ठा, मूल, विशाखा, (मतान्तरमें कृत्तिका) अनुराधा और चित्रा नक्षत्रमें, शुक्र, बुध, सोम, रवि और बृहस्पतिवारमें रोगी भैषज्य प्रथम औषध सेवन करनेसे शीघ्रही आरोग्य होताहै ॥ ४८ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

भैषज्यपानं गुरुसोमशुक्राः शुभे विलग्रे दिवसे रवेश्च ।
तिथावरित्ते करणे च शस्ते योगे च लग्ने द्विशरीरसंज्ञे ॥ ४९ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ-भीमपराक्रममें लिखाहै कि, बृहस्पति, सोम, शुक्र और रविवारमें, शुभ

(क) हुताश इति पाठान्तरम् ।

(ख) औषधभक्षणमाह-पौष्णेति । पौष्णादिनक्षत्रेषु २७ । १ । २२ । १८ । १६ । ८ । १३ । ७ । ५ । १३ । १९ । १६ । १७ । १४ । शुक्रचन्द्रबुधरविवारुषेषु औषधभक्षणं रोगमचिरेण हन्ति ।

लग्नमें, रिक्ताभिन्न तिथियोंमें, शुभकरण और शुभयोगमें, द्वायात्मकलग्नमें द्वाईको खाना चाहिये ॥ ४२ ॥

अपिच ।

रोहिण्यां चानुराधायां शस्तमौषधभक्षणम् ॥ ५० ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, रोहिणी और अनुराधा नक्षत्रमें द्वाई खाना प्रशस्त है ॥ ५० ॥

अथ वस्तिविरेचनवेधः ।

चित्रायुगे विधियुगे मित्रयुगे लघुषु वारुणे विष्णौ ।

वस्तिविरेचनवेधाः शुभदिनतिथिचन्द्रलग्नेषु ॥ ५१ ॥ (ग) ॥

अर्थ—चित्रा, स्वाति, रोहिणी, मृगशिर, अनुराधा, ज्येष्ठा, पुष्य, अश्विनी, हस्त, शतभिषा और श्रवण नक्षत्रमें, शुभदिनमें, शुभतिथिमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे शुभ लग्नमें वस्तिविरेचन अर्थात् नाभिके अधोदेशमें व्यथा होनेसे दवा लगाना चाहिये ॥ ५१ ॥

अथारोग्यज्ञानम् ।

व्यादित्येषु चरेषु शक्रदिनकृतपुष्योयचन्द्रेषु च

क्रूराहव्यतिपातविष्टिदिवसेष्विन्द्रावशस्ते तथा ।

केन्द्रस्थेष्वशुभेष्वकामतिथिषु स्नानं गदोन्मुक्तिः

स्नातं तत्र न शोभनो विधिभुजङ्गर्क्षेन्दुसद्भातराः ॥ ५२ ॥ (घ)

अर्थ—अब आरोग्य होनेके बाद स्नान करनेका सुहृत् कहते हैं—पुनर्वसुको

(ग) वस्तिविशोधनविरेचनव्रणादिवेधानां विधिमाह—चित्रेति । चित्रायुगे १४ । १५ । रोहिणी युगे ४ । ५ अनुराधायुगे १७ । १८ । लघुगणे ८ । १ । १३ । शतभिषायां २४ श्रवणायाञ्च २२ शोभनेषु वारतिथिचन्द्रलग्नेषु वस्तिविरेचनवेधाः कार्याः लिङ्गादूर्ध्वं नाभेरधोभागो वस्तिः । “वस्तिर्नाभेरधो हयोः” इत्यमरः । अत्र च वस्तिदेशे व्यथादौ जाते मण्डाद्यौषधदानेन वस्तिशोधनं क्रियत इति वैद्यकशास्त्रे प्रासिद्धेः । वस्तिशोधनकर्म विरेचनकर्म चान्तर्नाडीशोधनं विरेचनं वेधा व्रणादिवेधनञ्चकार्यमित्यर्थः । राजमातृष्टे—“पुष्यो हस्तस्तथा ज्येष्ठा श्रवणा चोत्तराश्विनी । शुभान्येतानि धिष्ण्यानि वेधे वस्तो विरेचने ॥” इति ।

(घ) आरोग्यज्ञानमाह—व्यादित्य इति । पुनर्वसुवाजितेषु चरगणेषु १५ । २२ । २३ । २४ । ज्येष्ठाहस्तपुष्योयग्रगणे मृगशिरसि च क्रूराह शनिरविमंगलद्वारे व्यतीपातयोगे विष्टौ गोचरशुद्धे चन्द्रे लग्नात्केन्द्रेषु अशुभेषु ग्रहेषु सत्स्वकामतिथिषु न विद्यते कामो यत्र अकामा रिक्ता तत्र गदोन्मुक्तिः रोगत्यागात्स्नानं प्रशस्तम् । राजमातृष्टे—

छोडकर चरगणमें (स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रमें) वा ज्येष्ठा नक्षत्रमें अथवा हस्त, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, मरणी और मृगशिर नक्षत्रमें क्रूर ग्रहोंके वारमें (रवि, मङ्गल और शनिवारमें) व्यतीपात योगमें विष्टिकरणमें गोचरमें चन्द्रमा अशुद्ध होनेसे, और लग्नके केन्द्रस्थानमें शुभग्रह स्थित होनेसे रिक्तातिथिमें आरोग्य होकर स्नान करना चाहिये, किन्तु रोहिणी और आश्लेषा नक्षत्रमें और शुभग्रहोंके वारमें कभी आरोग्य होनेके बाद स्नान न करे ॥ ५२ ॥

अन्यच्च ।

चन्द्राशुद्धौ व्यतीपाते भौमार्कशनिवासरे ।

व्रणमुक्ता व्याधिसुक्तः कृच्छ्रस्नानं समाचरेत् ॥ ५३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, गोचरमें अशुद्ध चन्द्रमा होनेसे, व्यतीपात योगमें, मंगल रवि और शनिवारमें व्रणमुक्त और व्याधिसे मुक्त हुए मनुष्यको स्नान करना चाहिये ॥ ५३ ॥

अपरञ्च ।

पूर्वात्रयं मघाश्लेषाभरणीकृतिकासु च ।

भद्रायां च तिथौ रिक्ते आरोग्यस्नानमाचरेत् ॥ ५४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, आश्लेषा, मरणी और कृतिका नक्षत्रमें, भद्रा (द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी) और रिक्ता (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी) तिथिमें आरोग्य होकर स्नान करना चाहिये ॥ ५४ ॥

आरोग्यस्नाननिषेधः ।

दशमी नवमी चैव प्रतिपच्च त्रयोदशी ।

तृतीया च विशेषेण स्नाने चैतान्विवर्जयेत् ॥ ५५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

—‘जीवे शुके बुधे चन्द्रे दिनेऽरिक्ते हिते तिथौऽयःशुभैः कुरुते स्नानं रोगी रोगाच्च मुच्यते’ अत्र च रोहिणी आश्लेषा इन्दोऽश्वन्द्रस्य सद्ग्रहाणाञ्च वाराः न शोभनाः प्रयत्नेन वर्जनीया इत्यर्थः । सद्ग्रहाणां भित्तयेन सिद्धे इन्दोः पृथगुपादान क्षीणत्वेऽपि तस्य वारस्य वर्जनार्थम् । प्रतिपदादितिथिनिषेध विशेषेणाह-राजमार्त्तण्टे-“प्रतिपदा द्वितीया वा दशमी च त्रयोदशी । कृच्छ्रस्नानं न कुर्वीत यदीच्छेदात्मनो हितम् ” इति ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि—सप्तमी, नवमी, प्रतिपदा, त्रयोदशी और चतुर्था तिथिमें आरोग्य होकर स्नान न करना चाहिये ॥ ५५ ॥

अथ तैलाभ्यङ्गनिषेधः ।

अकै नूनं हरति हृदयं कीर्त्तिलाभश्च सोमे
भौमे मृत्युर्भवति नियतं चन्द्रजे पुत्रलाभः ।
अथे हानिर्भवति हि गुरौ भार्गवे शोकयुक्तः
तैलाभ्यङ्गात्तनयभरणं सूर्यजे दीर्घमायुः ॥ ५६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अथ तेल लगानेके निषिद्ध वार कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रविवारमें तेल लगानेसे कष्ट होता है, इसी प्रकार सोमवारमें कीर्त्तिलाभ, मङ्गलवारमें मृत्यु, बुधवारमें पुत्रलाभ वृहस्पतिवारमें अर्थहानि, शुक्रवारमें पुत्र-शोक और शनिवारमें तेल लगानेसे दीर्घायु होती है ॥ ५६ ॥

प्रतिप्रसवो यथा ।

रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वा भूमिं भूमिजवासरे ।
भार्गवे गोमयं दद्यात्तैलदोषोपशान्तये ॥ ५७ ॥ (×)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—रविवारमें पुष्प (फूल) डालकर तेल लगाना चाहिये, इसी प्रकार वृहस्पति वारमें दूर्वा डालकर, मंगलवारमें मृत्तिका डालकर और शुक्रवारमें गोबर डालकर तेल लगाना चाहिये पुष्पादिवासित तेल लगानेसे दोष नहीं होता है इस प्रकार ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है ॥ ५७ ॥

अन्यथा ।

अतैलं सार्पणं तैलं यत्तैलं पुष्पवासितम् ।
अदुष्टं पक्वतैलं च स्नानाभ्यङ्गेषु नित्यशः ॥ ५८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, सरसोंके तेलको तेलसंज्ञा नहीं है, पुष्प-वासित तेल पक्वतेलकी (पकेहुए तेलकी) शरीरमें नित्य प्राति मालिसकरनी चाहिये, उसमें कुछ दोष नहीं है ॥ ५८ ॥

(+) तैलपदं तिलतेलपरामिति हृदयानन्दः ।

अथ साधारणकार्ये वारादिव्यवस्था ।

शुकेन्दुबुधजीवानां वाराः सर्वत्र शोभनाः ।

भानुभूसुतमन्दानां शुभकर्मसु केष्वपि ॥ ५९ ॥

अर्थ—शुक्र, सोम, बुध और बृहस्पतिवार सभी कर्ममें शुभफलप्रदान करते हैं, रवि, मंगल और शनिवारमें कोई २ शुभकर्म प्रशस्त हैं ॥ ५९ ॥

अपिच ।

सर्वत्र कार्ये बुधजीवशुक्राः केन्द्रत्रिकोणोपगताः प्रशस्ताः ।

तृतीयलाभारिगताश्च पापास्तिथिर्विरिक्ताशुभदस्य चाहः ॥ ६० ॥ (×)

अर्थ—कर्म करनेके समय लग्नमें वा लग्नके चौथे, सातवें वा दशवें स्थानमें बुध बृहस्पति और शुक्रके होनेसे, तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें पापग्रह होनेसे रिक्ताभिन्न तिथिमें और शुभग्रहोंके वारमें प्रायः सभी कर्म करना चाहिये ॥ ६० ॥

अन्यच्च ।

निरंशं दिवसं विष्टिं व्यतीपातश्च वैधृतिम् ।

केन्द्रञ्चापि शुभैः शून्यं पापाहमपि वर्जयेत् ॥ ६१ ॥ (१)

अर्थ—निरंश अर्थात् रविसंक्रान्तिदिन, विष्टिमद्रा, व्यतीपात और वैधृति-योग (केन्द्रमें शुभग्रह न होनेसे उस लग्नमें) और पापग्रहोंके वारमें कोई कार्य न करना चाहिये ॥ ६१ ॥

अपरञ्च ।

इन्द्रष्टमगान्पापान्वर्जयेन्नैधनं विलग्नञ्च ।

चन्द्रञ्च निधनसंस्थं सर्वारम्भप्रयोगेषु ॥ ६२ ॥

अर्थ—सभी कार्यमें चन्द्रगत पाप ग्रह और लग्नगत पापग्रहको परित्यागकर और चन्द्रमाके वा लग्नके आठवें पापग्रहोंकोभी परित्याग करना चाहिये ॥ ६२ ॥

+ साधारणसर्वकर्मसु ग्रहाणां शुद्धिमाह—सर्वत्रेति । शुभदस्य शुभग्रहस्याहः वारः शस्त इत्यर्थः । अत्र शुभदस्येत्यनेन गोचरे दशायां वा शुभफलदायकस्य पापस्यापि वारः शुभ इत्यर्थः ।

(१) सर्वकर्मस्वन्यानापि वर्जनीयानाह—निरशमिति । निरश रविणांशं शून्यीकृत दिनं रवेः सञ्चारदिनं नान्यस्येत्यर्थः । तथाच राजमार्तण्डे—“अस्त प्रयाते च भृगौ गुरौ वा सूयं निरशे हिमगौ प्रणष्टे । न कृषवाप्यादिकमन्दिनार्थं शुभं प्रदिष्टं धनकी-त्तनाशात्” इति । शुभैरिति बहुवचनमाविवाक्षितं यत्किञ्चिदपि केन्द्रं शुभमात्रेण युतं चत्तदा न दोष इत्यर्थः । पापाह पापवारम् एतेन पापयोश्चन्द्रबुधयोर्दिनमपि वर्जयेदित्यर्थः । इति ।

अथ रविस्क्रान्तिकथनम् ।

विषुवन्मेपतुल्योरयनं मकरे रवौ कुलीरे च ।

पडशीतिर्द्विंशरीरे विष्णुपदी च स्थिरे राशौ ॥ ६३ ॥ (अ)

अर्थ—अब संक्रान्तिकी संज्ञा कही जाती है—मेप और तुलाकी संक्रान्तिको विषुवसंक्रान्ति कहते हैं, मकर और कर्क की संक्रान्तिको अयनसंक्रान्ति कहते हैं, मिथुन, कन्या, धन और मीन संक्रान्तिको पडशीतिसंक्रान्ति कहते हैं और वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ संक्रान्तिको विष्णुपदी संक्रान्ति कहते हैं ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

मृगकर्कटसंक्रान्ती द्वे तूदग्दक्षिणायने । (आ)

विषुवती तुला मेपे गोलमध्ये तथापराः ॥ ६४ ॥

धनुर्मिथुनकन्यासु मीने च पडशीतयः ।

वृषवृश्चिकसिंहेषु कुम्भे विष्णुपदी स्मृता ॥ ६५ ॥

इति भविष्यमास्त्वयोः ।

अर्थ—भविष्यपुराणमें और मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, मकर संक्रान्तिको उत्तरायणकी संक्रान्ति कहते हैं, इसीप्रकार कर्क संक्रान्तिको दक्षिणायन तुला संक्रान्तिको जलविषुव, मेप संक्रान्तिको महाविषुवसंक्रान्ति कहते हैं, राशिचक्रके मध्यमें अन्यान्यसंक्रान्ति अर्थात् धन, मिथुन, कन्या और मीन संक्रान्तिको पडशीतिसंक्रान्ति कहते हैं और वृष, वृश्चिक, सिंह और कुम्भ संक्रान्तिको विष्णुपदी संक्रान्ति कहते हैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अपरञ्च ।

अयने द्वे विषुवे द्वे चत्वारि पडशीतयः ।

चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्यो द्वादश स्मृताः ॥ ६६ ॥

इति ज्योतिःसारे ज्योतिःसारसंग्रहे च ।

अर्थ—ज्योतिःसारमें और ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, दो अयन संक्रान्ति दो विषुवसंक्रान्ति, चार पडशीतिसंक्रान्ति और चार विष्णुपदीसंक्रान्ति सब बारह संक्रान्ति होती हैं ॥ ६६ ॥

(अ) गमिसंक्रान्तीनां मन्त्राणाह—विषुवदिति । मेपतुलास्ये मेपप्रदेशे तुलाप्रदेशे भेत्वर्यः । एतन्मन्त्राणि ।

(आ) “महाविषुवमाख्यात मेपराशौ भेर्गती । जलविषुवतुलायां कर्कटे दक्षिणायनम् । उत्तरायणमण्युक्तं मकरस्ये ग्यौ तथा ” इति ज्योतिःसारे ।

अथ संक्रान्तिक्रमः ।

विषुवविष्णुपदीपडशीतयोऽयनविष्णुपदीपडशीतियः ।

विषुवविष्णुपदीपडशीतयोऽयनविष्णुपदीपडशीतियः ॥ ६७ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ-जातकचन्द्रिकामें लिखा है कि, महाविषुव, विष्णुपदी, पडशीति, दक्षिणायन विष्णुपदी, पडशीति, जलविषुव, विष्णुपदी, पडशीति, उत्तरायण, विष्णुपदी और पडशीति यह बारह संक्रान्ति क्रमानुसार बारह राशिमें होती हैं ॥ ६७ ॥

अथ संक्रान्तीनां नक्षत्रघटितमन्दादिसंज्ञाः ।

मन्दा मन्दाकिनी ध्वांक्षी घोरा चैव महोदरी ।

राक्षसी मिश्रिता प्रोक्ता संक्रान्तिः सप्तधा नृप ॥ ६८ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-अथ संक्रान्तिकी विशेषसंज्ञा कहते हैं-तिथितत्त्वमें लिखा है कि, मन्दा, मन्दाकिनी, ध्वांक्षी, घोरा, महोदरी, राक्षसी और मिश्रिता यह सप्त संज्ञा विषुवादि संक्रान्तिकी नक्षत्रविशेषमें होती हैं, उनको नीचे लिखा है ॥ ६८ ॥

मन्दा ध्रुवे सुविज्ञेया मृदौ मन्दाकिनी तथा ।

क्षिप्रे ध्वांक्षी विजानीयादुग्रे घोरा प्रकीर्तिता ॥ ६९ ॥

चरैर्महोदरी ज्ञेया क्रूरैर्ऋक्षैश्च राक्षसी ।

मिश्रिता चैव विज्ञेया मिश्रितक्षैश्च संक्रमे ॥ ७० ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-अथ तिथितत्त्वके अनुसार मन्दादिसंक्रान्ति कही जाती हैं-उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढा, उत्तरामाद्रपदा और रोहिणीनक्षत्रमें संक्रान्ति लगनेसे उसको मन्दा संक्रान्ति कहते हैं, इसी प्रकार चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती नक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको मन्दाकिनी संक्रान्ति, पुष्य, आश्विनी और हस्तनक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको ध्वांक्षी संक्रान्ति; पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा और मरणीनक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको घोरा-संक्रान्ति, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और ज्येष्ठाभिपानक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको महोदरी संक्रान्ति, आश्लेषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा और मूलनक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको राक्षसी संक्रान्ति और कृत्तिका तथा विशाखानक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको मिश्रिता संक्रान्ति कहते हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ संक्रान्तीनां पुण्यकालः ।

पडशीतिमुखेऽतीते वृत्ते च विषुवद्वये ।

भविष्यत्ययने पुण्यमतीते चोत्तरायणे ॥ ७१ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ—अब तिथितत्त्वेके अनुसार संक्रान्तिका पुण्यकाल कहते हैं—पडशीति-संक्रान्ति और विषुवसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके उपरान्त पुण्यकाल होता है; इसी प्रकार दक्षिणायनसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके पूर्वमें और उत्तरायणसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके बाद पुण्यकाल होता है ॥ ७१ ॥

यावद्विंशकलाभुक्ता तत्पुण्यं चोत्तरायणे ।

निरंशे (१) भास्करे दृष्टे दिनास्तं दक्षिणायने ॥ ७२ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ—देवीपुराणमें लिखा है कि, उत्तरायणसंक्रान्तिमें संक्रान्तिके लगनेसे बीसदण्डतक पुण्यकाल होता है, और दक्षिणायनसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके पूर्वमें तीस दण्ड पुण्यकाल होता है ॥ ७२ ॥

त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे विंशतिः स्मृताः ॥ ७३ ॥ (क)

इति बृहवशिष्टः ।

अर्थ—बृहवशिष्टने कहा है कि, दक्षिणायन (कर्कटकी) संक्रान्तिमें तीस दण्ड (घड़ी) पुण्यकाल होता है और मकर अर्थात् उत्तरायणकी संक्रान्तिमें बीस दण्ड पुण्यकाल होता है ॥ ७३ ॥

अर्वाषपोडश विज्ञेया नाड्यः पश्चाच्च षोडश ।

कालः पुण्योऽर्कसंक्रान्तेर्विद्वाद्भिः परिकीर्तितः ॥ ७४ ॥

इति शातातपः ।

अर्थ—शातातपने कहा है कि, रविसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके पूर्वमें सोलह दण्ड और उपरान्त सोलहदण्डतक पुण्यकाल होता है, इस प्रकार विद्वानोंका अभिप्राय है ॥ ७४ ॥

(२) निरंशेऽश्वक्रान्त्ये संक्रान्तिकाले हि भास्करोऽश्वरहितो भवति तस्मिन् दृष्टे दिनेति यावदादिनश्च दिनवत्संस्कृतास्त्रिंशत्नाडिका इति ज्योतिर्विदः । इति तिथितत्त्वे स्मार्ताः ।

(क) नाडी दण्डः तथाच सूर्यसिद्धान्तः “उत्पलादिपल षष्ठ्या त्रिपलात्तु पल नयेत् । पलात्पष्ट्या नयेद्भाटी तत्पष्ट्या तु रवेदिनम् ” इति तिथितत्त्वे ।

अतीतानागतो भोगो नाड्यः पञ्चदश स्मृताः ॥ ७५ ॥ (❀)

इति देवीपुराणे ।

अर्थ-देवीपुराणमें लिखा है कि, विष्णुपदी संक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके पूर्वमें सोलह दण्ड और उपरान्तमें सोलह दण्डतक पुण्यकाल होता है ॥ ७५ ॥

पुण्यायां विष्णुपद्याश्च प्राक्पश्चादपि षोडश ॥ ७६ ॥

इति जावालिबृहदसिधौ ।

अर्थ-जावालने और बृहद्वशिष्ठने कहा है कि, विष्णुपदी संक्रान्तिके पूर्वमें सोलह दण्ड और उपरान्तमें सोलह दण्डतक पुण्यकाल होता है ॥ ७६ ॥

षडशीतिचतसृणां तथा विपुवयोरपि ।

पश्चात्षोडशनाडीनां पुण्यत्वं समुदाहृतम् ॥ ७७ ॥

त्रिंशद्दण्डास्तथा पुण्या भविष्यदक्षिणायने ।

उत्तरायणसंक्रान्तेः पश्चाद्विंशतिनाडिकाः ॥ ७८ ॥

विष्णुपद्यामुभयतः प्राक्पश्चादपि षोडश ।

दण्डाः पुण्यास्तु विज्ञेया दिवासंक्रमणे रवेः ॥ ७९ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, षडशीतीत्यादि चार संक्रान्तिके और जल-विपुव तथा महाविपुवसंक्रान्तिके लगनेसे सोलह दण्डतक पुण्यकाल होता है, इसी प्रकार दक्षिणायन (कर्क) संक्रान्तिमें संक्रान्तिके लगनेसे पूर्वमें तीस दण्ड, उत्तरायण (मकर) संक्रान्तिके उपरान्त वीसदण्ड और विष्णुपदी संक्रान्तिके पूर्वमें और उपरान्तमें सोलह दण्ड तक पुण्यकाल होता है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

आह्नि संक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्तितम् ।

रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्द्धं स्नानदानयोः ॥ ८० ॥

इति बृहद्वसिष्ठः ।

अर्थ-बृहद्वसिष्ठने कहा है कि, दिनमें संक्रान्ति लगनेसे सभी दिन पुण्यकाल होता है और रात्रिमें संक्रान्तिके लगनेसे अर्द्धदिनतक पुण्यकाल होता है । उसमेंही संक्रान्तिनिमित्त स्नान और दानादि करना चाहिये ॥ ८० ॥

(•) इदं वचनं दिवा विष्णुपदीविषयमिति स्मार्त्तेनाभिहितम् ।

अथ रात्रिसंक्रमणे पुण्यकालव्यवस्था ।

कलान्यूनाद्धरात्रे तु यदि संक्रमणं भवेत् ।

तदहः (*) पुण्यमिच्छन्ति गार्ग्यगालवगौतमाः ॥ ८१ ॥

इति गार्ग्यः ।

अर्थ—गार्ग्यमुनिने कहा है कि, एकदण्ड न्यून रात्रिके पूर्वार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे उस दिनके परार्द्धमें पुण्यकाल होता है इस प्रकार गार्ग्य, गालव और गौतमादि मुनियोंका मत है ॥ ८१ ॥

अद्धरात्रे त्वसम्पूर्णे दिवापुण्यमनागतम् ।

अद्धरात्रे व्यतीते तु विज्ञेयं चापरेऽहनि ॥

सम्पूर्णे चाद्धरात्रे च उदयेऽस्तमयेऽपि वा ॥ ८२ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ—देवीपुराणमें लिखा है कि, एकदण्ड न्यून रात्रिके पूर्वार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे उस दिनके परार्द्धमें पुण्यकाल होता है, इसी प्रकार एकदण्ड न्यून रात्रिके परार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे पर दिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होता है और दण्ड-द्वयात्मक मध्यरात्रिमें संक्रान्ति लगनेसे पूर्वदिनके परार्द्धमें और परदिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होता है ॥ ८२ ॥

अन्यथा ।

मानार्द्धं भास्करे पुण्यमपूर्णे शर्वरीदले ।

सम्पूर्णे तूर्ध्वोदयमतिरेके परेऽहनि ॥ ८३ ॥

अर्थ—वचनान्तरमें कहा है कि, एकदण्ड न्यून रात्रिके पूर्वार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे पूर्वदिनके परार्द्धमें पुण्यकाल होता है, इसी प्रकार दण्डद्वयात्मक मध्यरात्रिमें संक्रान्ति लगनेसे दोनों दिनमें पुण्यकाल होता है और एक दण्ड न्यून रात्रिके परार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे परदिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होता है ॥ ८३ ॥

अद्धरात्रे कलाधिक्ये यदा संक्रमते रविः ।

तदोत्तरदिनं ग्राह्यं स्नानदानजपादिषु ॥ ८४ ॥

इति भुजबलीमपराक्रमे ।

अर्थ—भुजबल भीमपराक्रममें लिखा है कि, एक दण्ड अधिक अद्धरात्रिके

(*) तदहरिति ग्रामह्यपरम् । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेनोक्तम् ॥

अतीत कालमें यदि सूर्यकी संक्रान्ति लगे तो स्नान, दान और जपादि परादिनके पूर्वार्द्धमें करना चाहिये ॥ ८४ ॥

अर्द्धरात्रे व्यतीते तु यदा संक्रमते रविः ।

सा ज्ञेया कूटसंक्रान्तिर्मुनिभिः परिकीर्तिता ॥ ८५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रात्रिके शेषार्द्धमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको मुनिगण कूट संक्रान्ति कहते हैं ॥ ८५ ॥

अर्द्धरात्रे तु सम्पूर्णं यदा संक्रमते रविः ।

प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं त्यक्त्वा मकरकर्कटौ ॥ ८६ ॥

इति भुजबलमीमपराक्रमे ।

अर्थ-भुजबल भीमपराक्रममें लिखा है कि, सम्पूर्णार्द्धरात्रिमें अर्थात् (दण्ड-द्वयात्मक) अर्द्धरात्रिके समय संक्रान्ति लगनेसे मकर और कर्कटकी संक्रान्तिको छोड़कर अन्य सब संक्रान्तिमें ही पूर्वदिनके परार्द्धमें और परादिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होता है ॥ ८६ ॥

पूर्णे चेदर्द्धरात्रे तु रविसंक्रमणं भवेत् ।

प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं त्यक्त्वा मकरकर्कटौ ॥ ८७ ॥

इति शातातपजावाली ।

अर्थ-शातातपने और जावालीने कहा है कि, पूर्ण अर्द्धरात्रिके समय संक्रान्ति लगनेसे मकर और कर्कटकी संक्रान्तिको छोड़कर शेष संक्रान्तिमें दोनों दिनमें ही पुण्यकाल होता है ॥ ८७ ॥

आदौ पुण्यं विजानीयाद्यद्यभिन्ना तिथिर्भवेत् ॥ ८८ ॥

अर्थ-पूर्ण आधी रातके समय संक्रान्ति लगनेसेभी यदि सूर्योदयकालसे संक्रान्तिके कालतक एकातिथि होय तो पूर्व दिनके परार्द्धमें ही पुण्यकाल होता है ॥ ८८ ॥

अर्द्धरात्रादधस्तास्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रियाः

ऊर्द्ध संक्रमणे भानोरुदयात्प्रहरद्वयम् ।

पूर्णार्द्धरात्रसंक्रान्तौ द्वे दिनार्द्धे तु पुण्यदे ॥ ८९ ॥ (❀)

इति संवत्सरप्रदीपे ।

अर्थ-संवत्सरप्रदीपमें लिखा है कि, अर्द्धरात्रिके पूर्वमें संक्रान्ति लगनेसे उस (*) उभर्यादिने पुण्यकाले पूर्वदिनाकरण एव परादिने । " श्वः कार्यमद्य कर्त्तव्यं पूर्वाह्ने चापराह्णिकम् । नहिं प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् " इति लिङ्गपुराणात् ।

दिनके दो प्रहरके उपरान्त संक्रान्ति निमित्तक क्रिया करनी चाहिये, अर्द्धरात्रिके उपरान्तमें संक्रान्तिके लगनेसे परदिनमें सूर्योदयकालसे दो प्रहरके मध्यमें स्नानदानादि संक्रान्तिका कर्म करना चाहिये और पूर्ण अर्द्धरात्रिके समय संक्रान्ति लगनेसे दोनों दिनमें पुण्यकाल होता है ॥ ८९ ॥

अर्द्धरात्रादधश्चैव दिनार्द्धस्योपरि क्रियाः ।

ऊर्ध्व संक्रमणे भानोरुदयात्प्रहरद्वयम् ॥ ९० ॥

इति भोजराजः ।

अर्थ-भोजराजने भी कहा है कि, अर्द्धरात्रिके पूर्वमें संक्रान्ति लगनेसे उसी दिनके दो प्रहरके उपरान्त स्नानदानादि करे अर्द्धरात्रिके उपरान्तमें संक्रान्ति लगनेसे परदिनमें सूर्योदयकालसे दो प्रहरके मध्यमें संक्रान्ति निमित्तक कर्म करना चाहिये ॥ ९० ॥

अथ सृगकर्कटयोरर्द्धरात्रिसंक्रमणे विशेषमाहं ।

मिथुनात्कर्कसंक्रान्तिर्यदि स्यादंशुमालिनः ।

प्रदोषे वा निशीथे वा कुर्यादहनि पूर्वतः ॥ ९१ ॥

इति भविष्योत्तरे ।

अर्थ-भविष्यपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है कि, रात्रिके पूर्वार्द्धमें हो वा पूर्ण अर्द्ध रात्रिमें हो मिथुनराशिसे कर्कराशिमें सूर्यके जानेमें अर्थात् दक्षिणायन-संक्रान्तिके होनेसे पूर्व दिनके परार्द्धमेंही पुण्यकाल होता है ॥ ९१ ॥

कार्मुकञ्च परित्यज्य झपं संक्रमते रविः ।

प्रभाते वार्द्धरात्रे वा स्नानं कुर्यात्परेऽहनि ॥ ९२ ॥

इति भविष्योत्तरे ।

अर्थ-भविष्यपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है कि, धनराशिसे मकरराशिमें रात्रिके शेषार्द्धमें वा पूर्णार्द्धरात्रिमें सूर्य गमन करे अर्थात् उत्तमयण संक्रान्ति लगे तो परदिनके पूर्वार्द्धमें संक्रान्तिनिमित्तक स्नानदानादि करना चाहिये ॥ ९२ ॥

अथ मन्दादिमेतेन संक्रान्तीनां पुण्यकालः ।

त्रिचतुःपञ्चसप्ताष्टनवद्वादश एव च ।

क्रमेण घटिका ह्येतास्तत्पुण्यं पारमार्थिकम् ॥ ९३ ॥

इति देवीपुण्ये ।

अर्थ-अब मन्दादिसंक्रान्तिका पुण्यकाल कहते हैं, देवी पुराणमें लिखा है कि, मन्दासंक्रान्तिका पुण्यकाल तीन दण्ड होता है; इसी प्रकार मन्दाकिनीका चार दण्ड, घ्वांसीका पांच दण्ड, चोराका, ज्ञात दण्ड, महेदीका आठ दण्ड, राक्ष-

सीका नौ दण्ड, और मिश्रिता संक्रान्तिका पुण्यकाल बारह दण्ड होता है ॥ ९३ ॥
 (संक्रान्तिप्रकरण आतिवृहत् है यदि पूरा लिखा जाय तो ग्रन्थ बहुत बढ जा-
 यगा अतएव पूरा प्रकरण संक्रान्तिनिर्णयनामक पुस्तकमें लिखूंगा, यहाँ संक्षे-
 पसे वचनोंका तात्पर्यार्थ लिखता हूं, दिनमें संक्रान्तिके लगनेसे जिस दिनमें
 पुण्यकाल कहा गया है, उसीमें दानपूजादि करना चाहिये पन्द्रह दण्ड, सोलह-
 दण्ड, बीसदण्ड और तीसदण्डादि जिस संक्रान्तिमें पुण्यकाल कहा है उसको
 पुण्यतर काल जानो और मन्दादिभेदसे जो तीनदण्ड, चारदण्ड, पांचदण्ड
 इत्यादि कहे हैं उसको पुण्यतम काल जानना चाहिये फलितार्थ यह है
 कि, प्रत्येकसंक्रान्तिमें ही इन तीनों प्रकारके काल जानना चाहिये । दिनमें
 संक्रान्तिके लगनेसे सोलह वा बीसदण्डादि पुण्यतर काल यदि रात्रितक
 होय तब उसकोभी पुण्यकाल कहते हैं । एकदण्ड न्यूनरात्रिके पूर्वार्द्धमें
 संक्रान्तिलगनेसे उस दिनके परार्द्धमें पुण्यकाल होता है । एकदण्डन्यूनरात्रिके
 परार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे परदिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होता है दक्षिणायन
 और उत्तरायणकी संक्रान्तिको छोडकर अन्य संक्रान्तिमें दण्डद्वयात्मक मध्यरा-
 त्रिमें अर्थात् पूर्वार्द्धरात्रिके शेष दण्डमें वा परार्द्धरात्रिके प्रथमदण्डमें संक्रान्तिके
 लगनेसे यदि पूर्वदिनके सूर्योदयकालसे संक्रान्तिके कालतक एकतिथि होय तो
 पूर्वदिनके शेषार्द्धमें पुण्यकाल होता है और सूर्योदय कालसे संक्रान्तिके कालतक
 एकतिथि न होय तो पूर्वदिनके परार्द्धमें और परदिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होता
 है । इस स्थलमें संक्रान्तिकृत्य स्नानदानादि पूर्वदिनमें न करसकनेसे पर दिनमें
 करना चाहिये । दक्षिणायनकी संक्रान्तिमें तिथिका भेद होय वा न होय दण्ड-
 द्वायात्मक मध्यरात्रिमें संक्रान्ति लगनेसे पूर्व दिनके परार्द्धमें पुण्यकाल होता है,
 और उत्तरायणकी संक्रान्तिमें दण्डद्वयात्मक मध्यरात्रिमें संक्रान्ति लगनेसे
 सूर्योदयकालसे संक्रान्तिके कालतक एक तिथि होय वा न होय परदिनके पूर्वा-
 र्द्धमें पुण्यकाल होता है) ।

अथ महाजयाकथनम् ।

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदा संक्रमते शविः ।

महाजया (१) तदा प्रोक्ता सप्तमी भास्करप्रिया ॥ ९४ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ—अब महाजयाको कहते हैं—ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, शुक्लपक्षकी सप्तमी

(१) अत्र “ मासपक्षतिथिनाञ्च निमित्तनाञ्च सर्वशः ” इत्यनेन प्राप्तातिथ्युल्लेखे
 तद्विशेषणत्वेन, महाजयेत्युल्लेख्य सञ्जाविधेरेतदेव प्रयोजनं यत्तया निर्देशः । एवं संक्रा-
 न्तिविशेषस्य निमित्तत्वेन प्राप्ता विपुलाद्युल्लेखोऽपि । इति त्रितितत्त्वे स्मार्तनोक्तम् ।

तियिमै यदि संक्रान्ति लग्नै, तो इस भास्करकी प्रिया सप्तमीको महाजया कहते हैं ॥ ९४ ॥

स्नानं दानं तपो होमः पितृदेवादिपूजनम् ।

सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तं तपनेन महौजसा ॥ ९५ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ—महाजयामें स्नान, दान, तपस्या, यज्ञ, पितृश्राद्ध वा देवार्चना करनेसे कोटिगुण फल प्राप्त होता है, भगवान् सर्वदेवने स्वयं इस प्रकार ब्रह्मपुराणमें कहा है ॥ ९५ ॥

अथ संक्रान्त्यादिषु पुण्यकर्मकरणे फलम् ।

अयने कोटिगुणितं लक्षं विष्णुपदीषु च ।

पडशीतिसहस्रान्तु पडशीत्यामुदाहृतम् ॥ ९६ ॥

शतमिन्दुक्षये पुण्यं सहस्रान्तु दिनक्षये ।

विषुवे शतसाहस्रमाकामावैष्वनन्तकम् ॥ ९७ ॥ (२)

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ—संक्रान्तिमें पुण्यकर्म करनेसे जो फल होता है अब उसको वर्णन करते हैं—मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, अयनकी संक्रान्तिमें दानादि करनेसे उसमें कोटिगुण फल प्राप्त होता है, इसी प्रकार विष्णुपदीसंक्रान्तिमें लक्षगुण, पड-शीति संक्रान्तिमें ८६ हजारगुण, अमावास्यामें शतगुण, अष्टमिमें सहस्रगुण और आपाद, कार्तिक, माघ और वैशाखकी पूर्णिमामें स्नानदानादि करनेसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अथर्द्धयापि यदत्तं कुपात्रेभ्योऽपि मानवैः ।

अकालेऽपि हि तत्सर्वं सत्यमक्षयतां व्रजेत् ॥ ९८ ॥

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ—स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, संक्रान्तिमें पुण्यकालमें यदि अथर्द्धसे अथर्द्ध कुपात्रमें भी दान करें तो उसका असय पुण्य होता है ॥ ९८ ॥

रविसंक्रमणे पुण्ये न स्नायाद्यस्तु मानवः ।

सप्तजन्मस्वर्गो रोगी निर्द्धनश्चोपजायते ॥ ९९ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ—देवीपुराणमें कहा है, सूर्यसंक्रान्तिके दिन जो मनुष्य स्नान दानादि

(२) जायामादिषु जापादीयगतिवीमार्धादिशस्त्राणि पूजिमासु । इति त्रियित्तरे

स्मार्तनोक्तम् ।

पुण्य नहीं करता है वह सात जन्मपर्यन्त रोगी और धनहीन (दरिद्री) होता है ॥ ९९ ॥

अथ विषुवादि सञ्चारगणनम् ।

तत्रादौ महाविषुवस्थ ।

मूर्ध्नि सप्त मुखे त्रीणि हृदये पञ्च विन्यसेत् ।

त्रितयं हस्तपादेषु महाविषुवभक्रमात् ॥ १०० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब विषुवादि संक्रान्तिकी संचारप्रणाली कहते हैं-तहाँ प्रथम महाविषुवको कहते हैं, ज्योतिषतत्त्वमें कहा है कि, पुरुषाकार संक्रान्तिस्वरूप लिखकर मस्तकमें ७ नक्षत्र, मुखमें ३ नक्षत्र, हृदयमें ५ नक्षत्र, प्रतिहाथमें तीन २ नक्षत्र अत्येक पादमें तीन २ नक्षत्र सूर्यसंक्रान्तिकालके नक्षत्रसे स्थापन करै फल नीचे लिखते हैं ॥ १०० ॥

मस्तकमें १।२।३।४।५।६।७

मुखमें ८।९।१०

दक्षिणहाथमें १६।१७।१८

हृदयमें ११।१२।१३।१४।१५



वामहाथमें १९।२०।२१

दक्षिणपादमें २२।२३।२४

वामपादमें २५।२६।२७

फलम् ।

मस्तके भूपतेः सौख्यं वदने पटुता शुभे ।

हृदये च घनाध्यक्षो ह्यार्याभिर्दक्षिणे करे ॥ १ ॥

वामे करे महद्दुःखं मुखं पादे च दक्षिणे ।

अमणं वामपादे च कथितं विषुवत्फलम् ॥ २ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-महाविषुवसंक्रान्तिनक्षत्रसे जो फल होता है अब उसको ज्योतिस्तत्त्वके अनुसार कहते हैं-संक्रान्तिपुरुषके मस्तकमें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसे राज-सौख्य होता है, इसी प्रकार मुखमें जन्मनक्षत्र पडनेसे पटुता (दक्षता) हृदयमें

धनेश्वर, दहिने हाथमें अर्थ प्राप्ति, बायें हाथमें अत्यन्त दुःख, दहिने पैरमें सुख और संक्रान्तिपुरुषके बायें पैरमें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसे भ्रमण होता है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ जलविपुवगणनम् ।

पण्मूर्ध्नि वदने पञ्च चत्वारि हृदये तथा ।

त्रितयं करपादेषु पयोविपुवभक्रमात् ॥ ३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—पूर्वोक्तप्रकार संक्रान्ति पुरुष बनाकर संक्रान्तिकालके नक्षत्रसे उसके मस्तकमें छः नक्षत्र, मुखमें पांच नक्षत्र, हृदयमें चार नक्षत्र, प्रत्येक हाथमें तीन २ नक्षत्र और प्रत्येक पादमें तीन २ नक्षत्र स्थापन कर फल नीचे लिखते हैं ॥ ३ ॥

फलम् ।

मानं मूर्ध्नि मुखे वैरं हृदये सुखसम्भवः ।

दोः पदोर्दक्षयोर्भोगस्त्रासश्च वामयोः स्वभे ॥ ४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अथ जलविपुवका फल ज्योतिस्तत्त्वके अनुसार कहते हैं—मनुष्यका जन्म-नक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मस्तकमें पडनेसे सन्मान होता है, इसी प्रकार मुखमें पडनेसे वैरता, हृदयमें, सुख, दहने हाथमें और दहने पैरमें भोग और संक्रान्ति पुरुषके बायें हाथमें और बायें पैरमें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसे प्रास होता है ॥ ४ ॥

अथोत्तरायणसंक्रमणनम् ।

शीर्षे पञ्चमुखे त्राणि इस्तयोश्च त्रयं त्रयम् ।

हृदि पञ्च शशी नाभौ गुदे च पादयो रताः ॥

उत्तरायणभाज्ज्ञेयं स्वनक्षत्रस्थितैः फलम् ॥ ५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—पूर्वोक्त प्रकार संक्रान्तिपुरुषको बनाकर उसके मस्तकमें उत्तरायण संक्रान्तिकालके नक्षत्रसे मस्तकमें पांच नक्षत्र, मुखमें तीन नक्षत्र, प्रतिहाथमें तीन २ नक्षत्र, हृदयमें पांच नक्षत्र, नाभमें एक नक्षत्र, गुदमें एक नक्षत्र और प्रत्येक पादमें तीन २ नक्षत्र रखते, अनन्तर मनुष्यका जन्मनक्षत्र जिस स्थानमें पड़े उसको देखकर फल विचारना चाहिये ॥ ५ ॥

फलम् ।

शीर्षेथलाभो वदने सुखानि दक्षे कोऽङ्गुलौ हृदये च सौख्यम् ।

नाभौ शुभं वामकोऽर्थनाशो गुह्ये भयं वामपदे प्रवासः ॥ ६ ॥

अर्थ—मनुष्यका जन्मनक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मस्तकमें पङ्कनेसे अर्थ लाभ सुखमें, दाहिने हाथमें, दाहिने पादमें और हृदयमें सुख, नाभिमें मङ्गल, बायें हाथमें अर्थनाश, गुदामें भय और बायें पैरमें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पङ्कनेसे प्रवास (देशान्तरवास) होता है ॥ ६ ॥

अथ दक्षिणायनसंक्रान्तिगणनम् ।

शीर्षे त्रीणि मुखे त्रीणि हृदये पञ्च हस्तयोः ।

अष्टौ पादद्वयेऽप्यष्टौ दक्षिणायनमक्रमात् ॥ ७ ॥

अर्थ—दक्षिणायन संक्रान्ति कालके नक्षत्रसे संक्रान्तिपुरुषके मस्तकमें तीन नक्षत्र, मुखमें तीन नक्षत्र, हृदयमें पांच नक्षत्र, दोनों हाथमें आठ नक्षत्र और दोनों चरणमें आठ नक्षत्र स्थापन करना चाहिये ॥ ७ ॥

फलम् ।

शीर्षे मानं मुखे विद्या हृदये वित्तसञ्चयः ।

प्रवासः स्यात्करे वामे भिक्षालाभश्च दक्षिणे ।

निष्फलं वामपादे च किञ्चिद्लाभश्च दक्षिणे ॥ ८ ॥

अर्थ—दक्षिणायनकी संक्रान्तिका फल ज्योतिषसूत्रके अनुसार कहते हैं, मनुष्यका जन्मनक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मस्तकमें पङ्कनेसे सम्मान होता है इसी प्रकार मुखमें विद्यालाभ, हृदयमें वित्तसञ्चय, बायें हाथमें प्रवास (देशान्तरवास) दाहिने हाथमें भिक्षाप्राप्ति, वाम पादमें निष्फल और दक्षिण पादमें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पङ्कनेसे किञ्चित् लाभ होता है ॥ ८ ॥

अथ विष्णुपदीसञ्चारगणनम् ।

ऋक्षे संक्रमणं यत्र विष्णुपद्यामुखे तु तत् ।

चत्वारि दक्षिणे बाहौ त्रीणि त्रीणि पदद्वये ॥ ९ ॥

चत्वारि वामबाहौ च हृदये पञ्च निर्दिशेत् ।

अक्ष्णोर्द्वयं योज्यं मूर्ध्नि द्वे चैकं गुदे ॥ ११० ॥

इति च ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—जिस नक्षत्रमें विष्णुपदी संक्रान्ति लगे उसी नक्षत्रको संक्रान्तिपुरुषके

मुखमें, उसके उपरान्त चार नक्षत्र दहिनी भुजामें, तीन २ नक्षत्र प्रत्येक पादमें चार नक्षत्र बायीं भुजामें, पांच नक्षत्र हृदयमें, दो २ नक्षत्र प्रत्येक नेत्रमें, दो नक्षत्र मस्तकमें और एकनक्षत्र संक्रान्ति पुरुषकी शुद्धांशमें स्थापन करे इस प्रकार ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है ॥ ९ ॥ ११० ॥

फलञ्च ।

रोगो भोगस्तथा मानं बन्धनं लाभ एव च । (१)

ऐश्वर्यं राजपूजा च अपमृत्युरिति क्रमात् ॥ ११ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अथ विष्णुपदी संक्रान्तिका फल ज्योतिषतत्त्वके अनुसार कहते हैं—मनुष्यका जन्मनक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मुखमें पडनेसे रोग होता है, इसी प्रकार दहिने हाथमें जन्मनक्षत्र पडनेसे भोगकी वृद्धि होती है, दोनों चरणमें गमन वा मान, बायें हाथमें बन्धन, हृदयमें लाभ, दोनों नेत्रोंमें ऐश्वर्य, मस्तकमें राजपूजा और संक्रान्तिपुरुषकी शुद्धांशमें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसे अपमृत्यु होती है ॥ ११ ॥

अथ षडशीतिसञ्चारगणनम् ।

मुखे चैकं करे वेदाः पादयुग्मे द्वयं द्वयम् ।

क्रोडे बाणास्तथा वेदाः करे सव्येतरेऽपि च ॥ १२ ॥

द्वयं द्वयं तथा नेत्रे मस्तके त्रितयं तथा ।

द्वयं चैव तथा गुह्ये षडशतियां स्वभे स्थिते ॥ १३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अथ ज्योतिषतत्त्वके अनुसार षडशीतिसंक्रान्तिकी सञ्चारगणाली कहते हैं—षडशीतिसंक्रान्ति कालका नक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मुखमें स्थापन करे उसके उपरान्त दूसरे नक्षत्रसे दहिने हाथमें चार नक्षत्र, प्रति चरणमें दो २ नक्षत्र, हृदयमें पांच नक्षत्र, बायें हाथमें चार नक्षत्र, प्रत्येक नेत्रमें दो २ नक्षत्र, मस्तकमें तीन नक्षत्र और संक्रान्तिपुरुषकी शुद्धांशमें दो नक्षत्र स्थापन करे ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ फलम् ।

मुखे दुःखं करे लाभः पादयोर्भ्रमणं हृदि ।

कान्तास्याद्वन्धनं वामे हस्ते स्यात्स्वीयभे नृणाम् ॥ १४ ॥

सन्मानं नेत्रयोश्चैव अपमानञ्च मस्तके ।

गुह्ये चैव भवेन्मृत्युः पडशीतिफलश्रुतिः ॥ १५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब पडशीतिसंक्रान्तिका फल कहते हैं-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, मनुष्यका जन्मनक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मुखमें पडनेसे दुःख होता है, इसी प्रकार दाहिने हाथमें पडनेसे लाभ, दोनों चरणों में भ्रमण, हृदयमें खीलाय, बायें हाथमें बन्धन, दोनों नेत्रों में सन्मान, मस्तकमें अपमान और संक्रान्तिपुरुषकी गुदामें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसे मृत्यु होती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ नाडीनक्षत्रेपापग्रहसंक्रमणफलम् ।

नाडीनक्षत्रादिवसे रविभौमशनैश्चराः ।

संक्रान्तिं यस्य कुर्वन्ति तस्य क्लेशोऽभिजायते ॥ १६ ॥ (क)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब नाडी नक्षत्रों में पापग्रहोंकी संक्रान्तिका फल ज्योतिःसारसंग्रहके अनुसार कहते हैं-यदि सूर्य, मंगल, वा शनैश्चर किसी मनुष्यके नाडी नक्षत्रगत होकर अथवा नाडी नक्षत्रके दिनमें एक राशिसे दूसरी राशिमें गमन करें तो उस मनुष्यको अत्यन्त क्लेश होता है ॥ १६ ॥

अथ नाडी नक्षत्रेण पापग्रहसंक्रमणस्नानम् ।

गोमूत्रसर्पपैः स्नानं सर्वापधिजलेन च ।

ग्रहं सम्पूज्य तं दद्याद्विप्राय कनकोत्तमम् ॥ १७ ॥ (ख)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, नाडी नक्षत्रके दिनमें पापग्रहोंका सञ्चार होनेसे गोमूत्र, सरसों और सर्वापधियुक्त जलसे स्नान करे और जो ग्रह नाडी नक्षत्रगत हुआ हो उसकी पूजा करे और ब्राह्मणोंको सुवर्ण दान करके देय तो दोष दूर हो जाता है ॥ १७ ॥

अथ जन्मनक्षत्रे रविसंक्रान्तिफलम् ।

यस्य जन्मक्षमासाद्य रविसंक्रमणं भवेत् ।

(क) पापग्रहसञ्चारेण नाडीदोषमाह-नाडीति । संक्रान्तिम् । राशिसञ्चारमित्यर्थः ।

(ख) एतत्प्रतीकारमाह-गोमूत्रेति । मुराभासीत्यादिना वक्ष्यमाणसर्वापध्यः । यस्य ग्रहस्य प्रतीकारस्तं ग्रहं सम्पूज्येत्यन्वयः ॥ इति ।

तन्मासाभ्यन्तरे तस्य रोगक्लेशधनक्षयाः ॥ १८ ॥ (ग)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—पूर्वमें जो नाडी नक्षत्रमें सूर्यके सञ्चारका दोष सामान्यप्रकारसे कहा है अब केवल नाडी नक्षत्रमें सूर्यके सञ्चारका विशेष दोष ज्योतिषतत्त्वके अनुसार कहते हैं— यदि किसी मनुष्यके जन्मनक्षत्रमें प्राप्त होकर सूर्य एकराशिमें दूसरी राशिमें गमन करै तो उस सौर मासमें इस मनुष्यको रोग, क्लेश और धनक्षय होता है ॥ १८ ॥

अथ जन्मनक्षत्रेण राविशान्तिज्ञानम् ।

तगरसरोरुहपत्रे रजनीसिद्धार्थलोभसंयुक्तैः ।

ज्ञानं जन्मर्क्षदिने रविसंक्रान्ती नृणां शुभदम् ॥ १९ ॥ (घ)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—जन्मनक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसका प्रतीकार ज्योतिषतत्त्वके अनुसार कहते हैं—जिस मनुष्यके जन्मनक्षत्रमें संक्रान्ति होय तो तगर पुष्प, पद्म-पत्र, हरिद्रा सफेद सरसों और लोभयुक्त जलमें स्नान करनेसे संक्रान्तिजनक दोष दूर होजाता है ॥ १९ ॥

अथ गोचरेऽशुभवौ ज्ञानम् ।

मञ्जिष्ठात्वय पत्राङ्गं कुङ्कुमं रक्तचन्दनम् ।

एतत्पूर्णैस्ताम्रकुम्भैः स्नानमर्क्षविशुद्ध्यै ॥ २० ॥ (ङ)

अर्थ—पूर्वोक्त गोचरमें सूर्यके अशुभ होनेसे उसके दोषकी शान्तिके अर्थ स्नान करने हैं—मंजीठ, तेजपात, केसर और लालचन्दन इत्यादि द्रव्ययुक्त जलको ताँबेके कलसोंमें भरकर उनके द्वारा स्नान करनेसे सूर्यका गोचरजनक दोष नष्ट हो जाता है ॥ २० ॥

अपिच ।

धनुरवीजसलिलैः स्नायात्संक्रान्तिज्ञान्तये ।

तथा सर्वोपधीभिश्च विष्णुमंत्रांश्च संजपेत् ॥ २१ ॥

इति संवत्सरप्रदीपे ।

(ग) पूर्वी नाडीनक्षत्रे राविसञ्चारे सामान्यतो दोष उक्तः । अधुना तु केवलजन्म नाडीनक्षत्रे विशेषदोषमाह—यस्येति । जन्मर्क्षं यत्र प्रमात्रं जात इत्यर्थः ।

(घ) एतत्प्रतीकारमाह—तगरेति । रजनी हरिद्रामात्रमिति ।

(ङ) एतत्प्रतीकारमाह—मञ्जिष्ठेति । पत्राङ्गं तेजपत्रं तेन च मञ्जिष्ठादिद्रव्येण पूर्णैस्ताम्रकुम्भैः कृतं स्नानं रविदोषोपशान्तये स्यादित्यर्थः ।

अर्थ-सम्बत्सरप्रदीमें लिखा है कि, धतूरेके बीज और सर्वोपाधियुक्त जलसे स्नान करके विष्णुका मन्त्र जपनेसे संक्रान्तिजनक दोष दूर होजाता है ॥ २१ ॥

दिवामेपसंक्रान्तौ रात्रौ तुलासंक्रान्तौ तत्फलम् ।

यदाह्नि मेपसंक्रान्तिस्तुलासंक्रमणं निशि ।

तदा प्रजा विवर्द्धन्ते धनधान्यसमृद्धिभिः ॥ २२ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वमें लिखा है कि, दिनमें मेपकी संक्रान्ति (महाविषुवसंक्रान्ति और रात्रिमें तुलाकी संक्रान्ति (जलविषुवसंक्रान्ति) के होनेसे उस वर्षमें प्रजाकी धनधान्यादिके साथ वृद्धि होती है ॥ २२ ॥

शानिमंगलवारे महासंक्रमणफलम् ।

कुजार्कशनिवारेषु महासंक्रमणं यदा ।

तदा भवेत्प्रजानाशोदुर्भिक्षादिभयं महत् ॥ २३ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वमें लिखा है कि, मंगल, रवि वा शनिवारमें यदि महासंक्रमण अर्थात् मेपकी संक्रान्ति होय तो उस वर्षमें प्रजाका नाश और दुर्भिक्षादि अनेक प्रकारके भय होते हैं ॥ २३ ॥

इतिरविसंक्रान्तिकथनम् ।

अथ ग्रहणम् ।

भत्रिपादान्तरे (१) राहोः केतोर्वा संस्थितो रविः ।

चतुष्पादान्तरे चन्द्रस्तदा संभाव्यते ग्रहः ॥ २४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ग्रहण किस प्रकारसे होता है अब उसको ज्योतिषतत्त्वके अनुसार कहते हैं-राहु वा केतु जिस राशिमें स्थित होय तो उस राशिघटक नक्षत्रके त्रिपादमें सूर्यके होनेसे सूर्यग्रहण, और चतुष्पादमें चन्द्रमाके होनेसे चन्द्रग्रहण होता है ॥ २४ ॥

अथ चन्द्रग्रहणम् ।

यस्मिन्नुक्षे रविस्तस्माच्चतुर्दशगतः शशी ।

पूर्णिमाप्रतिपत्सन्धौ राहुणा ग्रस्यते शशी ॥ २५ ॥ (२)

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-अब तिथितत्त्वके अनुसार चन्द्रग्रहण कहते हैं-जिस नक्षत्रमें सूर्य होय

(१) भत्रिपादान्तरे नक्षत्रस्य नक्षत्रयोर्वात्रिपादाभ्यन्तरे । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तनाभिहितम् । (२) एतदपि पूर्ववचनानुसारेण तच्चतुष्पादाभ्यन्तरे सति शेषं तस्मात्तमारभ्य तत्परतो वा इत्यर्थः ।

उस नक्षत्रसे चौदहवें नक्षत्रमें चन्द्रमाके होनेसे पूर्णिमा और प्रतिपदाकी सन्धिकालमें राहु चन्द्रमाको ग्रास करता है अर्थात् चन्द्रग्रहण होता है ॥ २५ ॥

सूर्यग्रहणम् ।

कृष्णपक्षे तृतीयायां मासर्क्षे (३) यदि जायते ।

ततस्त्रयोदशे सूर्ये राहुणा ग्रस्यते रविः ॥ २६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, कृष्णपक्षकी तृतीयामें यदि मासनक्षत्र (४) होय और उसके तेरहवें नक्षत्रमें यदि सूर्य होय तो अमावस्या और प्रतिपदाकी सन्धिकालमें सूर्यग्रहण होता है ॥ २६ ॥

अथ नवांशविशेषे वर्षणादिकथनम् ।

रविभौमनवांशे तु निरभ्रं ग्रासमादिशेत् ।

बुधसौरिनवांशे तु मलिनं शुद्धवर्षणम् ॥ २७ ॥

गुरोरंशकमासाद्य दृश्यते स बलाहकः ।

शशिशुकनवांशे तु प्रावृद्धकाले महज्वलम् ॥ २८ ॥

अन्यत्रा (५) व्यक्तभूतौ तौ दृश्येते च्छादितास्वरौ ॥ २९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, सूर्य और मङ्गलके नवांशमें ग्रहण होनेसे आकाशमण्डल मेघशून्य निर्मल होता है अतएव ग्रहण भली-भाँतिसे दिखाई देता है, बुध और शनिके नवांशमें ग्रहण होनेसे आकाश मेघावृत होजाता है और उसके द्वारा अल्पवृष्टि होती है, बृहस्पतिके नवांशमें ग्रहण होनेसे आकाश मेघावृत होजाता है और उसके द्वारा ग्रहण नहीं दीखपड़ता है, चन्द्रमा और शुक्रेके नवांशमें वर्षाऋतुमें ग्रहण समयमें अत्यन्त वृष्टि होती है और वर्षाभिन्न ऋतुमें चन्द्रमा और शुक्रेके नवांशमें ग्रहण

(३) मासर्क्षे कार्तिकादौ कृत्तिकादि “अन्त्यौषान्त्यौ त्रिभो ज्ञेयी फाल्गुनश्च त्रिभो मतः । शेषमासा द्विभा ज्ञेयाः कृत्तिकादिव्यवस्थया,” इति मलमासतत्त्वधृतवचनात् । एतदपि भविष्यद्वाक्ये सति ज्ञेय राहोः पादभोगश्च मासद्वयेन ।

(४) मासनक्षत्र कार्तिकमें कृत्तिकादि, वैशाखमें विशाखादि, ज्येष्ठमें ज्येष्ठादि-करके जानना चाहिये ।

(५) अन्यत्र वर्षेतरकाले तौ चन्द्रार्कौ इति त्रितयितत्त्वे स्मार्त्ताः ।

होनेसे मेघद्वारा आकाश आच्छादित होजाताहै और आकाशक आच्छादित होजानेसे ग्रहण नहीं दीख पडताहै ॥ २७-२९ ॥

अथ ग्रहणसमये राहुवर्णफलम् ।

श्वेते क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणपीडाश्च निर्दिशेद्राहौ ।

अग्निभयमनलवर्णे पीडा च हुताशनवृत्तीनाम् ॥ १३० ॥

इति बराहमिहिरः ।

अर्थ-बराहमिहिराचार्यने कहाहै कि, ग्रहणसमय राहुका श्वेतवर्ण दीखपडनेसे सुभिक्ष और ब्राह्मणजातिको पीडा होती है, और राहुका अग्निवर्ण दीखपडनेसे अग्निकाभय और ब्राह्मणोंको पीडा होतीहै ॥ १३० ॥

हरिते रोगोऽनुतापः सस्यानामीतिभि (❀) च विध्वंसः ।

कपिले शीघ्रगतत्त्वम्लेच्छध्वंसोऽथ दुर्भिक्षम् ॥ ३१ ॥

इति बराहमिहिरः ।

अर्थ-पीतवर्ण दीख पडनेसे मनुष्यको रोग और अनुताप होताहै और अति-वृष्टि, अनावृष्टि प्रभृतिसे सस्यका नाश होताहै । कपिलवर्ण दीखपडनेसे शीघ्र चलनेवाले मनुष्योंका और म्लेच्छोंका नाश होताहै और दुर्भिक्ष होताहै इस प्रकार बराहमिहिराचार्यने कहाहै ॥ ३१ ॥

अरुणकिरणानुरूपे दुर्भिक्षं वृष्टयो विहगपीडा च ।

धूम्राक्षे क्षेमसुभिक्षमादिशेन्मन्दवृष्टिश्च ॥ ३२ ॥

इति बराहमिहिरः ।

अर्थ-बराहमिहिराचार्यने कहाहै कि, ग्रहणसमय राहुका अरुणवर्णके समान वर्ण दीख पडनेसे दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि और पाक्षियोंका नाश होताहै और धूम्र-वर्ण दीखनेसे मङ्गल, सुभिक्ष और अल्पवृष्टि होतीहै ॥ ३२ ॥

कपोतारुणकपिले श्यामाभे च क्षुद्रयं विनिर्दिशेत् ।

कपोतः शूद्राणां व्याधिकरः कृष्णवर्णश्च ॥ ३३ ॥

इति बराहमिहिरः ।

अर्थ-राहुका वर्ण ग्रहणके समय कबूतरके समान तथा अरुणवर्ण कपिलवर्ण और श्यामवर्ण होनेसे शूद्राका भय होताहै तिनमें कपोतके समान वर्ण होनेसे और कृष्णवर्ण होनेसे शूद्रोंको रोगभय होताहै ॥ ३३ ॥

(•) इतिपश्च “अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषिकाः सगाः । प्रत्यासन्नास्तु राजानः पदेते इतयः स्मृताः ” ।

विमलकमलपीताभो वैश्यवृंसी भवेत्सुभिक्षाय ।
साच्चिन्मत्याग्निभयं गैरिकरूपे च युद्धानि ॥ ३४ ॥

इति बराहमिहिरः ।

अर्थ—राहुका निर्मल पत्रकी समान वा पीतवर्ण ग्रहणसमयमें दीखनेसे वैश्योंका नाश और सुभिक्ष होताहै । अत्यन्त तेजस्वी राहु देखपडनेसे आग्निका-
मय होताहै और गेरूके समान राहुका वर्ण दीखनेसे पृथिवीमें युद्ध होताहै ॥ ३४ ॥

दूर्वाकाण्डश्यामे हारिद्रे चापि विनिर्दिशेन्मरणम् ।

अशनिभयसम्प्रदायी पाटलिकुसुमोपमो राहुः ॥ ३५ ॥ (क)

इति बराहमिहिरः ।

अर्थ—बराहमिहिराचार्यने कहाहै कि, राहुका दूर्वादलके समान श्यामवर्ण व
हारिद्रावर्ण ग्रहणके समयमें देखपडनेसे जीवोंका नाश होताहै पाटलिपुष्पके वर्णकी
समान राहु देख पडनेसे वज्राघातसे अनेक जीवोंका नाश होताहै ॥ ३५ ॥

अथ ग्रहणदर्शननिषेधः ।

सप्ताष्टजन्मशेषेषु चतुर्थे दशमे तथा ।

नवमे च तथा चन्द्रे न कुर्याद्वाहुदर्शनम् ॥ ३६ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ—मनुष्यको जन्मराशिसे किस २ राशिमें ग्रहण न देखना चाहिये
उसको राजमार्तण्डके अनुसार कहते हैं—जन्मचन्द्रमा और जन्मराशिसे सातवें,
आठवें, बारहवें, चीथे, दशवें स्थानमें चन्द्रमाके होनेसे राहुको न देखना
चाहिये ॥ ३६ ॥

आपेच ।

जन्मभे जन्मराशौ च षष्ठाष्टमगते तयोः । (ख)

चतुर्थे द्वादशे चन्द्रे न कुर्याद्वाहुदर्शनम् ॥ ३७ ॥

आसदर्शनमात्रेण चार्थहानिर्महद्भयम् ।

जायते नात्र सन्देहस्तस्मात्तत्पारिवर्जयेत् ॥ ३८ ॥

इति वासप्रः ।

अर्थ—वासिष्ठने कहा है कि, मनुष्यके जन्मतारासे सातवें तारामें और जन्म-

(क) पृतानि वचनानि वृत्त्यचिन्तामणी पृतानि ।

(रा) जन्मनक्षत्रापेक्षया षष्ठे ज्योतिष सप्तमतारायाम् निधनेऽपि चेत्येकवाक्यत्वात् ।
इति स्मार्तनाभिहितम् ।

राशिमें और जन्मराशिसे आठवीं, नववीं चौथी और बारहवीं राशिमें राहुको न देखे जो मनुष्य इन राशिमें ग्रहणको देखताहै उसके अर्थका नाश और अत्यन्त भय होता है अतएव उक्त राशिमें मनुष्यको कभी ग्रहण न देखना चाहिये ॥ ३७-३८ ॥

अन्यच्च ।

जन्मसप्ताष्टरिष्वाङ्कदशमस्थे निशाकरे ।

दृष्टो रिष्टप्रदो राहुर्जन्मक्षे निघनेऽपि च ॥ ३९ ॥ (ग)

इति बराहमिहिरसहितायाम् ।

अर्थ-बराहमिहिरसंहितामें लिखा है कि, जन्मराशि और जन्मराशिसे सातवें, आठवें, बारहवें, नववें वा दशवें स्थानमें चन्द्रमा होनेसे और जन्मनक्षत्र तथा जन्मनक्षत्रसे सातवें नक्षत्रमें ग्रहणको न देखे ॥ ३९ ॥

अपरञ्च ।

राशौ यत्र विधुन्तुदे न तरणिश्चन्द्रोऽथवा ग्रस्यते

तस्माद्देदुताशशङ्कररसाः (घ) कल्याणदा राशयः ।

मध्यस्था रवितायकाङ्कदशमाः (ङ) सामान्यभोगप्रदा

युग्मगौतुरगाष्टमाः (१) खलु नृणां यच्छन्ति नेष्टं फलम् ॥ १४० ॥

इति ज्योतिःसाग्नग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें कहा है कि, जिस राशिमें स्थित होकर राहु सूर्य और चन्द्रमाका प्राप्त करे उसी राशिसे चौथे, तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें जिसकी जन्मराशि होय उस मनुष्यको ग्रहण शुभ होता है, और राहु स्थित राशिसे बारहवें, पांचवें नववें और दशवें स्थानमें जिसकी जन्मराशि होय उसको ग्रहण मध्यम फलदायक होता है और राहु जिस राशिमें स्थित होय उस राशिसे दूसरे, सातवें और आठवें स्थानमें जिसकी जन्मराशि होय उस मनुष्यको ग्रहण अशुभदायक होता है ॥ १४० ॥

(ग) रिष्वाङ्कदशराशिः । अंको नवमः । निघनं सप्तमतारा । इत्यपि तिथितत्त्वे स्मार्त्तेन व्याख्यातम् । अत्र वक्ष्यते " चतुर्थे जन्मेचन्द्रे च न कुर्याद्वाहुदर्शनम् " इति ज्योतिःसारेऽधिक लिखितम् ।

(घ) वेददुताशशङ्कररसाश्चतुष्टयेकादशपदित्यर्थः ।

(ङ) रवितायकाङ्कदशमा द्वादश पञ्चम नवम दशमा इत्यर्थः ।

(१) युग्मगौतुरगाष्टमा द्वयेकसप्ताष्टमा इत्यर्थः ।

प्रकारान्तरश्च ।

यस्मिन्निजन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करो ।

तज्जातीनां भवेत्पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः ॥ ४१ ॥

६

इति गर्गः ।

अर्थ—गर्गने कहा है कि; मनुष्यके त्रिजन्मनक्षत्रमें (×) चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण होय और वह मनुष्य यदि ग्रहणके दोषकी शान्ति न करै तो सजा-तिके साथ पीडित होता है ॥ ४१ ॥

अपिच ।

वैनाशिक (१) ऋक्षे दृष्टं ग्रहणं सुधांशुभास्करयोः ।

जनयति रोगं बहुधा क्लेशं वित्तक्षयं चाशु ॥ ४२ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ—तिथितत्त्वमें लिखा है कि, वैनाशिक अर्थात् जन्मनक्षत्रसे सातवें तारामें यदि कोई मनुष्य चन्द्रग्रहण वा सूर्यग्रहणको देखे तो उस मनुष्यको रोग, अनेकप्रकारके क्लेश और उसके धनकी हानि शीघ्रही होती है ॥ ४२ ॥

अन्यच्च ।

सप्ताष्टजन्मशेषाङ्कचतुर्थदशमे विधौ ।

त्रिजन्मनि त्रिनिधने न कुर्याद्ब्राहुदर्शनम् ॥ ४३ ॥

दृष्टस्तु जनयेद्भ्रीर्तिं क्लेशं रोगं धनक्षयम् ।

दैवात्तत्र विधुं दृष्ट्वा दद्यात्स्वर्णं द्विजातये ॥ ४४ ॥

इति राजमार्तण्डे वचनान्तरम् ।

अर्थ—राजमार्तण्डग्रन्थके वचनान्तरमें भी लिखा है कि, जन्मचन्द्रमामें वा जन्मचन्द्रमासे सातवें आठवें नववें चौथे वा दशवें चन्द्रमामें त्रिजन्म (अ) और निधन

(×) त्रिजन्मनक्षत्र पूर्वमें कह चुके हैं ।

(१) वैनाशिकऋक्षे त्रयोविंशतिनक्षत्रे इति केचित् । वस्तुतस्तु वैनाशिकपदं निधन-तापर निधनेऽपि चेत्येकवाक्यस्याद्वैनाशिकपदस्य गण्ये विपत्करादिसाहचर्यात् त्रयो-विंशतिनक्षत्रस्य प्रत्यग्विषयतादायि सप्तमतारायां पठितत्वाच्च यथा “ विपत्करप्रत्यरि-सङ्गितेषु वैनाशिकसंशु कृतं हि कर्म । सर्वं नृणां निष्फलमेव तस्मात्कृतेऽपि तत्रास्ति शुभं न विश्विद । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेनोक्तं दृष्टम् ।

(अ) जन्मनक्षत्र और जन्मनक्षत्रसे दशवें नक्षत्रना और उन्नीसवें नक्षत्रका नाम त्रिजन्मनक्षत्र है ।

नक्षत्रमें (आ) राहुको न देखे जो मनुष्य उपरोक्त निषिद्ध राश्यादिमें राहुको देखते हैं उनको भय, क्लेश, रोग और धनका क्षय (नाश) होता है देवयोगसे देखनेसे ब्राह्मणको सुवर्ण दान करके देवै ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अन्यच्च ।

जन्माष्टजायान्त्यखचर्म (इ) संस्थेनिशाकरे जन्मसु तारेकासु ।

दृष्ट्वा तमश्चन्द्रमसं (ई) प्रयत्नादभ्यर्च्य दद्यात्कनकं द्विजाय ॥ ४५ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वमें कहा है कि, मनुष्यकी जन्मराशि और जन्मराशिसे आठवें सातवें बारहवें दशवें वा नववें स्थानमें चन्द्रमाके स्थित होनेसे अथवा जन्म-तारामें यदि ग्रहणको देखे तो यत्नपूर्वक पूजन करके ब्राह्मणको सुवर्ण दान करके देय ॥ ४५ ॥

अथ ग्रहणगतनाडीनक्षत्रफलम् ।

ग्रहणं रविचन्द्रमसोर्नाडीनक्षत्रवासरे यस्य ।

अब्दाद्धाभ्यन्तरतो कुप्ता नाड्यः समस्ताः स्युः ॥ ४६ ॥ (च)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब मनुष्यकी नाडीनक्षत्रमें ग्रहण होनेसे उसका फल ज्योतिःसारसंग्रहके अनुसार कहते हैं-जिन नक्षत्रमें सूर्य और चन्द्रमाका ग्रहण होय और वह नक्षत्र यदि मनुष्यकी जन्मादिनाडीके मध्यमें कोईभी एक नाडी होय तो छः महीनेके मध्यमें इस मनुष्यकी सभी नाडी दूषित हो जाती हैं ॥ ४६ ॥

ग्रहणगतनाडीनक्षत्रदोषोपशमज्ञानम् ।

ग्रहणग्रहपीडितनाडीनक्षत्रदोषोपशमनाय ।

सह शतपुष्पैः स्नायात्फलिनीफलचन्दनोशीरैः ॥ ४७ ॥ (छ)

अर्थ-जिस मनुष्यके नाडीनक्षत्रमें ग्रहण होय उसके दोषशान्तिके अर्थ शत

(आ) जन्मनक्षत्रसे सातवें, सोलहवें और पच्चीसवें नक्षत्रको त्रिनिवन कहते हैं ।

(इ) जायान्त्यखचर्माः मत्तम द्वादश दशम नवमराशयः ।

(ई) उपक्रमे सुधाशुभास्करयोरिति दर्शनाच्चन्द्रमसामिति सूर्यस्याप्युपलक्षणमिति स्मार्त्ताः ।

(उ) ग्रहणपीडितानां तेषामेव नाडीनक्षत्रमशुभफलमाह-ग्रहणमिति । नाडी-समूहो दोषः । नाडीनामानुरूपमशुभफलमिति तच्च पूर्वमेव लिखितमास्ते ।

(ऊ) शतपुष्पा सोपा इति स्नायात् फलिनी प्रियंगुः फल जातोफलम् उशीर खसः मूलम् । इति ज्योतिषतत्त्वे स्मार्त्तेन व्याख्यातम् एतत्प्रतीकारमाह-ग्रहणमिति । शत-

पुष्प (सोएका शाक वा सौंफ) त्रियङ्गु (पीपल) जातिफल (जायफल)
चन्दन और खसकी जड़ इन सब द्रव्योंको जलमें डालकर उसके द्वारा स्नान
करनेसे ग्रहणगत नाडीनक्षत्रका दोष दूर हो जाता है ॥ ४७ ॥

अथ सूर्यग्रहणे विशेषः ।

ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं पूर्णं वा गव्यसर्पिषा ।

भास्करग्रहणे दद्यान्नाडीदोषोपशान्तये ॥ ४८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, सूर्यग्रहणमें नाडीदोषकी शान्तिके
निमित्त ताम्र पात्रमें तिल भरकर अथवा गौका घृत भरकर दान करना
चाहिये ॥ ४८ ॥

अथ चन्द्रग्रहणे विशेषः ।

घृतकुम्भोपरि निहितं शुद्धं नवनीतिपूरितं दद्यात् ।

नाड्यादिदोषशान्तये द्विजाय दोषाकरग्रहणे ॥ ४९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—चन्द्रग्रहणमें नाडीका दोष दूर करनेके अर्थ गौका घी भरकर कुम्भमें
उसके ऊपर मक्खनसे भरकर शङ्ख धरके आनन्दके साथ ब्राह्मणको दान
करके देवे ॥ ४९ ॥

अथ स्वराश्यादौ ग्रहस्थिते ग्रहणफलम् ।

यस्य राशौ ग्रहाः पञ्चाथवा सप्त नराधिप ।

ग्रहणं चन्द्रसूर्यस्य ग्रहैर्वाष्टमसंस्थितैः ॥ १५० ॥

बलिदानं प्रकर्त्तव्यं मातृणां पूजनं हितम् ।

सूर्यस्याभ्यर्चनं कार्यं शिवस्याशुभनाशनम् ॥ ५१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, यदि किसी मनुष्यकी जन्मराशिमें पांच वा
सात ग्रह हों अथवा आठवें स्थानमें ग्रह हों और उस समय चन्द्र वा सूर्यग्रहण

—पुष्पं सोयाशाकमिति प्रसिद्धं फलनीफलं त्रियङ्गुफलमित्यर्थः । अन्यच्च राजमार्तण्डे-
उक्तं यथा—“गव्यपयोशुटपूषं जमघु दधि पायस क्रमेणाह । तरुणद्विजाय दद्यादनिष्ट-
नाडीविशुध्यर्थम् । ताम्रपात्र तिलैः पूर्णम्” इत्यादि । घृतकुम्भोपरि निहितमित्यादि ।
एष एव प्रतीकारो ग्रहणसमये ग्रहणानन्तरं वा कार्यः । न तु प्राक् यतः प्रतीकारो नेमि-
स्तिक एव निमित्तानन्तरञ्च नेमित्तिकं भूतस्यैव निमित्तत्वात् । एषञ्च यत्र यत्र प्रतीकार
उक्तस्तत्र तत्र दोषकारणस्य पश्चादेव नस्तव्य इत्यर्थः ।

होय तो मातृगणकी पूजा और बलिदान करै और दोषशान्तिके अर्थ सूर्य और शिवकी पूजा करनी चाहिये ॥ १५० ॥ ५१ ॥

अथ ग्रहणफलम् ।

ग्रस्ताबुदितास्तमितौ शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ ।
सर्वग्रस्तौ च दुर्भिक्षमरकदौ पापसंदष्टौ ॥ ५२ ॥

इति बराहसहितायाम् ।

अर्थ-अब बराहसंहिताके अनुसार ग्रहणका फल कहते हैं-ग्रस्तोदय वा ग्रस्तास्त होनेसे शरत्कालके धान्यका और राजाका अमङ्गल होता है, पापग्रहोंकी दृष्टिमें सर्वग्रस्त होनेसे दुर्भिक्ष और मरकी आदि होती है ॥ ५२ ॥

मुक्ते सप्ताहान्तः पांशुनिपातोऽर्थसंक्षयं कुरुते ।
नीहारो रोगभयं भूकम्पः प्रचुरनृपमृत्युम् ॥ ५३ ॥

इति बराहसहितायाम् ।

अर्थ-ग्रहणके उपरान्त सात दिनोंके मध्यमें यदि पांशुवृष्टि होय तो धनका नाश होता है और कुहिर होनेसे रोगका भय होता है और ग्रहणके उपरान्त सात दिनोंके मध्यमें भूकम्प होनेसे राजाका अमङ्गल होता है ॥ ५३ ॥

उत्कामान्निविनाशं नानावर्णा घनाश्च भयमतुलम् ।
स्तनितं गर्भविनाशं विद्युन्मृपदंष्ट्रिपरिपीडाम् ॥ ५४ ॥

इति बराहसहितायाम् ।

अर्थ-ग्रहणके उपरान्त सात दिनोंके मध्यमें उत्कामपात होनेसे राजमन्त्रीका नाश होता है, अनेक प्रकारके मेवोंका वर्ण आकाशमें देख पड़नेसे प्राणियोंको अत्यन्त भय होता है, मेवोंके गर्जनेसे गर्भवती स्त्रियोंका गर्भ गिरजाता है और भिजली चमकनेसे राजाको पीडा होती है ॥ ५४ ॥

परिवेपो रुक्पीडां दिग्दाहो नृपवधश्च साग्निभयम् । (१)
रूक्षो वायुः प्रबलश्चौरसमुत्थं भयं घत्ते ॥ ५५ ॥

इति बराहसहितायाम् ।

अर्थ-ग्रहणके उपरान्त सात दिनोंके मध्यमें परिवेप अर्थात् चन्द्रमण्डल देखपड़नेसे प्राणियोंको दुःख और पीडा होती है, दिग्दाह होनेसे राजाके धनका नाश और अग्निका भय होता है और रूक्ष वायुके चलनेसे चोरोंका भय होता है ॥ ५५ ॥

(१) “वातेन मण्डलीभूतः सूर्यचन्द्रमसोः करः । मालामो व्योम्नि तनुते परिवेपः प्रकीर्तितः ” इति ग्रन्थान्तरे ।

निर्घातः सुरचापो दण्डश्च क्षुद्रयं स्वपरचक्रम् । (२)

ग्रहयुद्धे नृपयुद्धं केतुश्च तथैव निर्दिष्टः ॥ ५६ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ—ग्रहणके उपरान्त सात दिनके मध्यमें निर्घात(आकाशमनिन अपशब्द) सुननेसे, इन्द्रका धनुष और दण्ड देखपडनेसे प्राणियोंकी क्षुधामें कष्ट होता है स्वचक्र और परचक्रका मय होता है और ग्रहोंका युद्ध होनेसे राजाओंका युद्ध होता है ॥ ५६ ॥

अथ ग्रहणदोषप्रतिप्रसवकथनम् ।

अविकृत (३) सलिलनिपातैः सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम् ।

यज्ञाशुभं ग्रहणजं तत्सर्वं नाशमुपयाति ॥ ५७ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ—ग्रहणदोषके प्रतिप्रसव कहते हैं—वराहसंहितामें लिखा है कि, ग्रहणके उपरान्त सात दिनके मध्यमें अविकृत अर्थात् करकापात और कटिकादि न होकर भेषसे वृष्टि होनेसे पृथिवीमें बहुत धान्य होकर सुभिक्ष होता है और ग्रहणजनक जो दोष हैं उनका नाश होता है ॥ ५७ ॥

अथ ग्रहणे भोजनव्यवस्था ।

चन्द्रस्य यदि वा भानोर्यस्मिन्नहनि भार्गव ।

ग्रहणन्तु भवेत्तत्र तत्पूर्वा भोजनक्रियाम् ॥ ५८ ॥

नाचरेत्सग्रहे चैव तथैवास्तमुपागते ।

यावत्स्यान्नोदयस्तस्य नाश्रियात्तावदेव तु ॥ ५९ ॥

सुक्तिं दृष्ट्वा तु भुञ्जीत स्नानं कृत्वा परेऽहनि ॥ १६० ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ—अब ग्रहणमें भोजनकी व्यवस्था कहते हैं—विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि, चन्द्रग्रहण वा सूर्यग्रहण जिस दिन होय उस दिन ग्रहणके पूर्वमें वा ग्रहणके समय भोजन न करना चाहिये और अस्तास्त होनेसे जबतक उदय दीखपडे तबतक भोजन न करे दूसरे दिन उदयको देखकर स्नान करके भोजन करना चाहिये ॥ ५८-१६० ॥

(२) “यदान्तरिक्षे बलवान्मारुतो मरुताहतः । पतत्यधो यो निर्घोपो निर्घातः स उदाहृतः ” इति ग्रन्थान्तरे ।

(३) अविकृतोति करकादिराहितेयः इति त्रितयितत्वे ।

आपिच ।

चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुद्ध्यति ।

तस्मिन्नेव दिने (क) भुक्त्वा त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ६१ ॥

इति देवलः ।

अर्थ-देवलने कहा है, चन्द्रग्रहणके समय भोजन करनेसे प्राजापत्य प्रायश्चित्त करना चाहिये, ग्रहणके दिन नियेद्ध कालमें जो मनुष्य भोजन करे तो वह त्रिरात्र उपवास करनेसे शुद्ध होता है ॥ ६१ ॥

अन्यच्च ।

आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

पारणञ्चोपवासञ्च न कुर्यात्पुत्रवान्गृही ॥ ६२ ॥ (ख)

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वमें कहा है कि, रविशरकी संक्रान्तिमें तथा चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें पुत्रवान् गृहस्थ मनुष्यको पारणा और उपवास न करना चाहिये ॥ ६२ ॥

अथ ग्रहणात्पूर्वभोजननिषेधमाह ।

सूर्यग्रहे तु नाश्रीयात्पूर्वं यामचतुष्टयम् ।

चन्द्रग्रहे तु यामास्त्रीन्वाल्बृद्धातुरार्षिणा ॥ ६३ ॥

इति बृहद्गीतमः ।

अर्थ-अब गौतममुनिके वचनानुसार ग्रहणके पूर्वमें भोजनका निषेध कहते हैं-बालक, वृद्ध और रोगी मनुष्यको छोड़कर अन्य मनुष्य सूर्यग्रहणके चार ग्रहर और चन्द्रग्रहणके तीन ग्रहर पूर्वसे भोजन न करे ॥ ६३ ॥

चन्द्रस्य ग्रस्तोदये विशेषमाह ।

ग्रस्तोदये विधोः पूर्वं नाहर्भोजनमाचरेत् ॥ ६४ ॥

इति बृहद्वसिष्ठः ।

अर्थ-चन्द्रमाके ग्रस्तोदयमें विशेष कहते हैं-बृहद्वसिष्ठने कहा है कि, चन्द्रमाके ग्रस्तोदय होनेसे एकदिन पहिलेसे भोजन न करना चाहिये ॥ ६४ ॥

(क) तस्मिन्नेव दिने । तद्विषयीयनिषिद्धकालाभ्यन्तरे । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेन व्याख्यातम् ।

(ख) अत्र वचने उपवासनिषेधात्पुत्रिणो गृहस्थस्यापि ग्रस्तास्तेऽपि नोपवासः किन्तु ग्रहणानन्तरं पूर्वं वा निर्दोषकाले तेन किञ्चिद्भक्ष्यमिति सत्त्वरप्रदीपः ।

अथ बालवृद्धातुरविषये ।

सायाह्ने ग्रहणं चेत्स्यादपराह्णे न भोजनम् ।

अपराह्णे न मध्याह्ने मध्याह्ने चेन्न संगवे ।

सङ्गवे (१) ग्रहणं चेत्स्यान्न पूर्वं भोजनक्रिया ॥ ६५ ॥

इति मार्कण्डेयः ।

अर्थ-बालक, वृद्ध और रोगीके विषयमें मार्कण्डेय मुनिने कहा है कि, सायं-कालमें ग्रहण होनेसे बालक, वृद्ध और रोगी मनुष्यको अपराह्न समयमें भोजन न करना चाहिये, इसी प्रकार अपराह्नमें ग्रहण होनेसे मध्याह्नमें, मध्याह्नमें होनेसे सङ्गवमें और सङ्गवमें ग्रहण होनेसे प्रातःकालमें भोजन न करना चाहिये ॥ ६५ ॥

अथ ग्रहणादौ स्नानमाह ।

संक्रमे ग्रहणे चैव न स्नायाद्यस्तु मानवः ।

सप्तजन्मसु कुष्ठी स्यादुःखभागी च सर्वदा ॥ ६६ ॥

इति बृहद्वासिष्ठः ।

अर्थ-ग्रहण संक्रान्ति आदिमें स्नानकी आवश्यकता कहते हैं-बृहद्वासिष्ठने कहा है कि, जो मनुष्य संक्रान्तिमें और ग्रहणके निमित्त स्नान नहीं करते हैं-वे सातजन्मपर्यन्त कोढ़ी होते हैं और सदा दुःखी रहते हैं ॥ ६६ ॥

अपगच्छ ।

सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने ।

स्नानमात्रन्तु कर्त्तव्यं दानश्राद्धविवर्जितम् ॥ ६७ ॥ (क)

इति सवत्सरप्रदीपः ।

अर्थ-संवत्सरप्रदीपमें कहा है कि, जननाशीच वा मरणाशीचके समय यदि ग्रहण होय तो उसको देखकर अवश्य स्नान करना चाहिये, किन्तु जनन, मरण वा ग्रहणानिमित्तक दान और श्राद्ध नहीं करना चाहिये ॥ ६७ ॥

अथ राहुदर्शने सूतककथनम् ।

सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने ।

स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत् ॥ ६८ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-अम तिथितत्त्वके अनुसार राहु देखनेका अशीच कहते हैं-राहुके देख-

(१) “ प्रातःकाली मुहूर्त्ताधीन्सङ्गवस्नापदेव तु । मध्याह्नाधियुहूर्त्तः स्यादपराह्न-स्ततः परम् । सायाह्नाधिसुहूर्त्तः स्यात् ” इत्यादि ।

(५) अग्राशीचेऽपि स्नान कर्त्तव्यं न श्राद्धादि । इति स्मार्त्तनोक्तम् ।

नेसे सभी वर्णके मनुष्योंको अशौच होता है, अतएव स्नान करके कर्म करे और पूर्वके पक्वान्नको परित्याग करना चाहिये ॥ ६८ ॥

अथ ग्रहणमुक्तेस्नानम् ।

ग्रहणे शावमाशौचं विमुक्तो सौतिकं स्मृतम् ।

तयोः सम्पत्तिमात्रेण उपस्पृश्य क्रियाक्रमः ॥ ६९ ॥

इति ब्रह्मांडपुराणे ।

अर्थ-ब्रह्माण्डपुराणें लिखा है कि, ग्रहण होनेसे मृताशौच होता है और ग्रहणमुक्त होनेसे जननाशौच होता है, अतएव ग्रहणके उपरान्तमें स्नान करके क्रिया करनी चाहिये ॥ ६९ ॥

अथ ग्रहणादी पर्युपितान्नवर्जनकथनम् ।

प्रेतश्राद्धे यदुच्छिष्टं ग्रहे पर्युपितञ्च यत् ।

दम्पत्योर्भुक्तशेषञ्च न भुञ्जीत कदाचन ॥ १७० ॥

इति स्मृती

अर्थ-स्मृतिमें कहा है कि, प्रेतश्राद्धके पात्रका शेष अन्न, ग्रहणसमयका अन्न तथा घरके स्वामी और स्वामिनीकी भोजनथालीका बचाभया अन्न कभी न खाना चाहिये ॥ १७० ॥

अथ वैधग्रहणदर्शनफलम् ।

चन्द्रे वा यदि वा सूर्ये दृष्टे राहौ महाग्रहे ।

अक्षयं कथितं पुण्यं तत्राप्येकं विशेषतः ॥ ७१ ॥

इति मार्कण्डेयः ।

अर्थ-अब वैधग्रहण देखनेका फल कहते हैं-मार्कण्डेयमुनिने कहा है कि, चन्द्रग्रहण वा सूर्यग्रहणकी कोई मनुष्य देखे तो उसका अक्षय पुण्य होता है, विशेषतः सूर्यग्रहणके देखनेसे अधिक पुण्य होता है ॥ ७१ ॥

अथ वैधतरग्रहणदर्शननिषेधः ।

तेले जले तथा वक्रमादर्शे च मलान्विते ।

न पश्येन्न तथा पश्येदुपरक्तं दिवाकरम् ॥ ७२ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ-अब विष्णुधर्मोत्तरग्रन्थके वचनानुसार वैधतर ग्रहण देखनेका निषेध

कहते हैं—तेलमें, जलमें और मलयुक्त दर्पणमें मुखको न देखे और सूर्य चन्द्रका ग्रहणभी न देखना चाहिये ॥ ७२ ॥

इति ग्रहणम् ।

अथ कुर्मादिचलनम् ।

माने कुलीरे मकरे च कूर्मः

सिंहे तुलायां मिथुने फणीशः । (×)

कुम्भे (१) धनुःकन्यकयोर्धरित्री

मेपे वृषाल्योर्दिग्भिश्चलन्ति ॥ ७३ ॥ (२)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब भूकम्पका विषय वर्णन करते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, माने, कर्क और मकर लग्नमें भूकम्प होनेसे कूर्म (कच्छप) विचलित होते हैं, इसी प्रकार सिंह तुला और मिथुन लग्नमें नाग (अनन्त) कुम्भ, धन और कन्या लग्नमें पृथिवी और मेप, वृष और वृश्चिक लग्नमें दिग्गजगण विचलित होते हैं ॥ ७३ ॥

तस्य फलम् ।

कच्छपे चलिते मृत्युर्हुर्भिक्षमथ पन्नगे ।

कुशलं (३) सर्वजन्तूनां पृथिव्याश्च गजेऽपि च ॥ ७४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, कच्छपके चलायमान होनेसे अति मृत्यु होती है इसी प्रकार नागमें दुर्भिक्ष, और पृथिवी तथा हाथियोंके चलायमान होनेसे प्राणियोंका मङ्गल होता है ॥ ७४ ॥

अन्यथा ।

कीटे मीनपृगेद्रयोर्यदि मही कूर्मो ध्रुवं कम्पते

कन्यायां मिथुने भुजङ्गमपतिर्मेपे वृषे दन्तिनः ॥

(×) ' कुम्भे तुलायां मिथुने फणीशः ' इति ग्रन्थान्तरे ।

(१) ' सिंहे पतुः कन्यकयोर्धरित्री ' इति-पुस्तकान्तरे ।

(२) इदं लग्नपरमिति प्राचीनाः ।

(३) ' आरोग्य सुखसम्पत्तिः पृथिव्याश्च गजेऽपि च ' इति ग्रन्थान्तरे ।

' कुशलं सर्वजन्तूनां पृथिव्यां चलिते गजे ' इत्यापि पुस्तकान्तरे ।

शैलस्तौलिषटे प्रकीर्तितमिदं व्यासादिगर्गादिभिः

शेषस्था धरणी यदा विचलते सर्वत्र संकारिणो ॥ ७५ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें कहा है कि, वृश्चिक, मीन और सिंह लग्नमें भूकम्प होनेसे कूर्म (कच्छप) चलायमान होते हैं इसा प्रकार कन्या और मिथुन लग्नमें सर्प, मेष और वृष लग्नमें हाथी, तुला और कुम्भ लग्नमें पर्वत और कर्क धन और मकर लग्नमें भूकंप हानस पृथिवी चलायमान होती है ऐसा व्यास आदिमुनियोंने कहा है ॥ ७५ ॥

अपरञ्च ।

वृषवृश्चिकमेपेषु गजाश्च परिकम्पिताः ।

मृगकर्कटयोश्चापि कच्छपः परिकीर्तितः ॥ ७६ ॥

कन्यामिथुनसिंहेषु पन्नगाः कम्पिता ध्रुवम् ।

शेषे राशौ वसुमती कम्पिता शुभदा स्मृता ॥ ७७ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-वचनान्तरमें कहा है कि, वृष वृश्चिक और मेष लग्नमें हाथी विचलित होतेहैं, इसी प्रकार मकर और कर्कलग्नमें कच्छप कन्या, मिथुन और सिंह लग्नमें सर्प और तुला, धन, कुम्भ और मीन लग्नमें पृथिवी स्वयं विचलिता होती है और यह भूकम्प शुभ होता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

फलम् ।

कच्छपे मरणं घोरं दुर्भिक्षं परिकीर्तितम् ।

पृथिव्यां शुभमतुलं मंगलं पन्नगे स्मृतम् ॥

गजेषु नरनाशः स्याद्वासादिवचनं यथा ॥ ७८ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-कच्छपके चलित होनेसे घोरतर महामारी और दुर्भिक्ष होता है इसी प्रकार पृथिवी स्वयं चलिता होनेसे मङ्गल होता है सर्पोंके चलायमान होनेसे शुभ और हाथियोंको चलायमान होनेसे मनुष्योंकी मृत्यु होती है ॥ ७८ ॥

अथ हेमन्तादौ भूकम्पफलम् ।

हेमन्ते च वसन्ते च यदा चलति मेदिनी ।

दिवा दुर्भिक्षमरणं रात्रौ कम्पः शुभावहः ॥ ७९ ॥

वर्षाकाले तथा ग्रीष्मे शरच्छिशिरयोरपि ।

रात्रौ कम्पे त्वनावृष्टिर्दुर्भिक्षं पीडिताः प्रजाः ॥ १८० ॥ (क)

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—हेमन्त ऋतुमें और वसन्तऋतुमें यदि दिनमें भूकम्प होय तो दुर्भिक्ष और महामारी होती है और रात्रिमें होनेसे शुभ होता है, और वर्षाऋतुमें, ग्रीष्ममें, शरत्कालमें और शिशिरऋतुमें रात्रिके समय भूकम्प होनेसे अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और प्रजाको पीडा होती है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

अथ वारफलम् ।

रविशनिकुजवारे भूमिकम्पो यदि स्या-

त्तदपि मनुजपीडां सस्यहानिं करोति ॥ (ख)

दहति सकलराज्यं छत्रभङ्गो नृपाणां

भवति विषमयुद्धं संक्षयन्त्येव लोकाः ॥ ८१ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—अब भूकम्प होनेसे वारोंका फल कहते हैं—रवि, शनि वा मंगलवारमें यदि भूकम्प होय तो मनुष्योंको पीडा, शस्य (धान्य) का नाश, सर्वस्थानमें अग्निदाह, राजच्छत्रभङ्ग, घोरतर युद्ध होता है और मनुष्योंकी अनेक प्रकारसे हानि होती है ॥ ८१ ॥

शीघ्रशीघ्रं चलति वसुधा चन्द्रसूर्योपरागे

लोके वह्निर्ज्वलति सलिलं चञ्चलं वा कदाचित् ।

पृथ्वी शस्यं न फलति जनोत्पातकङ्कालमाला

युद्धे राजा न भवति जयी नष्ट चेष्टां करोति ॥ ८२ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—चन्द्रग्रहण वा सूर्यग्रहणके समयमें यदि पुनः २ भूकम्प वा अग्निकाण्ड अथवा जलकम्प होय तो पृथिवी धान्यशून्य होती है, मनुष्योंपर अनेक प्रकारके उत्पात होते हैं और युद्धमें राजाकी पराजय होती है और चेष्टा व्यर्थ हो जाती है ॥ ८२ ॥

(क) “दिवाकम्पे च दुर्भिक्षमनावृष्टिश्च जायते” इति ग्रन्थान्तरे विरुद्धवचनमस्ति ।

(ख) पूर्वोक्तं ज्योतिःसारसंग्रहे लिखितम् ।

अथाम्बुवाची कालः ।

आर्द्रादितो विशाखान्तं रविचारेण वर्षति ।

तस्याश्च प्रथमे पादेऽम्बुवाची समुदाहृतः ॥ ८३ ॥

इति भैरवाचार्यः ।

अर्थ-अयम् अम्बुवाचीकालको वर्णन करते हैं-भैरवाचार्यने कहा है कि, आर्द्रासे विशाखातक ग्यारह नक्षत्रोंमें जितने दिन सूर्य रह उसी समयतक वर्षा होती है और आर्द्रा नक्षत्रके प्रथमपादमें सूर्यके होनेसे अम्बुवाचीकाल होता है ॥ ८३ ॥

अपिच ।

यस्मिन्वारे सहस्रांशुर्यत्काले मिथुनं व्रजेत् । (+)

अम्बुवाची भवेन्नित्यं पुनस्तत्कालवारयोः ॥ ८४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, जिस वारमें जिस समय सूर्य मिथुन राशिमें जाय उस वारके उसी समयको अम्बुवाचीकाल कहते हैं ॥ ८४ ॥

अपरञ्च ।

मृगशिरसि निवृत्ते रोद्रपादेऽम्बुवाची

भवति ऋतुमती क्षमा वर्जयेन्नीप्यहानि ।

यदि च वपति बीजं कर्पकः क्षेत्रमध्ये

न भवति फल (१) भोगः सत्यचाण्डालपाकः ॥ ८५ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्तण्डमें कहा है कि, मृगशिरसनक्षत्रानिःशेष होकर आर्द्रानक्षत्रका आरम्भ होनेसे अम्बुवाची अर्थात् तीन दिनतक पृथिवी ऋतुमती होती है अम्बुवाचीके मध्यमें किसान यदि खेतमें बीजको बोवै तो उसमें उत्पन्न हुए धान्यको न खाना चाहिये, और वह धान्य चाण्डालके पापके समान होजाता है ॥ ८५ ॥

अन्यथा ।

आर्द्राद्यपादगे सूर्ये त्र्यहं पृथ्वी रजस्वला ।

अम्बुवाचीति संज्ञं तत्स्वाध्यायं तत्र वर्जयेत् ॥ ८६ ॥

अर्थ-आर्द्रानक्षत्रके प्रथम पादमें सूर्यके होनेसे तीन दिनतक पृथ्वी रजस्वला

(×) एतच्च प्रायिकम् । इति मलमासतत्त्वे च स्मात्तेनाभिहितम् ।

(१) न भवति फलभागीति पाठान्तरमस्ति ।

होती है, इसी समयको अम्बुवाची कहते हैं, इसमें अध्ययन न करना चाहिये ॥ ८६ ॥

अपरच ।

रजोयुक्क्षमाम्बुवाची च रौद्राद्यपादगे रवौ । (❀)

तस्यां पाठो बीजवापो नाहिर्भीर्दुग्धपानतः ॥ ८७ ॥ (क)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें कहा है कि, आर्द्रानक्षत्रके प्रथम पादमें सूर्यके होनेसे पृथिवी ऋतुमती होती है और इस कालको अम्बुवाची कहते हैं, अम्बुवाचीमें वेदादिका पाठ और बीजवपन न करना चाहिये और इस समयमें दूधके पीनेसे सर्पका भय नहीं रहता है ॥ ८७ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

आर्द्राकै चाम्बुवाचीस्याद्भूमिस्तत्र रजस्वला ।

भूमेरुत्खननं तत्र कुर्वन्भवति किल्बिषी ॥ ८८ ॥ (ख)

अर्थ—आर्द्रानक्षत्रमें सूर्यके जानेसे अम्बुवाचीकाल होता है और इसी समयमें पृथ्वी रजस्वला होती है अम्बुवाचीमें भूमिखनन करनेसे मनुष्य पापी होता है ॥ ८८ ॥

अम्बुवाच्यां निषिद्धानिषिद्धकर्माणि ।

अम्बुवाच्यां भूखननं यः करोतीह मानवः ।

त याति कृदंशश्च स्थितिस्तत्र चतुर्गुणा ॥ ८९ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब ज्योतिःसारसंग्रहके अनुसार अम्बुवाचीमें निषिद्धानिषिद्ध कर्म कहते हैं—अम्बुवाचीमें जो मनुष्य भूमिखनन करता है वह कृमिदंशनामक नर-कमें चतुर्गुण काल वास करता है ॥ ८९ ॥

अन्यश्च ।

अम्बुवाच्यां भूखननं जले शौचादिकं तथा ।

निष्ठीवनं तथा कृत्वा ब्रह्मत्यां लभेत सः ॥ ९० ॥

इति प्रकृतिलण्डे ।

अर्थ—प्रकृतिलण्डमें कहा है कि, अम्बुवाचीकालमें भूमिखनन जलक बीचमें

(•) रजोयुक्क्षमा ऋतुमती पृथ्वी । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेन व्याख्यातम् ।

(क) आर्द्रायाः प्रथमे पादे क्षीरं पिबति यो नरः । अपि रोषान्वितस्तस्य तक्षरः किं करिष्यति ॥ इति मलमासतत्त्वपृथगतनयम् ।

(ख) इत्यादि यथनादम्बुवाचित्वं कालस्येव न तु भूमेः ।

शौचादि किया और श्लेष्मादि (कफ आदि) के डालनेसे ब्रह्महत्याका पाप होता है ॥ १९० ॥

अपरञ्च ।

ज्येष्ठआषाढमासे च कल्पदाहो दिनत्रयम्)

योषिर्द्विस्तत्र कर्तव्यं व्रतं वैष्णवमुत्तमम् ॥ ११ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिनामक ग्रन्थमें लिखा है कि, ज्येष्ठ और आषाढ़के मध्यमें तीन दिनतक कल्पदाह होती है इन तीन दिन स्त्रियोंको वैष्णवव्रतमें निरत रहना चाहिये ॥ ११ ॥

कल्पदाहे न कुर्वीत विधवा चाग्निसेवनम् ।

द्विजाश्च ब्रह्मनिर्घोषं न कुर्वीरन्मुसुक्षवः ॥ १२ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिके वचनान्तरमें कहा है कि, कल्पदाहमें विधवा स्त्रीको अग्नि न छूना चाहिये और ब्राह्मणोंको इन तीन दिन वेदाध्ययन न करना चाहिये ॥ १२ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

यतिनो व्रतिनश्चैव विधवाया द्विजस्य च । (१)

अम्बुवाचिदिने चैव पाकं कृत्वा न भक्षयेत् ॥ १३ ॥

इति राजमातृण्डे ।

अर्थ-राजमातृण्डमें लिखा है कि, ब्रह्मचारी, गृहस्थ मनुष्य और विधवा स्त्री इन सबका अम्बुवाचीमें पकाकर भोजन न करना चाहिये अर्थात् पक्का भक्षण करनेका निषेध है उक्त वचनका पाठान्तर देखकर विदित होता है कि विधवामात्रमें और ब्राह्मणोंको भी पक्का भक्षण करनेका निषेध है ॥ १३ ॥

वचनान्तरश्च ।

स्वपाकं पर पाकं वा अम्बुवाचिदिने तथा ।

भक्षयेन्न कदाचित् चाण्डालान्नसमं स्मृतम् ॥ १४ ॥

इति सबत्सरप्रदीपे ।

अर्थ-संवत्सरप्रदीपमें कहा है कि, अम्बुवाचीमें अपना बनाया भोजन अन्न वा

(१) विधवा च द्विजस्तथा । इति कथित्युक्तके पाठः ।

दूसरेको बनाया हुआ अन्न कमी न खाना चाहिये, क्यों कि, इस समयका बनाया हुआ भोजन चाण्डालके अन्नकी समान होता है ॥ ९४ ॥

अम्बुवाचिमनाधकृत्याह ।

सापेक्षे दैवपैत्र्ये च बीजोत्तिर्हलवाहनम् ।

न स्वाध्यायो वषट्कारो न देवपितृतर्पणम् ॥ ९५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, अम्बुवाचीमें देवकर्म पितृकर्म बीज-वपन वा हलवाहन, वेदादि अध्ययन, होमादि, देवतर्पण और पितृतर्पणादि कार्य न करना चाहिये ॥ ९५ ॥

अन्यश्च ।

हलानां वाहनं चैव बीजानां वपनं तथा ।

दिनत्रयं न कुर्वीत यावत्पृथ्वी रजस्वला ॥ ९६ ॥

अर्थ-जिस समय तीन दिन पृथ्वी ऋतुमती होती है उसमें हलका चलाना बीज बोना न चाहिये ॥ ९६ ॥

अपरश्च ।

एकोद्दिष्टं वृषोत्सर्गं नित्यञ्च प्रेतकर्म च ।

एतान्न हापयेद्विद्वान्काम्यं किञ्चिन चाचरेत् ॥ ९७ ॥

इति सप्तत्सरप्रदीपे ।

अर्थ-सप्तत्सरप्रदीपमें लिखा है कि, अम्बुवाचीमें एकोद्दिष्ट, वृषोत्सर्ग, नित्य कर्म और प्रेतकर्मको परित्याग न करै, किन्तु अनारब्ध काम्य कुछभी न करना चाहिये ॥ ९७ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

धरण्यामृतुमत्यां च भूमिकम्पे तथैव च ।

अन्तरागमने (१) चैव विद्यां नैव पठेन्नरः ॥ ९८ ॥

इति सप्तत्सरप्रदीपे ।

अर्थ-सप्तत्सरप्रदीपमें कहा है कि, पृथ्वी रजस्वला होनेसे भूकंप होनेसे गुरुके निकटसे विद्या न पढ़ना चाहिये ॥ ९८ ॥

इत्युम्बुवाचिकाल कथनम् ।

(१) " पशुमण्डकनजलश्रादिमार्जारमूषिकैः । गतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शिष्टे च गृह-मागते " इति षष्ठादिगमनेऽध्ययननिषेधकथनम् ।

अथ युगाद्याकथनम् ।

वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां कृतं युगम् ।
कार्तिके शुक्लपक्षे तु त्रेताय नवमेऽहनि ॥ ९९ ॥
अथ भाद्रपदे कृष्णत्रयोदश्यान्तु द्वापरम् ।
माघे च पूर्णिमास्यां वै घोरं कलियुगं स्मृतम् ।
युगारम्भास्तु तिथियो युगाद्यास्तेन विश्रुताः ॥ २०० ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ—अथ युगाद्यातिथिको कहते हैं—ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, वैशाखके महीनेकी शुक्लपक्षकी तृतीयामें सवयुगकी उत्पत्ति हुई है इसी प्रकार कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमीमें त्रेतायुगकी उत्पत्ति, भाद्रपदे के कृष्णपक्षकी त्रयोदशीमें द्वापरयुगकी उत्पत्ति और माघकी पूर्णिमा तिथिमें कलियुगकी उत्पत्ति हुई है । इन्हीं चार तिथिमें युगोंका आरंभ हुआ है और इन्हींको युगाद्या तिथि कहते हैं ॥ ९९ ॥ २०० ॥

अपि च ।

वैशाखमासस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।
नभस्यमासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ।
एता युगाद्याः कथिताः पुराणैरनन्तपुण्यास्तिथयश्चतस्रः ॥ १ ॥

इति विष्णुपुराणे ।

अर्थ—विष्णुपुराणमें कहा है कि, वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी, भाद्रपदे के कृष्णपक्षकी त्रयोदशी और माघकी पूर्णिमा इन सब तिथियोंके क्रमानुसार युगाद्या कहते हैं, इनमें पुण्यकर्म कानेसे अनन्तफल होता है ॥ १ ॥

अपरश्च ।

शुक्ला तृतीया वैशाखे प्रेतपक्षे त्रयोदशी ।
कार्तिके नवमी शुक्ला माघमासे च पूर्णिमा ॥ २ ॥
एते युगादयः प्रोक्ता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥ ३ ॥

इति नारदीये ।

अर्थ—नारदीय पुराणमें लिखा है कि, वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, भाद्रपदे

प्रेतपक्षकी त्रयोदशी, कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी और माघकी पूर्णिमा इन तिथियोंको युगाद्या कहते हैं इनमें दान करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथाक्षया ।

सोमवारेऽप्यमावस्या आदित्याहे च सप्तमी ।

चतुर्थ्यङ्गारवारे च अष्टमी च वृहस्पतौ ॥ ४ ॥

अत्र यत्क्रियते पापमथवा धर्मसञ्चयः ।

कोटिजन्मसहस्राणि प्रतिजन्म तदक्षयम् ॥ ५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अत्र अक्षयातिथि ज्योतिःसारसंग्रहके अनुसार कहते हैं—सोमवारमें अमावस्या रविवारमें सप्तमी, मङ्गलवारमें चतुर्थी और वृहस्पति वारमें अष्टमी तिथिके होनेसे उसको अक्षया तिथि कहते हैं, अक्षयातिथिमें पापकर्म वा धर्मका सञ्चय जो कुछभी किया जाय सहस्रकोटिवर्षतक अक्षय होता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ पुण्यतरा ।

शनैश्वरस्य वारेण वारेणाङ्गारकस्य च ।

कृष्णाष्टमीचतुर्दश्यौ पुण्यात्पुण्यतरे स्मृते ॥ ६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अत्र पुण्यतरा कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, शनिवारमें कृष्णपक्षकी अष्टमी और मङ्गलवारमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी होनेसे उसको पुण्यतरा कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ मन्वन्तरा ।

अश्वयुक्छुक्कनवमी द्वादशी कार्तिकी तथा ।

तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥ ७ ॥

फाल्गुनस्याप्यमावस्या पोषस्यैकादशी तथा ।

आषाढस्यापि दशमी तथा माघस्य सप्तमी ॥ ८ ॥

श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढस्य पूर्णिमा ।

कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी तथा ॥ ९ ॥

मन्वन्तरादयस्त्वेता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥ २१० ॥

इति भविष्यमत्स्ययोः ।

अर्थ—अत्र मन्वन्तरा तिथि कही जाती है, भविष्यपुराणमें और मत्स्यपुरा-

णमें लिखा है कि, आश्विनके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको मन्वन्तरा कहते हैं इसी प्रकार कार्तिकके शुक्लपक्षकी द्वादशीको, चैत्र और मादोंके शुक्ल तृतीयाको फाल्गुनकी अमावास्याको पौषकी शुक्ल एकादशीको, आपादकी शुक्लदशमीको माघकी शुक्ल सप्तमीको श्रावणकी कृष्णाष्टमीकी और आपाद कार्तिक फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठकी पूर्णिमाकी मन्वन्तरा तिथि कहते हैं । मन्वन्तरातिथिमें दान करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है ॥ ७-२१० ॥

अर्द्धोदययोगः ।

अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्पौषमाधयोः ।

अर्द्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः । (क)

दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन ॥ ११ ॥ (ख)

इति पाश्चात्त्यनिर्णयामृते ।

अर्थ--अय अर्द्धोदययोग कहते हैं--पौष वा माघके गौण चान्द्रकी अमावस्या तिथिमें रविवार, व्यतीपातयोग और श्रवण नक्षत्रके होनेसे अर्द्धोदयसंज्ञक योग होता है यह योग कोटि करोड सूर्य ग्रहणके समान है । दिनमें उक्त योग प्रशस्त है रात्रिमें यह फल नहीं करता है ॥ ११ ॥

वचनान्तरञ्च ।

अर्द्धोदये तु संप्राप्ते सर्वं गङ्गासमं जलम् ।

शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे भवेद्युर्मत्स्यसंमिताः ।

यत्किञ्चित् क्रियते दानं तदानं सेतुसन्निभम् ॥ १२ ॥

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ--स्कन्दपुराणमें कहा है कि, अर्द्धोदययोगके होनेसे साधारण जल गङ्गा-जलकी समान हो जाता है, ब्राह्मणगण ब्रह्माके समान हो जाते हैं और किञ्चित् दान करनेसे उसमें सेतुदानके समान फल होता है ॥ १२ ॥

(क) 'सूर्यपश्चिन्ताधिक' इति कृत्यचिन्तामणी पाठः ।

(ख) स च योगो रविवारव्यतीपातश्रवणनक्षत्रैर्युक्ता चेत्पौषमाधयोरमावस्या स्यात्तदा भरति इति त्रितयस्ते स्मार्त्तनाभिहितम् । अत्र मासोद्धेत्तो गोणवान्द्रेण । गङ्गा-स्नाने कोटिसूर्यग्रहणकालीनगङ्गास्नानजन्यपुण्यसमपुण्यप्राप्तिः फलम् । एवं दानाद्रावधि बोध्यम् ।

अथ व्यतीपातयोगः ।

श्रवणाश्विनिघ्नार्द्राणागदैवतमस्तके ।

यद्यमा रविवारणे व्यतीपातः स उच्यते ॥ १३ ॥ (ग)

इति बृहन्मनुः ।

अर्थ—अब बृहन्मनुके वचनानुसार व्यतीपातयोग कहते हैं—रविवार अमावस्या तिथिमें यदि श्रवण, आश्विनी, धनिष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा व मृगशिर नक्षत्रयुक्त होय तो व्यतीपात नामक योग होता है ॥ १३ ॥

अपिच ।

संक्रान्तिषु व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

पुण्ये स्नात्वा तु गङ्गायां कुलकोटीः समुदरेत् ॥ १४ ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणे ।

अर्थ—ब्रह्माण्डपुराणमें कहा है कि, संक्रान्तिमें, व्यतीपात योगमें, चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें और पुण्यनक्षत्रमें जो मनुष्य गंगास्नान करता है उसके कोटी-कुलतक तर जाते हैं ॥ १४ ॥

वचनान्तरे च ।

चतुर्दश्यां यदा योगो व्यतीपातेन चार्द्रया । (घ)

तदा पुण्यतमः कालो देवानामपि दुर्लभः ॥ १५ ॥

तदा यः स्नाति गङ्गायां भक्त्या तत्फलमाप्नुयात् ।

यत्र यत्र विपन्नो हि गङ्गामरणजं तु सः ॥ १६ ॥

इति गङ्गामृतमन्थधृतभविष्यपुराणे ।

अर्थ—गङ्गामृतमन्थधृत भविष्यपुराणमें कहा है कि, चतुर्दशी तिथिमें यदि व्यतीपात योग और आर्द्रानक्षत्र होय तो उसको पुण्यतम काल कहते हैं, यह पुण्यतम काल देवताओंको भी दुर्लभ है, इसमें भक्तिपूर्वक गङ्गास्नान करनेसे देवदुर्लभ फल प्राप्त होता है और इस समय जिस जीवकी किस्ती स्नानमें मृत्यु होय तो उसको गङ्गामें मृत्यु होनेका फल होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

(ग) नागदैवतमाश्लेषामस्तकमृगशिराः । इति प्रायश्चित्ततत्त्वे स्मार्त्तेन व्याख्यातम् ।

(घ) व्यतीपातेन चन्द्रमाः । इति गङ्गावाक्यावल्युक्तपाठोऽनन्वितत्वाद्देयः । इति प्रायश्चित्ततत्त्वे स्मार्त्तेन वक्षितम् ।

अथ चूडामणियोगः ।

सूर्यग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहो भवेत् ।

चूडामणिरयं योगस्तत्रानन्तफलं स्मृतम् ॥ १७ ॥ (ङ)

इति गरुडपुराणे ।

अर्थ-अथ गरुडपुराणके वचनानुसार चूडामणि योग कहते हैं-रविवारमें सूर्यग्रहण और सोमवारमें चन्द्रग्रहणके होनेसे चूडामणियोग होताहै, उक्त योगमें गङ्गास्नान करनेसे अनन्तगङ्गास्नानका फल होताहै इस योगमें रात्रिसमयमें भी गङ्गास्नान करे, अभिलाषवाक्यमें (अनन्तगङ्गास्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामः) इत्यादि कहे हैं ॥ १७ ॥

अथ नारायणीयोगः ।

मूलक्षेपापसंयुक्ते (१) यदि सोमदिने कुहूः ।

नारायणीति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ १८ ॥

इति गरुडपुराणे ।

अर्थ-अथ गरुडपुराणके वचनानुसार नारायणीयोग कहते हैं-मूलनक्षत्रयुक्त सौर पीपमासमें सोमवारके दिन यदि अमावस्या तिथि होय तो नारायणीयोग होताहै नारायणी योगमें करतोया (२) में स्नान करनेसे तीन करोड कुलका उद्धार होजाता है ॥ १८ ॥

नारायणीयोगे कृत्स्नं तथा फलम् ।

करतोयाजलं प्राप्य योगे नारायणी शुभे ।

प्रातर्मौनेन यः स्नायात्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ १९ ॥

अर्थ-नारायणीयोगमें प्रातः कालके समय जो मनुष्य मौन धारण कर करतो याके जलमें स्नान करे उसके तीन करोड कुलोंका उद्धार होजाताहै ॥ १९ ॥

अपिच ।

करतोयाजलं प्राप्य यदि सोमयुता कुहूः ।

अरुणोदयवेलायां सूर्यग्रहशतैः समा ॥ २२० ॥

इति तिथितत्त्वधृता स्मृतिः

अर्थ-तिथितत्त्वधृतस्मृतिके वचनमें कहाहै कि, अमावस्यातिथियुक्त सोमवा-

(ङ) अत्रानन्तगङ्गास्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिः फलम् । रात्रावप्यनन्तत्वेन फलमूहनीयम् ।

(१) 'चापाके मूलसंयुक्ता' इति पाठान्तरमस्ति ।

(२) उत्तरदेशस्थानदीविशेषः ।

रके दिन सूर्योदयकालमें करतोयामें स्नान करनेसे जो फल सैकड़ों सूर्यग्रहणके समय स्नानादि करनेसे होताहै तिसीके समान फल प्राप्त होताहै ॥ २२० ॥

अथ वारुणीकयनम् ।

वारुणेन (१) समायुक्ता मघौ (२) कृष्णा त्रयोदशी ।

गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहणतैः समा ॥ २१ ॥

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ—स्कन्दपुराणमें कहाहै कि, चैत्रमासके गौण चान्द्रकी कृष्णत्रयोदशी-तिथिमें शतभिषा नक्षत्र होनेसे उस तिथिको वारुणी कहते हैं, इस समय गङ्गा स्नान करनेसे सैकड़ों सूर्यग्रहणके समय गङ्गास्नान करनेका फल होताहै ॥ २१ ॥

अथ महावारुणी ।

शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता ।

गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ॥ २२ ॥

इति स्कन्दपुराण ।

अर्थ—अब महावारुणी कहतेहैं—शतभिषानक्षत्रयुक्त चैत्रमासकी गौण चान्द्रके कृष्णपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें शनिवार होनेसे उस दिन महावारुणी होती है, इसमें गङ्गास्नान करनेसे करोड़ सूर्यग्रहणके समय गङ्गास्नान करनेसे जो फल होता है उसके समान फल होताहै ॥ २२ ॥

शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि ।

महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ २३ ॥ (क)

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ—स्कन्दपुराणमें कहाहै कि, चैत्रमासकी गौणचान्द्रके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीमें यदि शुभयोग, शतभिषानक्षत्र और शनिवारके होनेसे महामहावारुणी होती है, उक्त योगमें स्नान करनेसे तीन करोड़ कुलका उद्धार हो जाता है ॥ २३ ॥

(१) वारुणं शतभिषा । इति तिथितत्त्वे ।

(२) मघुश्चैत्रमासः । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेन व्याख्यातम् ।

(क) कुलं पुरुषम् । इति याज्ञवल्क्यदीपकालिका । अत्र संज्ञाविधेः सार्थकत्वाय निमित्तत्वेन मासपक्षतिथ्युल्लेखानन्तरं महावारुणी महावारुण्या उल्लेखनीये आदौ पार्वण्यादिसंज्ञोल्लेखवत्कीर्णमास्यमात्रस्ययोः । पक्षोल्लेखश्च । मासपक्षतिथिनाञ्च निमित्तानाञ्चेत्यादिवचनात् । तेन चैत्रे मासि कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां तिथौ महावारुण्यां महामहावारुण्यां वा यथायथं प्रयोज्यम् । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेनाभिहितम् ।

अथ ब्रह्मपुत्रस्नाने विशेषयोगकथनम् ।

पुनर्वसौ वृषे लग्ने चैत्रे मासि सिताष्टमे ।

लौहित्याविरजे स्नायात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २४ ॥ (ख)

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वके अनुसार ब्रह्मपुत्रमें स्नान करनेका योग कहते हैं-पुनर्वसु-नक्षत्र और वृषलग्न यदि चैत्रमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीमें होय तो इस योगमें ब्रह्मपुत्रनामक नदमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है और उसको सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

अथ बुधाष्टमीयोगः ।

पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रे मासि सिताष्टमी ।

स्रोतस्सु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥ २५ ॥

इति विष्णुपुराणे ।

अर्थ-अब विष्णुपुराणके वचनानुसार बुधाष्टमीयोग कहते हैं-बुधवार चैत्र-मासकी शुक्लाष्टमीमें पुनर्वसु नक्षत्र होनेसे यदि मनुष्य स्रोत (स्रोत) के जलमें स्नान करे तो वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है, किन्तु ब्रह्मपुत्रनदमें इस योगके समय स्नान करनेसे सब पापोंसे छूटजाता है, सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल और वाजपेय यज्ञका फल होता है ॥ २५ ॥

अथ दशहरा ।

ज्येष्ठस्य शुक्लदशमी संवत्सरमुखं स्मृतम् ।

तस्यां स्नानं प्रकुर्वीत दानं चैव विशेषतः ॥ २६ ॥

यां काश्चित्सरितं प्राप्य दद्याद्भस्मैस्तिलोदकम् ।

मुच्यते दशभिः पापैः सुमहापातकोपमैः ॥ २७ ॥ (ग)

इति ब्राह्म-ब्रह्मविवर्त्तपुराणयोः ।

अर्थ-ब्रह्मपुराणमें और ब्रह्मविवर्त्त पुराणमें कहा है कि, ज्येष्ठ मासके शुक्ल-

(ख) “पृथिव्या यानि तीर्थानि सरितः सागरादयः । सर्वे लौहित्यमायान्ति चैत्रे मासि सिताष्टमी ” स्नानमन्त्रः । “ब्रह्मपुत्र माहाभाग शन्तनोः कुलनन्दन । अभोषाग-र्भसम्भूत पाप लौहित्य मे हर ” इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेन धृतम् ।

(ग) अत्र केवलदशम्यां नदीभात्रे दर्भकरणकतिलनर्पणाङ्गकस्नानादश विधपापक्षय-फलम् एव दानादावपि । वस्तुतस्तु वक्ष्यमाणभाविष्ये जाह्नवीपदश्रवणात् हेतुमात्रेण दस्वर-साञ्च ब्रह्मविवर्त्तेऽपि सरित्पद जाह्नवीपरम् अन्यथा नानाविधिः स्यात् । यां काश्चिदिति तु जाह्नवीस्तावकम् अन्यथा कुल्यास्नानेऽपि दशविधपापक्षयः स्यात् मन्त्रलिङ्गे जाह्नवीति पदश्रवणाच्च । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेनाभिहितम् ।

पक्षकी दशमी (दशहरा) संवत्सरमें परम प्रासिद्ध तिथि है, इस तिथिमें स्नान और दान करना चाहिये उक्त तिथिमें जिस किसी नदीके जलमें स्नान, दान और तिलोदकमें कुशसे तर्पण करनेसे दश प्रकारके पापोंसे छूट जाता है इसी प्रकार किसी २ का मत है, किन्तु स्मार्त्त महामहोपाध्याय रघुनन्दनभट्टाचार्यने कहा है कि, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें जो सारित् शब्द लिखा है उससे नदीको न जान भागीरथी श्रीगङ्गाजीको जानना चाहिये, इसी प्रकार जिस स्थानमें सारित्का लेख है उसको जाह्नवीकी स्तावकता मात्र जानो इस प्रकार मीमांसा न करनेसे अनेकप्रकारकी कल्पना करनी चाहिये विशेषकरके कृत्रिम जलकी प्रणालीमें स्नान करनेसेभी दशप्रकारके पापोंका नाश होता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

अपिच ।

शुक्लपक्षस्य दशमी ज्येष्ठे मासि द्विजोत्तम ।

हरते दश पापानि तस्मादशहरोच्यते ॥ २८ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ—ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, ज्येष्ठ महीनेके शुक्लपक्षकी दशमीमें गङ्गा स्नान करनेसे दश प्रकारके पापोंका नाश होजाता है, अतएव उक्त तिथिको दशहरा कहते हैं ॥ २८ ॥

अन्यथा ।

ज्येष्ठशुक्लदशम्यान्तु हस्तयोगेन जाह्नवी ।

हरते दश पापानि तस्मादशहरोच्यते ॥ २९ ॥

इति भाविष्यपुराणे ।

अर्थ—भाविष्य पुराणमें कहा है कि, ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिमें हस्त नक्षत्रके हानेसे गङ्गामें स्नान करनेसे दश प्रकारके पापोंसे मनुष्य छूट जाता है ॥ २९ ॥

अपरञ्च ।

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां हस्तयोगतः ।

दशजन्माघहा गङ्गा दशपाप (१) हरा स्मृता ॥ २३० ॥

इति पराशरमाय्ये यम ।

अर्थ—पराशरमाय्यमें, यमने कहा है कि, ज्येष्ठके दशहरामें हस्त नक्षत्रके

(१) “अदत्तानामुपादानं हिंसा ५-गतिधानतः । परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ॥ पारुष्यमवृत्तञ्चैव वैशुन्यञ्चापि सर्वशः । असम्बन्धप्रलापश्च वाद्मयस्याच्चतुर्विधम् । परद्रव्येष्वभिधानं मनसानिष्ठचिन्तनम् । नित्याभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥” इति दशविधपापानि बाल्मीकिना कथितानि ।

होनेसे यदि उसमें गङ्गास्नान किया जाय तो दशजन्मके दश प्रकारके पापोंसे छूट जाता है ॥ २३० ॥

प्रकारान्तश्च ।

ज्येष्ठे मासि क्षितिसुतदिने शुक्लपक्षे दशम्यां
हस्ते शैलान्निरगमदियं जाह्नवी मर्त्यलोकम् ।
पापान्यस्यां हरति च तिथौ सा दशेत्याहुरार्याः
पुण्यं दद्यादपि शतगुणं वाजिमेघायुतस्य ॥ ३१ ॥ (क)

इति शालः ।

अर्थ—शङ्खने कहा है कि, मंगलवारमें ज्येष्ठका दशहरा हस्तनक्षत्रयुक्त होनेसे यदि उसमें गङ्गास्नान किया जाय तो मनुष्यके दश जन्मोंके दश प्रकारके पापोंका नाश होता है और दश अश्वमेध यज्ञका सौगुना फल होता है ॥३१॥

अथ महाज्यैष्ठी योगः ।

ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा ।
पूर्णिमा गुरुवारेण महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ३२ ॥

इति सवत्सरप्रदीपे ।

अर्थ—अब सवत्सरप्रदीपके वचनानुसार महाज्यैष्ठीयोग कहते हैं—जेठमासकी पूर्णिमामें बृहस्पतिवार और ज्येष्ठा नक्षत्रके होनेसे यदि इसी नक्षत्रमें बृहस्पति और चन्द्रमा होय और रोहिणी नक्षत्रमें सूर्य होय तो महाज्यैष्ठी योग होता है ॥३२॥

अन्यथा ।

ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा ।
पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ३३ ॥

अर्थ—ज्येष्ठा नक्षत्रमें बृहस्पति और चन्द्रमा होय, रोहिणी नक्षत्रमें सूर्य होय और इस समय जेठ महीनेकी पूर्णिमा होय तो महाज्यैष्ठी योग होता है ॥ ३३ ॥

अपरञ्च ।

ऐन्द्रे भेत्ते यदा जीवस्तत्पञ्चदशके रविः ।
पूर्णिमाशक्रचन्द्रेण महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ३४ ॥

अर्थ—ज्येष्ठ वा अनुराधा नक्षत्रमें बृहस्पति होय और रोहिणी नक्षत्रमें वा (क) भोमवारहस्तनक्षत्रयुक्तदशम्यां गङ्गास्नानाद्दशनिघपापक्षयशतगुणवाजिमेघा-युतजन्मपुण्यमपुण्य फलम् । इति त्रितित्तो स्मात्तेनोक्तम् ।

मृगशिर नक्षत्रमें सूर्य होय तथा ज्येष्ठा नक्षत्रमें चन्द्रमा होय और इसी समयमें जेठकी पूर्णिमा होय तो महाज्यैष्ठी योग होता है ॥ ३४ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

ऐन्द्रक्षे त्वथवा मैत्रे गुरुचन्द्रौ यदा स्थितौ ।

पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ३५ ॥

अर्थ—ज्येष्ठा नक्षत्रमें वा अनुराधा नक्षत्रमें बृहस्पति और चन्द्रमाके होनेसे यदि उक्त समयमें जेठमासकी पूर्णिमा होय तो महाज्यैष्ठी योग होता है ॥ ३५ ॥

अपिच ।

ज्येष्ठे संवत्सरे (१) चैव ज्येष्ठमासस्य पूर्णिमा ।

ज्येष्ठाभेन च संयुक्ता महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ३६ ॥

अर्थ—ज्येष्ठ नामक संवत्सरमें ज्येष्ठा नक्षत्र युक्त ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमा होनेसे महाज्यैष्ठी योग होता है ॥ ३६ ॥

महाज्यैष्ठ्यान्तु यः पश्येत्पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।

विष्णुलोकमवाप्नोति मोक्षं गङ्गाम्बुमज्जनात् ॥ ३७ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ—ब्रह्मपुराणमें कहा है कि, महाज्यैष्ठीमें जो मनुष्य पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) स्वामीका दर्शन करता है, उसको अन्तसमय विष्णुप्राप्ति होती है और महाज्यैष्ठीमें गङ्गास्नान करनेसे अन्तसमय मोक्षप्राप्ति होती है ॥ ३७ ॥

मासि ज्येष्ठे तु संप्राप्ते नक्षत्रे शक्रदैवते ।

पौर्णमास्यां तदा स्नानं सर्वपापं हरोद्विजाः ॥ ३८ ॥

तस्मिन्काले तु ये मर्त्याः पश्यन्ति पुरुषोत्तमम् ।

बलभद्रं शुभद्राञ्च ते यान्ति पदमव्ययम् ॥ ३९ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ—ब्रह्मपुराणमें कहा है कि, ज्येष्ठानक्षत्रयुक्त जेठके महीनेकी पूर्णिमामें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे बूट जाता है, इस समयमें पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) बलभद्र और शुभद्रा देवीके दर्शन करनेसे अन्तसमय अव्यय पदको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

इति महाज्यैष्ठीरुचनम् ।

(१) ज्येष्ठसंवत्सरश्च “ज्येष्ठामूलोपमे जीवे वर्षे स्यान्नुत्क्रांतिर्यम्” इति विष्णुधर्मो-

अथप्रश्नेधातुमूलजीवज्ञानम् ।

स्वांशं विलग्रे यदि वा त्रिकोणे

स्वांशे स्थितः पश्यति धातुचिन्ताम् ।

परांशकस्थश्च करोति जीवं

मूलं परांशोपगतः परांशम् ॥ २४० ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब दीपिकाके रचनानुसार प्रश्नलग्नसे धातु, मूल और जीवका ज्ञान कहते हैं-प्रश्नसमय यदि कोई ग्रह अपने नवांशमें होकर लग्नगत होय वा प्रश्नलग्नके नववें वा पांचवें स्थानमें होय अथवा प्रश्नलग्नको देखतेहों तो प्रश्नकर्ता धातु (१) की चिन्ता करताहै ऐसा कहै, यदि कोई ग्रह अन्य ग्रहके नवांशमें रहकर प्रश्नलग्नमें वा प्रश्नलग्नके नववें वा पांचवें स्थानको देखता होय तो प्रश्नकर्ताने जीव (२) के सम्बन्धमें प्रश्न करा है ऐसा जाने और यदि कोई ग्रह अन्य ग्रहके नवांशमें स्थित होकर अपरग्रहके नवांशगत लग्नमें वा पांचवें स्थानमें अथवा नवमें स्थानमें देखता होय तो प्रश्नकर्ताने मूल (३) सम्बन्धमें प्रश्न करा है इस प्रकार जानकर कहना चाहिये ॥ २४० ॥

धातुं मूलं जीवमित्योजराशौ युग्मे विद्यादेतदेव प्रतीपम् ।

लग्ने योऽंशस्तत्कमाद्गुण्य एवं संक्षेपोऽयं विस्तृतस्तत्प्रभेदः ॥ ४१ ॥

अर्थ-लग्नको नौ भागमें विभक्त करनेसे एक २ भागको नवांशा कहें है ओज अर्थात् मेघ, मिथुन, सिंह, तुला, धन वा कुम्भराशि मश्रलग्न होनेसे प्रथम २ नवांशमें धातुकी चिन्ता, दूसरे नवांशमें मूलकी चिन्ता और तीसरे नवांशमें जीवकी चिन्ता जाननी चाहिये । चौथे नवांशमें धातु, पाँचवें में मूल, छठे में जीव, सातवें में धातु, आठवें में मूल और नववें नवांशमें मश्र होनेसे जीवकी चिन्ता जाननी चाहिये और युग्म राशियोंमें इसके विपरीत होता है अर्थात् प्रथम नवांशमें मश्र होनेसे जीव दूसरे में मूल और तीसरे नवांशमें मश्र होनेसे धातुकी चिन्ता जाननी चाहिये ॥ ४१ ॥

स्रोतो आहः न तु सवत्सरादिष्वकान्तर्गतवर्षविशेषो व्येष्ट इति वर्षविशेषणस्य वैध-
र्ष्यापत्तेः । सवत्सरे यदि स्वात्विति पाठः काल्पनिकः इति तिथितत्त्वे स्मार्त्ताः ।

(१) धातुशब्दसे सुगर्ण, रजत और मृत्तिकादि जाननी चाहिये ।

(२) जीवशब्दसे पुरुषादि सरिसृपपर्यन्त जानी ।

(३) मूलशब्दसे स्थलज और जलज इन दोनोंको जानना चाहिये ।

अथ शुभाशुभप्रश्नः ।

केन्द्रत्रिकोणेषु शुभस्थितेषु पापेषु केन्द्राष्टमवर्जितेषु ।

सर्वार्थासिद्धिं प्रवदेन्नराणां विपर्ययेष्वेषु विपर्ययः स्यात् ॥ ४२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—यव ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार शुभाशुभ प्रश्न कहते हैं—शुभग्रह यदि प्रश्नलग्नमें वा प्रश्नलग्नके चौथे, सातवें, दशवें, पाँचवें और नववें होय और पापग्रह लग्नमें वा लग्नके चौथे, सातवें दशवें और आठवें स्थानमें न होय तो प्रश्नकर्त्ताका कार्य सिद्ध होता है ऐसा जानै, किन्तु पापग्रह यदि प्रश्नलग्नके केन्द्रस्थानमें, त्रिकोणमें वा आठवें स्थानमें होय और शुभ ग्रह केन्द्रमें और त्रिकोणमें न होवें तो अशुभ होताहै ॥ ४२ ॥

त्रिपञ्चलाभास्तमयेषु सौम्या

लाभप्रदानेष्टफलाश्च पापाः ।

तुलाथ कन्या मिथुनं घटश्च

नृराशयस्तेषु शुभं वदन्ति ॥ ४३ ॥

अर्थ—यदि प्रश्नलग्नके तीसरे, पाँचवें, ग्यारहवें और सातवें स्थानमें शुभ ग्रह होय तो प्रश्नकर्त्ताकी लाभ होताहै और पापग्रह उक्तस्थानोंमें होनेसे अनिष्ट होताहै, तुला, कन्या, मिथुन और कुम्भ इन सब नरराशियोंमें शुभ ग्रह होनेसे शुभ होताहै ॥ ४३ ॥

स्थानप्रदा दशमसप्तमगाश्च सौम्या

मानार्थदाः स्वसुतलग्नगता भवन्ति ।

पापा व्ययायसहिता न शुभप्रदाः स्युः

लगे शशी न शुभदो दशमेऽशुभश्च ॥ ४४ ॥

अर्थ—यदि प्रश्नलग्नके दशवें और सातवें स्थानमें शुभग्रह होय तो प्रश्नकर्त्ताको स्थानकी प्राप्ति होती है प्रश्नलग्नके दूसरे स्थानमें, पाँचवें स्थानमें वा प्रश्नलग्नमें शुभग्रहके होनेसे सम्मान और धनादिकी प्राप्ति होती है पापग्रह प्रश्नलग्नके बारहवें और ग्यारहवें स्थानमें होनेसे अशुभ होताहै और चन्द्रमा प्रश्नलग्नमें वा प्रश्नलग्नके दशवें स्थानमें होनेसे अशुभ होताहै ॥ ४४ ॥

इन्दुं द्विसप्तदशमायारिपुत्रिसंस्थं

पश्येदुरुः शुभफलं प्रमदाकृतं स्यात् ।

लग्नत्रिधर्मसुतनैधनगाश्च पापाः

कार्यार्थनाशभयदाः शुभदाः शुभाश्च ॥ ४५ ॥

अर्थ-यदि प्रश्नलग्नके दूसरे, सातवें, दशवें ग्यारहवें, छठे वा तीसरे स्थानमें चन्द्रमा होय और उस चन्द्रमापर बृहस्पतिकी दृष्टि होय तो प्रश्नकर्त्ताके स्त्री हेतुक शुभ फल होता है । प्रश्नलग्नमें वा प्रश्नलग्नके तीसरे नववें, पाँचवें और आठवें स्थानमें पाप ग्रहोंके होनेसे कार्यनाश, अर्थक्षय और भय होता है और उक्त स्थानोंमें शुभग्रह होनेसे शुभ फल होता है ॥ ४५ ॥

यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा
सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्यास्ति वृद्धिः ।

पापैरेवं तस्य तस्यास्ति हानि-

निर्देष्टव्या जन्मतः प्रश्नतो वा ॥ ४६ ॥

एतानि ज्योतिस्तत्त्वधृतवचनानि ।

अर्थ-प्रश्न समयमें वा जन्मसमयमें तन्वाटि (१) द्वादश भावके जो कोई भाव शुभग्रह वा स्वामीग्रहोंसे दृष्ट अथवा युक्त होनेसे उसकी वृद्धि होती है, और पापग्रहोंसे दृष्ट वा युक्त होनेसे उसकी हानि होता है ॥ ४६ ॥

अथ लाभालाभप्रश्नः ।

सौम्यैर्धिलग्रे यदि वास्य वर्गे

शीर्षोदये सिद्धिमुपैति कार्यम् ।

अतो विपर्यस्तमसिद्धिहेतुः

कृच्छ्रेण संसिद्धिकरं विमिश्रम् ॥ ४७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अथ ज्योतिषतत्त्वके वचनानुसार लाभालाभ प्रश्न कहते हैं-शुभग्रह यदा प्रश्नके मालिक हों वा शुभग्रहके वर्गमें, अथवा शीर्षोदय लग्नमें प्रश्न होय तो

(१) “तनुर्धन सोदरश्च बन्धु पुत्रो रिपुस्तथा । पत्नी च निधन धर्मः कर्म चाप्यो
व्ययोऽपि च ” इति जातकचन्द्रिकायाम् । लग्नको तनु कहते हैं, इसी प्रकार द्वितीय
धनस्थान, तृतीय सोदरस्थान, चतुर्थ बन्धुस्थान, पञ्चम पुत्रस्थान, षष्ठ रिपुस्थान, सप्तम
पत्नीस्थान, अष्टम मृत्युस्थान, नवम धर्मस्थान, दशम कर्मस्थान, एकादश आयस्थान
और द्वादश स्थानको व्ययस्थान कहते हैं ।

कार्यसिद्धि होती है और इसके विपरीत होनेसे कार्य नहीं सिद्ध होता है विमिश्रित लग्नके होनेसे कार्य कष्टसे सिद्ध होता है ॥ ४७ ॥

अथ नष्टलाभादिप्रश्नः ।

होरास्थितः पूर्णतनुः शशाङ्को

जीवेन दृष्टो यदि वा सितेन ।

क्षिप्रं प्रणष्टस्य करोति लब्धिं

लाभोपयातो बलवाञ्छुभश्च ॥ ४८ ॥

अर्थ—अब नष्टलाभादि प्रश्न कहते हैं—प्रश्नलग्नमें पूर्णचन्द्रमा होय और बृहस्पति वा शुक्र उसे देखते होय तो गई वस्तु शीघ्र मिलती है और उक्तप्रकार न होकर यदि प्रश्नलग्नके ग्यारहवें स्थानमें मात्र बलवान् शुभग्रह होय तौभी गई वस्तु मिल जाती है ॥ ४८ ॥

पूर्णः शशी लग्नगतः शुभो वा शीर्षोदये सौम्यनिरीक्षितश्च ।

नष्टस्य लाभं कुरुते तदाशु लाभोपयातो बलवाञ्छुभश्च ॥ ४९ ॥

अर्थ—शीर्षोदय अर्थात् मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक; कुम्भ वा मीन यदि प्रश्नलग्न होय और उसमें पूर्णचन्द्रमा और शुभग्रह होय और शुभग्रहोंकी उपर दृष्टि होय तो गई वस्तु शीघ्र मिलती है, और प्रश्नलग्नके ग्यारहवें स्थानमें शुभ ग्रहोंके होनेसेभी गई वस्तु शीघ्र मिलजाती है ॥ ४९ ॥

स्थिरोदये स्थिरांशे वा वर्गोत्तमगतेऽपि वा ।

स्थितं तत्रैव तद्रव्यं स्वकीयेनैव चोरितम् ॥ २५० ॥

अथ—स्थिर राशि वा स्थिर राशिका नवांशा अथवा वर्गोत्तम यदि प्रश्नलग्न होय तो अपहृत वस्तु आत्मीय मनुष्यने चुराकर उसी स्थानमें रखती है ऐसा जाने और यदि इसके अन्यथा होय तोगैर मनुष्यने चुराई है इस प्रकार जनना चाहिये ॥ २५० ॥

आदिमध्यावसानेषु द्रेष्काणेषु विशेषतः ।

द्वारदेशे तथा मध्ये गृहान्ते च वदेद्भुवम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—लग्नके प्रथम द्रेष्काणमें प्रश्न होय तो गई वस्तु द्वारदेशमें है ऐसा जाने, इसी प्रकार द्वांशके द्रेष्काणमें प्रश्न होनेसे घरके बीच रसोई स्थानके समीपमें और तीसरे द्रेष्काणमें प्रश्न होनेसे अपहृत वस्तु घरके पीछेके स्थानमें है इस प्रकार जानना चाहिये ॥ ५१ ॥

दिग्वाच्याः कण्टकगैरसम्भवैर्वा वदेद्विलग्रशात् ।

मध्याच्चयुतैर्विलग्रनवांशकैर्योजनानि वदेत् ॥ ५२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहधृतवचनानि ।

अर्थ-प्रश्नलग्नके केन्द्रस्थानमें स्थित ग्रहोंसे गई हुई वस्तु किस स्थानमें है उसको कहते हैं-यथा सूर्य केन्द्रमें होनेसे पूर्वदिशामें, शुक्र होनेसे आग्निकोणमें, मंगल होनेसे दक्षिणमें राहुहोनेसे नैऋतमें, शनि होनेसे पश्चिममें, चन्द्रमा होनेसे वायुकोणमें, बुध होनेसे उत्तरमें और केन्द्रमें बृहस्पतिके होनेसे अपहृत वस्तु ईशानकोणमें जानना चाहिये केन्द्रमें यदि अनेक ग्रह हों तब अधिक बलवान् ग्रहके दिशानुसार दिक्निर्णय करें । यदि केन्द्रमें ग्रह न होय तो दिग्वाधिपतिकी लग्नके अनुसार दिशाओंका निर्णय करें नवांशसे दूरता जानी जाती है, अर्थात् पांचवें नवांशके बाद जिसने नवांशा बीतें उतनेही योजनके अन्तरमें घुराई हुई वस्तु है इस प्रकार जानना चाहिये ॥ ५२ ॥

अथ प्रवासादिज्ञानप्रश्नः ।

दूरगतस्यागमनं सुतधनसहजस्थितैर्विलग्रात् ।

सौम्यैर्नष्टप्राप्तिं लब्ध्वा गमनं गुरुसिताभ्याम् ॥ ५३ ॥

अर्थ-अब प्रवासादि विषयमें प्रश्न कहते हैं-यदि प्रश्नलग्नके पांचवें, दूसरे और तीसरे स्थानमें ग्रह स्थित होंय तो परदेशसे मनुष्य आता है ऐसा जानें, उक्त स्थानोंमें शुभ ग्रह होनेसे नष्टवस्तु प्राप्त होती है, और यदि बृहस्पति तथा शुक्र प्रश्नलग्नके पांचवें, दूसरे वा तीसरे स्थानमें स्थित होय तो परदेशसे मनुष्य शीघ्र आता है ॥ ५३ ॥

यामित्रेऽप्यथवा पृष्ठे ग्रहः केन्द्रे बृहस्पतिः ।

प्रोपितागमनं विद्यात्त्रिकोणे ज्ञे सितेऽपि वा ॥ ५४ ॥

अर्थ-प्रश्नलग्नके सातवें वा छठे स्थानमें यदि ग्रह होंय और बृहस्पति यदि लग्नमें वा लग्नके चौथे सातवें अथवा दशवें स्थानमें स्थित होय तो परदेशी मनुष्यका आना होता है, प्रश्नलग्नके नववें और पांचवें स्थानमें बुध और शुक्रके होनेसेभी परदेशी मनुष्यका आना जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

ग्रहः सर्वोत्तमबली लग्नाद्यस्मिन्गृहे स्थितः ।

मासैस्तत्तुल्यसंख्यातैर्निवृत्तिं यातुरादिशेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ-प्रश्नलग्नसे जिस २ स्थानमें अत्यन्त बलवान् ग्रह होंय उसीके समान महीनोंमें लौटकर आना कहना चाहिये ॥ ५५ ॥

चरांशस्थे ग्रहे तस्मिन्कालमेतद्विनिर्दिशेत् ।

द्विगुणं स्थिरभागस्थे त्रिगुणं तद्विरात्मके ॥ ५६ ॥

अर्थ—जो चरराशिके नवांशमें स्थित हो उसमें उसी अनुसार समय कहिये, स्थिरराशिके नवांशमें स्थित होनेसे राशिसंख्यासे द्विगुण कहना और द्विःस्वभाव राशिके नवांशमें हो तो राशिसंख्यासे त्रिगुण समय कहना ॥ ५६ ॥

यातुर्विलग्रयामिन्नभवनाधिपतिर्यदा ।

करोति वक्रमावृत्तेः कालं तं ब्रुवतेऽपरे ॥ ५७ ॥

अर्थ—और आचार्य कहते हैं कि, लग्नसे सातवें स्थानका स्वामी वकी होकर पीछेकी राशिपर लौट आवे तो उसी राशिसंख्याके अनुसार समय करता है ऐसा जानना ॥ ५७ ॥

अष्टमस्थे निशानाथे कण्टकैः पापवर्जितैः ।

प्रवासी सुखमायाति सौम्यैर्लाभसमन्वितः ॥ ५८ ॥

अर्थ—प्रश्नलग्नके आठवें स्थानमें चन्द्रमाके होनेसे और केन्द्रस्थानमें पाप ग्रहोंके न होनेसे परदशत मनुष्य सुखपूर्वक आता है, और केन्द्रमें शुभ ग्रहोंके होनेसे आनेवाला मनुष्य परदेशसे लाभ करके आता है ॥ ५८ ॥

पृष्ठोदये (क) पापनिरीक्षिते वा पापास्तृतीये रिपुकेन्द्रे वा ।

सौम्यैरदृष्टा वधबन्धदाः स्युर्नष्टा विनष्टा मुपिताश्च वाच्याः ॥ ५९ ॥

अर्थ—पृष्ठोदय अर्थात् वृष, मेष, धन, कर्क, मकर और मीनराशिके मध्यमें यदि कोई राशि प्रश्नलग्न होय और पापग्रह उसको देखते हों तो प्रवासिमनुष्यका वध, छेदन वा बन्धन होता है । मश्नलग्नके तीसरे स्थानमें पापग्रह होंय और उनको शुभग्रह न देखते हों तो आनेवाला मनुष्य देशान्तरमें जाता है प्रश्नलग्नके छठे स्थानमें पापग्रह हों और उनपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि न होय तो प्रवासी मनुष्यकी मृत्यु होती है और प्रश्न लग्नके केन्द्रस्थानमें पापग्रह हों और उनको शुभग्रह न देखते हों तो प्रवासी मनुष्यके द्रव्यादिकी चोरी हो जाती है ॥ ५९ ॥

ग्रहो विलग्राद्यतमे ग्रहे तु तेनाहता द्वादशराशयश्च ।

तावद्दिनान्यागमनस्य विद्यान्निवर्तनं वक्रगतेर्यहेश्च ॥ २६० ॥

अर्थ—प्रश्नलग्नसे जिस २ राशिमें ग्रह होय उन अङ्कोंसे बारहकी संख्या पूरी

(क) वृषमेषकर्कटकमकरधनुर्मीनः पृष्ठोदयाः ।

करके जो अङ्क प्राप्त हों उसी अङ्कसंख्यक दिनमें प्रवासी मनुष्यका आगमन जानें और ग्रहोंके वक्ती होनेसे इन संख्यक दिनतक आनेकी निवृत्ति जानना चाहिये ॥ २६० ॥

वृषसिंहवृश्चिकघटविंद्धि स्थानं गमागमौ न स्तः ।

न मृतं न चापि नष्टं न रोगशान्तिर्न चाभिभवम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ लग्नमें मश्र होनेसे मश्रकर्त्ताको स्थानकी प्राप्ति होती है और इन लग्नोंमें गमनागमन, रोगीके रोगकी शान्ति, मरण और पराभव नहीं होता है, धान्यादिके विषयमें मश्र होनेसे धान्य समभावसे विकता है ॥ ६१ ॥

तद्विपरीतं चैद्विशरीरैर्मिश्रितं भवति ।

लग्नेन्दोर्वक्तव्यं शुभदृष्ट्या शोभनमतोऽन्यच्च ॥ ६२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वधृतवचनानि ।

अर्थ—चरराशि अर्थात् मेष, कक, तुला और मकरराशि प्रश्नलग्न होनेसे पूर्वांक्त स्थानादि प्राप्तिके विपरीत फल होता है अर्थात् स्वानादिप्राप्ति नहीं होती है, गमनागमन होता है, रोगीकी मृत्यु होती है, धान्यादि नष्ट होता है और रोगकी शान्ति तथा पराभव होता है । द्रव्यात्मक राशि प्रश्नलग्न होनेसे मिश्रफल होता है अर्थात् पूर्वाद्धमें प्रश्न होनेसे स्थिर राशिकी समान और परार्द्धमें प्रश्न होनेसे चरराशिकी समान फल होता है, परन्तु प्रश्नलग्न और चन्द्रमापर यदि शुभ-ग्रहोंकी दृष्टि होय तो शुभफल होता है और पापग्रहोंकी दृष्टि होनेसे अशुभ फल हो जाता है ॥ ६२ ॥

अथांशकादिना हतद्रव्यादीनां ज्ञानम् ।

अंशकाज्ज्ञापते द्रव्यं द्रेष्काणैस्तस्कराः स्मृताः ।

राशिभ्यः कालदिग्देशावयोजातिस्तु लग्नात् ॥ ६३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अब नवांशादिसे अपहृत द्रव्यादि कहते हैं—प्रश्न लग्नके नवांशासे कहा जाता है, इसी प्रकार द्रेष्काणसे तस्करका विचार, राशिसे काल, दिग् और देश निर्णय और लग्नके मालिकसे चोरकी आयु और जाति जानी जाती है ॥ ६३ ॥

अथ पुत्रजन्मादिप्रश्नः ।

विषमस्थितेऽर्कतनये सुतस्य जन्मान्यथाङ्गनायास्तु ।

लभ्या वरस्य नारी समस्थितेऽन्यथा वामम् ॥ ६४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार पुत्रके जन्मादि विषयमें प्रश्न कहते हैं—यदि प्रश्न लग्नके तीसरे, पाँचवें, सातवें नववें और ग्यारहवें स्थानमें शनैश्चर होय तो पुत्र होता है, इन सब स्थानोंके अतिरिक्त शनि होनेसे कन्या होती है और प्रश्नलग्नसे सम रात्रिमें शनैश्चरके दानसे कन्या होती है, विषमराशिमें शनैश्चरके होनेसे विपरीत अर्थात् पुत्र होता है ॥ ६४ ॥

पुंवर्गे लग्नगते पुंग्रहदृष्टे बलान्विते पुरुषः ।

युग्मे स्त्रीग्रहदृष्टे स्त्रीबुधयुक्ते तु गर्भयुता ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें कहा है कि, पुंवर्गराशि अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन वा कुम्भ यदि प्रश्नलग्न होय और पुरुषग्रह उसको देखते हों तो पुत्र होता है समराशि यदि प्रश्नलग्न होय और स्त्रीसंज्ञक ग्रह उसको देखते हों तो कन्या होती है और प्रश्नलग्नमें बुधके होनेसे प्रसव नहीं हुआ है (गर्भवती है) इस प्रकार जानना चाहिये ॥ ६५ ॥

अथ विवाहज्ञानप्रश्नः ।

गुरुरविसौम्यैर्दृष्टस्त्रिसुतमदनायारिगः शशी विलग्नात् ।

भदति तु विवाहकर्ता त्रिकोणकेन्द्रेषु वा सौम्याः ॥ ६६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब विवाहविषयमें प्रश्न ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार कहते हैं—यदि चन्द्रमा प्रश्नलग्नके तीसरे पाँचवें, सातवें, ग्यारहवें वा छठे स्थानमें होय और उसपर सूर्य और बुधकी दृष्टि होय तो विवाह हो जाता है, शुभग्रहगण प्रश्नलग्नके नववें पाँचवें वा केन्द्रस्थानमें होनेसे भी विवाह हो जाता है ॥ ६६ ॥

अथ प्रश्ने बालादिचिन्ताकथनम् ।

कुमारिकां बालशशीं बुधश्च वृद्धां शनिः सूर्यगुरु प्रसूताम् ।

स्त्री कर्कशांभौमसितौ विधत्ते एवंवयः स्यात्पुरुषेषु चैवम् ॥ ६७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार प्रश्नसे बालकादिकी चिन्ता कहते

हैं यदि प्रश्नलग्नमें बाल चन्द्रमा (१) होय उसकी दृष्टि होय तो प्रश्न कर्ताके मनमें कन्याकी चिन्ता है और प्रश्नलग्नमें बुध होय वा बुध प्रश्नलग्नको देखता होय तौभी कन्याकी चिन्ता जानी, इसी प्रकार युवाचन्द्रमा (२) प्रश्नलग्नमें होय वा प्रश्नलग्नको देखता होय तो युवतीकी चिन्ता करता है, वृद्धचन्द्रमा (३) और शनैश्चर प्रश्नलग्नमें हो वा प्रश्नलग्नको देखते हों तो वृद्धाकी, सूर्य और बृहस्पति प्रश्नलग्नमें होय वा उसको देखतेहों तो प्रसवयुक्ताकी, मंगल और शुक्र प्रश्नलग्नमें हों वा उसको देखते हों तो कर्कशा (अति तरुणी) की प्रश्नकर्ताके मनमें चिन्ता है ऐसा जानना चाहिये । उक्त प्रकारसे शरीरकी आयुभी जानी जाती है । और स्त्रीपुरुषका ज्ञानभी इसी प्रकारसे जाना जाता है॥६७॥

अथ मश्ने आत्मसमादिचिन्ताकथनम् ।

आत्मसमो लग्नगतैश्वरता सहजस्थितैः सुतः सुतगैः ।

माता वा भगनी वा चतुर्थगैः शत्रुगैः शत्रुः ॥ ६८ ॥

अर्थ—अब प्रश्नलग्नसे आत्मादिकी चिन्ता कहते हैं—बलवान् ग्रह यदि प्रश्नलग्नमें होय तो प्रश्नकर्ता अपने मनमें अपने शरीरके हृदय कुछ चिन्ता करता है । इसी प्रकार प्रश्नलग्नके तीसरे स्थानमें बलवान् ग्रहके होनेसे भ्रातृचिन्ता, चौथे स्थानमें होनेसे माता और भगनीकी, पांचवें स्थानमें होनेसे पुत्रकी चिन्ता और प्रश्नलग्नके छठे स्थानमें बलवान् ग्रहके होनेसे प्रश्नकर्ताके मनमें शत्रुकी चिन्ता है इस प्रकार जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

भार्या सप्तमसंस्थेनैवमे धर्माश्रितो गुरुदंशमे ।

स्वांशपतिमित्रशत्रुस्तथैव वाच्यो बलयुते तेषु ॥ ६९ ॥

अर्थ—प्रश्नलग्नके सातवें स्थानमें बलवान् ग्रहके होनेसे प्रश्नकर्ताके मनमें स्त्रीकी चिन्ता जाननी चाहिये, इसी प्रकार नववें स्थानमें बलवान् ग्रहके होनेसे धर्मयुक्त पुरुषकी चिन्ता और प्रश्नलग्नके दशमस्थानमें बलवान् ग्रहके होनेसे प्रश्नकर्ताके मनमें गुरुकी चिन्ता जाननी चाहिये । और यदि अपने नवांशका स्वामी लग्नका मालिक होकर प्रश्नलग्नमें होय तो प्रश्नकर्ता अपने धनकी चिन्ता करता है । अपने नवांशके मालिकका मित्र यदि प्रश्नलग्नमें होय तो प्रश्नकर्ता अपने मित्रकी और नवांशके मालिकका शत्रु प्रश्नलग्नमें होय तो प्रश्नकर्ताके मनमें शत्रुकी चिन्ता जाननी चाहिये ॥ ६९ ॥

(१) शुरुपक्षकी प्रतिपदासे दशमीतक बालचन्द्रमा होता है ।

(२) शुरुपक्षकी दशमीसे कृष्णपक्षकी पञ्चमीतक चन्द्रमा युवा होता है ।

(३) कृष्णपक्षीसे अमावस्यातक चन्द्रमा वृद्ध होता है ।

चरलग्ने चरभागे मध्याह्ने प्रवासचिन्ता स्यात् ।

अथः सप्तमभवनात्पुनर्निविष्टो यदा तु नो वक्ती ॥ २७० ॥

एतानि ज्योतिःसारसंग्रहधृतवचनानि ।

अर्थ—चरलग्ने वा चरराशिमें नवांशमें अथवा लग्नके पञ्चमांश व्यतीत होनेसे यदि प्रश्न होय तो प्रवासकी चिन्ता जाननी चाहिये, प्रश्नलग्नक सातवीं राशिमें यदि ग्रह चलित होय तो प्रवासी मनुष्यके प्रवास निवृत्तिकी चिन्ता जाननी चाहिये, प्रश्नलग्नके सातवीं राशिमें स्थित ग्रह वक्ती हों वा न हों तो उसमेंभी उक्त प्रकारका फल जानना चाहिये ॥ २७० ॥

अथ वर्षासमये वृष्टिज्ञानम् ।

**चन्द्रार्कयोः सप्तमगौ सितार्का
मुखेऽष्टमे वापि तथा विलग्नात् ।
द्वितीयदुश्चिक्कगतौ तथा वा
वर्षासु वृष्टिं प्रवदेद्विलग्नात् ॥ ७१ ॥**

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार वृष्टिविषयमें प्रश्न करते हैं—चन्द्रमा और सूर्यके सातवें स्थानमें शुक्र और शनैश्वरके होनेसे वृष्टि होती है, और प्रश्नलग्नके चौथे और आठवें स्थानमें वा दूसरे और तीसरे स्थानमें उक्त दोनों ग्रहोंके होनेसेभी वृष्टि होती है ॥ ७१ ॥

अथ मरणे त्रिपुष्करदोषः ।

भग्नपादे तु नक्षत्रे भौमार्कशनिवासरे ।

भद्रातिथिसमायोगे त्रिपुष्कर उदाहृतः ॥ ७२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अब मरणमें त्रिपुष्करदोष ज्योतिषतत्त्वके वचनानुसार कहते हैं—भग्नपाद अर्थात् कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र यदि मंगल, रवि वा शनिवारमें होय और भद्रा अर्थात् द्वितीया, सप्तमी वा द्वादशी तिथि उसमें होय तो त्रिपुष्कर दोष होता है ॥ ७२ ॥

त्रिगुणं स्यात्त्रिभिर्योगे द्वाभ्यां द्विगुणमेव च ।

एकेनापि भवेदेको गुणस्तत्र त्रिपुष्करे ॥ ७३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, बार तिथि और नक्षत्रके योगसे त्रिगुण

दोष होता है, इसी प्रकार दोका योग होनेसे द्विगुण दोष और एकके होनेसे एक गुण दोष होता है ॥ ७३ ॥

ग्रन्थान्तरञ्च ।

पुनर्वसूत्तरापाढा कृत्तिकोत्तरफाल्गुनी ।

पूर्वभाद्रं विशाखा च पडते वै त्रिपुष्कराः ॥ ७४ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ-वराहसंहितामें कहा है कि, पुनर्वसु, उत्तराषाढा, कृत्तिका उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा और विशाखा नक्षत्र त्रिपुष्करसंज्ञक हैं ॥ ७४ ॥

द्वितीया सप्तमी चैव द्वादशी तिथिरेव च ।

शनिर्भौमो रविश्चैव पडते वै त्रिपुष्कराः ॥ ७५ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ-द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथि, शनि, मंगल और रविवार इन छहोंकी त्रिपुष्करसंज्ञा है ॥ ७५ ॥

अथ फलम् ।

एवं त्रिपुष्करे दोषे हानिरेव न संशयः ।

पुत्राश्च भ्रातरः पत्न्यः पितरो मातरस्तथा ।

पितृव्याश्च भगिन्यश्च म्रियन्ते तत्प्रभावतः ॥ ७६ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ-अब वराहसंहिताके वचनानुसार त्रिपुष्करदोषका फल कहते हैं-पूर्वोक्त त्रिपुष्कर दोषमें निःसन्देह हानि होती है यथा-पुत्र, भ्राता, पत्नी, पिता, माता, पितृव्य और भगनी प्रभृतिकी त्रिपुष्करदोषमें मृत्यु होती है ॥ ७६ ॥

माता भ्राता स्वसा चैव ज्ञातयश्च सर्पिण्डजाः ।

सर्वाभावेरिष्टिदोषैर्वास्तुवृक्षो न जीवति ॥ ७७ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ-माता, भ्राता, भगिनी और सर्पिण्ड जातितक जिसके नहीं है उस मनुष्यके पुष्करयोगमें मरनेसे इस दोषमें वास्तुवृक्षतक नहीं जीसکتा है ॥ ७७ ॥

पक्षेऽथवा त्रिपक्षे वा पण्मासे वत्सरेऽपि वा ।

अवश्यं मरणं तस्य नास्ति गण्डो निरामिपः ॥ ७८ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ-वराहसंहितामें कहा है कि, त्रिपुष्करदोषमें पक्षके मध्यमें, तीन पक्षमें,

छः महीनेमें अथवा संवत्सरके मध्यमें पुत्रादिकी अवश्यही मृत्यु होती है त्रिपुष्करदोष कभी व्यर्थ नहीं होता है ॥ ७८ ॥

अन्यच्च ।

पुनर्वसूत्तरापाठाकृतिकोत्तरफाल्गुनी ।

पूर्वभाद्रं विशाखा च रविभौमशनेश्वराः ॥ ७९ ॥

द्वितीया सप्तमी चैव द्वादशी तिथिरेव च ।

एतेषामेव योगे तु भवतीति त्रिपुष्करः ॥ २८० ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—अब ग्रन्थान्तरसे त्रिपुष्करयोग कहते हैं—पुनर्वसु, उत्तरापादा, कृतिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा और विशाखानक्षत्रके अन्यतम नक्षत्र यदि रवि, मंगल शनिवारके अन्यतम वारमें हों और द्वितीया सप्तमी वा द्वादशी तिथि होय तो त्रिपुष्करयोग होता है ॥ ७९ ॥ २८० ॥

तत्फलम् ।

वारं सस्यसुतौ हन्ति तिथौ गोधनमेव च ।

नक्षत्रे गोत्रहानिः स्याद्वास्तु (+) वृक्षो न जीवति ॥ ८१ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—ग्रन्थान्तर्गता रीतिसे त्रिपुष्करयोगका फल कहते हैं—त्रिपुष्करमें मरनेसे वारदोषमें सस्य (धान्य) और सुतकी हानि होती है, इसी प्रकार तिथि-दोषमें गौका नाश और नक्षत्रदोषमें गोत्रके मनुष्योंकी मृत्यु होती है । त्रिपुष्करदोषमें वास्तुके वृक्षतकका नाश होजाता है ॥ ८१ ॥

अथ त्रिपुष्करप्रतिप्रसवकथनम् ।

अष्टादशान्तु संस्थाप्य तिथिवारसमन्वितम् ।

पुनर्देयाः सप्तदश त्रिभिरेतत्पुनर्हरेत् ॥ ८२ ॥

एकेन वसति स्वर्गे द्वाभ्यां पातालमेव च ।

शून्ये मर्त्ये विजानीयात्तत्रातीवाशुभं भवेत् ॥ ८३ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—अब त्रिपुष्कर दोषके प्रतिप्रसव ग्रन्थान्तरकी रीतिसे कहते हैं—एक

(+) सर्व हन्ति त्रिपुष्करः । इति पाठान्तरम् ।

स्थानमें अठारह अङ्क स्थापन करके मृत्युसमयकी तिथि और वारके अङ्क उसमें मिलावै, फिर उसमें सत्रह अङ्क दूसरीवार मिलाकर तीनसे भाग करे भाग कर्मेसे जो शेष बचे उनसे त्रिपुष्करदोषकी स्थिति निर्णय करनी चाहिये । एकके बचनेसे त्रिपुष्करदोषको स्वर्गमें जानना चाहिये, इसी प्रकार द्वाक बचनेसे पातालमें और भागके शेषमें शून्य बचनेसे त्रिपुष्कर दोषको पृथिवीमें जानना चाहिये । पृथिवीमें त्रिपुष्कर दोषके होनेसे अत्यन्त अमङ्गल होताहै ॥८२॥८३॥

अथ त्रिपुष्करदोषशान्तिः ।

तस्मात्पाप्रशान्त्यर्थं होमं (१) कुर्याद्विचक्षणः ।

तत्रायुतं तदर्द्धं वा सहस्रं वा शतन्तथा ॥ ८४ ॥

होमं दानं तथा कृत्वा मुक्तो भवति नान्यथा ॥ २८५ ॥

इति बराहसंहितायाम् ।

अर्थ-अथ बराहसंहिताके बचनानुसार त्रिपुष्करदोषके शान्तिके अर्थ होमादि करना चाहिये, होममें समिध शक्त्यनुसार दशसहस्र, पाँचसहस्र, सहस्र वा इसमेंभी अशक्त होनेसे सौकाभी विधान है । बराहसंहितोक्त होम और दानादिके करनेसे त्रिपुष्कर दोषकी शान्ति होती है ॥ ८४ ॥ २८५ ॥

इति श्रीवृंशाखरेलिनिवासिकान्यकुब्जकुलभूषणभारद्वाजगोत्रोत्पन्नेन
त्रिपाठ्युपनामकेन पण्डितर्षाकेलालात्मजेन श्याममुन्दरदर्शना
सम्पादिते भाषाटीकया विभूषिते ज्योतिस्तत्त्वसुधारणवे
नौकाघटनादित्रिपुष्करदोषशान्तिर्नाम

सप्तमस्तरङ्गः ॥ ७ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

वेदबाणनिधीन्द्रब्दे माघे मासि सिते दले ।

पञ्चम्यां गुरुवारं च ग्रन्थोऽयं पूर्णतामगात् ॥ १ ॥

(१) “कङ्कतोदुम्बराश्वत्थैः प्रत्येकाष्टोत्तर शतम् । एकमेकेन कर्त्तव्यं द्वाभ्या द्विगु-
णमेव च । त्रिगुणं त्रिगुणे तत्र पुष्करे परिकीर्तितम् ” इति बराहसंहितायाम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
“लक्ष्मीविकटेश्वर” स्टोम् प्रेस,
कल्याण.-मुम्बई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टोम् प्रेस,
खेतवाडा-मुम्बई.

श्रीगणेशाय नमः ।

“लक्ष्मीवेंकटेश्वर” स्टीम्-यंत्रालयकी परमोपयोगी
स्वच्छ शुद्ध और सस्ती पुस्तकें ।



यह विषय आज ४० । ५० वर्षसे अधिक हुआ भारतवर्षमें प्रसिद्ध है कि, इस यन्त्रालयकी छपी हुई पुस्तकें सर्वोत्तम और सुन्दर प्रतीत तथा प्रमाणित हुई हैं सो इस यन्त्रालयमें प्रत्येक विषयकी पुस्तकें जैसे-वैदिक, वेदान्त, पुराण, धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा, छन्द, ज्योतिष, काव्य, अलंकार, चम्पू, नाटक, कोष, वैद्यक, साम्प्रदायिक तथा स्तोत्रादि संस्कृत और हिन्दी भाषाके ग्रंथ प्रत्येक अवसरपर विक्रीके अर्थ तैयार रहते हैं। शुद्धता स्वच्छता तथा कागजकी उत्तमता और जिल्दकी बंधाई देशभरमें विख्यात है। इतनी उत्तमता होनेपरभी दाम बहुतही सस्ते रखे गये हैं और कमीशनभी पृथक् काट दिया जाता है। ऐसी सरलता पाठकोंको मिलना असंभव है। संस्कृत तथा हिन्दीके रसिकोंको अवश्य अपनी २ आवश्यकतानुसार पुस्तकोंके मंगानेमें झुटि न करना चाहिये। ऐसा उत्तम, सस्ता और शुद्ध माल दूसरी जगह मिलना असंभव है। ‘सूचीपत्र’ मंगा देखो ।

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना—

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

“लक्ष्मीवेंकटेश्वर” छापाखाना,

कल्याण-मुंबई.